# आधुनिक गद्य साहित्य

## 'ब'

आधे-अधूरे

चन्द्रगुप्त

कहानियाँ

एम.ए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध)

M.A. Hindi (Previous)

प्रश्न पत्र-2

Paper-2

Directorate of Distance Education
Maharshi Dayanand University, Rohtak

# आधुनिक गद्य साहित्य
# (ब)

आधे-अधूरे
चन्द्रगुप्त
कहानियाँ

एम.ए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध)
**M.A. Hindi (Previous)**
प्रश्न पत्र–2
**Paper-2**

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक–124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or *otherwise, without the written permission of the copyright holder.*

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

# विषय-सूची


**आधे-अधूरे**

**खण्ड क व्याख्या**

**खण्ड ख आलोचना**

1. आधे–अधूरे : कथासार / कथावस्तु
2. आधे–अधूरे : प्रतिपाद्य
3. आधे–अधूरे : आधुनिकता
4. आधे–अधूरे : युग–बोध
5. आधे–अधूरे : प्रयोगधर्मिता
6. आधे–अधूरे : भाषा–शैली
7. आधे–अधूरे : चरित्र–चित्रण
8. आधे–अधूरे : अभिनेयता
9. सावित्री का चरित्र–चित्रण
10. महेन्द्रनाथ का चरित्र–चित्रण
11. अशोक का चरित्र–चित्रण
12. बिन्नी का चरित्र–चित्रण

**खण्ड ग लघूत्तरीय**

**चन्द्रगुप्त**

**खण्ड-कः व्याख्या**

गद्य

पद्य

**खण्ड-खः आलोचना**

1. चन्द्रगुप्त की कथा–योजना
2. चन्द्रगुप्त नाटक में चित्रित परिस्थितियाँ
3. चन्द्रगुप्त नाटक की अभिनेयता
4. चन्द्रगुप्त नाटक की गीत–योजना
5. चन्द्रगुप्त नाटक में ऐतिहासिकता और कल्पना का समन्वय
6. चन्द्रगुप्त नाटक की संवाद योजना
7. चन्द्रगुप्त नाटक मे अन्तर्द्वन्द्व – योजना
8. चन्द्रगुप्त नाटक में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना
9. चन्द्रगुप्त नाटक मे चरित्र–चित्रण
   - क. चन्द्रगुप्त
   - ख. चाणक्य
   - ग. सिंहरण
   - घ अम्भीक

ङ. सिकंदर
च पर्वतेश्वर
छ राक्षस
ज अल्का
झ सुवासिनी
ट कल्याणी
ञ कार्नेलिया

10. चन्द्रगुप्त नाटक की भाषा–शैली 142
11. चन्द्रगुप्त नाटक का उद्देश्य/संदेश 145

**कहानियाँ**

**1. उसने कहा था -चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन 149
II. कहानी–सार 152
III. चरित्र–चित्रण 154
(क) लहना सिंह
(ख) सूबेदारनी
(ग) सूबेदार हजारा सिंह
IV. उद्देश्य 158

**व्याख्या** 160

**2. कफन -प्रेमचन्द**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन 164
II. कहानी–सार 166
III. चरित्र–चित्रण 167
(क) घीसू
(ख) माधव
IV. उद्देश्य 171

**व्याख्या** 173

**3. आकाशदीप -जयशंकर प्रसाद**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन 179
II. कहानी–सार 182
III. चरित्र–चित्रण 183
(क) चम्पा
(ख) बुद्धगुप्त
IV. उद्देश्य 187

| | | | |
|---|---|---|---|
| | व्याख्या | | 89 |
| **4.** | **पत्नी** | **-जैनेन्द्र** | |
| | **आलोचना** | | |
| | I. तात्त्विक विवेचन | | 93 |
| | II. कहानी–सार | | 96 |
| | III. चरित्र–चित्रण | | 98 |
| | (क) कालिन्दी | | |
| | (ख) सुनन्दा | | |
| | IV. उद्देश्य | | 0. |
| | **व्याख्या** | | 0? |
| **5.** | **वापसी** | **-उषा प्रियंवदा** | |
| | **आलोचना** | | |
| | I. तात्त्विक विवेचन | | ?09 |
| | II. कहानी–सार | | 1 |
| | III. चरित्र–चित्रण | | 1? |
| | IV. उद्देश्य | | 1? |
| | **व्याख्या** | | 2? |
| **6.** | **परिन्दे** | **-निर्मल वर्मा** | |
| | **आलोचना** | | |
| | I. तात्त्विक विवेचन | | 26 |
| | II. कहानी–सार | | 26 |
| | III. चरित्र–चित्रण | | 29 |
| | (क) लतिका | | |
| | (ख) डॉ० मुकर्जी | | |
| | (ग) मि० ह्यूबर्ट | | |
| | IV. उद्देश्य | | 4 |
| | **व्याख्या** | | 6 |
| **7.** | **बयान** | **-कमलेश्वर** | |
| | **आलोचना** | | |
| | I. तात्त्विक विवेचन | | 2?2 |
| | II. कहानी–सार | | 2?4 |
| | III. नायिका का चरित्र–चित्रण | | 2?5 |
| | IV. उद्देश्य | | 2?7 |
| | **व्याख्या** | | 249 |

# आधुनिक गद्य साहित्य

**पूर्णांक: 100**

**समय: 3 घंटे**

*निर्देश:*

1. खंड (क) में निर्धारित साहित्यकरों से सम्बद्ध दस लधु प्रश्न दिये जायंगे। परीक्षार्थियों को प्रत्येक प्रश्न का (लगभग 30 से 50 शब्दों में उत्तर देना होगा। प्रत्येक प्रश्न दो अंकों का होगा और पूरा प्रश्न बीस अंकों का होगा।
2. खंड (क) में निर्धारित सभी सात शीर्षकों में से किन्ही 6 में से एक–एक गद्यांश व्याख्या के लिए पूछा जाएगा, परीक्षार्थियों को इनमें से किन्हीं तीन की व्याख्या लिखनी होगी। प्रत्येक व्याख्या के लिए 10 अंक निर्धारित हैं। पूरा प्रश्न 30 अंकों का होगा।
3. द्रुत–पाठ के लिए निर्धारित प्रत्येक विधा से तीन–तीन रचनाओं के एक–एक प्रश्न पूछें जाएंगे। कुल 15 प्रश्न जिनमें से परीक्षार्थियों को प्रत्येक विधा से एक–एक प्रश्न करना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न चार अंक का होगा। लधूत्तरी प्रश्न परिचयात्मक प्रकृति के ही होंगे।
4. खंड (क) में निर्धारित सभी सात शीर्षकों से संबद्ध पांच आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जाएंगे, परीक्षार्थियों को उनमें से किन्ही दो के उत्तर देने होंगे आलोचनात्मक प्रश्न 15 अंक का होगा।

**खण्ड 'क'**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | **आधे-अधूरे** | प्रतिपाद्य, आधुनिकता बोध, प्रयोगधर्मिता, चरित्र-चित्रण और नाट्य भाषा। |
| 2. | **चन्द्रगुप्त** | इतिहास और कल्पना, अभिनेयता, चरित्र-चित्रण, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक संदर्भ। |
| 3. | **कहानियाँ** | पाठ्य कहानीकारों की कहानियों की विशिष्टता, प्रतिपाद्य और चरित्र। |

# आधे-अधूरे

**खण्ड क व्याख्या**

**खण्ड ख आलोचना**

1. आधे–अधूरे : कथासार / कथावस्तु
2. आधे–अधूरे : प्रतिपाद्य
3. आधे–अधूरे : आधुनिकता
4. आधे–अधूरे : युगबोध
5. आधे–अधूरे : प्रयोगधर्मिता
6. आधे–अधूरे : भाषा–शैली
7. आधे–अधूरे : चरित्र–चित्रण
8. आधे–अधूरे : अभिनेयता
9. सावित्री का चरित्र–चित्रण
10. महेन्द्रनाथ का चरित्र–चित्रण
11. अशोक का चरित्र–चित्रण
12. बिन्नी का चरित्र–चित्रण

**खण्ड ग लघूत्तरीय**

# आधे-अधूरे : मोहन राकेश

## खण्ड क : व्याख्या

***मैं नहीं जानता, आप क्या समझ रहे हैं, मैं कौन हूँ, और क्या आशा कर रहे हों, मैं क्या कहने जा रहा हूँ। आप शायद सोचते हों कि मैं इस नाटक में कोई निश्चित इकाई हूँ–अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता, व्यवस्थापक या कुछ ओर; परंतु मैं अपने संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता। उसी तरह जैसे इस नाटक के संबंध में नहीं कह सकता। क्योंकि यह नाटक भी मेरी ही तरह अनिश्चित है। अनिश्चित होने का कारण यह है कि...परंतु कारण की बात करना बेकार है। कारण हर चीज का कुछ-न-कुछ होता है, हालाँकि यह आवश्यक नहीं कि जो कारण दिया जाए, वास्तविक कारण वही हो। और जब मैं अपने ही संबंध में निश्चित नहीं हूँ तो और किसी चीज के कारण-अकारण के संबंध में निश्चित कैसे हो सकता हूँ?***

**प्रसंग**–मोहन राकेश कृत 'आधे–अधूरे' एक प्रयोगात्मक नाटक है। नाटक में राकेश जी ने एक ही व्यक्ति को चार–चार व्यक्तियों की भूमिका में प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम मंच पर आने वाले व्यक्ति को काले सूट वाला व्यक्ति नाम दिया है। यही काले सूट वाला व्यक्ति के अनिश्चित कथानक और नाटक के प्रतिपाद्य से दर्शकों को अवगत करवाता है। जिस प्रकार सभी पात्र पूरे नाटक के दौरान असमंजस की स्थिति में दिखाई देते हैं, उसी प्रकार प्रारंभ में ही काले सूट वाला व्यक्ति अपनी अस्मिता के विषय में अनिश्चितता व्यक्त करता है।

**व्याख्या**–काले सूट वाला व्यक्ति दर्शकों की उत्सुकता की अभिव्यक्ति स्वयं करते हुए कहता है कि यह स्वाभाविक ही है कि आप यह जानना चाहते होंगे कि मेरी इस नाटक में क्या भूमिका है? शायद दर्शक मुझे अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता या व्यवस्थापक समझते होंगे। काले सूट वाला व्यक्ति अपनी अस्पष्ट स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहता है कि भले ही दर्शक उससे नाटक के बारे में और नाटक में उसकी स्थिति के बारे में जानने के इच्छुक हैं लेकिन वह स्वयं भी इस बारे में स्पष्ट नहीं है कि उसे क्या करना है? हर चीज के पीछे कोई–न–कोई कारण होता है लेकिन सदा ऐसा नहीं होता कि जो कारण दिया जाए, वही वास्तविक कारण हो। इस प्रकार मंच पर आने वाला काले सूट वाला व्यक्ति नाटक के विषय में और स्वयं अपने विषय में अनिश्चितता की स्थिति में है।

**विशेष** 1. काले सूट वाले व्यक्ति की अनिश्चित मनःस्थिति को प्रयुक्त किया गया है।

2. नाटक में किए जाने वाले नए प्रयोग की ओर संकेत किया गया हैं कि एक ही व्यक्ति कई भूमिकाओं में प्रस्तुत होगा।
3. नाटक के प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि इसका मूल उद्देश्य भी अनिश्चित सा है।
4. प्रश्नवाचक शैली का प्रयोग हुआ है।
5. आम बोलचाल की साधारण भाषा का प्रयोग हुआ है।

***खैर, इसमें आपकी क्या दिलचस्पी हो सकती है कि मैं यहाँ से बाहर क्या हूँ? शायद अपने बारे में इतना कह देना ही काफी है कि सड़क के फुटपाथ पर चलते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते हैं, वह मुझमें कोई मतलब नहीं रखते कि मैं कहाँ रहता हूँ, क्या काम करता हूँ कि किससे मिलता हूँ और किन-किन परिस्थितियों में जीता हूँ। आप मतलब नहीं रखते क्योंकि मैं भी आपसे मतलब नहीं रखता, और टकराने के क्षण में आप भी मेरे लिए वही होते हैं, जो मैं आपके लिए होता हूँ। इसलिए–ये टकराने वाले व्यक्ति होने के नाते आपमें और मुझमें बहुत बड़ी समानता है। यही समानता आपमें और उसमें, और दूसरे में, उस दूसरे में और मुझमें...बहरहाल इस गणित की पहेली में कुछ नहीं रखा है।***

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्य अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश कृत 'आधे–अधूरे' नाटक से लिया गया है। एक ही व्यक्ति

चार भूमिकाओं में प्रस्तुत होने के कारण मंच पर आने वाले पहले व्यक्ति को काले सूट वाला व्यक्ति कहा गया है। मंच पर विराजमान काले सूट वाला व्यक्ति नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व नाटक के विषय में और नाटक में अपनी स्थिति के बारे में दर्शकों को अवगत करवाना चाहता हैं साथ ही यह भी स्पष्ट करना चाहता है कि मंच पर आने से व्यक्ति कोई विशेष व्यक्ति नहीं बन जाता। यह चरित्र तो कोई भी निभा सकता है। काले सूट वाला व्यक्ति नाटक के मूल उद्देश्य तक पहुँचना चाहता है कि वर्तमान मध्यवर्गीय समाज में लगभग सभी की स्थिति एक जैसी है।

**व्याख्या**–काले सूट वाला व्यक्ति कहता है कि वर्तमान समय में किसी की भी रुचि इस बात में नहीं है कि अमुक व्यक्ति जो बाहर से दिखाई देता है, क्या वह अंदर से भी वैसा ही है? सामान्यतः समाज में रह रहे दो व्यक्तियों की स्थिति ऐसी ही है जिस तरह फुटपाथ पर चलते दो व्यक्ति आपस में टकराकर सिर्फ घूरकर एक–दूसरे को देखते हैं और अपना रास्ता नापने लगते हैं। इसमें दोनों में से किसी को भी एक दूसरे से परिचय करने की आवश्यकता नहीं होती। काले सूट वाला व्यक्ति अपने को और दर्शकों को क्षण भर टकराने वाले दो व्यक्तियों के रूप में देखता है। और कहना चाहता है कि मचासीन मुझमें आप लोगों में कोई विशेष अंतर नहीं है। मेरी जगह आप भी हो सकते थे। यहाँ यह सब कहने का अभिप्राय यह है कि समाज में किसी की कोई निश्चित भूमिका नहीं है। एक ही व्यक्ति को चार भूमिकाओं में लाने का नया प्रयोग करना भी यह दर्शाता है कि व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न रूपों में आता है। उसकी कोई निश्चित सीमा और पात्रता नहीं बांधी जा सकती।

**विशेष**– **1.** प्रस्तुत पंक्तियों में वर्तमान समाज में आत्मकेंद्रित व्यक्ति के विषय में बताया गया है।

2. यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार व्यक्ति भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न मुखौटे बदल कर अपनी भूमिका बदल लेता है।
3. आम बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। फिर फाड़ लाई एक और किताब! ज़रा शरम नहीं कि रोज़–रोज़ कहाँ से पैसे आ सकते हैं नई किताबों के लिए। (सोफे के पास आकर) अशोक बाबू यह कमाई करते रहे हैं दिन भर! (तस्वीरें उठाकर देखती) एलिज़ाबेथ टेलर...आड्रेहेबर्न...शर्ले मैक्लेना! जिंदगी काट रहे हैं इन तस्वीरों के साथ।

**प्रसंग**–प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश के प्रसिद्ध नाटक 'आधे–अधूरे' से अवतरित है। आधे–अधूरे नाटक की प्रमुख नारी पात्र सावित्री दफ़्तर से वापस लौटने पर घर को अस्त–व्यस्त पाती है। आते ही घर का कुछ व्यवस्थित रूप देना चाहती है सावित्री का परिवार एक सामान्य परिवार नहीं है। बच्चे भी उदण्ड प्रवृत्ति के हैं। दफ्तर से लौटते ही सावित्री छोटी लड़की के स्कूल बैग को समेटने लगती है और लड़के अशोक के द्वारा काटी गई तस्वीरें देखती है तभी गुस्से में बड़बड़ाती हुई कहती है–

**व्यख्या**–सावित्री दफ़्तर से थकी–हारी वापस लौटने पर देखती है कि छोटी लड़की किन्नी का बैग खुला पड़ा है और उसकी एक किताब फटी हुई है। परिवार अर्थाभाव झेल रहा है क्योंकि कमाने वाली अकेली सावित्री ही है। महेन्द्रनाथ न तो नौकरी वगैरता करता है, न ही घर की ओर ध्यान देता है। सावित्री किन्नी की घटी हुई किताब देखकर बड़बड़ाती है कि नई किताब के लिए रोज़–रोज़ पैसे कहाँ से आएँगे। लड़के अशोक की पढ़ने–लिखने में दिलचस्पी नहीं है। वह फिल्मी तस्वीरें काटता रहता है। विभिन्न अंग्रेजी फिल्मी सितारों जैसे एलिजावेथ टेलर, ओड्रेहेबर्न, शर्ले मैक्लेन आदि की तस्वीरें कटी हुई देखकर लगता है कि अशोक को अंग्रेजी फिल्मों से भी लगाव है। कुल मिला कर सावित्री और मेहन्द्रनाथ के परिवार के तनावयुक्त जीवन की झाँकी दिखाई देती है।

**विशेष**– **1.** प्रस्तुत अवतरण में सावित्री के तनाव को प्रस्तुत किया गया है।

2. स्पष्ट है कि सावित्री की अपनी आवारगी का असर बच्चों पर भी आ गया है।
3. नाटक के मूल कथ्य की ओर अस्पष्ट संकेत इन पंक्तियों में मिलता है।
4. नाटककार ने पर्याप्त रंग संकेत दिए हैं।

**स्त्री** : *किसने खा लिया? मैंने?*

**पुरुष एक** : *नहीं, मैंने! पता है कितना खर्च था उन दिनों इस घर का? चार सौ रुपए महीने का मकान था। टैक्सियों में आना–जाना होता था। किस्तों पर फ्रिज खरीदा गया था। लड़के–लड़की की कान्वेंट की फीसें जाती थीं,*

**प्रसंग**–प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश रचित सुप्रसिद्ध नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है यह गद्यांश पुरुष एक यानि महेन्द्रनाथ और सावित्री के मध्य बोला गया संवाद है। महेन्द्रनाथ और जुनेज़ा पहले एक ही फैक्टरी में साँझेदार थे। जिसमें घाटा हो चुका है। सावित्री जुनेज़ा को ईमानदार आदमी नहीं समझती जबकि महेन्द्रनाथ उसे ईमानदार समझता है। महेन्द्रनाथ स्पष्ट करता है कि फैक्टरी में उसने जितना पैसा लगाया था, उस हिसाब से उसने शीघ्र ही अपने हिस्से का पैसा निकालकर प्रयोग कर लिया था। महेन्द्रनाथ जुनेज़ा को ठीक व्यक्ति ठहराते हुए, अपने विगत खर्च को ही वर्तमान स्थिति के लिए कारण मानता है। जबकि सावित्री ऐसा नहीं समझती।

**व्याख्या**–सावित्री कहती है कि हमने कितना धन प्रयोग कर लिया होगा? जो हमें फैक्टरी से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। और क्या स्वयं मैंने उस पैसे को खा लिया? महेन्द्रनाथ सावित्री को एक–एक करके खर्च गिनवाता है और यह स्पष्ट करना चाहता है कि हमने फैक्टरी का कितना पैसा प्रयोग किया था। हर महीने चार सौ रुपया मकान का किराया जाता था। इधर–उधर आने–जाने के लिए टैक्सियों का प्रयोग किया जाता था। फ्रिज की किस्तें जाती थीं। बच्चे महँगे स्कूलों में पढ़ते थे। महेन्द्रनाथ यह बताना चाहता है कि यदि उसने जुनेज़ा के साथ मिलकर फैक्टरी लगाई थी तो उस समय उन्होंने खर्च भी इतने बढ़ा लिए थे कि फैक्टरी से उनका हिस्सा निकलता रहा और इसीलिए यह घाटे का सौदा साबित हुआ। फैक्टरी में हुए घाटे के लिए महेन्द्रनाथ जुनेज़ा को दोष नहीं देना चाहता।

**विशेष**– 1. सावित्री और महेन्द्रनाथ के वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि अर्थाभाव में झगड़े अधिक होते हैं और एक दूसरे पर दोशारोपण किया जाता है।

2. गद्यांश में जो आर्थ के खर्चे दिखाए गए हैं, उनसे महेन्द्रनाथ व सावित्री की अदूरदर्शिता का पता चलता है।

3. प्रसंगानुकूल सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है।

***लड़की*** : *पर कौन सी अड़चन है?...उसके हाथ में छलक गई चाय की प्याली, या उसके दफ़्तर से लौटने में आधा घटे की देर–ये छोटी–छोटी बातें अड़चन नहीं होती, मगर अड़चन बन जाती हैं। एक गुबार–सा है जो हर वक़्त मेरे अंदर भरा रहता है और मैं इंतजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे उसे बाहर निकाल लूँ। और आखिर...?*

*आखिर वह सीमा आ जाती है। जहाँ पहुँचकर वह निढाल हो जाता है। ऐसे में वह एक ही बात कहता है।*

***स्त्री*** : *क्या?*

***बड़ी लड़की*** : *कि मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो किसी भी स्थिति में स्वाभाविक नहीं रहने देतीं।*

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण प्रयोगशील नाटककार मोहन राकेश के प्रसिद्ध नाटक आधे–अधूरे से अवतरित है। प्रस्तुत संवाद बड़ी लड़की विन्नी और उसकी माँ सावित्री के मध्य वार्तालाप है। इस परिवार के सामान्य सम्बन्धों में कटुता सी आ चुकी है और परिवार में आवारगी का वातावरण बन गया है। पहले तो मनोज नामक युवक घर की बड़ी लड़की विन्नी को भगा ले जाता है और विवाह कर लेता है। लेकिन वह विन्नी के साथ सामान्य पारिवारिक जीवन नहीं जी पाता। और सदा ही ऐसा अनुभव करता है जैसे विन्नी अपने मायके के परिवार में आवारापन को अपने साथ ले आई है। मनोज की इसी भावना की अभिव्यक्ति विन्नी अपने मायके लौटने पर अपने माता–पिता के सामने करती है–

**व्याख्या** : विन्नी कहती है कि मनोज और मेरे मध्य न जाने ऐसी कौन सी विशेष अड़चन है, जो दोनों के सम्बन्धों को सामान्य नहीं रहने देती। उन दोनों के मध्य छोटी–छोटी बातों को लेकर तनाव हो जाता है। जैसे चाय की प्याली छलक जाना या आधा घण्टा दफ़्तर से देर से लौटना कोई ऐसी विशेष बातें नहीं हैं, जिनमें कारण आपस के तनाव उत्पन्न हो। लेकिन अंदर–ही–अंदर किसी अनजानी वजह से एक खीज सी उत्पन्न हो जाती हैं और तब वह अपना सारा क्रोध मनोज पर उतार देती है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर मनोज विन्नी पर आक्षेप लगाता है कि वह अपने घर से ही कोई ऐसी चीज़ लेकर आई है कि जिससे वह स्वाभाविक जीवन नहीं जी पाती। मनोज का संकेत यहाँ उसके परिवार के आवारापन के सम्बन्ध में ही है। विन्नी के परिवार की यही आवारगी उसके मनोज के सम्बन्धों को सामान्य नहीं रहने देती। शायद विन्नी भी पर पुरुष आर्कषण से ग्रस्त है। तभी मनोज के साथ छोटी–छोटी बातों पर खीज उठती है।

**विशेष** : 1. पात्रों की मनोदशा का सही चित्रण इस गद्यांश में हुआ है।

2. नाटककार ने बड़े सही ढंग से यह व्यक्त किया है कि किस प्रकार पारिवारिक वातावरण का [illegible] पड़ता है।

3. सरल शब्दावली में मनोवैज्ञानिक तथ्यों को उजागर किया है।

***कई-कई दिनों के लिए अपने को उससे काट लेती हूँ। पर धीरे-धीरे हर चीज फिर उसी ढर्रे पर लौट आती है। [illegible] फिर उसी तरह होने लगता है जब तक कि हम...जब तक कि हम नए सिरे से उसी खोह में नहीं पहुँच जाते [illegible] आती हूँ...यहाँ आती हूँ तो सिर्फ़ इसीलिए कि...***

**प्रसंग .** प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। यहाँ [illegible] बिन्नी का कथन है। बड़ी लड़की मनोज के व्यवहार से तालमेल नहीं बैठा पाती और मायके वापस लौट आती है। मनोज [illegible] और उसके परिवार पर कटाक्ष करता रहता है। मनोज कहता है कि वह अपने घर से कोई न कोई मनहूस चीज़ [illegible] आई उनके सम्बन्ध सामान्य नहीं रह पा रहे बिन्नी जल–भुन जाती है और अपने आपको मनोज से काटना चाहती [illegible] प्रत्येक छोटी बात पर मनोज को परेशान करना चाहती है। कुछ समय के लिए दिखावे के तौर पर जीवन फिर [illegible] चलने लगता है। अपनी माँ के साथ वार्तालाप करती हुई बिन्नी अपने और मनोज के सम्बन्धों को इस प्रकार [illegible] है–

व्याख्या : बिन्नी अपनी माँ को बताती है कि मनोज को कष्ट पहुँचाने के लिए वह कई– कई दिनों तक अपने [illegible] कर लेती है। बिन्नी को संस्कारों में ही आवारगी मिली है। वह प्रत्येक छोटी–बड़ी बात [illegible] है। मनोज को तंग करने के उद्देश्य से ही वह कई–कई दिनों तक मनोज से बात नहीं करती। परन्तु धीरे धीरे [illegible] सामान्य होने लगती है लेकिन बहुत कम समय के लिए ऐसा हो पाता है और फिर से छोटी–छोटी बातों पर [illegible] लगती है। मनोज बिन्नी के पैतृक संस्कारों और व्यवहार के कारण क्षुब्ध है। आपसी अनबन के कारण बिन्नी अपने [illegible] जाती है। बिन्नी यह जानने के लिए अपने घर आती है कि वह क्या कारण हो सकता है जिसके कारण मनोज [illegible] कटाक्ष करता रहता है। मनोज कहता है कि अवश्य ही वह कोई ऐसी चीज साथ लेकर आई है, जिसके कारण [illegible] के साथ सामान्य नहीं रह पाती।

**विशेष :** 1. बिन्नी व मनोज के सम्बन्धों में आई कटुता का वर्णन किया गया है।

2. आधुनिक मध्यवर्गीय परिवारों के अंदर बिखराव व अलगाव बोध को व्यक्त किया गया है।

3. प्रस्तुत प्रसंग में बिन्नी स्वयं को पारिवारिक तनाव का प्रमुख कारण स्वीकारती है।

4. प्रसंगानुसार सरल भाषा का प्रयोग हुआ है?

***मेरा अपना घर ! ... हाँ। और मैं आती हूँ कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज है वह [illegible] घर में, जिसे लेकर मुझे बार-बार हीन किया जाता है (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो ममा, कि क्या [illegible] है वह? और कहाँ है वह? इस घर में खिड़कियों-दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममें? डैडी में? किन्नी में [illegible] में? कहाँ छिपी है, वह मनहूस चीज जो वह कहता है मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गई हूँ?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश के सुप्रसिद्ध नाटक 'आधे–अधूरे' से अवतरित है। प्रस्तुत [illegible] में बिन्नी अपने–आपको टटोलते हुए यह सब कहती है। मनोज बात–बात पर लांछन लगाता है कि वह अपने घर से [illegible] ऐसी मनहूस चीज़ साथ लाई है जो उन दोनों के सम्बन्धों को सामान्य नहीं रहने देता। मनोज बिन्नी के पारिवारिक [illegible] के बारे में भली–भाँति परिचित है। इस परिवार का आवारापन उससे छिपा नहीं है। अप्रत्यक्ष रूप से मनोज [illegible] पर कटाक्ष करता रहता है। बिन्नी अपनी माँ के पास लौट आती है और वह चीज़ ढूँढ लेना चाहती है जिसके [illegible] और उसके बीच तनाव रहता है। सावित्री कहती है यह उसका अपना घर है, वह जब चाहे यहाँ आ सकती है। [illegible] क्रोधित होकर कहती है–

**व्याख्या :** बिन्नी आवेश में आकर कहती है कि यह ठीक है कि यह मेरा अपना घर है, लेकिन मैं इस घर में [illegible] चीज़ ढूँढने आती हूँ जिसके कारण हमारे घर में तनाव रहता है और उस चीज के लिए मनोज उसे बार-बार [illegible] बिन्नी प्रश्न पर प्रश्न करती जाती है। वह किसी भी प्रकार उस मनहूस चीज़ को ढूँढ लेना चाहती है। बिन्नी अपनी [illegible] हुई कहती है वह मनहूस चीज़ छत में, दीवारों में, दरवाज़ों में तथा घर के सदस्यों मम्मी, डैडी, किन्नी व अपने [illegible]

सकती है? विन्नी आवेश में अपनी माँ के हाथों को पकड़ कर झकझोरती हुई पूछती है कि वह चीज़ क्या है और इस घर में कहाँ है? विन्नी आज स्पष्ट रूप से उस चीज़ के बारे में जान लेना चाहती है कि वह जो मनहूस साए की तरह उसके साथ इस घर से मनोज के घर तक चली गई है।

**विशेष** : 1. प्रस्तुत अवतरण में सावित्री और महेन्द्रनाथ के परिवार के चारित्रिक पतन की ओर संकेत किया गया है।

2. विन्नी की मनोदशा का सटीक वर्णन हुआ है कि वह किस प्रकार अपने व अपने परिवार के अवगुणों से परिचित होते हुए भी अनभिज्ञ बनी हुई है।
3. प्रश्नावाचक शैली का प्रयोग किया गया है।
4. भाषा सरल, प्रसंगानुकूल व भावानुकूल है।

***हाँ पूछकर ही जानना है आज। कितने साल हो चुके हैं मुझे ज़िंदगी का भार ढोते? उनमें से कितने साल बीते हैं मेरे इस परिवार की देखेरख करते? और उस सबके बाद में आज पहुँचा कहाँ हूँ? यहाँ कि जिसे देखो वही मुझसे उलटे ढंग से बात करता है? जिसे देखो, वही मुझसे बदतमीज़ी से पेश आता है?***

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित चर्चित नाटक 'आधे–अधूरे' से अवतरित है। इस नाटक में नाटककार ने महेन्द्रनाथ के बिखरते परिवार के विषय में विस्तार से चलता है। महेन्द्रनाथ ने जुनेज़ा के साथ फैक्टरी लगाई थी। जिसमें मुखिया का पद और सम्मान नहीं मिल पाता। इस घर का कोई भी सदस्य एक–दूसरे के प्रति आदर और प्रेमभाव नहीं रखता। महेन्द्रनाथ को कदम–कदम पर अपमान का घूँट पीना पड़ता है। इस प्रकरण में लड़के अशोक के आवारापन की झलक मिलती है। वह अश्लील पुस्तकें पढ़ता है। इस विषय में किसी की रोक–टोक उसे पसन्द नहीं। महेन्द्रनाथ जब स्वयं को उपेक्षित महसूस करता है तो सावित्री और बच्चों को सम्बोधित करता हुआ प्रश्न पूछता है–

**व्याख्या** : उपेक्षित महेन्द्रनाथ पत्नी और बच्चों से पूछना चाहता है कि कितने वर्षों से उसने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयत्न किया है। परिवार की देखरेख की जिम्मेदारी भी उसने निभाई है। यदि फैक्टरी घाटे में चली गई तो इसमें महेन्द्रनाथ का क्या दोष? अब महेन्द्रनाथ की कोई कमाई नहीं है। इसी कारण परिवार का कोई भी सदस्य उसे आदर की दृष्टि से नहीं देखता। महेन्द्रनाथ अनुभव करता है कि ज़िंदगी जी नहीं रहा है अपितु अपनी ज़िंदगी को ढो रहा है। परिवार का कोई भी सदस्य महेन्द्रनाथ से सम्मानजनक तरीके से बात नहीं करता। अशोक अपनी गलती मानने की अपेक्षा औरों में दोष निकालने लगता है। जब महेन्द्रनाथ की आर्थिक स्थिति अच्छी थी तो परिवार के सभी सदस्यों ने ऐसे आराम से जीवनयापन किया। वर्षों तक सुख–सुविधा का जीवन प्रदान करने के उपरान्त महेन्द्रनाथ को वर्तमान निर्धन अवस्था के कारण अपमान और उपेक्षा का जीवन झेलना पड़ा रहा है।

**विशेष** : 1. महेन्द्रनाथ की मनःस्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है।

2. विघटन के कगार पर पहुँचे परिवार की घुटन का चित्रण हुआ है।
3. सभी पात्रों के चरित्र का स्पष्ट उद्‌घाटन हुआ है।
4. भाषा भावानुकूल व सरल है।

***किसी माने में नहीं। मैं इस घर में एक रबड़-स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ–बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वज़ह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में है?***

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्य अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश कृत नाटक 'आधे–अधूरे' से अवतरित है। प्रस्तुत पंक्तियाँ पुरुष एक यानि गृहस्वामी महेन्द्रनाथ के द्वारा कहा गया है। महेन्द्रनाथ उसे अनुभव करता है कि घर में उसे पूरा मान–सम्मान और अधिकार मिलने की अपेक्षा तिरस्कार और अपमान मिलता है। गृहस्वामी होने के नाते उसे केवल उस रबड़–स्टैंप की तरह प्रयोग किया जाता है, जिस स्टैंप को किसी विशेष काम के समय केवल ठप्पा लगाकर काम चला लिया जाता है। महेन्द्रनाथ अनुभव करता है कि वह तो रबड़–स्टैंप भी नहीं अपितु रबड़ का एक टुकड़ा मात्र है जिसकी कोई उपयोगिता नहीं। सावित्री अनुभव करती है कि महेन्द्रनाथ से परिवार को कभी भी ऐसा कुछ नहीं मिला जो मिलना चाहिए था। ऐसी स्थिति में महेन्द्रनाथ कहता है–

**व्याख्या** : पुरुष एक यानि महेन्द्रनाथ कहता है कि ठीक है, किसी भी मामले में मैंने अपना कर्तव्य ठीक नहीं निभाना। इस नाते

में वह रबड़ स्टैंप भी नहीं हूँ जिसका प्रयोग विशिष्ट पद और अधिकार का हकदार व्यक्ति कर सकता है। महेन्द्रनाथ परिवार में अपनी उपेक्षा पर तिलमिला उठता है। वह कहता है कि मैं तो रबड़--स्टैंप भी नहीं अपितु मैं तो घिसा हुआ रबड का टुकड़ा हूँ। वह कह उठता है कि इस नाममात्र के मुखिया व्यक्ति का घर में। टिके रहने का अब कोई औचित्य नज़र नहीं आता। इस प्रकार परिवार की उपेक्षा के शिकार महेन्द्रनाथ के आक्रोश की अभिव्यक्ति इन पंक्तियो में हुई है।

**विशेष** : 1. महेन्द्रनाथ के मन की कड़वाहट की स्पष्ट अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में मिलती है।

2. महेन्द्रनाथ के परिवार की स्थिति की स्पष्ट अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में मिलती है।

3. महेन्द्रनाथ के आक्रोश घुटन व विवशता की अभिव्यक्ति सरल और प्रभावशाली भाषा में हुई है।

अपनी ज़िंदगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिंदगी चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिंदगियाँ चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अंदर से मैं आराम–तलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश रचित नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। प्रस्तुत गद्यांग महेन्द्रनाथ द्वारा कहा गया है। सावित्री कदम–कदम पर महेन्द्रनाथ थे। अपमानित करती रहती है। वह उसे रबड़–स्टैंप भी नहीं समझती। वह कहती है कि रबड़ स्टैंप का भी पद, अधिकार व सम्मान होता है। महेन्द्रनाथ इन सब बातों से आहत हो जाता है घर के सदस्यों की नाकायाबी के लिए स्वयं को ज़िम्मेदार मानता हुआ कहता है–

**व्याख्या** : महेन्द्रनाथ घर की वर्तमान स्थिति के लिए स्वयं को जिम्मेदार मानता हुआ कहता है कि मेरे ही कारण घर की यह स्थिति हुई है। घर के सभी सदस्य अपने–अपने कर्तव्य से भटके हुए हैं। इस बात का अहसास महेन्द्रनाथ को हो चुका है कि उसने ही स्वयं ही अपना जीवन बेकार किया है। वह स्वयं को दोषी मानता हुआ कहता है कि आज तुम जिस प्रकार का आवारगी का जीवन अपना चुकी हो, उसका जिम्मेदार मैं ही हूँ। बच्चों की जिंदगी चौपट करने के लिए भी वह स्वयं को ही उत्तरदायी मानता है। आज अशोक की जो हालत है, वैसी एक बीस वर्षीय युवक की नहीं होनी चाहिए। वह अपनी पढाई से मन हटा चुका है और आवारा घूमता है। बड़ी लडकी के घर से भाग जाने के लिए भी वह स्वयं को कुसूरवार ठहराता है। इतना सब कुछ होने पर भी वह इस घर में चिपका हुआ है क्योंकि वह आरामपरस्त है। महेन्द्रनाथ कहता है कि मेरी आदत हो चुकी है कि मैं सुविधासम्पन्न आरामपरस्ती का जीवनयापन करता रहूँ। इस घर में पड़े–बड़े व्यर्थ का जीवन जीते हुए महेन्द्रनाथ को ऐसा लगता है मानों उसकी हड्डियों में जंग लग गया हो। कहने का अभिप्राय यह है कि अब महेन्द्रनाथ कोई कार्य करने लायक नहीं रह गया है। यही कारण है कि वह स्वयं को घरघुसरा अर्थात सदा घर में पड़ा रहने वाला कहता है।

**विशेष** : 1. इस गद्यांश में महेन्द्रनाथ द्वारा सावित्री का कटाक्ष करने के साथ--साथ, स्वयं अपनी चारित्रिक कमियों की ओर संकेत किया है।

2. महेन्द्रनाथ के आलसी और सुविधाभोगी जीवन के कारण हुई घर की स्थिति का वर्णन किया गया है।

3. मुहावरों का प्रयोग हुआ है जैसे–घरघुसरा होना, ज़िंदगी चौपट करना, हड्डियों में जंग लगना।

***पहले पांच सेकंड आदमी की आँखों में देखता रहेगा। फिर होंठों के दाहिने कोने से जरा सा मुसकुराया। फिर एक-एक लफ़्ज़ को चबाता हुआ पूछेगा...(उसके स्वर में) आप क्या सोचते हैं, आजकल युवा लोगों में इतनी अराजकता क्यों है? ढूँढ-ढूँढकर सरकारी हंदी के लफ़्ज़ लाता है–युवा लोगों में! अराजकता!***

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्य अवतरण प्रसिद्ध नाटककार मोहन रोकश द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रयोगशील नाटक 'आधे–अधूर' से अवतरित है। इन पंक्तियों में लड़का अशोक अपनी मम्मी के दफ़्तर के बास के बारे में अपने विचार प्रकट करता है। सावित्री कहती है कि जब उसका बास उसके घर आए तो अशोक उससे अवश्य मिले। सावित्र अपने बास के माध्यम से अशोक को नौकरी दिलवाने की बात करती है। इस पर लड़का कहता है मुझे उस आदमी के माध्यम से नौकरी नहीं चाहिए। अशोक अपनी मम्मी के बॉस का बार–बार घर आना बिल्कुल पसन्द नहीं करता और वह आदमी यदि उसकी मम्मी का बास न होता तो वह उस का कान पकड़ कर घर से बाहर निकाल देता। इस बात पर सावित्री आगबबूला हो उठती है और बडी लड़की से कहती है ये लोग हैं जिनके लिए मैं जानमारी करती हूँ रात दिन। अशोक उस व्यक्ति की नकल उतारता है और उस व्यक्ति के प्रति अपनी मानसिकता प्रकट करता है।

**व्याख्या :** लड़का कहता है कि व्यक्ति पहले कुछ सैकंड तो सामने वाले व्यक्ति की आँखों में देखता रहेगा। फिर होठों के दाहिने ओर से थोड़ा मुस्कराएगा। उसी व्यक्ति की नकल उतारता हुआ कहता है कि वह एक–एक शब्द को चबाता हुआ पूछता है 'आप क्या सोचते हैं, आजकल युवा लोगों में इतनी अराजकता क्यों है? वह व्यक्ति सरकारी हिंदी यानि सामान्यतः दफ़्तरों में बोली जाने वाली हिंदी बोलता है। लड़का इन सब बातों को पसन्द नहीं करता। वह उस व्यक्ति के पहनने–ओढ़ने के तथा बात करने के तरीके पर व्यंग्य करता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एक जवान बेटा यह बिल्कुल भी पसन्द नहीं करता कि उसकी मम्मी के दफ़्तर का कोई व्यक्ति उनके घर पर आकर उनके व्यक्तिगत मामलों में दखल दे।

**विशेष :** 1. युवा वर्ग की मानसिकता को उजागर किया गया है।

2. लड़का यह भली–भाँति समझता है कि उसकी मम्मी के बास का उनके घर आना उचित नहीं है अतः उसका आक्रोश स्पष्ट दिखाई देता है।

3. प्रसंगानुकूल सरल, स्वाभथवक शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

***मैं प्रायः कहा करता हूँ कि खाना और पहनना, इन दो दृष्टियों से...वह अमरीकन भी यही बात पर रहा था कि जितनी विविधता इस देश के खानपान और पहनने में है...और यही क्या, सभी विदेशी लोग इस बात को स्वीकार करते हैं। क्या रूसी, क्या जर्मन! मैं कहता हूँ, संसार में शीतयुद्ध को कम करने में हमारी कुछ वास्तविक देन है, तो यही कि. ..तुम अपनी इस साड़ी को ही लो। कितनी साधारण है, फिर भी...यह हड़तालों-अड़ताओं का चक्कर न चलता अपने यहाँ, तो अपना वस्त्र उद्योग अब तक...अच्छा तुमने वह नोटिस देखा है जो यूनियन ने मैनेजमेंट को दिया है?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित उनके सुप्रसिद्ध नाटक 'आधे–अधूरे' से अवतरित है। इस नटक में मोहन राकेश ने मध्यवर्गीय परिवार में विघटित होते मानव–मूल्य व स्तरीकरण की अंधी दौड़ में बिखरते परिवार को दर्शाया है। इसी के फलस्वरूप पारिवारिक सदस्यों के आपसी सम्बन्धों में भी शून्यता आ जाती है। ऐसे विघटनशील परिवार में न तो बड़े–छोटों की भावना को समझ पाते हैं और न ही छोट–बड़ों का सम्मान करते हैं। सावित्री अपनी और अपने परिवार महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु अनेक बड़े लोगों के सम्पर्क में आती है। वह अपने दफ़्तर के बास सिंघानियाँ को घर पर आमन्त्रित करती है। वह चाहती है कि किसी प्रकार सिंघानियाँ अशोक को नौकरी दिलवा दे। लेकिन अशोक को उसकी बोलचाल, उसका बैठने का ढंग और उसका आचार–व्यवहार अंच्छा नहीं लगता। लेकिन पुरुष दो यानि सिंघानियाँ बात–बात पर अपने ज्ञान की शेखी बघारता है।

**व्याख्या :** सिंघानियाँ खान–पान के विषय में अपना ज्ञान बघारता हुआ करता है कि भारतवर्ष में खानपान और पहनावे की विविधता है। वह इस बात की पुष्टि किसी अमेरिकन के कथन द्वारा करता है कि वह अमेरिकन भी यही बात कह रहा था कि यहाँ के खान–पान पहनावे में विविधता है। अमेरिकन ही नहीं सारे विश्व के लोग हमारे देश के अच्छे खानपान और पहनावे की प्रशंसा करते हैं। सिंघानियाँ आगे कहता है कि वर्तमान समय में जो शीतयुद्ध पूरे विश्व में चल रहा है उसे कम करने में भी भारत का ही योगदान है। सिंघानियाँ एक के बाद एक बैसिर पैर की बातें करता जाता है। इसी क्रम में वह सावित्री की साड़ी की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि तुम्हारी साड़ी साधारण है और भी...। स्वाभाविक ही है कि वह साड़ी की प्रशंसा करता है। साड़ी की बात से वह वस्त्र उद्योग तक आ जाता है कि यदि हड़तालें न होतीं तो हमारा वस्त्र उद्योग बहुत विकसित होता। इस पूरे अवतरण में यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष दो यानि सिंघानिया अपने अधकचरे ज्ञान को प्रदर्शित करके यह दिखाया चाहता है कि वह बहुत बड़ा आदमी है और उसके संबंध विदेशों तक हैं।

**विशेष :** 1. सिंघानिया के माध्यम से सावित्री के चरित्र को उद्घाटित करने में सहायता मिली है।

2. सिंघानिया भले ही उच्च पद पर आसीन पाँच हजार वेतन पाने वाला अधिकारी है लेकिन आचार–व्यवहार की अभद्रता सहज स्पष्ट है।

3. नाटककार ने पाठकों को कुछ विश्व समस्याओं से भी जोड़ा है यथा–संसार में चल रहा शीतयुद्ध भारतीय खान–पान की विविधता, हड़तालों का अर्थव्यवस्था पर पड़ता दुष्प्रभाव आदि।

4. भाषा आम बोलचाल की सरल एवं प्रसंसानुकूल है।

***मत कह, नहीं कह सकता तो। पर मैं मिन्नत-खुशामद से लोगों को घर बुलाऊँ और तू आने पर उनका मज़ाक उड़ाए, उनके कार्टून बनाए–ऐसी चीज़ें अब मुझे बिल्कुल बर्दाश्त नहीं हैं। सुन लिया? बिल्कुल-बिल्कुल बर्दाश्त नहीं हैं।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्य अवतरण सुप्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश के नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। प्रस्तुत ... समय का है जब सिंघानिया सावित्री के घर आता है। सिंघानिया का उठने–बैठने का तरीका, बातचीत करने का ढंग और व्यवहार शिष्ट व्यक्ति का नहीं है। उसके व्यवहार से अशोक खिन्न हो जाता है और बैठे–बैठे सिंघानिया का कार्टून बनाता रहता है। सिंघानिया के जाने के बाद सावित्री उस कार्टून को देखकर क्रोधित होती है। वह अशोक पर अपना क्रोध ... है। सावित्री यह साबित करने का प्रयत्न करती है कि मैं जिन–जिन व्यक्तियों को अपने घर बुलाती हू, उसके पीछे कहीं ... की भलाई ही छिपी होती है। लेकिन अशोक यह जताना चाहता है कि ऐसे व्यक्तियों को घर पर बुलाया ही क्यों जाता है जिनके आने से हमें अपने छोटे का आभास अधिक महसूस लगता है।

**व्याख्या :** सावित्री ज़ोर देकर अशोक से पूछना चाहती है कि यह साफ–साफ बता दे कि सिंघानिया के बारे में तू क्या ... चाहता है? लेकिन अशोक एक कार्टून के माध्यम से उस व्यक्ति के बारे में अपनी मनोभावनाएँ व्यक्त करना चाहता है लेकिन स्पष्ट तोर पर कुछ नहीं कहता। सावित्री कहती है कि मैं तो प्रार्थना करके इतने बड़े पदों पर आसीन व्यक्तियों को अपने घर बुलाती हूँ और तुम उनका मज़ाक उड़ाते हो, उनके कार्टून बनाते हो। लेकिन मैं तो घर की खुशहाली के लिए अपने ही कार्यों के कारण उन बड़े व्यक्तियों को बुलाती हूँ। यदि तुम इस प्रकार उनकी अवमानना करते रहे तो मैं आगे बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं करूँगी। सावित्री चेतावनी देती हुई फिर से कहती है क्या तुमने अच्छी प्रकार से सुन लिया कि आगे मैं मेहमानों का अपमान मैं बिल्कुल भी सहन नहीं करूँगी। लेकिन अशोक इस बात का उत्तर प्रश्न के रूप में देता है। वह कहता है कि अगर बर्दाश्त नहीं कर सकती तो ऐसे व्यक्तियों को घर बुलाती ही क्यों हो, जिनके आने से घर की शांति भंग होती है। और उन बड़े व्यक्तियों के सामने हम ओर भी अधिक छोटे नज़र आने लगते हैं

**विशेषः**
1. युवा वर्ग का आक्रोश अशोक के माध्यम से व्यक्त हुआ है।
2. सावित्री के चरित्र का उद्घाटन हुआ है कि बड़प्पन की दौड़ में अपनी मान–मर्यादा को भी भुला बैठी
3. उच्च वर्ग के सामने और अधिक छोटे दिखाई पड़ते के आभास की बात में कटु सत्य छिपा है
4. सावित्री के आक्रोश भी अभिव्यक्ति आम बोलचाल की भाषा द्वारा हुई है।

***अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ संबंध बनाकर रखना चाहती हूँ तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो, तो मैं छोड़ दूँगी कोशिश। हाँ इतना कहकर कि मैं अकेले दम इस घर की ज़िम्मेदारियाँ नहीं उठाती रह सकती और एक आदमी है जो घर का सारा पैसा डुबोकर सालों से हाथ पर हाथ धरे बैठा है। दूसरा अपनी कोशिश से कुछ करना तो दूर मेरे सिर फोड़ने से भी किसी ठिकाने लगना अपना अपमान समझता है। ऐसे में मुझसे भी नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज़ का, तो अकेली मैं ही क्यों अपने को चीथती रहूँ रात-दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठी रहूँ अपनी जगह? उससे तो तुममें से कोई छोटा नहीं होगा।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध प्रयोगशील नाटकाकर मोहन राकेश कृत प्रसिद्ध नाटक 'आधे–अधूरे' से अवतरित ... की दौड़ में सावित्री और महेन्द्रनाथ का परिवार विघटन के कगार पर आ जाता है। सावित्री महेन्द्रनाथ को नाकारा और आधा अधूरा समझती है। वह बड़े–बड़े लोगों को अपने घर आमन्त्रित करती है। उसका बेटा अशोक घर में आने वाले इन तथाकथित बड़े लोगों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। वह सिंघानिया से ठीक प्रकार से पेश नहीं आता और उसका कार्टून बनाता रहता है। सावित्री को जब इस बात का पता चलता है तो वह क्रोध से आगबबूला हो जाती है। अशोक समझता है कि बड़े लोगों के सामने हमें अपने छोटेपन का आभास और अधिक होने लगता है। इस पर सावित्री कहती है कि बड़े लोगों से संबंध में परिवार के हित के लिए बनाए रखना चाहती हूँ।

**व्याख्या :** सावित्री और उसके बेटे अशोक में सिंघानिया के जाने के बाद झड़प हो जाती है। अशोक इन बड़े लोगों के सामने अपने आपको और अधिक छोटा समझने की बात कहता है। सावित्री कहती है कि यदि मैं इन बड़े लोगों से संबंध बनाकर रखती हूँ तो इसमें मेरा अपना निजी कोई स्वार्थ नहीं है अपितु मैं तो तुम्हीं लोगों के लिए ऐसा करती हूँ। यदि इन बड़े लोगों के आने से तुम अपने आपको छोटा समझते हो तो मैं इस घर की स्थिति सुधारने की यह कोशिश छोड़ दूँगी लेकिन मैं अकेली पूरे घर का दायित्व किस प्रकार सँभाल पाऊँगी। महेन्द्रनाथ की ओर संकेत करती हुई कहती है कि एक वह व्यक्ति है जिसने घर का सारा धन व्यापार में डुबो दिया और अब खाली बैठा है। घर का अन्य कोई भी सदस्य अपनी कोशिश से घर चलाने का कोई अन्य तरीका नहीं ढूँढता है और जब मैं कोशिश करती हूँ तो इसे अपना अपमान समझते हैं। ऐसी स्थिति में मैं किस प्रकार इस परिवार के साथ निभा सकती हूँ। इस परिवार में किसी को किसी भी प्रकार की चिंता नहीं है ऐसी

स्थिति में सावित्री परिवार का उत्तरदायित्व अकेली निभा पाने में अपने आपको असमर्थ पाती है। सावित्री कहती हैं कि मैं भी अन्य सभी की भाँति दायित्व रहित जीवन व्यतीत करने लगूँगी तब तो कोई किसी प्रकार की हीन भावना से ग्रस्त नहीं होगा?

**विशेष** : 1. प्रस्तुत पंक्तियों में सावित्री ने महेन्द्रनाथ और अशोक पर कटु व्यंग्य किए हैं।

2. अपनी नौकरी की आड़ में सावित्री ने अपने चरित्र की कमजोरी के छिपाने का प्रयत्न किया है।

3. प्रश्नवाचक शैली का प्रयोग हुआ है।

4. आम बोलचाल की सरल, बोधगम्य भाषा का प्रयोग हुआ है।

***मेरे पास अब बहुत साल नहीं हैं जीने को। पर जितने हैं, उन्हें मैं इसी तरह और निभाते हुए नहीं काटूँगी। मेरे कहने से जो कुछ हो सकता था इस घर का, हो चुका आज तक। मेरी तरफ से यह अंत है उसका–निश्चित अंत!***

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगशील नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। वास्तव में ही इस नाटक के सभी पात्र 'आधे–अधूरे' हैं। यह प्रसंग उस समय है जब सिंघानिया सावित्री के घर होकर वापस लौट जाता है। अशोक इस प्रकार घर आने वाले व्यक्तियों को बिल्कुल पंसद नहीं करता। सावित्री यह दिखाना चाहती है कि वह बड़े लोगों को घर इसलिए आमन्त्रित करती है कि घर की स्थिति सुधारी जा सके। और किसी प्रकार अशोक को नौकरी मिल जाए। लेकिन अशोक को अपनी मम्मी के इन बड़े लोगों से सबंध और इनका घर आना–जाना बिल्कुल पसंद नहीं। सिंघानिया के जाने के बाद सावित्री, अशोक और बड़ी लड़की में खूब बहस होती है। अशोक बार–बार सावित्री को कहता है कि जब घर का कोई भी सदस्य उसका कोई अहसान नहीं मानता तो सावित्री उनके लिए नौकरी या बड़े लोगों के यहाँ आना–जाना क्यों करती है? अंत में सावित्री कह उठती है कि आगे से मैं केवल अपने लिए ही जीवन जीऊँगी।

**व्याख्या** : सावित्री और उसके पुत्र अशोक में सिंघानिया के जाने के बाद काफी तनातनी हो जाती है। अशोक यह बिल्कुल स्वीकार नहीं करता कि उसकी मम्मी के बड़े लोगों के साथ संबंध परिवार की भलाई के लिए हैं। इस पर सावित्री कह उठती है कि मैं आगे से परिवार के किसी सदस्य का कोई ध्यान नहीं रखूँगी और केवल अपने लिए ही जीवन जीऊँगी। सावित्री को लगता है कि उसकी अधिक उम्र शेष नहीं रह गई है। लेकिन जितना भी जीवन शेष बचा है वह दूसरों के लिए निभाते हुए नहीं अपितु अपने लिए व्यतीत करेगी। क्योंकि इस परिवार के लिए वह जितना कर सकती थी, कर चुकी है। सावित्री कहना चाहती है कि मेरे लाख प्रयत्न करने पर भी इस घर में से किसी एक का भी न हो सका तो मैं अब आगे ऐसा करूँगी ही नहीं। और सावित्री के मतानुसार अब इस घर का अंत निश्चित है।

**विशेष** : 1. सावित्री यह जान चुकी है कि उसका आवारापन का जीवन उसके जवान बच्चे अब स्वीकार नहीं करेंगे।

2. एक बदचलन नारी के बच्चों पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव को दर्शाया गया है।

3. भाव की दृष्टि से छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग उचित प्रतीत होता है।

***मैंने हमशो हर चीज़ के लिए उसे किसी-न-किसी का सहारा ढूँढते पाया है। खासतौर से आपका। यह करना चाहिए या नहीं–जुनेज़ा से पूछ लूँ। वहाँ जाना चाहिए या नहीं–जुनेज़ा से पूछ लूँ। वहाँ जाना चाहिए या नहीं–जुनेज़ा से राय कर लूँ। कोई छोटी-से-छोटी चीज़ खरीदनी है, तो भी जुनेज़ा की पसन्द से। कोई बड़े-से-बड़ा खतरा उठाना है–तो भी जुनेज़ा की सलाह से। यहाँ तक कि मुझसे ब्याह करने का फैसला भी कैसे किया उसने? जुनेज़ा को हामी करने से।***

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित नाटक 'आधे–अधूरे' से अवतरित है। नाटक की नारी पात्र सावित्री अपने पति महेन्द्रनाथ को आधा–अधूरा व्यक्ति समझती है क्योंकि वह प्रत्येक कार्य अपने मित्र जुनेज़ा की सहायता से करता है। पुरुष चार यानि जुनेज़ा महेन्द्रनाथ के बारे में सावित्री को कहता है कि उसे तुमने अपने शिकंजे में जकड़ रखा है। वह कहता है कि महेन्द्रनाथ चाहते हुए भी अब उस शिकंजे से बाहर नहीं निकल सकता। लेकिन दूसरों पर निर्भर है। वह स्वयं कोई भी निर्णय नहीं ले सकता। ऐसा आक्षेप लगाती हुई सावित्री कहती है–

**व्याख्या** : सावित्री पुरुष चार यानि जुनेज़ा से कहती है कि जब से मैंने महेन्द्रनाथ को जाना है तब से ही उसे हर छोटे–बड़े कार्य में निर्णय के लिए किसी दूसरे पर निर्भर पाया हैं विशेषतौर पर तो वह सदैव जुनेज़ा का ही सहारा ढूँढता है। वह कभी भी किसी कार्य करने से पहले जुनेज़ा का मत जानना चाहता है। चाहे कहीं जाने की बात हो या कोई वस्तु खरीदने से संबंधित निर्णय लेना हो। किसी बड़े कार्य में कोई बड़ा खतरा दिखाई देता हो तो भी वह जुनेज़ा से सलाह करके उस खतरे

को उठाने का न उठाने की बात का निर्णय करता है। सावित्री कहती है कि महेन्द्रनाथ ने उससे विवाह करने का निर्णय भी जुनेज़ा के हाँ करने से ही किया था। सावित्री ऐसे व्यक्ति को आधा समझती है जो अपनी किसी भी बात का निर्णय स्वयं नहीं ले सकता और हर छोटी–बड़ी बात के लिए दूसरे पर निर्भर हो।

**विशेष** : 1. महेन्द्रनाथ के आधे–अधूरे को दर्शाया गया है।

2. सावित्री के चरित्र का पता चलता है कि अपने अंदर झाँकने की अपेक्षा पराक्षेपी अधिक है।

3. छोटे वाक्यों और सरल शब्दावली में गूढ़ भावों की व्यंजना हुई है।

***और उस भरोसे का नतीजा? कि अपने-आप पर उसे कभी किसी चीज़ के लिए भरोसा नहीं रहा। ज़िंदगी के हर चीज की कसौटी–जुनेज़ा। जो जुनेज़ा सोचता है, जो जुनेज़ा चाहता है, जो जुनेज़ा करता है, वही उसे भी सोचना है, वही उसे भी चाहना है, वही उसे भी करना है। क्यों? क्योंकि जुनेज़ा तो एक पूरा आदमी है अपने में। और वह खुद? वह खुद एक पूरे आदमी का आधा-चौथाई भी नहीं है।***

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्य अवतरण प्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आधे–अधूरे' से अवतरित है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने चार पुरुष पात्रों की भूमिकाएँ एक ही व्यक्ति से करवाई हैं। यह संवाद सावित्री और पुरुष चार यानि जुनेज़ा के बीच का है। महेन्द्रनाथ की ओर से जुनेज़ा सावित्री को समझाने आता है लेकिन सावित्री महेन्द्रनाथ में अनेक कमियाँ निकालती है। वह आक्षेप लगाती है कि महेन्द्रनाथ हर बात के लिए जुनेज़ा पर निर्भर है। इस पर जुनेज़ा कहता है कि मैं उसका दोस्त हूँ और उसका मुझ पर भरोसा है। इसीलिए वह ऐसा करता है। तब सावित्री कहती है--

**व्याख्या** : सावित्री पुरुष चार यानि जुनेज़ा को सम्बोधित करती हुई कहती है कि महेन्द्रनाथ ने हर बात के लिए जुनेजा पर भरोसा किया। और उस भरोसे का परिणाम यह हुआ कि महेन्द्रनाथ की आत्मनिर्णय की शक्ति ही समाप्त हो गई। महेन्द्रनाथ के हर क्षेत्र में अपना आदर्श जुनेज़ा को बना लिया कि महेन्द्रनाथ जैसा सोचता है, जैसा चाहता है, जैसा वह करता है, वैसा ही सब महेन्द्रनाथ भी सोचता, चाहता और करता है। सावित्री कहती है कि जुनेज़ा तो अपने घर की सारी जिम्मेदारियां निभाता है, वह तो पूरा आदमी है। लेकिन महेन्द्रनाथ न तो कोई कार्य मन लगाकर करता है, न ही कोई निर्णय ले सकता है। इस प्रकार वह पूरे आदमी का आधा तो क्या चौथाई भी नहीं है। क्योंकि महेन्द्रनाथ अपने प्रत्येक छोटे–बड़े कार्य के लिए जुनेजा पर निर्भर है। इस प्रकार सावित्री महेन्द्रनाथ के बारे में जुनेज़ा को ही देवी मानते हुए उसे खरी–खोटी सुनाती है।

**विशेष** : 1. सावित्री की मानसिकता उजागर हुई है।

2. सावित्री अपनी कमियों को छुपाने के लिए महेन्द्रनाथ की कमियाँ गिनवाती है।

3. प्रश्नवाचक शैली व सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***मुझे उस असलियत की बात करने दीजिए जिसे मैं जानती हूँ।...एक आदमी है। घर बसाता है। क्यों बसाता है? एक ज़रूरत पूरी करने के लिए। कौन ज़रूरत? अपने अंदर के किसी उसको...एक अधूरापन कह लीजिए उसे...उसको भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए...अपने में...पूरा होना होता है। किन्हीं दूसरों को पूरा करते रहने में ही ज़िंदगी नहीं काटनी होती। पर आपके महेन्द्र के लिए ज़िंदगी का मतलब रहा है...जैसे सिर्फ दूसरों के खाली खाने भरने की ही एक चीज़ है वह। जो कुछ वे दूसरे उससे चाहते हैं, उम्मीद करते हैं...या जिस तरह वे सोचते हैं उनकी ज़िंदगी में उसका इस्तेमाल हो सकता है।***

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश रचित नाटक आधे–अधूरे से लिया गया है। सावित्री और पुरुष चार यानि जुनेज़ा के मध्य महेन्द्रनाथ को लेकर वार्तालाप चलता है। जुनेज़ा महेन्द्रनाथ का मित्र होने के नाते सावित्री को समझाने आता है जिससे कि महेन्द्रनाथ और सावित्री का जीवन सामान्य ढंग से चल सके। लेकिन सावित्री महेन्द्रनाथ की कमियाँ गिनवाना शुरू कर देती है। सावित्री को यह बिल्कुल पसंद नहीं कि महेन्द्रनाथ हर बात के लिए जुनेज़ा पर निर्भर रहे। जुनेज़ा उसे समझाता है कि यह असलियत नहीं है। सावित्री जनेज़ा की पूरी बात सुने बिना ही अपने तर्क देना शुरू कर देती है।

**व्याख्या** : सावित्री जुनेज़ा से कहती है कि मैं तो उस असलियत की बात करना चाहती हूँ जिसे मैं जानती हूँ। व्यक्ति अपना घर बसाकर अपने अंदर के अधूरेपन और ज़रूरत पूरा कर लेता है तो वह अपने आपमें पूर्ण महसूस करता है। सावित्री को लगता है कि महेन्द्रनाथ अपनी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सका। साथ ही दूसरों के अधूरेपन को भरने के लिए अपना जीवन खो

रहा है। सावित्री अनुभव करती है कि वास्तव में तो जुनेज़ा के लिए ही महेन्द्रनाथ अपना जीवन जी रहा है। वह जुनेज़ा के खालीपन को भरने की चीज़ मात्र है। सावित्री व्यंग्य करती है कि अन्य व्यक्ति जिस प्रकार भी महेन्द्रनाथ का इस्तेमाल करना चाहे कर सकते हैं। यहाँ तक कि दूसरे व्यक्ति तो महेन्द्रनाथ की सोच को भी अपने अनुसार बदल सकते हैं।

**विशेष** : 1. सावित्री महेन्द्रनाथ के व्यापार में हुए घाटे के लिए अप्रत्यक्ष रूप से जुनेज़ा को दोषी ठहराती है।

2. सावित्री, महेन्द्रनाथ और जुनेज़ा की चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन सूक्ष्म व प्रभावी ढंग से हुआ है।
3. सावित्री अनुभव करती है कि घर में आधा–अधूरा दिखाई देने वाला महेन्द्रनाथ बाहर के लोगों के अनुसार कार्य करता है।
4. आम बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***वज़ह इसकी मैं थी–यही कहना चाहते हैं न? वह मुझे खुश रखने के लिए ही यह लोहा, लकड़ी जल्दी-से-जल्दी घर में भरकर हर बार अपनी बर्बादी की नींव खोद लेता था। पर असल में उसकी बर्बादी की नींव क्या चीज़ खोद रही थी. ..क्या चीज़ और कौन आदमी...अपने दिल में तो आप भी जानते होंगे।***

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्य अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश कृत नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। महेन्द्रनाथ की पत्नी सावित्री घर के उगमगाते हालात के लिए महेन्द्रनाथ को ही पूरी तरह दोषी ठहराती है। पुरुष चार यानि जुनेज़ा के साथ महेन्द्रनाथ का साँझा व्यापार था। लेकिन महेन्द्रनाथ ने सदा ही अपना हिस्सा शीघ्र ही बीच में निकाल और घर के लिए आराम का सामान इकट्‌ठा करता रहा। उस समय तो पूरा परिवार ऐशोआराम का जीवन बिता रहा था। शीघ्र ही जब व्यापार में महेन्द्रनाथ का हिस्सा समाप्त हो गया और महेन्द्रनाथ बेरोजगार हो गया तो उसे घर में ताने दिए जाने लगे। जुनेज़ा सावित्री को कहता है कि भले ही महेन्द्रनाथ बहुत जल्दबाज़ी बरतता था लेकिन इसकी वज़ह सावित्री ही थी। यह सुनकर सावित्री आवेश में आ जाती है।

**व्याख्या** : सावित्र आवेश में आकर पुरुष चार यानि जुनेज़ा से कहती है कि आप यही कहना चाहते हैं कि न कि महेन्द्रनाथ व्यापार में कहीं भी सफल नहीं हुआ तो इसका कारण मैं हूँ। महेन्द्रनाथ अपने वेतन से अधिक सामान घर में लाकर अपने आपको विनाश के कगार पर ला रहा था। सवित्री पूछना चाहती है कि क्या वह घर छोटा–मोटा सामान (जिसे वह लोहा, लकड़ी का नाम देती है) मुझे खुश करने के लिए लाता था। सावित्री और जुनेज़ा घर की बर्बादी के लिए एक–दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। सावित्री जुनेज़ा को ही अप्रत्यक्ष रूप से दोषी ठहराते हुए कहती है कि उसकी बर्बादी के लिए जो चीज़ या जो व्यक्ति जिम्मेदार है, वह आप जानते ही हैं। इस प्रकार सावित्री साफ–साफ जुनेज़ा को ही महेन्द्रनाथ के घर की बर्बादी के लिए दोषी ठहराती है। क्योंकि महेन्द्रनाथ हर बात के लिए, हर निर्णय के लिए जुनेज़ा पर निर्भर है।

**विशेष** : 1. सावित्री की क्षुब्ध मनोवृत्ति का अंकन हुआ है।

2. सावित्री की स्पष्टवादिता का पता चलता है।
3. नाटककार ने इस कथन में यह स्पष्ट किया है कि सावित्री और महेन्द्रनाथ के मनमुटाव का कारण महेन्द्रनाथ की मित्रमण्डली थी।
4. व्यंग्यात्मक किंतु सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***महेन्द्र अब दोस्तों में बैठकर पहले की तरह खिलता नहीं। महेन्द्र अब वह पहले महेन्द्र रह ही नहीं गया! और महेन्द्र ने जी जान से कोशिश की, वह वहीं बना रहे किसी तरह। कोई यह न कह सके जिससे कि वह अब पहले वाला महेन्द्र रह ही नहीं गया। और इसके लिए महेन्द्र घर के अंदर रात-दिन छटपटाता है। दीवारों से सिर पटकता है। बच्चों को पीटता है। बीवी के घुटने तोड़ता है। दोस्तों को अपना फर्सत का वक्त काटने के लिए उसकी ज़रूरत है। महेन्द्र के बगैर कोई पार्टी जमती नहीं।***

**प्रसंग** : प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश रचित नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। जुनेज़ा सावित्री को समझाने की बहुत कोशिश करता है जिससे उसकी और महेन्द्रनाथ की गृहस्थी सुचारु रूप से चल सके। दोनों का वार्तालाप बहुत लम्बा चलता है। जुनेज़ा महेन्द्रनाथ के घर की वर्तमान स्थिति के लिए सावित्री के आवारापन को दोषी ठहराता है। लेकिन सावित्री महेन्द्रनाथ को आधा–अधूरा व्यक्ति मानती हुई कहती है कि महेन्द्रनाथ के घर की अपेक्षा अपनी मित्र–मण्डली को अधिक महत्त्व दिया है। वह कहती है कि महेन्द्रनाथ की बर्बादी की नींव उसके मित्रों ने ही खोदी है।

**व्याख्या :** सावित्री जुनेज़ा से बात करते हुए आवेश में आकर कहती है कि जब से महेन्द्रनाथ ने सावित्री से विवाह किया तभी से महेन्द्र के चाहने वालों को यह बात अच्छी नहीं लगी। सावित्री जुनेज़ा पर आक्षेप लगाती हुई कहती है कि आप लोगों को हमारे विवाह के बाद ऐसा लगा कि मेहन्द्र हमसे छीन लिया गया है। स्वाभाविक ही था कि महेन्द्र अब दोस्तों को कुछ कम समय दे पाता होगा। इसलिए महेन्द्र के दोस्त कहने लगे कि महेन्द्र अब पहले की तरह दोस्तों की महफिल में बैठकर खिलखिलाकर हँसता नहीं। उसका स्वभाव कुछ बदला सा गया है। और महेन्द्र इस प्रयत्न में लगा रहा कि दोस्तों के लिए वह पहले वाला महेन्द्र ही बना रहे। और उसके मित्र उसमें कोई परिवर्तन अनुभव न कर सकें। इसी चक्कर में महेन्द्र घर में सामान्य न रह पाया। घर के अंदर वह घुटन अनुभव करने लगा। इसी घुन की अभिव्यक्ति उसके व्यवहार से दिखाई देने लगती है। कभी वह दीवार से सिर पटकता है और कभी अपना आक्रोश बच्चों व पत्नी को पीटकर प्रकट करता है। महेन्द्रनाथ के दोस्तों को अपन समय व्यतीत करने के लिए उसकी आवश्यकता अनुभव होती है। दोस्तों के लिए मज़ाकिया किस्म का महेन्द्र उसके मनोरंजन का एक साधन है। उसके अभाव में उसे दोस्तों को पार्टी में लुत्फ़ नहीं मिलता। सावित्री महेन्द्रनाथ की मनःस्थिति के लिए उसकी मित्रमण्डली को दोषी ठहराती है।

**विशेष :** 1. सावित्री की स्पष्टवादिता लक्षित होती है।

2. ऐसा प्रतीत होता है कि सावित्री की अपनी चारित्रिक कमियाँ ही नहीं अपितु महेन्द्रनाथ की मित्र–मण्डली को उसके घर के बिखराव के लिए दोषी है।

3. छोटे–छोटे वक्याशों का सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***बच्ची थीं या जो भी थीं, पर बात बिल्कुल इसी तरह करती थीं जैसे आज करती हो। उस दिन भी बिल्कुल इसी तरह तुमने महेन्द्र को मेरे सामने उधेड़ा था। कहा था कि वह बहुत लिजलिजा और चिपचिपा सा आदती है। पर उसे वैसा बनाने वालों में नाम तब दूसरों के थे। एक नाम था उसकी माँ का दूसरा उसके पिता का...।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अन्तरण प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश के प्रसिद्ध नाटक आधे–अधूरे से लिया गया है। सावित्री और महेन्द्रनाथ के बीच अत्यधिक कटुता आने पर परिवार बिखराव की स्थिति तक पहुँच जाता है। जुनेज़ा महेन्द्रनाथ और सावित्री में समझौता करवाने के उद्देश्य से उनके घर आता है। लेकिन सावित्री जुनेज़ा की एक नहीं सुनती। सावित्री परिवार की वर्तमान स्थिति के लिए सारा दोष महेन्द्रनाथ और मित्र–मण्डली को देती है। लेकिन जुनेज़ा सावित्री को कहता है कि आज तो वह महेन्द्रनाथ में कमियाँ निकालते हुए उसके मित्रों को दोषी बता रही है लेकिन वास्तविकता यह है कि सावित्री को प्रारम्भ से ही महेन्द्रनाथ से नफरत थी। और उसकी कमजोरियाँ छिपाने के लिए किसी–न–किसी पर दोषारोपण करना उसका स्वभाव है।

**व्याख्या :** जुनेज़ा सावित्री से कहता है कि तुमने बाईस वर्ष पहले मुण्डली यह बात कही थी कि महेन्द्रनाथ एक लिजलिजा और चिपचिपा इंसान है। इस पर सावित्री कहती है कि तब मैं नासमझ बच्ची थी। जुनेज़ा इस बात पर अपना तर्क देता है कि चाहे बाईस वर्ष पहले तुम बच्ची थी लेकिन बात इसी प्रकार करती थी। उस समय भी तुम महेन्द्रनाथ में इतनी ही कमियाँ निकालती थी, जितनी आज निकाल रही हो। आज की तरह उस समय भी उसे चिपचिपा और लिजजिला इंसान समझती थी। अन्तर सिर्फ इतना है कि आज महेन्द्रनाथ के व्यवहार के लिए दोषी व्यक्तियों के नाम अलग हैं। बाईस वर्ष पहले उसको ऐसा बनाने वालों में उसके माता–पिता के नाम थे। जुनेज़ा के इस कथन से स्पष्ट होता है कि सावित्री को तो महेन्द्रनाथ में दोषान्वेषण करने ही हैं, चाहे उसके लिए दोषी किसी को भी ठहराना पड़े।

**विशेष :** 1. जुनेज़ा के माध्यम से सावित्री के चरित्र को विश्लेशित किया गया है।

2. अपनी कमियों को छिपाकर सावित्री की परदोषारोपण की प्रवृत्ति को उजागर किया गया है।

3. सहज, सरल एवं भावानुकूल शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

***असल बात इतनी ही कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता ज़िंदगी में, तो साल-दो-साल बाद तुम यही महसूस करतीं कि तुमने ग़लत आदमी से शादी कर ली है। उसकी ज़िंदगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र, कोई जुनेज़ा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचती, यही सब महसूस करतीं। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है–कितना एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत अवतरण मोहन राकेश रचित प्रसिद्ध नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। यहाँ पुरुष चार यानि जुनेज़ा और सावित्री के मध्य संवाद से यह व्यक्त होता है कि सावित्री व्यर्थ ही महेन्द्रनाथ पर दोषारोपण करती रहती, वास्तव में सावित्री है कि फ्लर्ट किस्म की औरत। महेन्द्रनाथ एक–एक करे उन व्यक्तियों के नाम गिनवाता है, जो-जो सावित्री के सम्पर्क में रहे हैं। पहले जुनेज़ा, फिर शिवजीत, उसके बाद जगमोहन। सावित्री का स्वभाव ही ऐसा है कि वह कुछ दिन एक व्यक्ति से प्रभावित होती है, उसकी ओर आकर्षित होती है और कुछ दिन बाद उसे उसमें कमियाँ नज़र आने लगती हैं। तब सावित्री उस व्यक्ति को छोड़कर अगले व्यक्ति को तलाशने लगती हैं इन्हीं कारणों से वह अपने पति महेन्द्र के प्रति पूर्णतः समर्पित कभी नहीं हो सकी। इसी भाव की अभिव्यक्ति यहाँ जुनेज़ा के कथन से होती है।

**व्याख्या :** जुनेज़ा सावित्री से कहता है कि तुमने सदैव ही महेन्द्रनाथ को हीन समझा। तुमने कभी जुनेज़ा, कभी शिवजीत और कभी जगजोहन को अपना बनाना चाहा। कुछ ही दिनों में सम्पर्क के बाद तुम्हें उस व्यक्ति में कमियाँ नज़र आने लगतीं और तुम उसे छोड़कर अन्य पुरुष के प्रति आकर्षित हो जाती। इसी सन्दर्भ को आगे बढ़ाता हुआ जुनेज़ा कहता है कि वास्तव में महेन्द्र की जगह यदि इनमें से भी कोई व्यक्ति तुम्हारा जीवनसाथी होता तो भी साल दो साल बाद ही तुम यह अनुभव करती कि मैंने जिस व्यक्ति से विवाह किया है, वह ठीक नहीं है क्योंकि तुम संतोषी प्रवृत्ति की नहीं है और दोषान्वेषण तुम्हारी आदत है। जुनेज़ा आगे कहता है कि तुम एकाएक ही काफी कुछ पा जाना और दिखा करना चाहती हो। ऐसा एकदम और किसी एक व्यक्ति के साथ संभव नहीं हो पाता इसलिए तुम सदैव ही अपने आपको रिक्त अनुभव करती हो और उदास रहती हो।

**विशेष :** 1. जुनेज़ा द्वारा सावित्री की चारित्रिक कमियों की ओर संकेत किया गया है।

2. सावित्री के चरित्र की कमियाँ सहज विश्वसनीय हैं।

3. सामान्य बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग किया गया है।

***देखा है कि जिस मुट्ठी में तुम कितना कुछ एक साथ भर लेना चाहती थीं, उसमें जो था वह भी धीरे-धीरे बाहर फिसलता गया है कि तुम्हारे मन में लगातार एक डर समाता गया है, जिसके मारे कभी तुम घर का दामन थामती रही हो, कभी बाहर का और कि वह डर एक दहशत में बदल गया। जिस दिन तुम्हें एक बहुत बड़ा झटका खाना पड़ा...अपनी आखिरी कोशिश में।***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। 'आधे–अधूरे' समकालीन ज़िंदगी का सार्थक नाटक है। जुनेज़ा और सावित्री के मध्य लम्बा संवाद चलता है जिसमें सावित्री यह साबित करने का प्रयत्न करती है कि महेन्द्रनाथ एक कुढ़ने वाला व्यक्ति है। सावित्री की इस शिकायत पर पुरुष चार यानि जुनेज़ा कहता है कि आज महेन्द्र एक कुढ़ने वाला व्यक्ति है लेकिन वह पहले ऐसा नहीं था। वह तो सदा प्रसन्नचित रहने वाला व्यक्ति था। सावित्री ने बात–बात पर उसे हीन साबित करके उसे कुढ़ने वाला व्यक्ति बना दिया। सावित्री कहती है कि जुनेज़ा ने उसके आसपास के वातावरण को पूरी तरह नहीं देखा और जाना है। इस बात पर जुनेजा कहता है–

**व्याख्या :** जुनेज़ा महेन्द्रनाथ की वर्तमान दशा के लिए सावित्री को दोषी ठहराते हुए कहता है कि उसने महेन्द्रनाथ और उसके आसपास को पूरी तरह देखा है और यह भी देखा है कि तुम एकाएक ही जिस मुट्ठी में बहुत कुछ भर लेना चाहती थीं, वह भी धीरे–धीरे समाप्त होता चला गया। जो चीज़ सावित्री घर या बाहर प्राप्त करने की कोशिश कर रही थी, उसके न मिलने पर डर का भाव उसके अंदर समाता चला गया। सावित्री ने घर के सदस्यों को तो अपना कभी समझा ही नहीं और बाहर के जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में वह आई वे सब एक–एक करके दूर होते गए। इससे सावित्री के मन में डर और गहरा होता चला गया। सावित्री ने बाहर के व्यक्तियों में से आखिरी कोशिश मनोज के रूप में की थी। जिससे सावित्री को सबसे बड़ा धोखा मिला जब वह बड़ी लड़की बिन्नी को लेकर भाग गया।

**विशेष :** 1. जुनेज़ा ने सावित्री के चरित्र के उस पक्ष को उद्घाटित किया है जिसमें उसने अपनी रिक्तता को भरने के लिए अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क बनाए किंतु उसकी अपूर्णता पूर्ण होने की बजाय और बढ़ती गई।

2. मनोज के चरित्र की ओर संकेत किया गया है।

3. जुनेज़ा की स्पष्टवादिता झलकती हैं

4. बोलचाल की सरल शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

***फिर भी तुम्हें लगता रहा है कि तुम चुनाव कर सकती हो। लेकिन दाएँ से हटकर बाएँ, सामने से हटकर पीछे, इस कोने से हटकर उस कोने में...क्या सचमुच कहीं कोई चुनाव नजर आया है तुम्हें बोलो? आया है नज़र कहीं ?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश प्रयोगशील नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित चर्चित नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। इस नाटक में नाटककार ने सामान्य मध्यवर्गीय परिवार में पनपती महत्त्वाकांक्षाओं और उन्हें पूरा करने के लिए निम्न–से–निम्न प्रकार के हथकण्डे अपनाए जाने का निर्णय किया है। महेन्द्रनाथ की नौकरी न होने के कारण और व्यापार में सफलता न मिलने के कारण वह एक बेकार समझा जाने वाला व्यक्ति बन चुका है। सावित्री उसे पति सम्मान नहीं देती। वह तो चाहती है कि उसे महेन्द्र से बेहतर मिले तो वह इस परिवार से छुटकारा पा ले। सावित्री के इसी स्वभाव पर कटाक्ष करता हुआ जुनेजा कहता है-

**व्याख्या :** जुनेज़ा सावित्री के चरित्र पर आक्षेप लगाता हुआ कहता है कि तुमने अनेक पुरुषों में से किसी–न–किसी एक का चुनने का प्रयत्न किया। सावित्री के अंत में यह मान लिया कि सब पुरुष एक जैसे होते हैं अलग–अलग मखौटे पर चेहरा सबका एक जैसा है। लेकिन सावित्री इसी प्रयत्न में लगी रही दाएँ नहीं तो बाएँ, आगे या पीछे, इधर–उधर कोई पुरुष महेन्द्रनाथ से बेहतर मिल जाएगा। लेकिन जुनेज़ा पूछना चाहता है कि क्या वास्तव में कोई चुनाव कर सकी। जुनेजा यह स्पष्ट करना चाहता है कि सावित्री का स्वभाव ही ऐसा है कि किसी एक पुरुष के साथ जीवनयापन नहीं करना चाहती। उसे तो प्रत्येक में कुछ–न–कुछ कमी लगने लगती है और फिर अपने स्वभावानुसार वह फिर अन्य पुरुष के चुनाव में लग जाती है।

**विशेष :** 1. जुनेज़ा के कथन से स्पष्ट है कि सावित्री अपने अंदर की अपूर्णता को ढकने के लिए जगमोहन, शिवजीत, जुनेजा या मनोज आदि में पूर्णता की तलाश करती रही है।

2. मंचन के लिए उपयुक्त सरल, सजीव, भाषा का प्रयोग हुआ है।

***तुम्हारा घर है, तुम बेहतर जानती हो। कम-से-कम मानकर यही चलती है। इसलिए बहुत कुछ चाहते हुए भी मुझे अब कुछ भी संभव नज़र नहीं आता। और इसीलिए फिर एक बार पूछना चाहता हूँ तुमसे–क्या सचमुच किसी तरह तुम उस आदमी को छुटकारा नहीं दे सकतीं?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश प्रयोगशील नाटककार मोहन राकेश द्वारा लिखे गए नाटक 'आधे–अधूरे' से अवतरित है। पुरुष चार अपने जुनेज़ा और सावित्री के बीच सावित्री और महेन्द्रनाथ के घर के हालात के बारे में विस्तारपूर्वक बातचीत होती है। महेन्द्रनाथ की उस घर में स्थिति को लेकर भी बहस होती है। सावित्री महेन्द्र के दोस्तों को उसकी वर्तमान स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराती है जबकि जुनेज़ा इसके विपरीत सावित्री को दोषी बताता है।

**व्याख्या :** जुनेज़ा सावित्री से कहता है कि तुम अपने घर को भले ही बेहतर जानती हो। और नहीं भी जानती हो तो मैं यह तो तुम समझती अवश्य हो कि मैं ही अपने घर की वर्तमान स्थिति के विषय में बेहतर जानती हूँ। इस घर की स्थिति सुधारने का अब कोई उपाय नज़र नहीं आता। वास्तव में सावित्री को अपने परिवार के किसी भी सदस्य से विशेष लगाव नहीं है। उसे अपने आवारापन से ही फुर्सत नहीं है। वह अपने बच्चों को भी यथोचित समय नहीं दे पाती। सावित्री के उत्तरदायित्व विहीन व्यवहार को देखकर जुनेज़ा कहता है कि भले ही मैं तुम्हारे परिवार की स्थिति को सुधारना और पति–पत्नी के संबंध मधुर करने का प्रयत्न करना चाहता हूँ। लेकिन जुनेज़ा को ऐसा होना असंभव नज़र आता है। पति–पत्नी के संबंध को सुधारने के उद्देश्य में सफलता न मिलते देखकर जुनेज़ा आगे कहता है कि सावित्री किसी प्रकार महेन्द्रनाथ को अपने बनावटी प्रेम से मुक्त ही कर दे।

**विशेष :** 1. जुनेज़ा ने सावित्री के चरित्र पर तीखे प्रहार किए हैं।

2. महेन्द्रनाथ और बच्चों के व्यवहार पर सावित्री के चरित्र से पड़ रहे प्रभाव को चित्रित किया गया है।

3. सावित्री के बनावटी प्रेम की पोल खोली गई है।

4. मंचन योग्य आम बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***इसलिए कि आज वह अपने को बिल्कुल बेसहारा समझता है। उसके मन में यह विश्वास बिठा दिया है तुमने कि सब कुछ होने पर भी उसकी ज़िंदगी में तुम्हारे सिवा कोई चारा, कोई उपाय नहीं हैं और ऐसा क्या इसीलिए नहीं किया तुमने कि ज़िंदगी में और कुछ हासिल न हो, तो कम-से-कम यह नामुराद मोहरा तो हाथ में बना ही रहे?***

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश प्रयोगधर्मी नाटककार मोहन राकेश रचित प्रसिद्ध नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। [illegible] सावित्री के मध्य लम्बा संवाद चलता है तो जुनेज़ा सावित्री के चरित्र को परत–दर–परत खोलता चला जाता है [illegible]

पुरुषों से सम्बन्ध बनाती है और प्रत्येक व्यक्ति में उसे कोई--न--कोई कमी नज़र आती है। सावित्री महेन्द्रनाथ को लिजलिजा और चिपचिपा इंसान कहती है। जुनेज़ा सावित्री से कहता है कि किसी तरह वह महेन्द्रनाथ को सचमुच ही छुटकारा दे दे। सावित्री पूछना चाहती है कि जुनेज़ा बार–बार महेन्द्रनाथ को छुटकारा देने की बात क्यों कह रहा है? सावित्री की बात का उत्तर देते हुए जुनेज़ा कहता है–

**व्याख्या** : जुनेज़ा स्पष्ट करता है कि सावित्री के व्यवहार ने महेन्द्रनाथ को बिल्कुल असहाय बना दिया है। महेन्द्रनाथ को यह विश्वास दिला दिया गया है कि सावित्री के बिना उसका कोई अस्तित्व या जीवन जीने का कोई आधार नहीं है। आज स्थिति ऐसी हो चुकी है कि महेन्द्र अपने आपको नितान्त अकेला महसूस करता है। सावित्री को अनेक पुरुषों से सम्बन्ध बनाने पर भी जब किसी पूर्ण पुरुष की प्राप्ति नहीं हुई तो उसने सोचा कि महेन्द्रनाथ के उसके पति बने रहने में ही भलाई है। इससे समाज में उसे सामाजिक संरक्षण तो मिलता ही रहेगा। सावित्री महेन्द्रनाथ को समाज में दिखावे मात्र के लिए ही अपने बनावटी प्रेम में बाँधे रखना चाहती है। वह न तो उसके प्रति पूर्णतः समर्पित है और न उसे पूर्णतः मुक्त कर पाती है। जुनेज़ा आगे कहता है कि तुमने महेन्द्रनाथ को अपने ऊपर इतना निर्भर बना दिया है कि वह न तो कोई निर्णय करने में समर्थ है, न ही अपने को किसी कार्य के योग्य समझता है। इससे भले ही सावित्री को भी कुछ विशेष प्राप्ति नहीं होती लेकिन इतना अवश्य लगता रहेगा कि निकम्मा और नाकारा ही सही लेकिन व्यक्ति रूपी मोहरा तुम्हारी इच्छानुसार कार्य करने वाला है।

**विशेष** : 1. सावित्री के दिखावटी पत्नीत्व को दर्शाया गया है।

2. जुनेज़ा ने सावित्री के चरित्र के कटु सत्य को रेखांकित किया है।
3. मंचन योग्य सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

***तो ठीक है वह नहीं आएगा। वह कमज़ोर है, मगर इतना कज़ोर नहीं है। तुमसे जुड़ा हुआ है, मगर इतना जुड़ा हुआ है। उतना बेसहारा भी नहीं है जितना वह अपने को समझता है। वह ठीक से देख सके, तो एक पूरी दुनिया है उसके आसपास। मैं कोशिश करूँगा कि वह आँख खोलकर देख सके।***

**प्रसंग** : प्रस्तुत गद्य अवतरण सुप्रसिद्ध प्रयोगशील नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक 'आधे–अधूरे' से लिया गया है। जुनेज़ा पहले तो सावित्री को समझाने का प्रयत्न करता है कि किसी प्रकार सावित्री और महेन्द्रनाथ का पारिवारिक जीवन सामान्य हो सके। लेकिन जब जुनेजा घर के बाहर न्यू इंडिया की गाड़ी खड़ी देखता है तो वह समझ जाता है कि सावित्री से मिलने जगमोहन आया है। उसे लगता है कि अब किसी भी प्रकार सावित्री और महेन्द्र का जीवन सामान्य नहीं हो सकता। अब जुनेज़ा महसूस करता है कि अब सावित्री को सचमुच ही महेन्द्रनाथ को छुटकारा दे देना चाहिए। इस बात पर सावित्री कहती है कि मुझे उस मोहरे की कोई आवश्यकता ही नहीं है जो न खुद चलता है, न औरों को चलने देता है। जुनेजा सावित्री के मुख से ऐसा सुनकर कुछ हताश हो जाता है।

**व्याख्या** : जुनेज़ा सावित्री से कहता है कि इस घर में महेन्द्रनाथ को बेकार समझा जाता है, इसलिए वह यहाँ नहीं आएगा। भले ही वह अशक्त है लेकिन इतना अशक्त भी नहीं कि इस परिवार के सदस्यों द्वारा उसे अपमानित किया जाए। घर से कटा हुआ होने के कारण उसे बेसहारा तो कहा जा सकता है लेकिन उसे अपने आपको इतना बेसहारा नहीं समझना चाहिए। क्योंकि उसकी पूरी मित्र–मण्डली उसके साथ है। यदि वह अपने मित्रों को अपना समझे तो उसके पास एक पूरी दुनिया है। वास्तव में इस परिवार ने महेन्द्रनाथ को विवेकशून्य बना दिया है केवल आवश्यकात है एक बार आँख खोलकर भली–भाँति उन्हें देखने और परखने की। हो सकता है इस परिवार की वास्तविकता से सही मायने में परिचित होने के उपरान्त वह इस परिवार को भूल सके।

**विशेष** : 1. जुनेजा द्वारा महेन्द्रनाथ के खोए हुए आत्मविश्वास और स्वाभिमान को जागृत करने का प्रयास इन पंक्तियों में उजागर होता है।

2. महेन्द्रनाथ का सावित्री के प्रति प्रेम और सावित्री की महेन्द्रनाथ के प्रति उपेक्षा इन पंक्तियों में स्पष्ट है।
3. मंचन योग्य सरल, बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है।
4. छोटे–छोटे वाक्यों में गंभीर भावाभिव्यक्ति हुई है।

# 1

# आधे-अधूरे : कथासागर / कथावस्तु

आधे–अधूरे एक सामाजिक नाटक है और इस नाटक में नाटककार ने मध्यवर्गीय निम्न आय वाले परिवार की ज्वलन्त समस्याओं को उजागर किया है। पाँच सदस्यों के परिवार में आर्थिक कठिनाइयों तथा व्यक्ति असन्तोष ने मनुष्यों में ही नहीं अपितु घर के वातावरण में भी एक दमघोटू मनहूसियत भर दी है। बेकार लड़के और पति के निठल्लेपन और बौने चरित्र से ऊबी स्त्री अपने काल्पनिक पूरेपन की तलाश में इतनी महत्त्वाकांक्षी हो गई है कि ऊँचे पद के पुरुषों से शारीरिक संबंध बना कर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करना चाहती है परन्तु अन्ततः निराश, हताश, क्लांत होकर उसी घर में लौटने पर विवश है। गृहस्वामी की मर्यादा से च्युत पुरुष भी घर से भागकर भी उसी में लौटने के लिए विवश है। बड़ी लड़की, अशोक आदि बच्चे भी घर के दमघोटू वातावरण के खिलाफ नपुंसक आक्रोश व्यक्त करते हैं। संभवतः घर के सभी सदस्य अपने असन्तोष, खोज, कुंठा टूटन, घुटन की यातना भोगने के लिए अभिशप्त हैं।

नाटक की शुरुआत काले सूट वाले आदमी के लम्बे एकालाप से होती है। वह यह इशारा भी करता है कि नाटक के शेष पुरुष पात्रों के रूप में भी वही बार–बार दर्शकों के सामने आएगा।

दिनभर दफ्तर में काम से थकी–हारी और घर के सामान से लदी स्त्री घर की अव्यवस्थित हालत को देखते ही परेशान और उत्तेजित हो जाती है। इसी मनःस्थिति में उसका सामना पुरुष–एक यानि अपने पति महेन्द्रनाथ से हो जाता है। दोनों में स्त्री के बॉस सिंघानियाँ के घर आने की बात को लेकर विवाद होता है। स्त्री यानि सावित्री के मुताबिक वह बॉस को अपने बेटे अशोक की नौकरी लगवाने के लालच में बुला रही है। जबकि महेन्द्रनाथ और अशोक दोनों इस तर्क से सहमत नहीं है। कमाऊ पत्नी और निठल्ले पति के उस वाद–विवाद के दौरान घर, घटनाओं और चीजों का पिछला कच्चा–चिट्ठा खुलता है। स्त्री घर तथा बच्चों की हालत बिगाड़ने की जिम्मेदारी पुरुष के कंधों पर डालना चाहती है और पुरुष स्त्री के कंधों पर। पुरुष जगमोहन और मनोज जैसे सावित्री के पुरुष–मित्रों का नाम लेकर स्त्री को हीन दिखाना चाहता है तभी बाहर से बड़ी लड़की बिन्नी आ जाती है उसके हालचाल के माध्यम से नाटककार यह बता देता है कि बिन्नी ने अनजाने में माँ के प्रेमी मनोज से ही भागकर शादी कर ली थी। अब वह भी अपने माँ–बाप की तरह दाम्पत्य जीवन से असंतुष्ट है। अपनी स्कूली जरूरतों की शिकायतों को लिए छोटी लड़की किन्नी आती है। अश्लील किताब पढ़ने को लेकर भाई–बहन में झगड़ा होता है। सबसे अपमानित और आहत होकर महेन्द्रनाथ हमेशा के लिए घर छोड़ने की धमकी देकर चला जाता है।

पुरुष दो के रूप में सावित्री का चालू बॉस सिंघानियाँ आता है। उसकी अभद्र और असंगत हरकतों से क्रुद्ध अशोक पराक्षत उसका मजाक उड़ाता है। माँ के नाराज होने पर वह उस पर भी यह लांछन लगा देता है कि अपनी खुशी के लिए वह हमेशा बड़े–बड़े आदमियों से ही अपने सम्बन्ध–सम्पर्क बनाती रही है। बेहद आहत और दुखी होकर सावित्री सबके लिए घर छोड़ने का मन बना लेती है। यहाँ नाटक का पूर्वार्द्ध समाप्त होता है।

उत्तरार्द्ध के प्रथम दृश्य में अशोक, बिन्नी, किन्नी के जरिए रचनाकार बताता है कि एक भिन्न स्तर पर ये सब भी अपने माँ–बाप की नारकीय जिन्दगी का विस्तार भर ही है। स्त्री घर छोड़ने के इरादे से अपने पूर्व–प्रेमी जगमोहन के साथ बाहर जाती है और उसकी चालाकी से हताश, क्रुद्ध और दुःखी होकर खाली हाथ वापस लौटते ही किन्नी को पीट देती है। घर पर महेन्द्रनाथ का दोस्त जुनेजा उसके इंतजार में है। सावित्री बिन्नी की उपस्थिति में पति महेन्द्रनाथ को रीढहीन, लिजलिजा और आधा–अधूरा आदमी बताती है। पुरुष चार यानी जुनेजा भी तब स्त्री का कच्चा चिट्ठा लेकर बताता है कि पिछले इक्कीस सालों से वह कितनी बार किस–किस के साथ भाग जाने का असफल प्रयास करती रही है? जितना कुछ वह पाना चाहती है वह उसे कभी किसी भी एक पुरुष से नहीं मिल सकता। इसलिए अधूरेपन के अहसास से दुखी रहना ही उसकी नियति है। यही आकर स्त्री महसूस करती है कि अलग–अलग मुखौटों के बावजूद सब पुरुषों का चेहरा एक ही है सब आधे–अधूरे हैं। एक–दूसरे से अलग होने का निर्णय लेने के बावजूद सावित्री की तरह महेन्द्रनाथ भी नाटक के अन्त में फिर घर वापस आ जाता है और नाटक के सभी पात्र घर के इस नरक में फिर से वही शुरुआत करने को पुनः तैयार हो जाते हैं।

'आधे–अधूरे' नाटक की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त, आकर्षक एवं सुगठित है। यह अपने सामाजिक कलेवर में उस मध्यवर्गीय परिवार की विघटनशीलता को प्रकट करती है जो स्तरीकरण की दौड़ में दौड़ता आर्थिक, मानसिक विसंगतियों को झेलता है। नाटक की कथावस्तु को फिल्मी स्टाइल की भाँति अन्तर्विकल्प नाम देकर दो भागों में बाँटा गया है। पूरे नाटक की कथावस्तु केवल एक ही दृश्य पर खेली जा सकती है। उसमें जरा सा भी परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। मौलिकता, संक्षिप्तता, रोचकता, यथार्थता और सम्बद्धता आदि 'आधे–अधूरे' नाटक की कथावस्तु के महत्त्वपूर्ण गुण है। इसकी कथावस्तु अत्यन्त सरल व सीधी है क्योंकि इसमें विविध घटनाओं का घटाटोप नहीं है, व्यर्थ के प्रसंगों की योजना नहीं की गई है और वस्तु को आदि से अन्त तक एक ही मुख्य कथा पर नियोजित किया गया है। लेखक ने कथावस्तु को अनावश्यक विस्तार से बचाकर न तो नाटक का कलेवर बढ़ने दिया है और न कथा की गति में कोई अवरोध आने दिया है। नाटक की कथावस्तु के विकास की दृष्टि से चार भाग स्वीकारे जाते हैं–

1. प्रारम्भ, 2. विकास, 3. चरम सीमा, 4. परिणति

1. **प्रारम्भ**–नाटक को नाटककार के प्रारम्भ पर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि इस भाग में नाटक की कथावस्तु हमारे सम्मुख आती है। नाटक का प्रारम्भ कौतूहल व जिज्ञासा युक्त होना चाहिए। 'आधे–अधूरे' में काले सूट वाले व्यक्ति द्वारा कथावस्तु के उद्‌घाटन पक्ष को बड़े सुन्दर और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। काले सूट वाले व्यक्ति का वह उद्‌घाटक अंश नाटकीय कथावस्तु से दर्शकों–पाठकों को इस प्रकार से बाँध देता है कि उनकी कौतूहलता व जिज्ञासा बढ़ती जाती है। इस प्रकार से इस नाटक का आरम्भ अत्यन्त आकर्षक, कौतूहलपूर्वक है।
2. **विकास**–कथानक के विकास में भी सभी घटनाएँ आती हैं जो दर्शकों की कल्पना से परे एकदम नया मोड़ लेकर कौतूहल बनाए रखती हैं। इनकी मोड़ों को नाटकीय स्थल भी कहा जाता है।

सावित्री जगमोहन के साथ नए जीवन की शुरुआत करने के लिए गई है, दर्शकों की धड़कनें बढ़ जाती हैं कि आगे क्या होगा? क्या वह जगमोहन के साथ नए जीवन का आरम्भ करेगी या नहीं? नाटककार ने नाटकीय युक्तियों का भी प्रस्तुत नाटक में भरपूर प्रयोग किया है। यथा–घर की चीज़ों का बिखराव, पुरुष का फाइलें झाड़ना, अखबार पढ़ना, लड़के का तस्वीरें काटना, पैड पर कार्टून बनाना, मोटर की बैटरी डाउन होना, डिब्बे का खोलना, पैंट में कीड़ा घुसने का नाटक करना, छोटी लड़की का हकलाना आदि घटनाएँ कथावस्तु का विकास करती हैं।

3. **चरमसीमा**–नाटक की कथावस्तु में चरम सीमा का दर्शन कई स्थानों पर होता है। जब सावित्री जगमोहन के साथ नया जीवन बिताने का फैसला करती है। तथा जब पुरुष तथा स्त्री दोनों घर छोड़कर चले जाते हैं। इन स्थलों पर नाटक की कथावस्तु या कौतूहल चरम–सीमा पर पहुँच जाता है।
4. **परिणति**–नाटकान्त में नायक या नायिका फल की प्राप्ति करते हैं और यहाँ पर दर्शक या पाठक की जिज्ञासा शान्त होती है। 'आधे–अधूरे' नाटक के अन्त में स्त्री–पुरुष दोनों अपनी घर छोड़ने की नियति को त्यागकर उसी घर के दमघोटू वातावरण में लौटने को विवश हैं। मध्यवर्गीय परिवार की इन्हीं सामाजिक–आर्थिक मानसिक विसंगतियों की चरिकालीनता को द्योतित करता हुआ यह नाटक समाप्त हो जाता है।

जहाँ तक कथावस्तु की संक्षिप्ति का प्रश्न है–इसको दो–ढाई घण्टे में सफलतापूर्वक मंचित किया जा सकता है। डॉ. पुष्पा बंसल का कथन है–"कुल छब्बीस घण्टों का समय ही इसका सम्पूर्ण कथानक है। उसमें शाम के पाँच बजे से लेकर शाम के सात बजे के लगभग तक का समय विकल्प अन्तराल से पहले लिया गया है और यही दो–ढाई घण्टे का समय विकल्प अन्तराल के बाद। बाईस–तेईस वर्ष का समय, क्योंकि इन चार–पाँच घण्टों में सिमट आया है।"

इसके साथ–साथ कथावस्तु को फिल्मी स्टाईल में अन्तराल और विकल्प दो भागों में विभाजित किया गया है। नाटककार का यह विभाजन इसलिए सार्थक लगता है क्योंकि प्रथम भाग की समस्याओं का समाधान दूसरे भाग के अन्त तक हो जाता है। नाटककार ने कथावस्तु को संक्षिप्त करने के लिए बहुत सारी घटनाओं को तो केवल सूचित कर दिया है जैसे महेन्द्रनाथ का व्यापार से घाटा उठाना, जगमोहन का सावित्री से व्यवहार, महेन्द्र द्वारा सावित्री की शारीरिक प्रताड़ना, किन्नी–सुरेखा काण्ड आदि।

कथावस्तु में रोचकता का समाहार करने के लिए नाटककार ने कहीं हास्य, कहीं व्यंग्य और कहीं मनोरंजन की सृष्टि की है। सिंघानिया प्रसंग का उदाहरण द्रष्टव्य है–

**"लड़का** : (उसकी नकल उतारता हुआ) "अच्छा यह बतलाइए कि आपके राजनीतिक विचार क्या हैं? राजनीतिक विचार है मेरे--खुजली और मरहम।"

× × × × ×

**पुरुष दो** : (बड़ी लड़की से) तुम्हें पहले कहीं देखा है...नहीं देखा?

**बड़ी लड़की** : नहीं तो।

**पुरुष दो** : फिर भी लगता है देखा है...काई और लड़की होगी। बिल्कुल तुम्हारे जैसी थी। विचित्र बात नहीं यह

**बड़ी लड़की** : क्या?

**पुरुष दो** : कि बहुत से लोग एक--दूसरे जैसे होते हैं। हमारे अंकल हैं एक। पीठ से देखो मोरारजी भाई लगते हैं।

**लड़का** : हमारी आंटी है एक गर्दन काटकर देखो--जीना लीली ब्रिजिदा नजर आती है।"

हास्य--व्यंग्य आदि से रोचकता का भाव--सहज और स्वाभाविक रूप से आया है।

नाटककार ने कथावस्तु में नए--नए प्रयोग भी किए हैं। नाटककार ने चलचित्रों की भाँति नाटक के मध्य में अन्तराल रखा है न की परम्परागत नाटकों की भाँति इसका अंकों में विभाजन किया यथार्थ के प्रस्तुतिकरण में यह विभाजन सार्थक लगता है।

इसी प्रकार से 'आधे--अधूरे' नाटक में पांचो अर्थ--प्रकृतियों का भी प्रयोग हुआ है। नाटक का प्रारम्भ काले सूट वाले व्यक्ति के उद्घाटक अंश से होता है। वास्तव में उद्घाटक अंश भावी घटनाओं को पूर्व--सूचनाओं के साथ ही आधुनिक मानव अनिश्चित व्यक्तित्व को स्पष्ट कर देता है। अतः इस प्रसंग में बीज नामक अर्थ--प्रकृति मुख सन्धि और आरम्भ नामक कार्यावस्था का प्रयोग हुआ है। कथावस्तु वैसे दो प्रकार की होती है--आधिकारिक और प्रासंगिक कथा। महेन्द्रनाथ--सावित्री की कथा ही आधिकारिक कथा के अन्तर्गत आती है। बिन्नी--मनोज प्रसंग को प्रकरी के अन्तर्गत रखा जा सकता है। लेकिन पूर नाटक में कहीं भी पताका के दर्शन नहीं होते हैं। प्रत्याशा, कार्यावस्था और गर्भ सन्धि उस स्थल पर दिखाई देते हैं। जहाँ महेन्द्रनाथ अपनी स्थिति को खड़े से टुकड़े के समकक्ष मानता है। नियतप्ति और विमर्श सन्धि उस स्थल पर दिखाई देते हैं जहाँ सावित्री घर के विकास हेतु संघर्ष करती है और कठोर परिश्रम करके विषम स्थिति से निपटने के लिए तत्पर है। नाटक के अन्तिम भाग में जुनेज़ा--सावित्री--महेन्द्रनाथ के चरित्र को परत--दर--परत उधेड़ता है, में निर्वहरण सन्धि और फलागम के दर्शन होते हैं।

इसके अतिरिक्त 'आधे--अधूरे' नाटक के कथानक का आदि--मध्य और अन्त अत्यन्त स्पष्ट है। नाटककार ने प्रारम्भ में काले सूट वाले व्यक्ति से उद्घाटन अंश प्रस्तुत करवाया है और फिर प्रेक्षक के समक्ष महेन्द्रनाथ परिवार की विघटनशीलता का अंकन शुरू होता है।

सिंघानियाँ के फूहड़ व्यवहार को लेकर अशोक--सावित्री में तकरार, सावित्री का जगमोहन के साथ घर छोड़ कर नया जीवन अंश से प्रारंभ करने हेतु जाना और बिन्नी--किन्नी का तकरार युक्त प्रसंग नाटक के मध्य को सुस्पष्ट करते हैं। इसके पश्चात कथा तीव्रता से अन्त की ओर अग्रसर होती है। जुनेज़ा का महेन्द्रनाथ को सावित्री से मुक्ति दिलवाने हेतु आगमन, सावित्री का जगमोहन द्वारा इन्कार करने पर पराजित होकर उदास मन से घर लौटना तथा सावित्री जुनेज़ा के लम्बे--लम्बे, एक दूसरे के चरित्र को प्रकाशित करते संवाद तथा महेन्द्रनाथ का लड़खड़ाते हुए घर में प्रवेश करने से नाटक की कथा का अन्त होता है।

**डॉ. जयदेव तनेजा** ने नाटक के कथानक के सम्बन्ध में कहा है--

"इस नाटक का कथानक महान् और विराट् घटनाओं से रहित है। पात्रों की संवेदनाओं की आपसी टकराहट और उनके आन्तरिक विस्फोट से ही नाटक आगे बढ़ता है।

नाटक जिस बिन्दु से चलता है अन्त में उसी बिन्दु पर जा पहुँचता है, जहाँ काले सूट वाला आदमी सिगार से राख झाड़ते हुए अन्तर्मुख भाव से कहता है--"फिर एक बार, फिर से वही शुरुआत।"

कथ्य और शिल्प की यह अन्विति अभूतपूर्व और अद्भुत है। इस घोर यथार्थवादी नाटक के साथ 'प्रस्तावना' और एक ही अभिनेता द्वारा विविध पुरुष पात्रों की भूमिकाएँ निभाने वाली अयथार्थवादी रंग--युक्ति का प्रयोग करके राकेश ने संरचना से बड़े साहस का परिचय दिया है।

अतः स्पष्ट है कि इस नाटक में किसी काल्पनिक अथवा ऐतिहासिक वस्तुओं को प्रेक्षकों के सामने नहीं रखा गया है। अपितु भोगे हुए यथार्थ की ईमानदारी के साथ अभिव्यक्ति हुई है। आज महानगरों के मध्यवर्गीय परिवार किस हद तक विघटनशील होकर टूटते–बिखरते जा रहे हैं, यह इस नाटक में यथार्थ रूप से निरूपित हुआ है। इसकी कथावस्तु में न तो प्रसाद के नाटकों की विस्तृतता एवं जटिलता है, न ही भारी भरकम संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग, बल्कि संक्षिप्त, सरल एवं रोचक कथावस्तु फिल्मी शैली में प्रयोग की गई है। जिससे दर्शक शीघ्र ही इसकी कथावस्तु से तादात्म्य कर लेते हैं। सारांश यह है कि प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त, सरल, हृदयग्राही, रोचक एवं अभिनव प्रयोगशीलता का आग्रह लिए हुए है।

# 2

# आधे-अधूरे : प्रतिपाद्य (उद्देश्य)

कोई भी रचनाकार अपनी रचना का प्रणयन किसी उद्देश्य की पूर्णता के लिए ही करता है। राकेश जी नई पीढ़ी के रचनाकार हैं। इन्होंने आधुनिक जीवन की यांत्रिकता और विघटनशील मूल्यों का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया है। उन पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद, नीत्से के व्यक्तिवाद और किर्केगार्द, कामू, सार्त्र आदि के अस्तित्ववाद का व्यापक प्रभाव है। इसलिए उनके नाटकों में व्यक्तिवादिता, रोमांस एवं सामाजिक यथार्थ का निरूपण हुआ है।

'आधे–अधूरे' नाटक हमारे समाज—विशेष रूप से नागर समाज के जीवन की विसंगतियों, विडम्बनात्मक स्थितियों के सघन बिन्दुओं, पात्रों की मनःस्थितियों एवं संवेदनाओं की टकराहट के आन्तरिक विस्फोट को नाटकीय रूप से रेखांकित करता है। इस नाटक में राकेश जी ने आधुनिक युगीन सांस्कृतिक–पारिवारिक विघटन, अजीब कशमकश, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईर्ष्या और आवारगी आदि के संकट को रेखांकित किया है।

'आधे–अधूरे' वर्तमान समाज के ऐसे सभी मनुष्यों की नाटकीय जिन्दगी का प्रामाणिक दस्तावेज है जो अर्थलिप्सा, भौतिकता और काल्पनिक अहं की मृग–मरीचिका में फँस कर पारिवारिक एवं आध्यात्मिक शांति को पूरी तरह खो देते हैं। आत्मिक सम्बन्धों को भूलकर मनुष्य सांसारिक अर्थ के चक्कर में अपने जीवन के मूल अर्थ को स्वीकार आधी–अधूरी जिन्दगी जीने के लिए विवश है। जीवन के हर क्षेत्र में अधूरेपन की भावना से ग्रस्त तथा पीड़ित है। मोहन राकेश के शब्दों में इस नाटक में—"अधूरे का मतलब इनकंम्लीट और आधे का मतलब हाफ है। यह आज के सामान्य वर्ग से सम्बन्धित है जो अपने में 'आधा' भी है और 'अधूरा' भी। यह इस शहर के एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है जिसे परिस्थितियाँ निचले वर्ग की ओर धकेलती जा रही हैं। उनके जोश, पराजय, इच्छाएँ, संघर्ष और इसके साथ–साथ स्थिति का हाथ से फिसलते जाना - मैंने सब कुछ इसमें दिखाने की कोशिश की है।"

विडम्बना यह है कि स्वयं आधे–अधूरे होने के बावजूद हम दूसरे के अधूरेपन को बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं। और काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटककर अपनी और दूसरों की जन्दगी नरक बना देते हैं। इस नाटक में मध्यवर्गीय शहरी परिवार का मुखिया महेन्द्रनाथ पराश्रित एवं निठल्ला हो गया है। फलतः उसकी पत्नी सावित्री नौकरी करके परिवार का पालन–पोषण कर रही है। परन्तु वह धन, ऐश्वर्य और काल्पनिक पूरेपन की तलाश में मर्यादा की चौखटे लाँघकर आवारा (फलर्ट) हो गई है। बड़े–बड़े नामधारियों, पदधारियों के सम्पर्क में आती है। इन नामधारी और पदधारी पुरुषों से एक तरफ तो सेक्स की पूर्ति चाहती है और दूसरी तरफ अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार। सावित्री की यह आवारगी एक अच्छे–खासे परिवार को विघटित कर देती है। निठल्लेपन, बेकारी के कारण परिवार का मुखिया अपने–आपको पंगु अनुभव करता है, लड़का अशोक अपनी माँ के पुरुष–मित्रों एवं अपनी बेरोजगारी से क्षुब्ध है। बड़ी लड़की तो घर के दमघोटू वातावरण से बचने के लिए प्रेमी मनोज के संग फरार हो जाती है। जीवन के हर क्षेत्र में हारा पुरुष महेन्द्रनाथ अपना प्रतिकार स्त्री से लेता है। बिन्नी मध्यवर्गीय परिवार की इस इस भयावह स्थिति को व्यक्त करते हुए कहती है—

"मैं यहाँ थी, तो मुझे कई बार लगता था कि मैं एक घर में नहीं, चिड़िया–घर के एक पिंजरे में रहती हूँ...आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या–क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार–तार कर देना—खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर—मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने–कितने भयावह दृश्य इस घर में देखें है मैंने। कोई भी बाहर का आदमी उन सबको देखता–जानता, तो यही कहता कि क्यों नहीं बहुत पहले ही ये लोग...।"

आधुनिक युग के अधिकांश मध्यवर्गीय परिवारों को इस यंत्रणा में पिसना पड़ता है।

इस नाटक में स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों में आई उदासीनता का निरूपण यथार्थ के धरातल पर हुआ है। इन सम्बन्धों में अब

साथ–साथ रहने की और सामाजिक सम्बन्धों को ढोने की कटुता ही शेष है। गृहपति की मर्यादा से वंचित महेन्द्रनाथ अपने व्यंग्यों से स्त्री को छेदता रहता है। स्त्री के पुरुष मित्रों के घर आने से पहले घर से बाहर निकल पड़ता है। अपनी इस नियति को स्वीकार करने के लिए महेन्द्रनाथ विवश है।

"मैं इस घर में एक रबड़–स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ–बार–बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में? नहीं बता सकता न? मेरे भरोसे तो सब कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड़ सकता है। (लड़के की तरफ इशारा करके) यह आज तक बेकार क्यों घूम रहा है? मेरी वजह से/(बड़ी लड़की की तरफ इशारा) यह बिना बताए एक रात घर से क्यों चली गई थी? मेरी वजह से। (स्त्री के बिल्कुल सामने आकर) और तुम भी...इतने सालों से क्यों चाहती रही हो कि...?...अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, घरघसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।"

महेन्द्रनाथ के इस कथन में जो लाचारी, विवशता, नैराश्य है वह आर्थिक, सामाजिक एवं पारिवारिक स्तर पर एक ऐसे टूटे हुए व्यक्ति का खण्डित प्रतिबिम्ब है जो वर्तमान युग की स्तरीकरण की दौड़ में भागने वाले किसी भी मध्यवर्गीय मनुष्य के चेहरे पर देखी जा सकती हैं

नाटककार ने इस नाटक में यह स्पष्ट किया है कि जब परिवार की आय पर्याप्त थी तो चार सौ रुपए वाले किराए के मकान में महेन्द्रनाथ का परिवार रहता था, टैक्सियों में आना–जाना होता था, बच्चों की कान्वेंट फीसें जाती थीं, दावतें होती थीं, शराब चलती थी, किन्तु इस ऐय्याशी ने उन्हें अपने सामाजिक स्तर से ऐसे धकेल दिया है कि यह मध्यवर्गीय परिवार एकाएक निम्न मध्यवित्तीय परिवार की श्रेणी में आ गया।

सामाजिक स्तरीकरण की यह भूख महेन्द्रनाथ के पूरे परिवार की सुख–शान्ति को लील गई।

नाटककार का उद्देश्य केवल नर–नारी सम्बन्धों का विश्लेषण भर नहीं है। नाटककार ने आज की युवा पीढ़ी (अशोक, बिन्नी) के दिशाहीन आक्रोश, निष्क्रिय जीवन आदि को भी गहरे स्तर में निरूपित किया है। अशोक अपनी कामुक प्रवृत्ति से परिचालित होकर अश्लील तस्वीरें काटता है, सिलाई सेंटर वाली वर्णा के पीछे जूतियाँ चटकता है तो बिन्नी अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ घर से भाग जाती है। उनसे भी कहीं आगे बढ़कर किन्नी जैसी छोटी लड़की के भीतर जमी यौन–उत्सुकता के जरिए नाटककार ने जीवन की विसंगतियों की तरफ संकेत किया है। किन्नी घर के सभी सदस्यों को 'मिट्टी का लौंदा' कहती है।

नाटककार ने स्पष्ट करना चाहा है कि आधुनिक महानगरीय परिवेश में मानवीय असंतोष और कामनाओं की पूर्ति न होने के कारण व्यक्तित्व एवं सम्बन्धों में अधूरापन पैदा होना स्वाभाविक है। इस नाटक में भी महेन्द्रनाथ का परिवार अपनी स्तरीयता की होड़ के कारण विघटन के कगार पर पहुँच गया है। नाटक की नायिका सावित्री अपनी इच्छाओं, असंतोष एवं झूठे अहं के कारण न तो कभी अपने पति के प्रति समर्पित हो पाती है और न ही बच्चों को पर्याप्त मातृत्व दे पाती है। वह सामाजिक, पारिवारिक और नैतिक मूल्यों को ताक पर रखकर क्रमशः शिवजीत, जुनेज़ा, मनोज, सिंघानिया, जगमोहन आदि पुरुषों से अनैतिक सम्बन्ध बनाती है। सावित्री महेन्द्रनाथ से प्रेम विवाह करने के दो साल बाद ही उससे उकता जाती है एवं उसे अधूरा समझने लगती है। उसके बाद वह काल्पनिक पूरेपन की तलाश में चार पुरुषों से सम्बन्ध बना कर भी अकेली, अधूरी अशान्त ही बनी रहती है। पुरुष चार अर्थात जुनेज़ा सावित्री के अन्दर की इस आवारगी का प्रकटन करते हुए कहता है–

"पुरुष चार–"असल बात इतनी ही कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल–दो–साल बाद तुम यही महूसस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिंदगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र, कोई जुनेजा, कोई, शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचती, यही सब महसूस करती। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है–कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहती।"

यहाँ पर पुरुष चार के शब्दों से स्पष्ट है कि इस नाटक में सावित्री और अन्य पात्र अपने अधूरेपन को भरने के लिए विकृत

मूल्यों का दामन पकड़ते है। जिसके कारण उत्पन्न असामंजस्य और कटुता सारे परिवार को बिखेर ही नहीं देती बल्कि एक जहरीले वातवरण का निर्माण भी कर देती है जो पूरे परिवार की तबाही का कारण भी बन जाती है।

**डॉ. नरनारायण राय** इस नाटक के व्यापक उद्देश्य को लक्षित करते हुए कहते हैं–"आधे–अधूरे की रचना के पीछे नाटककार का यह उद्देश्य रहा है कि वह व्यक्तित्व और संबंधों, दोनों के अधूरेपन को उजागर कर सके। इस बात को कहने के लिए नाटककार, ने जिस जीवन स्थिति का चुनाव और निर्माण किया है वह अपने आप में भी कुछ कह जाती है उसे पारिवारिक विघटन की दिशा का चित्रण, बदलते हुए आर्थिक मूल्यों के संदर्भ में सम्बन्धों के बदलते हुए मूल्यों का परीक्षण, परिस्थितियों के समक्ष आदमी की पराजय की नियति का दिग्दर्शन, मानवीय सन्तोष का अधूरापन और कामनाओं की अतृप्ति का अंकन आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की गाथा, महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार की अभावग्रस्तता आदि को कथ्य में समाहित किया है लेकिन मुख्य कथ्य नर–नारी, सम्बन्ध और नियति का हस्तक्षेप तथा इन सबके बीच से उभरने वाले जीवन के अधूरेपन का व्यक्तित्व के अधूरेपन का अहसास कराना वस्तुतः नाटक का मूल कथ्य है।"

कुल मिलाकर यह नाटक स्त्री–पुरुष के लगाव और तनाव, पारिवारिक विघटन तथा मानवीय असन्तोष के अधूरेपन को मूर्त करता है। नाटककार राकेश की सूक्ष्म दृष्टि में मध्यवर्गीय परिवारों में दिन–प्रतिदिन बढ़ती आर्थिक विषमता के सम्भाव्य परिणामों के साथ–साथ सामाजिक सम्बन्धों में आई विक्तता, और शून्यता, प्रेम विवाह के दुष्परिणाम, अतृप्त कामभावना एवं स्तरीकरण की झूठी होड़ के दुष्परिणामों को भी सशक्त ढंग से निरूपित किया है।

# 3

# आधे-अधूरे : आधुनिकता

आधुनिकता एक ऐसी जीवन–दृष्टि है जिसके केन्द्र में वर्तमान काल रहता है। औद्योगीकरण के प्रभाव स्वरूप पुरानी मान्यताएँ एवं सम्बन्ध–सूत्र टूटकर नए सम्बन्ध–सूत्र एवं नई मान्यताएँ निर्मित हो रही हैं। आधुनिक युग की पूँजीवादी प्रणाली में आधुनिकता बदलते अर्थ–सम्बन्धों से उपजी नवीन दृष्टि है। औद्योगिक वैज्ञानिक प्रगति के सकारात्मक प्रभावों के साथ–साथ कुछ नए भ्रष्ट मूल्य भी आधुनिकता का जामा पहनकर समाज में मान्य हो रहे हैं। इन्हीं मूल्यों से सामाजिक एवं वैयक्तिक सम्बन्धों में बिखराव उत्पन्न होता है। अब, एकाकीपन, आत्मपीड़ा, अन्तर्विरोध, अस्तित्व का संकट, निराशा, कुण्ठा, मूल्यहीनता आदि के मूल में आधुनिकता का नकारात्मक पहलू है। अबाध स्वतन्त्रता को नितान्त स्वातन्त्र्य वस्तु मानकर उसे निरपेक्षता की सीमा तक खींच ले जाने मे पहले व्यक्ति सामाजिक सन्दर्भों से करता है और अन्त में अपने व्यक्तित्व के बिखराव, घुटन, टूटन एवं कुण्ठित होने का कारण बनता है।

नाटककार मोहन राकेश के नाटकों पर प्रकृतिवाद, अस्तित्ववाद और यथार्थवाद का प्रभाव है। राकेश जी की अनुभूति में बौद्धिकता की प्रधानता है तथा वैयक्तिक–स्वतन्त्रता, औद्योगीकरण, नगरीकरण, कुण्ठा, तनाव, विद्रोह, अजनबीपन, अमानवीयता, घोर नैराश्य, क्रूरता, विसंगति, अनिश्चय आदि आधुनिक भाव बोधों से युक्त है।

मोहन राकेश इन सभी आधुनिक संकटों से गुजरे हैं और आधुनिकता को सृजनात्मक अभिव्यक्ति दी है। 'आधे–अधूरे' नाटक का सम्पूर्ण परिवेश आधुनिक है। इस नाटक में मध्यवर्गीय पारिवारिक विघटन की गाथा और स्त्री–पुरुष संघर्ष, तनाव का चित्रण चरम सीमा तक हुआ है। इस नाटक के समकालीन परिवेश में आज के बुद्धि वर्ग के कनफ्यूजन और उनके भावात्मक जीवन की असहाय चीख है। पूरे नाटक में सम्बन्धों का विघटन और जुड़े रहने की छटपटाहट आर्थिक विवशता और दोहरेपन, विलगाव और खण्डित होने की प्रक्रिया और नए मूल्यों की खोज आधुनिकता के सन्दर्भ में व्यक्त हुई है।

नाटक में आधुनिकता का बोध उस स्तर पर भी होता है जब बड़ी लड़की अपनी इच्छानुसार घर से भागकर अपने प्रेमी से शादी करती है। शादी के बाद उसे अपने नए घर में भी सब कुछ गलत लगता है। इसका कारण 'हवा' बताया गया है जो बड़ी लड़की और मनोज के बीच से गुजर कर बेचैनी पैदा कर गई है। यह 'हवा' आधुनिक युग की अर्थलिप्सा, ऊँची महत्वाकांक्षाओं की 'हवा' है।

पुरुष दो और स्त्री के संवादों से भी आधुनिकता का बोध होता है। पुरुष की बातों से उसकी भोगलिप्सा, कामुकता आदि बुरी प्रवृत्तियों का प्रकटन जो कि आज के युग के अधिकारी वर्ग की संकीर्ण एवं लोलुप दृष्टि की परिचायक है। पुरुष दो अपनी कामुकता का प्रदर्शन करता हुआ कहता है–

"**पुरुष दो:** अच्छा –अच्छा...हाँ।...ठीक है...देखूँगा मैं। (घड़ी देखकर) अब चलना चाहिए। बहुत समय हो गया। (उठता हुआ) तुम घर पर आओ किसी दिन। बहुत दिनों से नहीं आई।

स्त्री और बड़ी लड़की साथ ही उठ खड़ी होती है।

**स्त्री** : मैं भी सोच रही थी आने के लिए। बेबी से मिलने।

**पुरुष दो** : वह पूछती रहती है, आंटी इतने दिनों से क्यों नहीं आई? बहुत प्यार करती है अपनी आंटियों से। माँ के न होने से बेचारी...।"

परिवार को सुचारु रूप से चलाने के लिए नारी का योगदान होता है। नारी त्याग, ममता, स्नेह, वात्सल्य के रूप से अपने परिवार रूपी वृक्ष को सींचती है। पहले नारी का कार्यक्षेत्र केवल घर की चारदीवारी तक ही सीमित था। नारी ने शिक्षा पाकर अपने कार्यक्षेत्र के दायरे को व्यापक बना दिया। वह रूढ़िवादी एवं परंपरावादी परिवेश से मुक्त होकर आधुनिक चेतना पाकर एक

ऐसी विचारधारा की ओर उन्मुख हुई जो पूर्व स्थिति से भिन्न है। आधुनिकता की इस नई चेतना ने ही उसके समक्ष कुछ असंगतियों को जन्म दिया जो बाद में समस्या बन गई। यह नाटक नारी की उन समस्याओं को उजागर करता है। यह नवान बच्चों की एक ऐसी माँ की कथा है जिसको उसकी खोखली महत्त्वाकांक्षा के असन्तोष, आक्रोश असंबद्धता, अजनबीपन (अपने पति और बच्चों के प्रति) और अकेलेपन की मनहूसियत ने चारों ओर से घेर रखा है। जीवन के प्रति उसकी इस असंतुष्टि अतृप्ति का कारण है, उसके कुत्सित और भ्रमित जीवन मूल्य।

'आधे–अधूरे' की सावित्री समर्पणशीला, कर्त्तव्यवेदी पर मर मिटने वाली नारी नहीं है। वह व्यक्तिगत सुख को महत्त्व देती है। वह दुखी है क्योंकि महेन्द्रनाथ से विवाह करके वह यह अपेक्षा रखती है कि पति उसके अधूरेपन को पूर्णता प्रदान करे इसके लिए जरूरी है कि पति पूर्ण हो। जुनेज़ा जब सावित्री को धिक्कारता है कि महेन्द्रनाथ में हीन भावना आ गई है, उसके लिए सावित्री जिम्मेदार है, महेन्द्रनाथ की बीमारी के लिए भी वह जिम्मेदार है, तब वह भड़क जाती है, कहती है : "यूँ तो हर कोई भी एक आदमी की तरह चलता–फिरता, बात करता है, वह आदमी ही होता है, पर असल में आदमी होने के लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक मादा, अपनी एक शख्सियत हो।

सावित्री एक पूरे आदमी की तलाश में एक, दो, तीन और चार पुरुषों को आजमा चुकी है। कुछ और नामों का भी नाटक में संकेत दिया गया है जिनको वह आजमा चुकी है। इन सबको उसने आधा–अधूरा पाया है, एक–सा पाया है। सावित्री के इस कथन में कि "सब–के–सब एक–से हैं, अलग–अलग मुखौटे पर चेहरा?...सबका एक ही।" और पुरुष चार के इस जवाब में आधुनिकता बोध गहराने लगता है—

जुनेज़ा सारी स्थिति का जायजा लेने के बाद कहता है–"इसकी जगह आज अगर जुनेज़ा, जगमोहन, शिवजीत या कोई और भी होता तब भी वह इतनी ही असन्तुष्ट इतनी ही अपूर्ण रहती जितनी अब है। क्योंकि उसने जीवन को किन्हीं निश्चित अर्थों से जीने की दृष्टि नहीं पाई है। वह कहता है कि उसके लिए जीने का मतलब है, 'कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर, कितना कुछ एक साथ ओढ़कर' जीना। 'इतना कुछ तुम्हें एकसाथ न मिल पाता और इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती तुम इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहती।"

नाटककार ने जुनेज़ा के इस कथन से स्पष्ट किया है कि आधुनिकता के नाम पर आज की नारी अपने परम्परागत रूप को त्यागकर अपनी बढ़ती महत्त्वाकांक्षाओं के लिए अपने 'व्यक्तित्व' के ह्रास एवं पारिवारिक विघटन का कारण बनती है।

आधुनिक युग से नारी घरेलू दाम्पत्य जीवन की जिम्मेवारी के साथ–साथ नौकरी करके अर्थोपार्जन भी कर रही है। इस दोहरे दायित्व के निर्वाह में वह अपने मशीनीकरण का विद्रोह भी करती है। सावित्री भी अपने परिवार का भरण–पोषण करने के लिए नौकरी करती है तथा घर आने पर सारे सामान को अव्यवस्थित देखकर क्षुब्ध हो जाती है। वह क्षोभ में लड़के से कहती है, "–यहाँ सब लोग समझते क्या हैं, मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस–पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती है? मगर किसी के मन में जरा भी ख्याल नहीं है इस चीज के लिए कि कैसे मैं...।" जो स्त्री माँ बनकर, पत्नी बनकर गृहस्थी का 'घर' बनाए रखती है, उसे यदि सारे सदस्य मशीन समझें तो आधुनिक परिवेश की नारी विद्रोह करती है।

महेन्द्रनाथ का बिखरा हुआ व्यक्तित्व आज के मानव के व्यक्तित्व का बोध कराता है। व्यापार में घाटा खाया हुआ, वह एक बेकार–फालतू पति बनकर रह गया है। अब उसे पत्नी की जली–कटी सुननी पड़ती है जिससे उसका स्वाभिमान आहत होता हैं। उसमें अपनी निरर्थकता, अपनी अस्मिता का ज्ञान जागता है, क्योंकि इस घर में उसे कोई कुछ नहीं समझता। उसे धिक्कार, अनादर और अपमान सहना पड़ता है। वह फालतू आदमी है। वह 'इस घर में रबर स्टैम्प भी नहीं', रबड़ का एक टुकड़ा मात्र है–बार–बार घिसा जानेवाला।' यह व्यक्तित्व के विघटन और अस्मिता का प्रश्न आधुनिक स्थितियों में अस्तित्ववाद के कुछ पहलुओं को प्रकाशित करता है।

लड़के और लड़की बिन्नी की बातों से भी बहुत बार अस्वीकार और खीझ के माध्यम से आधुनिकता–बोध उजागर होने लगता है। लड़के की माँ को यह कहना है कि बुलाती ही क्यों हो ऐसे लोगों को जिनके आने से हम जितने छोटे हैं उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।' परोक्ष रूप से इस बात की पुष्टि करता है कि आधुनिक युग में व्यक्ति के व्यक्तित्व का अस्तित्व रहना जरूरी है अन्यथा उसमें व्यर्थता का एहसास जगता है और यही व्यर्थता का एहसास आधुनिकता की एक प्रवृत्ति है और नाटक के अन्तिम पन्नों पर बिन्नी के ये शब्द कि 'मिट्टी के लोदें–सबके सब मिट्टी के लोदें' एब्सर्ड नाट्य–परम्परा के आधुनिक भाव बोधों जैसे लगते हैं।

बड़ी लड़की का घर से भाग जाना, परन्तु वहाँ पर चैन न मिलना आधुनिक यान्त्रिक जीवन की व्यापक बेचैनी का सूचक है।

इसने अपना पति अपने–आप चुना है, फिर भी वह वहाँ पर खुश नहीं। वह शादी से पहले समझती थी कि मनोज को उसने जान लिया है, परन्तु 'अब वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था'। उसका यह कथन कि 'दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहे, एक हवा में साँस लें उतना ही ज्यादा एक–दूसरे से अपने आपको अजनबी महसूस करे।' एलियेनेशन, कटाव की स्थिति को उभारता है ,जो आज के जीवन में घर कर गई है। आज हर व्यक्ति एक–दूसरे से तो क्या खुद से भी अजनबीपन महसूस करता है। वह अपने–आपको परिवेश, घर–परिवार–सबसे कटा हुआ महसूस करता है।

डॉ. **इन्द्रनाथ मदान** के अनुसार, "माँ के घर को बेटी के घर में दोहराया जा रहा है।" परन्तु 'इस टूटते–बिखरते परिवेश में आधुनिकता का बोध इतना मानव की नियति के स्तर पर नहीं है जितना उसकी स्थिति के स्तर पर है और इतना जितना इसलिए कि एक स्तर को दूसरे स्तर से अलगाया नहीं जा सकता।' यहाँ (लड़की के घर में) भी 'अलगाव–अजनबीपन' की स्थिति है।

नाटककार ने अपने रंग संकेतों एवं मंच सज्जा में भी आधुनिक भावबोधों की अभिव्यक्ति की है। पारिवारिक विघटन का एक जीवन दृश्य नाटककार ने दिखलाया है, मंच पर–"दो अलग–अलग प्रकाश–वृत्तों में लड़का और बड़ी लड़की। लड़का सोफे पर औंधा लेट कर टाँगें हिलाता सामने 'पेशेंस' के पत्ते फैलाए। बड़ी लड़की पढ़ने की मेज पर प्लेट रखे स्लाइसों पर मक्खन लगाती।..पास में टिन कटर और 'चीज' का एक डिब्बा। पूरा प्रकाश होने पर कमरे में वह बिखराव नजर आता है जो एक दिन ठीक से देख–रेख न होने से आ सकता है...यहाँ वहाँ चाय की प्यालियाँ...अस्त–व्यस्त चीजें। कमरे की यह अस्तव्यस्तता, बिखरापन, देख–रेख की कमी घर को संचालित करने वाली इकाइयों के बिखराव की प्रतिलिपि है। सब एक–दूसरे से विमुख होकर अपनी जिन्दगी जी रहे हैं। यहाँ इन सब से आधुनिक युग की विसंगतियों ही प्रकट होती हैं।

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि 'आधे–अधूरे' नाटक की स्थितियों द्वारा नाटककार ने जमाने की सही नब्ज पर अँगुली रखी है जो सामयिक परिवेश में आधुनिकबोध को परखने में सक्षम है। नाटक बदलते जीवन–मूल्यों की कथा कहता है।

'आधे–अधूरे' में आधुनिक महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन का विराट अंकन है। आत्म–जिज्ञासा, आत्म–सन्तुष्टि, व्यक्तिगत ईमानदारी, विलेषणात्मिका दृष्टि, जीवन ढोने का अवसाद एवं क्लान्ति, जीवनचर्या में अवकाश की कमी। ये सब आधुनिकता की विशिष्ट पहचानें हैं। 'आधे–अधूरे' का प्रत्येक पात्र इन विशेषताओं को लिए हुए है। आधुनिकता व्यक्तित्व के स्वतन्त्र अस्तित्व में विश्वास रखती है। प्रस्तुत नाटक के परिवार के सभी पात्र अपने–अपने मन में अपनी–अपनी एक प्रतिमा बनाए बैठे हैं, जिसको वे किसी दूसरे की मानसिक प्रतिमा के लिए समर्पित नहीं कर सकते। प्रत्येक के लिए निजी इच्छा, निजी जीवन दृष्टि, निजी धारणाएँ, निजी जीवन मूल्य सबसे बढ़कर है। "वैवाहिक जीवन की मध्यवर्गीय विडम्बनाओं के कारण परिवार का प्रत्येक व्यक्ति आधा–अधूरा रहकर अपने–अपने ढंग का संत्रास भोगता है। प्रत्येक पात्र की नियति वृत्तात्मक है। सभी लोग पारस्परिक आकर्षण–विकर्षण से निकट दूर आते हुए बाहर जाकर भी वापस लौटने की नियति से बाध्य हैं।"

प्रस्तुत कृति में समकालीन जीवन की समस्त व्यक्तिगत विसंगतियाँ संवेदना के स्तर पर जीवित और अभिव्यक्त होती हैं। मुख्य है एक परिवार को आधार बनाकर जीवन में तनाव की स्थिति को रेखांकित करना और यह दिखाना कि आज का हर व्यक्ति किस प्रकार विभिन्न स्तर पर तनाव झेलने के लिए विवश है। इसीलिए ओम शिवपुरी ने इसे "समकालीन जिन्दगी का पहला सार्थक नाटक" माना है।

# 4

# आधे-अधूरे : युग-बोध

प्रत्येक साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होने के कारण अपने समसामयिक परिवेश से अवश्य प्रभावित होता है। सजग साहित्यकार अपने युग के चारों तरफ के वातावरण, घटनाओं, समस्याओं आदि को सचेतन दृष्टि से देख--परखकर अपने युग का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है।

युगीन समस्याएँ एवं घटनाक्रम साहित्यकार की संवेदना से सम्पृक्त होकर साहित्य में अवतरित होती है। अतः सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ही साहित्यकार की संवेदना के निर्माण, परिवर्तन एवं गति की सूचक होती हैं। मोहन राकेश कालीन परिवेश में विभिन्न परिस्थितियों के उलटफेर, बदलते जीवन मूल्यों और वर्तमान जीवन की जटिल जीवन स्थितियाँ युग–पृष्ठभूमि बनकर साहित्य में अवतरित हुई हैं। अतः राकेश जी के सम्पूर्ण नाट्य साहित्य पर इन युगीन परिस्थितियों का पर्याप्त प्रभाव है। मोहन राकेश उन नाटककारों में से हैं जिन्होंने अपने परिवेश से प्रभावित होकर विभिन्न विसंगतियों के चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए अपने नाटकों की रचना की है।

'आधे–अधूरे' नाटक का सृजन स्रोत भी उनका युग परिवेश एवं निजी जीवन ही है। चिरन्तन काल स ही मानव परिस्थितियों से लड़ता आकर उन्हें नव्य परिवेश एवं आयाम प्रदान करता आ रहा है। परन्तु आज की यान्त्रिक मानसिकता, भीतर–बाहर के दबावों, आर्थिक वैषम्यों एवं यौनाचारों की स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति ने परिवर्तन ला सकने की क्षमता पर एक प्रश्न–चिह्न –सा लगा दिया है। तभी तो आज का मानव अपने ही आधे–अधूरेपन से संत्रस्त, अपने में ही दब–घुटकर उन्हीं परिस्थितियों में बने रहने के लिए विवश हो जाता है कि जिन्हें उसकी मानसिकता 'अयाचित' स्वीकार करती है। तभी तो वह वितृष्णा से भरकर भी, बार–बार 'नये अर्थ' के लिए जाकर भी जहाँ से शुरुआत करता है, वहीं लौट आने को विवश हो जाता है।

मोहन राकेश की नाट्य प्रतिभा अपने आस–पास बिखरे परिवेश में नई रचना (धर्मिता) की तलाश करती है। 'आधे–अधूरे' नाटक अपने समकालीनता के प्रतिबद्ध है। इसलिए वह अपने परिवेश के साथ व्यक्ति को आँक रहा है। जिसमें उसकी निगाह इतिहास के परिवेश से हटकर, आज के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले सामाजिक परिवेश पर गई है। मध्य वित्तीय स्तर से ढहकर निम्न मध्य वित्तीय स्तर पर आया हुआ एक परिवार उसका केन्द्र–बिन्दु है।

युग बोध की दृष्टि से इस नाटक में स्पष्ट किया गया है कि आज मानव स्वयं को ऐसी परिस्थितियों में जकड़ा हुआ पाता है जो उसे आत्मकेन्द्रित तथा आत्मरत बना देती हैं। जिसके कारण उसका सम्बन्ध समाज तथा बाहरी जीवन से कट जाता है या शिथिल पड़ जाता है। अपने इस यथार्थ में उसको अनेक स्वरूपों में प्रस्तुत होना अनिवार्य हो गया है। वह कभी विद्रोही है, तो कभी मात्र निषेधात्मक चीत्कार या आक्रोश है, कभी अजनबीपन का भटकाव है तो कभी सचेत सक्रिय एवं ठोस यथार्थ की पहचान है, कभी वर्जनाओं से प्राप्त असहनीय नैराश्य में भटकाव की असीमता एवं निरर्थकता को ढोने वाला अभिशप्त है। अतः यह पूरा नाटक अपने परिवेश की उपज है।

इस नाटक का नायक महेन्द्रनाथ एक नाकारा निकम्मे और लिजलिजे किस्म का आत्मविश्वासहीन पुरुष है, जो अपने नाकारेपन के एहसास से छटपटाता है, किन्तु आर्थिक रूप से अपनी स्त्री की कमाई पर आश्रित रहने के कारण दयनीय स्थिति में जी रहा है। एक स्त्री है, जो अपने इस निकम्मे पति के प्रति खीझ से भरी घर की टूटती–बिखरती जिन्दगी से ऊब कर 'एक पूरे आदमी' की तलाश में इधर–उधर भागती है। वह चाहती है कि "असल आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक मादा, अपनी शख्सियत हो?" इसी मादे और शख्सियतवाले आदमी की तलाश में वह अधूरे आदमियों से टकरा–टकरा कर लौटती है और अपनी खीझ में चीखती–चिल्लाती, तार–तार होती हुई उसी लिजलिजे आदमी के साथ जिन्दगी जीने के लिए मजबूर होती है। घर में रोज–रोज की यह चीख घर की बड़ी लड़की और लड़के तथा छोटी लड़की पर अपना प्रभाव डालती है। बड़ी लड़की किसी के साथ भाग जाती है, जो बाद में पता चलता है कि उसकी माँ का ही एक

प्रेमी था। लड़का। आवारा और धरीहीन निकल जाता है और "एलिजाबेथ टेलर, आड्रे हेपबर्न.. शर्लेमैम्लेन...जनाब जिन्दगी काट रहे हैं इन औरतों के साथ।" तेरह वर्ष की अवस्था की छोटी लड़की उद्धत, अशिष्ट और विद्रोह की आग में लिपटी इसी परिवेश के अनुसरण में चीखट हो रही है। देखने में यह कहानी जितनी सीधी लग रही है परन्तु इसमें रोजमर्रा के दिखाई देने वाले पात्रों के माध्यम से मध्य वित्तीय परिवार की टूटती हुई कड़ियाँ और ढहते हुए मूल्यों का खाका पेश किया है। जिन्हें देखकर लगता है इस नाटक के पात्रों में हममें से कोई भी हो सकता है। इसे महज एक साधारण परिवार की त्रासदी कहकर टाला जा सकना सम्भव नहीं है। यह एक आईना है जो अपने–आपसे अपने आस–पास के जीवन से साक्षात्कार कराता है। नाटक के अन्दर भी स्वीकारोक्ति है। "विभाजित होकर भी मैं किसी–न–किसी अंश में आपमें से हर एक व्यक्ति हूँ"

आजादी के बाद की बदली हुई परिस्थितियों में सबसे भारी बदलाव आया–स्त्रियों की हैसियत में। इस परिवर्तन से प्रभावित होने वाला वर्ग था देश का सबसे बड़ा वर्ग यानी मध्यवर्ग। जहाँ धर्म और नैतिकता के बन्धन सबसे ज्यादा थे। इसलिए प्रतिक्रियाएँ और विस्फोट भी सबसे ज्यादा इसी दायरे में हुए। सावित्री जैसी एक स्त्री अगर नौकरी करके अपने परिवार को पुरुष की तरह चलाने लगती है तो उसके पारिवारिक परिवेश को हर कोने से सर्वाधिक प्रहार झेलने होते है। सावित्री चूँकि आधुनिक महत्त्वाकांक्षिणी नारी है इसलिए सभी भौतिक सुख–सुविधाओं का उपयोग करना चाहती है। चूँकि महेन्द्रनाथ उसकी इन इच्छाओं की पूर्ति करने में असमर्थ है इसलिए वह स्वयं घर से बाहर निकल पड़ती है। वह जीविकोपार्जन के लिए नौकरी करती है और घर के बाहर के संसार से परिचित होने के उपरान्त विपक्षगामी हो जाती है। उसे लगता है कि उसका पति आधा–अधूरा है इसलिए वह अपने अधूरेपन को पूर्ण करने के प्रयत्न में अन्य लोगों के सम्पर्क में आती है। अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह धन और वैभव के पीछे भागती है। आवारा होती चली जाती है। वह बड़े–बड़े नामधारियों के सम्पर्क में आती है। क्योंकि उसे व्यक्ति नहीं उसे पद, वैभव और सामाजिक प्रतिष्ठा से प्यार है। सावित्री की यह धन की पिपासा, एक अच्छे–खासे परिवार को दीमक की तरह चाट जाती है। घर के अन्य सदस्य भी वर्तमान युग के प्रभाव से युक्त दिखाई देते हैं जिसमें मनुष्य अपने 'स्व' और आत्मकेन्द्रित सोच के कारण अजनबीपन, घुटन, कुण्ठा, संत्रास आदि से पीड़ित है। राकेश जी ने आधुनिक युग की युवा पीढ़ी की उच्छंखलता को भी निरूपित किया है।

बिन्नी–अशोक इस घर के फूहड़ वातावरण एवं माता–पिता के रिक्त, तिक्त, शून्य सम्बन्धों से अछूत नहीं रह पाते और बिन्नी अपनी प्रौढ़ा माँ के प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है। लेकिन माता–पिता के संस्कारों के कारण ही उसका वैवाहिक जीवन भी सुखमय नहीं है। अशोक सारा दिन पिता की भाँति बेकार–बेगार रहकर अभिनेत्रियों की अश्लील तस्वीरें काटता रहता है। वर्णा उद्योग सैंटर वाली के पीछे जूतियाँ चटखता रहता है। किन्नी अपनी उम्र से अधिक परिपक्व हो गई है और यौन–सम्बन्धों में रस लेने लगती है। किन्नी घर के सभी सदस्यों को 'मिट्टी का लौंदा' कहती है। इसके साथ–साथ आधुनिक युग की पूँजीवादी व्यवस्था में पिसते निम्न मध्यम वित्तीय परिवार की अर्थाभाव की समस्या को भी नाटककार ने इस परिवार के माध्यम से चित्रित किया है।

महेन्द्रनाथ–सावित्री का यह परिवार पूर्व में अत्यन्त सम्पन्न और समृद्ध परिवार था तथा व्यापार के घाटे के कारण और ऊल–जलूल खर्चों के कारण अब आर्थिक संकट की दलदल में फँसा हुआ है। लेकिन नायिका सावित्री अपनी इच्छाओं पर तुषारापात होते देखकर परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए परिवार के स्तर को विकसित करने के लिए अनेक अमीर पुरुषों से सम्पर्क बनाती है। एक ओर तो वह इसमें सैक्स की पूर्ति करती है तथा दूसरी तरफ अर्थार्जन।

इस नाटक में महानगरीय परिवेश की सफल अभिव्यक्ति को लक्षित करते हुए **डॉ. प्रतिभा अग्रवाल** का कहना है–"महानगरीय विशेषकर दिल्ली का जीवन जीने वाले मध्यवर्गीय आधुनिक परिवार की परिस्थितियों, सम्बन्धों, आपसी मनमुटाव, घुटन, त्रासदी आदि का ऐसा सशक्त चित्रण सम्भवतः अन्य किसी भारतीय नाटक में नहीं है।" स्त्री–पुरुष के एक–दूसरे को उधेड़ते, नोचते–काटते स्नेह रहित सम्बन्ध, बालकों की बदजुबानी–अशिष्टता–अखण्डता और माता–पिता के प्रति आदर–श्रद्धा का अभाव, पारिवारिक विघटन–टूटन–कुण्ठा आदि को उजागर करता यह नाटक सामाजिक दशाओं का दस्तावेज बन गया है।

नाटककार मोहन राकेश 'आधे–अधूरे' में आधुनिक युग में प्रचलित प्रेम–विवाह की समस्या को भी उजागर करना चाहता है। महेन्द्र–सावित्री, बिन्नी–मनोज के माध्यम से नाटककार प्रेम–विवाह की असफलता की ओर इशारा करना चाहता है। विवाह से पूर्व सावित्री के जुनेजा, जगमोहन और शिवजीत आदि से सम्बन्ध थे लेकिन बाद में महेन्द्रनाथ का प्रेम–व्यापार विवाह में परिणत हो गया लेकिन उनका यह प्रेम–विवाह सफलता के सोपानों पर नहीं चढ़ सका।

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि इस नाटक के माध्यम से मोहन राकेश ने आज के युग बोध को ही उजागर करना

चाहा है। 'आधे–अधूरे' आज की इस उबाऊ–कुढ़नशील जिन्दगी का ही आलेख है। एक टूटता हुआ परिवार, एक मध्यवित्तीय से निम्न मध्यवित्तीय घर, किस प्रकार तनाव–खीझ, तनातनी, लाचारी और विवशता में जीता है–यह सामयिक बोध से ही जुड़ा प्रश्न है। पति–पत्नी का विवाहोपरान्त कुछ सालों में ही ऊबकर एक–दूसरे से छुटकारा पाने की कोशिश, उनकी बात–बात में व्यंग्य और विक्षोभ, विवाह की अनावश्यक आवश्यकता और गलत चुनाव–ये सब युगीन विडम्बना को उभारते हैं।

आज रसहीन और अनिश्चित जिन्दगी की यथार्थपरक अभिव्यक्ति करने वाले नाटक में नाटककार ने अपने युग के जीवन की विसंगतियों को पूरी तल्खी के साथ व्यक्त किया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् मध्यवर्ग में आर्थिक विषमताओं ने क्रमशः पारिवारिक बिखराव, मानसिक तनाव और नैतिक पतन को बढ़ावा दिया है। नाटककार राकेश ने इस नाटक में आज की संत्रासपूर्ण परिस्थितियों की कटु सम्भावनाओं का संकेत दिया है।

**डॉ. जयदेव तनेजा** मोहन राकेश की परिवेश जन्य सजगता को लक्षित करते हुए लिखते हैं–

"मोहन राकेश ने यथार्थवादी नाटकों की रचना की है उनके नाटकों का परिवेश चाहे कोई भी हो, परन्तु उसमें संघर्षरत–छटपटाता हुआ 'आदमी' आज का ही है।"

# 5

# आधे-अधूरे : प्रयोगधर्मिता

'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' दो ऐतिहासिक पौराणिक कथानक पर आधारित नाटकों के पश्चात् 'आधे–अधूरे' राकेश जी का तीसरा नाटक है। राकेश जी का समस्त साहित्य नए भावबोधों की अभिव्यक्ति करता हुआ अपने पार्थक्य प्रभाव की सृष्टि करता है। प्रथम दो नाटकों में नाटककार ने अतीत की कथा को आधार बनाकर समकालीन जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत किया परन्तु 'आधे–अधूरे' नाटक में राकेश जी ने प्रयोगधर्मिता के नये आयाम प्रस्तुत किए है। ऐतिहासिक कथानक लेने पर उनकी रचनात्मक शक्ति का अधिकांश अतीताश्रित वातावरण और परिवेश को बनाए रखने में खर्च होता रहा। अतः प्रयोगधर्मी नाटककार ने इस नाटक में अपनी अभिव्यक्ति की सुविधा के लिए ऐतिहासिकता का परिवेश छोड़कर समसामयिकता से सीधा साक्षातकार किया है।

'अंधायुग' की तरह यह नाटक भी आधुनिक हिन्दी नाटकों में नई प्रवृत्तियों का अग्रदूत माना जा सकता है। इसके द्वारा हिन्दी नाटक में महानगरों के परिवेश में मध्यवित्त परिवार के बिखराव और विसंगति के चित्रण की परंपरा प्रचलित हुई। इसमें राकेश जी ने 'आषाढ़ का एक दिन' भावुकता से उबरते हुए विसंगतियों को अधिकाधिक धारदार ढंग से चित्रित किया है। इसलिए यह नाटक समकालीन जीवन की विसंगतियों के संदर्भ में आधे–अधूरे व्यक्तित्व की पहचान और उसकी पूर्णता की खोज को और आगे तक ले जाता है। इस प्रयोगधर्मी विकास–यात्रा को. **इन्द्रनाथ मदान** ने इस प्रकार रेखांकित किया है" 'लहरों के राजहंस' में आधुनिक मानव की नियति की खोज है। नंद और सुन्दरी एक ऐसे बिन्दु पर पहुच चुके हैं कि इनका एक दूसरे से अलग होना लाजमी हो गया है। नाटककार के सामने सबसे बड़ी समस्या इनको अलगाने की है। इसलिए कहना पड़ता है कि नाटक का मूल उद्देश्य घर की खोज में व्यक्तित्व की खोज है और व्यक्तित्व की खोज में घर की खोज। घर का मतलब उसकी दीवारों और छतों से नहीं है। कालिदास मल्लिका को छोड़कर चले जाने के लिए विवश है और 'आधे–अधूरे' का नायक टूटे घर में लौटने पर लाचार है। 'आषाढ़ का एक दिन' में अलग होने का अंदाज रोमांटिक है, 'लहरों के राजहंस' में यह रोमांटिक–बोध से छुटकारा पाने का है और 'आधे–अधूरे' में यह वास्तव का सामना करने में उजागर होता है।"

कथावस्तु की दृष्टि से अपने पहले ही नाट्य परंपरा की तुलना में इस नाटक में निम्नलिखित नई प्रवृत्तियाँ प्रयोगों के रूप में दिखाई देती है–

1. कस्बों या महानगरों के मध्यवर्गीय परिवारों में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की अत्याधुनिक परिणतियों को पैनी दृष्टि से उजागरक करता है। शिक्षित एवं नौकरी पेशा औरतों में आधुनिक भाव–बोध के कारण आए बदलाव को हिन्दी नाटक में प्रथम बार इस रूप में चित्रित किया गया है इस दृष्टि से मोहन राकेश ने नये नाटककारों को प्रभावित किया है। यहाँ मल्लिका और सुंदरी का एक निष्ठ प्रेम न होकर सावित्री की ऊब, खीज अतृप्ति का निदर्शन है। डॉ. गिरीश कर्नाड के 'हयवदन' नाटक में भी स्त्री पात्र सावित्री की तरह पूरेपन की तलाश में भटकती है। नाटककार ने मनोवैज्ञानिक ढंग से आधुनिक स्त्री की उलझन को सामने रखा है कि स्वयं सावित्री भी अपने स्वयं के अन्तर्विरोधों को जुनेज़ा के मुख से सुनकर स्तब्ध रह जाती है–

"**पुरुष चार** : असल बात इतनी ही कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में तो साल–दो–साल बाद तुम यही महूसस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिन्दगी में कोई महेन्द्र, कोई जुनेज़ा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचतीं, यही सब महसूस करती। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है–कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ जीना। वह उतना–कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहतीं।"

यह प्रयोग नाटककार का एकदम नया एवं आधुनिक जीवन की सच्चाइयों को सशक्त ढंग से व्यक्त करने वाला है।

2. पिछले नाटकों की तुला में इस नाटक में पात्र अपनी असाधारणता को छोड़ते हुए बिल्कुल सामान्य हो गए हैं। फिर भी उनके द्वारा आधुनिक मनुष्य के ठहराव और संशय को नाटककार व्यक्त कर सका है। नाटक के प्रारंभ में ही पुरुष एक (महेन्द्रनाथ) दर्शकों को संबोधित करते हुए कहता है : "बात इतनी ही है कि विभाजित होकर मैं किसी-न-किसी रूप में आपमें से हर एक व्यक्ति हूँ। और यही कारण है कि नाटक के बाहर दो या अंदर, मेरी कोई भी निश्चित भूमिका नहीं है।" तथा नाटक के अन्त तक पहुँचते हुए स्त्री (सावित्री) कहती है : "मैंने आपसे कहा है न बस! सब-के-सब एक से बिल्कुल एक से हैं आप लोग अलग-अलग मुखौटे पर चेहरा? चेहरा सब का एक ही।"

शहरी जिन्दगी की यान्त्रिकता, संघर्ष एवं अर्थ लिप्सा ने इन पात्रों को एक सा बना दिया है। यह भी राकेश जी का संवेदनात्मक स्तर पर एक नवीन प्रयोग है।

3. यह नाटक अस्तित्ववादी और विसंगतिवादी नाटकों के बीच की कड़ी बन गया है। पाश्चात्य नाट्य परम्परा के अनुकरण से विसंगति, अजनबीपन और अधूरेपन का चित्रण है। मनुष्य की पहचान खोए जाने का एहसास हमें पुरुष, स्त्री, बड़ी लड़की जैसे पात्रों से होता है। पुरुष एक का कथन है : "मुझे पता है कि मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अन्दर-ही-अन्दर इस घर को खा लिया है।"

तो अपने आपसे अजनबी होते जाते मनुष्य का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। वो लोग वर्षों तक साथ-साथ रहकर भी एक-दूसरे को नहीं पहचान पाते। बड़ी लड़की कहती है : "शादी से पहले मुझे लगता था कि मैं मनोज को बहुत अच्छी तरह से जानती हूँ पर अब आकर...अब आकर लगने लगा कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।

4. प्रयोगधर्मिता का एक नया आयाम यह है कि राकेश जी का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मौजूद मिलता है। 'आधे-अधूरे' नाटक में काले सूट वाले की चार भूमिकाएँ राकेश जी के भीतर वाले विभाजित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है जो आरोपों-प्रत्यारोपों में जीता है। अतः युगीन संगति में मिथक का संशोधन निजी आवश्यकताओं के लिए करना भी प्रयोगधर्मी नाटककार की प्रयोगशीलता का अन्यतम उदाहरण है।

नाट्यशिल्प की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' नाटक के शुरू होते ही काले सूट वाले व्यक्ति का दर्शकों से वार्तालाप एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है, जो ब्रेख्त के प्रभाव से आया है। भाषा और संवादों की अतिरिक्त सजगता ने भी इस नाटक की प्रयोगधर्मिता को एक अलग आयाम दिया है। हर पात्र के संवाद बीच में टूटते हुए, टूटकर फिर शुरू होते हुए लगते हैं इन संवादों में एवसर्ड नाटक का प्रभाव झलकता है। सावित्री और महेन्द्रनाथ ही नहीं, उनकी छोटी लड़की एकालाप करती है -ये सभी पात्र जगह-जगह बड़बड़ाते हुए अपने-आपसे बात करते हुए भी दिखाई देते हैं। पुरुष दो से बातें करता हुआ लड़का उसका कार्टून बनाता जाता है। बाद में उसे देखकर स्त्री को लगता है कि यह चेहरा उसके पति के जैसा ही है।

**"लड़का** : चेहरा देखा है पाँच हजार तनखाह वाले का?

(पैड पर बनाया गया खाका लाकर उसे दिखाता हैं)

**बड़ी लड़की** : यह उसका चेहरा है?

× × × × ×

**बड़ी लड़की** : सिर पर क्या है यह?

**लड़का** : सींग बनाए थे, काट दिए। कहते है...सींग नही होते।

× × × × ×

**स्त्री** : यह चेहरा कुछ-कुछ वैसा नहीं है?

**बड़ी लड़की** : कैसा?

**स्त्री** : तेरे डैडी जैसा?"

संवादों में विद्रूप और व्यग्य विसंगतिबोध को ओर अधिक गहराई से स्थापित करते हैं। इस नाटक म ऐस सवाद क आद्यन्त भरमार है। इसके अलावा 'आधे-अधूरे' नाटक की पात्र योजना सीमित एवं यथार्थवादी है। सावित्री, महेन्द्र, जुनेजा, अशोक

आदि पात्र बिल्कुल यथार्थ के धरातल से उठाए गए हैं। इस यथार्थकता से नाटक ने आधुनिक जीवन की विसंगतियों की जीवन्त अभिव्यक्ति की है।

रंगशिल्प की दृष्टि से भी प्रयोगधर्मी नाटककार ने अभिनव एवं सार्थक प्रयोग किए हैं। नाटक का सारा दृश्यबन्ध सावित्री के घर से शुरू होकर उसी में समाप्त हो जाता है। काले सूट वाले का बार–बार नये व्यक्ति की भूमिका में आना और जगह–जगह दिए गए रंग संकेत नाटक को अभिनेयता की दृष्टि से सफल एवं प्रयोगधर्मी बनाते हैं **डॉ. नरनारायण राय** का कथन है–"एक छोटा सा रंगोपकरण पूरे नाटक को नया अर्थ दे जाता है। 'आधे अधूरे' में ऐसे कई प्रयोग हैं : कैंची और कतरन, कमरे में बन्द किन्नी और उसकी चीख, सिंघानियाँ की पतलून में सुरसुराता कीड़ा, कमरे में बन्द घड़ी जो महेन्द्र का सहारा है आदि ऐसे ही साभिप्राय और सार्थक दृश्य रंग प्रयोग है। नाटक के जिस दृश्यबंध की कल्पना नाटककार ने प्रस्तुत की है, पूरे घर की कहानी वह दृश्यबंध ही कह देता है।" इसके अलावा इस नाटक में राकेश के पूर्ववर्ती नाटकों की काव्यता के स्थान पर बौद्धिकता प्रधान है। आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की सभी समस्याओं को साधारण यथार्थपरक शैली में प्रस्तुत करने वाला अभिनय व मंचीय नाटक है।

नाट्य शिल्प की दृष्टि से इस नाटक में दो प्रयोग एकदम अगल ढंग के हैं :

(1) एक पात्र का कई भूमिकाओं में उतरना,

(2) नाटककार द्वारा पात्रों के लिए व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के स्थान पर जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग।

काले सूट वाला आदमी ही पुरुष एक, दो, तीन और चार की भूमिका में उतरता है। पात्रों के नामों का प्रयोग न करके नाटककार यह प्रदर्शित करना चाहता है कि आधुनिक समाज में मनुष्य की निजता और पहचान खोती जा रही है।

नाटककार का यह प्रयोग सावित्री के कथन–"मैंने आपसे कहा है न, बस! सब–के–सब...सब–के–सब! एक–से! बिल्कुल एक–से हैं आप लोग! अलग–अलग मुखौटे पर चेहरा?–चेहरा एक ही!"–को चरितार्थ करना चाहा है। नाटककार अनुभूति देना चाहता है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में स्तरीकरण एवं असन्तोष से ग्रस्त हर पुरुष एक जैसा अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश है। इसके अलावा नाटककार की प्रयोगधर्मिता चाहे रंगमंच के सम्बन्ध में हो या फिर नाट्यशिल्प से सम्बन्धित प्रतीकों बिम्बों के रूपों में सार्थक अभिव्यक्ति में सहायक है। **डॉ. रीता कुमार** का कथन है–"यह नाटक पूर्णतः यथार्थवादी शैली पर आद्धृत है, जिसमें अनेक सार्थक प्रतीकों का प्रयोग यथार्थ की कटुता को तीव्रता से व्यक्त करने के लिए किया गया है। कमरे के तीन दरवाजे सावित्री के जीवन में प्रवेश करने वाले तीन पुरुषों का प्रतीक है, इन तीन दरवाजों को पारिवारिक विघटन के छिद्र भी माना जा सकता है। नाटक में सर्वाधिक प्रभावशाली प्रतीक अशोक द्वारा की गई कैंची की 'चक–चक' ध्वनि है। एक कोने में तस्वीरें कतरता हुआ यह पात्र दिशाभ्रान्त युवावर्ग के मूक विद्रोह का प्रतिनिधित्व करता है। अनेक मार्मिक स्थलों पर नीरवता में सुनाई देने वाली यह 'चक–चक' ध्वनि मानवीय सम्बन्धों के चुकने तथा जीवन–मूल्यों के प्रति अवज्ञा भाव की सूचक है। नाटक के मध्य में छोटी लड़की का सिसकते हुए खाली कमरे को पार करना वातावरण पर छाए संत्रास को तीव्रतम कर जाता है। 'एक खण्डहर की आत्मा को व्यक्त करता हल्का संगीत' क्षण–क्षण टूटती सावित्री के जीवन की करुण त्रासदी का सजीव दृश्य उपस्थित कर देता है। राकेश ने इस नाटक में प्रकाश और संगीत योजना से भी कई सशक्त नाटकीय बिम्बों का निर्माण किया है। नाटक के प्रारम्भ में 'अधटूटा टी–सेट' आदि बिखरी वस्तुओं के दृश्यबन्ध पर भटकता आलोक तथा खण्डहर की आत्मा कासंगीत वातावरण में छाए तनाव और घुटन से टूटते पात्रों का सजीव बिम्ब दे जाते हैं।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राकेश जी एक नितान्त प्रयोगधर्मी नाटककार है। उन्होंने कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से इस नाटक में नवीन एवं सार्थक प्रयोग किए हैं। कथ्य के स्तर पर उन्होंने अपनी पैनी दृष्टि स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की आधुनिक परिणति, एकनिष्ठ प्रेम का अभाव, आधुनिकता का दम भरने वाली स्त्री के अन्तर्विरोधों, शहरी जिन्दगी की यान्त्रिकता, संघर्ष, अर्थलिप्सा अजनबीपन, संत्रास, कुण्ठा और नितान्त व्यक्तिकता को यथार्थ के कटु धरातल पर परखती है।

शिल्प के स्तर पर भाषा एवं संवादों की अतिरिक्त सजगता, पात्रों का यथार्थ और मनोवैज्ञानिक धरातल पर चरित्र–चित्रण, ब्रेख्त आदि के प्रभाव से आई ऊलजलूलियत जो की आधुनिक संवेदना को और गहराई से मूर्त करती है। अभिनव रंगमंचीय प्रयोग में रंग संकेतों की प्रतीकात्मकता कम समय और कम स्थान पर ढेर सारी समस्याओं को प्रस्तुत करना आदि नाटककार की प्रयोगधर्मिता को प्रार्थक्य प्रभाव से मुक्त बनाता है।

# 6

# आधे-अधूरे : भाषा-शैली

भाषा भावों और विचारों की वाहिनी है। किसी भी रचनाकार को अपने संवेदनात्मक लक्ष्य को स्पष्ट करने के लिए भाषा एवं संवादों का सहारा लेना पड़ता है। नाटककार मोहन राकेश भाषा के प्रयोग और महत्त्व को लेकर बहुत सजग थे। इस क्षेत्र में वे अपनी प्रयोगवृत्ति के कारण एक प्रतिनिधि नाटककार के रूप में सामने आते हैं। जहाँ 'आधे–अधूरे' नाटक की भाषा का प्रश्न है इस नाटक की भाषा अत्यन्त सरल व आम बोलचाल गुणों की भाषा है तथा साहित्यिक से युक्त है। अंग्रेजी [illegible] के जनप्रचलित शब्द भी स्थान–स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं। इस भाषा में क्लिष्टता, दुर्बोधता या जटिलता के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रतिदिन जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा ही 'आधे–अधूरे' की भाषा है। यद्यपि सहज–सरल और साहित्यिकता से युक्त आम बोलचाल की भाषा है, लेकिन फिर भी गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति करने वाली साहित्यिक भाषा है।

नाटककार मोहन राकेश यथार्थवादी रचनाकार हैं। इसलिए उनकी भाषा–शैली भी यथार्थपरक है। सपाट बयानी और व्यंग्यता उनकी भाषा शैली की निजी विशेषता है। इसके अतिरिक्त भाषा में पात्रनुकूलता एवं प्रसंगानुकूलता भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। हास्यपूर्ण प्रसंग, व्यंग्यप्रधान संवाद और कटुतापूर्ण परिवेश की अभिव्यक्ति देने वाली हरकत की भाषा इस नाटक को गहन अर्थवत्ता प्रदान करती है।

'आधे–अधूरे' नाटक में प्रयुक्त भाषा का सम्यक् अनुशीलन करने के उपरान्त हमें सामान्यतः भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देती हैं–

1. सहजता, सरलता एवं रोचकता
2. भावानुकूल एवं प्रवाहमयता
3. पात्रानुकूल भाषा
4. ध्वन्यात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता
5. विभिन्न भाषाओं के शब्दों एवं मुहावरों में सार्थक
6. यथार्थवादी शैली एवं सपाट बयानी

1. **सहजता सरलता एवं रोचकता :** इस नाटक की भाषा में सहजता, सरलता एवं रोचकता के गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान होते हैं। कहीं भी दुरूहता, क्लिष्टता एवं जटिल शब्दावली का प्रयोग नहीं हुआ है। इसके साथ–साथ नाटक [illegible] मे प्रयुक्त भाषा में सर्वत्र स्वाभाविकता और सरलता से युक्त बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है यथा।

**"लडका :** पूछ ले इससे। अभी बता देगी, तुझे सब...जो सुलेखा को बता रही थी बाहर।

**छोटी लड़की :** (सुबकने के बीच) वह बता रही थी मुझे कि मैं उसे बता रही थी?

**लड़का :** तू बता रही थी।

**छोटी लड़की :** वह बता रही थी।

**लड़का :** तू बता रही थी। अचानक मुझ पर नजर पड़ी कि मैं पीछे खड़ा सुन रहा हूँ तो.

**छोटी लड़की :** सुरेखा भागी थी कि मैं भागी थी?

**लड़का :** तू भागी थी।

**छोटी लड़की :** सुरेखा भागी थी।"

[illegible] स्वाभाविकता एवं सरलता का गुण द्विगुणित होकर प्रकट होता है। इसके [illegible] वाली शुद्ध साहित्यिक भाषा भी अपने परिमार्जित रूप में रोचकता, सहजता युक्त होकर आधुनिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का साधन बनी है–यथा–

''**जुनेज़ा** : बिल्कुल मानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि अपनी आज की हालत का जिम्मेदार महेन्द्रनाथ खुद है। अगर ऐसा न होता, तो आज सुबह से ही रिरियाकर मुझसे न कह रहा होता कि जैसे भी हो, मैं इससे बात करके इसे समझाऊँ। मैं इस वक्त यहाँ न आया होता, तो पता है क्या होता''

उद्धृत पंक्तियों में मध्यमवर्गीय परिवार की विसंगतियों का कारुणिक अंकन सरल एवं साहित्यिक भाषा में हुआ है।

2. ***भावानुकूलता एवं प्रवाहमयता*** : 'आधे–अधूरे' नाटक की भाषा पूर्णता भावानुकूल एवं प्रवाहमयता के गुणों से ओत–प्रोत है। प्रसंगानुकूल गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति में गम्भीर भाषा का प्रयोग हुआ है और हल्के–फुल्के प्रसंगों पर हल्की–फुल्की भाषा का प्रयोग हुआ है। इसके साथ–साथ सभी प्रसंगों में चाहे हल्के हों या गहन भावों से युक्त, भाषा में सहज गति, प्रवाहमयता एवं अविच्छिन्नता बनी रहती है। तल्खी, बेचैनी एवं आक्रोश की भाषा में प्रवाहमयता का उदाहरण देखिए–

''**बड़ी लड़की** : मेरा अपना घर!...हाँ। और मैं आती हूँ कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज है वह इस घर में जिसे लेकर बार–बार मुझे हीन किया जाता है। (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो ममा, कि क्या चीज है वह? और कहाँ है वह? इस घर के खिड़कियों–दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममें? डैडी में? किन्नी में? अशोक में? कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज जिसे जो वह कहता है कि मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गई हूँ? (स्त्री की दोनों बाँहें हाथ में लेकर) बताओ ममा, क्या है वह चीज? कहाँ पर है वह इस घर में?''

यहाँ पर प्रयुक्त भाषा वातावरण में घुटन–टूटन एवं पात्रों की छटपटाहट भरी मनःस्थिति को प्रकट करने के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इसके अलावा हल्के–फुल्के प्रसंगों पर हल्की–फुल्की भाषा का प्रयोग है यथा–

''**स्त्री** : मैं नहीं लूँगी चाय।

**बड़ी लड़की** : सबके लिए बना रही हूँ एक–एक प्याली।

**लड़का** : मेरे लिए नहीं।

**बड़ी लड़की** : क्यों पानी रख रही हूँ सिर्फ पत्ती लानी है...।

**लड़का** : अपने लिए बनानी हे, बना ले।

**बड़ी लड़की** : मैं अकेली पिऊँगी? इतने चाव से चीज–सैंडविच बना रही।''

3. **पात्रानुकूल भाषा** : राकेश जी के सभी नाटकों में पात्रों की मनः–स्थिति प्रवृत्ति एवं व्यक्तित्व के अनुरूप भाषा प्रयुक्त है। 'आधे–अधूरे' नाटक के पात्र अपनी मनःस्थिति में स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, पहला राजा आदि नाटकों के पात्रों की तरह लम्बे–लम्बे एवं दार्शनिक वाक्यों का प्रयोग नहीं करते हैं। अपितु अपने समकक्षी व्यक्ति को श्रोता बनाकर बोलचाल की शब्दावली में अपने मन की भड़ास निकालते हैं। महेन्द्रनाथ जैसे दब्बू एवं पराश्रित पुरुष के अन्तर्द्वन्द्व को रचनाकार ने उसकी मनोदशा के रूप में व्यक्त किया है यथा–

''सचमुच महसूस करता हूँ। मुझे पता है कि मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अन्दर–ही–अन्दर इस घर को खा लिया है। (बाहर दरवाजे की तरफ चलता है) पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए।''

अशोक भी अपने पिता की भाँति बेकार, अकर्मण्य आवारा एवं फैशनपरस्त नवयुवक है। अतः उसके संवादों में अक्खड़पन, विद्रोही प्रवृत्ति झलकती है।–पुरुष दो की भोंडी हरकतों से क्षुब्ध होकर अशोक का कथन है–''तुम्हारा बॉस न होता, तो उस दिन मैंने कान से पकड़कर घर से निकाल दिया होता। सोफे पर टाँग पसारे आप सोच कुछ रहे हैं, जाँघ खुजलाते देख किसी तरफ रहे हैं और बात मुझसे कर रहे हैं...(नकल उतारता) 'अच्छा, यह बताइए कि आपके राजनीतिक विचार क्या हैं? 'राजनीतिक विचार हैं मेरे खुजली और उसकी मरहम!''

नाटक की नायिका सावित्री के संवादों की भाषा में भी उसके [illegible] के अनुरूप आवारापन, [illegible] प्रकट [illegible]

''**स्त्री** : (आवेग में उसकी तरफ मुड़ती) मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी। महेन्द्र भी एक आदमी [illegible] है पत्नी है, यह बात महेन्द्र को अपना कहने वालों को शुरू से ही रास नहीं आई। महेन्द्र ने ब्याह क्या 'किया' आप लोगों की नजर में आपका ही कुछ आपसे छीन लिया।''

इसी तरह नाटक के अन्य पात्रों की भाषा भी उनके चरित्र के अनुरूप ही है। किन्नी की भाषा में विद्रोहीपन, अशिष्टता, जिद्दीपन झलकता है तो पुरुष चार अर्थात जुनेज़ा की भाषा में जीवन के अनुभव की गहराई।

4. **ध्वन्यात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता** : इस नाटक में स्थान–स्थान पर पात्रों की कारुणिक मनःस्थिति, भयावह परिवेश की विसंगति एवं घुटन, टूटन, बिखराव आदि को व्यक्त करने के लिए नाटककार ने भाषागत ध्वन्यात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता का प्रयोग किया है। नाटक में कई स्थलों पर शब्द और उसके अभिधेय अर्थ को नकारने की कोशिश की गई है। सिंघानिया के संवाद शब्दों के अभिधेय अर्थ का अतिक्रमण कर जाते हैं–

''**पुरुष दो**: हाँ हाँ...जरूर (बड़ी लड़की से) लो तुम भी। (स्त्री से) बैठ जाओ अब।

**स्त्री** : (मोढ़े पर बैठती) उस विषय में सोचा आपने कुछ?

**पुरूष दो** : (मुँह चलाता) किस विषय में?

**स्त्री** : वह जो बात मैंने की थी आपसे...कि कोई ठीक–सी जगह हो आपकी नजर में, तो...

**पुरुष दो** : बहुत स्वादिष्ट है।''

यहाँ पर स्त्री और पुरुष दो के संवादों में तार्किक संगति न होते हुए भी दोनों की मनःस्थिति व्यक्त होती नजर आ रही है। 'वह जो...तो...' के उत्तर में 'बहुत ही स्वादिष्ट है' वाक्य समकालीन जीवन की विसंगत स्थितियों को नाटकीय ढंग से सम्प्रेषित करता है। नाटककार की यह प्रवृत्ति एवसर्ड नाटकों की भाषा से अनुप्राणित है।

नाटक में यथार्थ को अभिव्यक्ति देने के लिए व्यंग्यात्मक भाषा–शैली को अपनाया गया है। नाटक के लगभग सभी पात्रों की भाषा में व्यंग्य की तीखी मार दिखाई देती है। इससे जहाँ भाषा में विचित्र्य का समावेश हुआ है, वहीं चमत्कार भी उत्पन्न हो गया है। विशेष रूप से महेन्द्रनाथ एवं अशोक के संवादों की भाषा तो पूर्णतः व्यंग्यपरक है। सावित्री एवं महेन्द्रनाथ की वार्तालाप पूर्णतः व्यंग्यपरक है। यथा–

''**पुरुष एक** : हाँ–हाँ सिंघानिया को लगवा ही देगा जरूर। इसलिए बेचारा आता है यहाँ चलकर।

**स्त्री** : शुक्र नहीं मानते कि एक इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने भर से...।

**पुरुष एक** : मैं नहीं शुक्र मनाता? जब–जब किसी नये आदमी का आना–जाना शुरू होता है यहाँ, मैं हमेशा शुक्र मानता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था, फिर मनोज आने लगा था।

**स्त्री** : (स्थिर दृष्टि से उसे देखती) और क्या–क्या बात रह गई है कहने को बाकी? वह भी कह डालो जल्दी से।

**पुरुष एक** : क्यों जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हुए।''

यहाँ पर महेन्द्रनाथ का व्यंग्यपरक संवाद सावित्री की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करता है। इसी तरह अशोक एवं सावित्री के संवादों में अशोक व्यंग्यपरक शैली में सिंघानिया एवं सावित्री के चरित्र का उद्घाटन करता है–

''**लड़का** : मतलब वही जो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है?

**स्त्री** : तू क्या समझता है, किस वजह से बुलाया है?

**लड़का** : उसकी किसी 'बड़ी' चीज की वजह से। एक को कि वह इंटेलेक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनख्वाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं उसकी तनख्वाह को, नाम को, रुतबे को बुलाया है।

**स्त्री** : और में उन्हें इसलिए बुलाती हूँ कि...

**लड़का** : पता नहीं किसलिए बुलाती हो, पर बुलावा सिर्फ ऐसे ही लोगों को हो। अच्छा, तुम्हीं बताओ, किसलिए बुलाती हो?"

इसी तरह किन्नी, बिन्नी, जुनेज़ा आदि के संवादों में भी व्यंग्यपरक भाषा प्रयुक्त हुई है।

5. **विभिन्न भाषाओं के शब्दों एवं मुहावरों का सार्थक प्रयोग :** 'आधे–अधूरे' नाटक में सामान्य बोलचाल की उर्दू–अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी ही अधिकांश प्रयुक्त हुई। यों एकाध स्थलों पर संस्कृत शब्द भी तत्सम रूप में व्यवहृत हुए हैं। अधिकाशं जनसामान्य में प्रचलित शब्द ही हैं। जिन भाषाओं के शब्द प्रसंगानुकूल किन्तु नाटक में प्रयुक्त हुए हैं उनका आकलन नीचे किया जा रहा है देखिए–

1. **तत्सम शब्दों का प्रयोग** इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग बहुत कम मात्रा में हुआ है और वह हुआ भी है तो विशेष प्रयोजन से ही, यथा–

   "आप क्या सोचते हैं आजकल युवा लोगों में इतनी अराजकता क्यों है?"

   "अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क हैं न कम्पनी के, तो सभी देशों के लोग मिलने आते रहते हैं जापान से तो एक पूरा प्रतिनिधि मण्डल ही आया हुआ था पिछले दिनों।–अभी उस दिन मैं जापान की पिछले वर्ष की औद्योगिक सांख्यिकी देख रहा था..." यहाँ पर 'युवा', 'अराजकता', 'प्रतिनिधिमण्डल' आदि शब्द तत्सम हैं।

2. **तद्भव शब्दों का प्रयोग :** नाटक में तत्सम शब्द तो केवल एक विशिष्ट अवसर पर ही प्रयुक्त हुए हैं। अधिकांश हिन्दी के तद्भव शब्दों का ही प्रयोग 'आधे–अधूरे' में हुआ। इससे नाटक की भाषा में स्वाभाविकता एवं विकास का गुण आ गया है। शब्दों की यह तद्भवता हिन्दी के कुछ शब्दों में द्रष्टव्य है–घर (गृह), सीख (शिक्षा), आँखें (अक्षि), बूढ़ा (वृद्ध), होंठ (ओठ), माँ (मातृ), साड़ी (सादृक), रात (रात्रि) आदि–आदि।

3. **देशज शब्दों का प्रयोग**–तत्सम एवं तद्भव शब्दों के साथ ही भाव सम्प्रेषण की सुविधा के लिए नाटककार ने 'आधे–अधूरे' नाटक में, कुछ देशज शब्दों का भी प्रयोग किया है, यथा–चिढ, तिलमिला, खीझना, चरख चरख, किट–किट, मुनिया, लोंदा आदि।

4. **उर्दू शब्दों का प्रयोग**–'आधे–अधूरे' नाटक में उर्दू भाषा के शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। नाटक में प्रत्येक पृष्ठ तो क्या प्रत्येक संवाद अथवा प्रत्येक पंक्ति में कोई–न–कोई उर्दू शब्द अवश्य व्यवहृत हुआ है। पर इतना अवश्य है कि उर्दू होते हुए भी ये शब्द आम बोलचाल के हैं। सरल भाव–संप्रेषण की सुविधा के लिए ही नाटककार ने इन शब्दों का प्रयोग किया है। भारी–भरकम संस्कृतनिष्ठ शब्दों की भरमार की अपेक्षा इस प्रकार की चलती हिन्दी–उर्दू भाषा नाटक के कथन को बड़ी सरलता से सम्प्रेषित करने में सहायक हुई है। यथा–कोशिश, मजाक, बरदाश्त, काफी, वजह, नौबत, राय, किराया, शऊर, जवाब, चेहरा, सवाल, सिर्फ, अखबार, शिकायत, खास, शादी, ज्यादा आदि।

5. **अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग :** नाटक में यत्र–तत्र प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी खुलकर हुआ है। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग पात्रों के संवादों में भी है और स्वयं नाटककार ने अपने मंचीय संकेतों में भी इनका प्रयोग किया है यथा–सिगार, फुटपाथ, स्कूल बैग, मैगजीन, टी, ट्रे, कबर्ड, बॉस, फैक्टरी, प्रेस, फ्रिज, मीटिंग, बोर्ड, पर्स, डैडी, काफी, ट्रांसफर, किट, क्लास, फाउण्डर्स डे पी.टी. आदि।

अतः राकेश जी ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा शैली में समाहित करके उसे गहन भावों से युक्त एवं लोक जीवन की भाषा बनाया है राकेश जी ने अपनी नाट्य भाषा में मुहावरों का कम किन्तु सार्थक प्रयोग किया है। जिन मुहावरों का नाटककार ने प्रयोग किया है वे नाट्य–कथ्य के सम्प्रेषण में अत्याधिक सहायक सिद्ध हुए हैं। इन मुहावरों से राकेश जी की नाट्य–भाषा की व्यंजनात्मकता गहराई प्राप्त करती है। जिन मुहावरों का प्रयोग नाटक में हुआ है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं 'शहदेना', 'जिन्दगी काटना', 'मन का गुबार निकालना', 'मारा–मारा फिरना', 'जबान खोलना', 'अपने को हलाक करना', 'हड्डियों में जंग लगाना', 'जानमारी करनी', 'नाक में नकेल डालना', 'उल्लू बनाना', 'मिट्टी के लोंदे', 'जिन्दगी का भार ढोना', 'जिन्दगी की कमाई', 'रबड़ स्टैंप का ठप्पा', 'जिन्दगी को चौपट करना', 'घरघुसरा होना' आदि–आदि। वाक्यों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

(*i*) तुम्हारी शह में उसका घर में आना–जाना न होता, तो क्या यह नौबत आती कि लड़की उसके साथ जाकर बाद में इस तरह...?

(*ii*) जापान ने इन सबकी नाक में नकेल कर रखी है आजकल

(*iii*) उल्लू बना रहा था उसे।

6. **सपाटबयानी एवं यथार्थवादी शैली :** यथार्थवादी नाटक होने की वजह से नाटक की भाषा शैली में सपाटबयानी एवं यथार्थवादी शैली व्यवहृत है। इस यथार्थपरक भाषा–शैली से नाटककार ने आधुनिक जीवन की नग्न सच्चाइयों, विसंगतियों को बड़े प्रभावी ढंग से प्रकट किया है। नाटक में चित्रित परिवार की वास्तविकता, परिवेश में तनाव, घुटन, घर के सदस्यों में आन्तरिक संघर्ष तथा समूचे परिवेश की कुरूपता एवं भयावयता को प्रकट करने के लिए नाटककार ने सपाटबयानी एवं यथार्थवादी भाषा–शैली का प्रयोग किया है। संवादों में शब्दों की कसावट और स्पष्टता महानगरीय परिवेश की विसंगतियों को प्रभावी ढंग से स्थापित करती है। मानव–जीवन की निर्ममता और मानव के नृशंसतापूर्वक व्यवहार का तीखा एवं वास्तविक रूप किन्नी की इन पक्तियों से प्रकट होता है–

"मैं यहाँ थी, तो मुझे कई बार लगता था कि मैं घर में नहीं, चिड़ियाघर के एक पिंजरे में रहती हूँ यहाँ...आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या–क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार–तार कर देना...उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बन्द कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर...सिहरकर। मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने–कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।"

इन पंक्तियों में यथार्थवादी शैली में समकालीन जीवन की विषय स्थितियाँ निरूपित हुई हैं। अतः कहा जा सकता है कि मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों को नाटकीय रूप में चित्रित करने के लिए जिस हरकत भरी भाषा की आवश्यकता थी उसी प्रकार की भाषा को नाटककार ने 'आधे–अधूरे' में प्रयुक्त किया है। आज के जीवन के जटिल अनुभवों, अनुभूत संवेदनाओं, उलझी हुई जीवन स्थितियों और अपने आप से या आपस में जूझते आधे–अधूरे चरित्रों की तनावपूर्ण विस्फोटक मनःस्थितियों को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत करने के लिए बोलचाल की इसी सृजनात्मक भाषा की आवश्यकता थी। यही कारण है कि नाटककार ने अपनी भाषा–शैली में विभिन्न प्रयोग करते हुए उसे जन–जीवन की भाषा बनाकर प्रस्तुत किया है। **डॉ. गोविन्द चातक** इस नाटक की भाषा के बारे में लिखते हैं–

"इस नाटक की भाषा नाटक के क्षेत्र में वर्षों से व्याप्त जड़ता को भंग करने में सफल हुई है। इसमें सहजता ताजगी, लोच और चालूपन है, वह नाट्य भाषा की संपूर्ण संवेदनाओं और आंतरिक शक्तियों का उपयोग करता दिखता है। अपने कथ्य के अनुरूप यह भाषा आरोपों–प्रत्यारोपों उलझनों–उपालंभी, तल्खियों–झल्लाहटों को बखूबी व्यक्त करती है।"

इतना ही नहीं 'आधे–अधूरे' की भाषा का अनगढ़पन एवं अतिसाधारण रूप भी लोक–प्रयोग के स्तर पर युगबोध की जटिल एवं सूक्ष्म संवेदना को व्यंजित करता है। अतः साधारण या बोल–चाल की भाषा को भी नाटककार ने अपने अनुभव की समग्रता देकर आधुनिक युग की विसंगतियों की अभिव्यक्ति की भाषा बनाया है इस नाटक को **निर्देशक ओम शिवपुरी** ने नाटक की भाषिक महत्ता प्रकट करते हुए कहा है–

"पहले वाचन के समय ही मुझे इसकी भाषा में बड़ी कशिश लगी थी। कहना न होगा कि इस नाटक की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन, उनका क्रम उनका संयोजन–सब कुछ ऐसा है, जो बहुत सम्पूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है। लिखित शब्द की यही शक्ति और उच्चरित ध्वनि समूह का यही बल है, जिसके कारण यह नाट्य–रचना बंद और खुले, दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मोहन बनाए रख सकी।"

निष्कर्षतः 'आधे–अधूरे' की भाषा शैली हमारे आधुनिक समाज की जन–प्रचलित भाषा है। यथार्थवादी शैली में वास्तविक जीवन स्थितियों को प्रकट करने वाली तथा नाटक में उठाई गई समस्याओं की सशक्त अभिव्यक्ति करने वाली अत्यन्त उत्कृष्ट स्वाभाविक एवं जीवन के गहन अनुभव–खण्डों को व्यक्त करने वाली सशक्त भाषा है।

7

# आधे-अधूरे : पात्र चरित्र-चित्रण

पात्र एवं उनका चरित्र–चित्रण नाटक का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। नाटक कथा वस्तु को दर्शकों या पाठकों तक पहुँचाने के लिए पात्रों की अवतरणा की जाती है तथा पात्रों के संवादों एवं क्रियाकलापों के माध्यम से नाटककार का अभीष्ट दर्शकों तक पहुँच जाता है। नाटक की कथावस्तु के साथ–साथ नाटककार के विचार भी पात्रों को मध्यम से ही सम्प्रेषित होते हैं। **डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल** नाटक के चरित्रों की व्याख्या करते हुए लिखते हैं–"चरित्र के माध्यम से ही कथावस्तु बनती है। चरित्र का व्यक्तित्व, उसकी इच्छाशक्ति ही नाटक का दूसरा कार्य–व्यापार है। नाटक के अन्य तत्त्वों के अनुरूप ही चरित्र–चित्रण के विभिन्न शिल्प नाट्य साहित्य में देखने को मिलते हैं।"

'आधे–अधूरे' नाटक में जिन पात्रों को नाटककार ने प्रस्तुत किया है वे सब हमारे समाज की विशेषकर महानगरीय समाज की विसंगतियों को यथार्थपरक शैली में प्रस्तुत करते हैं। इस नाटक में नाटककार ने आधुनिक निम्न मध्यवित्त परिवार की समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण किया है। अतः नाटक के सभी पात्रों का यथार्थ चरित्र–चित्रण हुआ है। प्रस्तुत नाटक में निम्नलिखित पात्रों की अवतारणा हुई है।

1. काले सूट वाला आदमी जो कि पुरुष एक, पुरुष दो पुरुष तीन तथा पुरुष चार की भूमिकाओं में भी है। उम्र लगभग उनचास–पचास। चेहरे की शिष्टता में एक व्यंग्य।"

पुरुष एक के रूप में–वेशान्तर पतलून–कमीज। जिन्दगी से अपनी हार चुकने की छटपटाहट लिये। पुरुष दो के रूप में–पतलून और बन्द गले का कोट। अपने आप से सन्तुष्ट, फिर भी आशंकित। पुरुष तीन के रूप में–पतलून टी शर्ट। हाथ में सिगरेट का डिब्बा। लगातार सिगरेट पीता। अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन पूरे हाव–भाव में। पुरुष चार के रूप में–पतलून के साथ पुरानी काट का लम्बा कोट चेहरे पर बुजुर्ग होने का खासा अहसास। काइयाँपन।

2. स्त्री : उम्र चालीस में छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष। ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण। दूसरी साड़ी विशेष अवसर की।
3. बड़ी लड़की : उम्र बीस के ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का उतावलापन। कभी–कभी उम्र से बढ़ कर बड़प्पन। साड़ी माँ से साधारण। पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।
4. छोटी लड़की : उम्र बारह और तेरह के बीच। भाव, स्वर, चाल–हर चीज में विद्रोह। फ्राक चुस्त, पर एक मोजे में सुराख।
5. लड़का : उम्र इक्कीस के आस–पास। पतलून के अन्दर दबी भड़कीली बुर्शट धुल–धुलकर घिसी हुई। चेहरे से यहाँ तक हँसी से भी झलकती खास तरह की कड़वाहट।

ये सभी पात्र हमारे अपने समाज के उस वीभत्स यथार्थ को मूर्त करते हैं जिसे हमारा मध्य वर्गीय समाज झेल रहा है। **डॉ. विजय बापट** ने 'आधे–अधूरे' के पात्रों के विषय में ठीक ही लिखा है–" 'आधे–अधूरे बेहद चर्चा वाला नाटक है जिसमें आधुनिक जीवन का साक्षात्कार प्रस्तुत किया है इस नाटक में विघटित होते हुए आज के मध्यवर्गीय शहरी परिवार का कड़वाहट भरा चित्रण किया गया है जिसकी विडम्बना यह है कि व्यक्ति स्वयं अधूरा होते हुए भी औरों के अधूरेपन को सहना नहीं चाहता काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटककर अपनी और दूसरों की जिन्दगी नरक बना देता है। नाटककार इस प्रक्रिया को विशेष व्यक्तियों या परिवारों तक सीमित न रखकर सामान्य मानता हैं इसी कारण वह पात्रों को नाम न देकर पुरुष एक, दो पुरुष दो, पुरुष तीन, पुरुष चार, स्त्री, लड़का, बड़ी लड़की, छोटी लड़की कहकर पात्रों को प्रस्तुत करता है। वैसे बाद में उनके नाम भी दिए जाते हैं। लगता है कि नाटककार जातिगत नाम भी उभारना चाहता है। इस नाटक में महानगरों में रहने वाले मध्यवर्गीय आधुनिक परिवारों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है।"

नाटक की सबसे सशक्त पात्र सावित्री है। वह नौकरी करके अपने निठल्ले पति एवं सारे परिवार का भरण–पोषण कर रही है। वह अपने आपको घर की सबसे उत्तरदायी सदस्या समझकर वैयक्तिक सम्बन्धों एवं नैतिकता की बलि चाहती है। वह परिस्थितियों की आड़ में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और आवारापन को छिपाना चाहती है। परन्तु नाटककार ने सावित्री का चरित्र–चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया है। वह आधुनिक कामुक और सुविधाजीवी नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। उसे अपना पति इसलिए अधूरा दिखता है कि वह उसमें अपना एक मादा, अपनी एक शख्सियत नहीं देखती। वह व्यक्ति में कई चीजें एक साथ देखना चाहती है–पद भी, व्यक्तित्व भी, वैभव भी और एक पूरा आदमी भी। इसलिए पथ–भ्रष्ट होकर पारिवारिक बिखराव का कारण बनती है। नाटककार ने आधुनिक सावित्री के चरित्र को यथार्थ के धरातल पर वीभत्स रूप में चित्रित किया है। पुरुष चार अर्थात जुनेज़ा द्वारा नाटककार के सावित्री के विद्रू पूर्ण चरित्र का यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक उद्‌घाटन किया है। यथा–

"पुरुष चार : असल बात इतनी है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल–दो–साल बाद में तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिन्दगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र, कोई जुनेज़ा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचतीं, यही सब महसूस करतीं। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है–कितना–कुछ एक साथ होकर, कितना–कुछ एक साथ पाकर और कितना–कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना–कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस–किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहती।"

नाटक में महेन्द्रनाथ एक असफल व्यापारी है तथा अपनी ऐय्याशी में उसने सारा पैसा उड़ा दिया है जिसके कारण अब परिवार आर्थिक अभाव की दलदल में धँसा हुआ है। अब बेकार–बेगार रहकर फाइलों की धूल झाड़ता रहता है, चाय पीता रहता है तथा अखबार पढ़ता रहता है। न उसका अपना कोई स्वतन्त्र चिन्तन है और न निर्णय लेने की क्षमता बल्कि प्रत्येक बात के लिए दूसरों पर आश्रित रहता है। उसकी अवस्था घर में अत्यन्त दयनीय एवं शोचनीय है कि वह एक नौकर से भी बदतर जीवन जी रहा है। गृहपति की मर्यादा से च्युत महेन्द्रनाथ अपनी महत्त्वहीन स्थिति को स्वकारते हुए कहता है–

**पुरुष एक :** *किसी माने में नहीं। मैं इस घर में एक रबड़–स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ–बार–बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। उसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में?*

नाटककार ने महेन्द्रनाथ के चरित्र–चित्रण के माध्यम से एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जो आधुनिक समाज के मध्यवर्गीय निम्न मध्यवित्तीय परिवार का मुखिया है। जो अपने निठल्लेपन, पराश्रिता एवं अकर्मवत के कारण अपमानित एवं महत्त्वहीन जिन्दगी जीने के लिए विवश है। नाटककार ने महेन्द्रनाथ की चारित्रिक दुर्बलताओं के चित्रण से मध्यवर्गीय परिवारों के कर्णधार को सचेत किया है।

इसके अतिरिक्त अशोक, बिन्नी, किन्नी, जुनेज़ा, सिंघानिया आदि पात्रों को सहायक पात्रों की श्रेणी में परिगिनत किया जा सकता है। नाटककार ने इन सभी पात्रों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को सुरक्षित रखते हुए इनका प्रयोग सावित्री–महेन्द्रनाथ के चरित्र को प्रकाशित करने के लिए किया है। परन्तु यहाँ नाटककार की पात्र योजना की एक विशिष्ट बात और दिखाई देती है कि सभी पात्र मूलतः एक–दूसरे के कट्टर विरोधी दृष्टिगोचर होते हैं। एक–दूसरे से ऊबे हुए एक ही छत के नीचे जीवनयापन के लिए विवश है। डॉ. विजय बापट ने पात्रों के चरित्रांकन के विषय में ठीक ही लिखा है–

"इस नाटक के स्त्री–पुरुष के आपसी निजी सम्बन्ध करीब–करीब चूक गए हैं और अब साथ–साथ रहने की और सामाजिक सम्बन्ध ढोने की कटुता ही शेष है। पुरुष महेन्द्रनाथ–जीवन में असफल होकर स्त्री की कमाई की रोटी तोड़ रहा है। गृहपति की मर्यादा से वंचित रहकर भी तानों–व्यंग्यों से स्त्री को भेदता रहता है, अपनी इस नियति को स्वीकारने के लिए विवश होकर भी पूर्णतः स्वीकार नहीं कर पाता। आज के परिवार में बच्चों की माँ–बाप के प्रति श्रद्धा तो काफुर हो गई है ममता भी उडती चली जा रही है, बच्चे विपथगामी होते जा रहे हैं और नाटक के वाक्य–'अँधेरा अधिक गहरा होता जा रहा है'–की यथार्थ अनुभूति हो जाती है।"

शास्त्रीय रूप से चरित्र–चित्रण की दृष्टि से पात्रों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–स्थिर चरित्र वाले पात्र और गतिशील चरित्र वाले पात्र। प्रस्तुत नाटक में लगभग सभी पात्र स्थिर चरित्र वाली श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। लगभग सभी पात्रों में टुटन–घुटन और जड़ता व्याप्त है तथा सभी 'आधे–अधूरे' हैं और सम्पूर्णता की खोज में भटक रहे हैं। सावित्री पूर्णता की

खोज अनेक पर–पुरुषों में करती है, महेन्द्रनाथ अपने मित्रों में पूर्णता की खोज करता है, बिन्नी मनोज में, अशोक वर्णा में और किन्नी सुरेखा आदि में पूर्णता की खोज में भटक रहे हैं।

नाटककार ने पात्रों के व्यक्तित्व का चित्रण उनकी भाषा उनके क्रिया कलापों द्वारा किया है। सावित्री का बड़े लोगों के सम्पर्क में आना, महेन्द्रनाथ का सावित्री पर शारीरिक एवं मानसिक आक्रमण, अशोक, किन्नी एवं बिन्नी के कामुक क्रियाकलाप उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। इसके अलावा नाटककार ने अन्य पात्रों के कथनों से भी पात्र विशेष का चरित्र–चित्रण किया है। सावित्री –महेन्द्रनाथ के पर–आश्रित स्वरूप, लिजलिजा–चिपचिपा व्यक्तित्व, ऐय्याशी, बेकारी–बेगारी पर प्रकाश डालती है तथा महेन्द्रनाथ सावित्री के पर–पुरुषों के साथ सम्बन्धों का उधेड़ता है और उसकी चारित्रिक हीनता पर व्यापक–विशद् प्रकाश डालता है। इसी प्रकार से जुनेज़ा, सावित्री–महेन्द्रनाथ के बारे में भी काफी कुछ स्पष्ट कर देता है। इसी प्रकार से बिन्नी भी सावित्री–महेन्द्रनाथ के सम्बन्धों पर प्रकाश उगलती हुई कहती है–"इतने साधारण ढंग से उड़ा देने की बात नहीं है, अंकल। मैं यहाँ थी, तो मुझे कई बार लगता था कि मैं एक घर में नहीं, चिड़ियाघर के एक पिंजरे में रहती हूँ जहाँ...आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या–क्या होता रहता है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार–तार कर देना...उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बन्द कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने में कामेड पर ले जाकर...(सिहरकर) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने–कितने भयानक दृश्य देखे है। इस घर में मैंने।

नाटक में अशोक का चरित्र भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। वास्तव में वह महेन्द्रनाथ–सावित्री के कटु–तिक्त सम्बन्धों पर प्रकाश डालती हैं वह अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ घर छोड़कर भाग जाती है लेकिन उसका दामपत्य जीवन सुखमय नहीं है। उसे अपना घर 'चिड़ियाघर–सा लगता हैं अतः बिन्नी काल की सावित्री है। किन्नी के रूप में घर की फूहड़ वातावरण की छवि स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं वह पढ़ाई में ध्यान न देकर यौन सम्बन्धों में रस लेती है वह अशिष्ट, मुँह फट, जिद्दी और उद्दण्ड है।

अन्य पुरुष पात्रों में जगमोहन, सिंघानियाँ, जुनेज़ा और मनोज आदि प्रमुख है। यदि इन चारों पात्रों को एक–दूसरे के स्थान पर रखते हुए कोई अन्तर नहीं पड़ता।

अतः इस नाटक में केवल चार पात्र है क्योंकि चार पुरुषों की भूमिका में केवल एक दो पुरुष अभिनय करता हैं जहाँ तक इनमें से मुख्य और गौण पात्रों के चुनाव का प्रश्न है इसमें सभी पात्र मुख्य कहे जा सकते हैं केवल एक छोटी लड़की किन्नी को छोड़कर परन्तु सर्वाधिक सशक्त पात्र (स्त्री) अर्थात सावित्री ही है जो सम्पूर्ण नाटकीय कथा का केन्द्र है और नाटक की समस्या का मूल कारण भी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस नाटक में पात्र एवं उनके चरित्र–चित्रण में नाटककार ने अत्यन्त कुशलता दिखाई है। भले ही इस नाटक के सभी पात्र त्रस्त एवं पस्त चरित्र के विकासहीन एवं घटना रहित है। परन्तु फिर भी ये एक ऐसे दर्पण को प्रस्तुत करते है जिसमें आस–पास के जीवन और परिवेश की कड़वी सच्चाइयों से हमारा साक्षात्कार होता है। इस नाटक के परिवेश में छटपटाते संघर्षरत पात्र बिल्कुल आज के आदमी हैं डॉ. पुष्पा बंसल ने राकेश की पात्र–योजना के बारे में लिखा है–

" 'आधे–अधूरे' शैल्पिक प्रयोगों का नाटक है। दूसरा प्रयोग इसमें नाटक के पात्रों को लेकर है। एक ही पुरुष को चार विभिन्न पात्रों की भूमिका में उतारा गया है। वास्तव में 'आधे–अधूरे' की पात्र योजना का वैशिष्ट्य यह नहीं है कि इसमें एक पुरुष से वेश बदलकर चारों पुरुष पात्रों की भूमिका कराई गई है, प्रत्युत वस्तुस्थिति यह है कि इसमें दो ही पात्र हैं एक पुरुष, एक नारी। पुरुष एक है केवल परिस्थिति भेद से या वेशभूषा भेद से वह चाहे भिन्न प्रतीत होता है। इस सत्य का उद्घाटन किया गया है–नारी का वर्टिकल विस्तार करके। महेन्द्रनाथ, सिंघानियाँ, जुनेज़ा, जगमोहन ये सब एक ही पुरुष के भिन्न रूप हैं एवं किन्नी, बिन्नी, सथवत्री नारित्व की तीन विभिन्न स्टेज है पुरुष पात्र के अधूरेपन को वर्टिकल रूप में भी देखा गया है–अशोक कल का महेन्द्रनाथ इस प्रकार प्रस्तुत नाटक के सभी पात्र दिव्य एवं काल में विस्तारित पुरुष एवं नारी ही है"। अतः राकेश जी ने 'आधू–अधूरे' में आधे–अधूरे पात्रों का स्वाभाविक, यथार्थपरक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण करके जीवन की विद्रपूताओं की सशक्त अभिव्यक्ति की है।

# 8

# आधे-अधूरे : अभिनेयता

आधुनिक नाट्य–साहित्य के शिखर पर पहुँचने वाले महान नाटककार मोहन राकेश की रंगचेतना अत्यन्त परिष्कृत और बहुमुखी थी। वास्तव में मोहन राकेश रंगमंच के गहरे पारखी थे इसलिए विद्वानों ने उन्हें 'आधुनिक नाटकों का मसीहा' कहा है। उनकी रंगचेतना का ज्ञान उनके समस्त नाट्य साहित्य से परिलक्षित होता है। प्रसाद जी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं किन्तु उसके नाटकों का अभिनय कठिन है। इसलिए उनके नाटकों को इस दृष्टि से अधिक सफल माना नहीं जाता है। किन्तु मोहन राकेश इस दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। उनके 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'लहरों के राजहंस' न जाने कितनी नाट्य संस्थाओं द्वारा रंगमंच एवं अभिनय की वे तमाम सम्भावनाएँ उपलब्ध है जो उसके लिए उपेक्षित हैं।

'आषाढ़ का एक दिन' एवं 'लहरों के राजहंस' के सफल मंचन के उपरान्त जब राकेश जी का 'आधे–अधूरे' नाटक रंगमंच पर अभिनीत किया गया तो दर्शक विमुग्ध रह गए। इसके सफल मंचन एवं यथार्थपरक प्रस्तुतीकरण के कारण ही संगीत नाटक आकदमी ने इसे पुरस्कृत करके हिन्दी के यथार्थवादी नाटकों के सृजन को प्रोत्साहन दिया है।

आधुनिक नाटककारों में केवल मोहन राकेश के नाटकों में ही रंगमंच का गहरा अनुभव, नाटकीय भाषा की खोज और वर्तमान जीवन को मंच पर मूर्त करने के निरन्तर प्रयोगों का अथक परिश्रम दिखाई देता है। उनका अपना कथन भी है, कि उनका नाट्य–लेखन 'हिन्दी रंगमंच' की तलाश के रूप में प्रारम्भ हुआ, जिसकी रूपरेखा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है– "हिन्दी रंगमंच को हिन्दी भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा, रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त करना होगा। हमारे दैनन्दिन जीवन के राग–रंग को प्रस्तुत करने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूप—नाटकीय प्रयोगों के अभ्यन्तर से जन्म लेगा।" इसीलिए उन्होंने हिन्दी रंगमंच की समृद्धि के लिए प्राचीन परम्परा का पुनरान्वेषण आवश्यक माना। भारतीय नाट्य–दृष्टि सर्वथा अनुकूल है, क्योंकि यहां नाटक को दृश्य के साथ श्रव्य भी माना जाता है। हिन्दी रंगमंच के पाश्चात्य रंगमंच के प्रति अनुकरणमूलक दृष्टिकोण को भी राकेश की दूरदृष्टि ने शीघ्र ही पहचान लिया और उसे एक नई सार्थक दिशा दी। उनकी सर्वप्रमुख विशेषता हिन्दी नाटकों को साहित्यिकता के साथ–साथ समृद्ध रंगमंचीय में ढालने की दिशा का निर्देश करना है। अनुभूति का गहरा तत्त्व उनके रंगमंच का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, जो प्रथम दो नाटकों (आषाढ़ का एक दिन व लहरों के राजहंस) के आन्तरिक काव्यात्मकता का अद्‌भुत गुण देता है। 'आधे–अधूरे' में यह तत्त्व अप्रत्यक्ष होकर भी त्रासद वातावरण का गहरा प्रभाव छोड़ जाता है। उसी सर्जक अनुभूति के साथ वातावरण सृष्टि राकेश के रंग–शिल्प की एक प्रमुख विशेषता है, जो घटना का पात्र की पृष्ठभूमि देने के साथ–साथ नाटक के सम्प्रेषण को भी प्रभावशाली बना जाती है।

'आधे–अधूरे' रंगमंचीय प्रयोगों का नाटक है। प्रसिद्ध अभिनेता–निर्देशक सत्यदेव दुबे का कहना है–"Till date 'Adhe Adure' is the most successfull amongust the plays Produced in Hindi anywhere in India."

वैसे इस नाटक का ओम शिवपुरी के निर्देशन में दिशान्तर, नई दिल्ली; सत्यदेव दुबे के निर्देशन में थिएटर यूनिट, बम्बई, श्यामानन्द जलान के निर्देशन में अनामिका, कलकत्ता; अमाल अल्लाना के निर्देशन में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (रंगमण्डल), दिल्ली के अतिरिक्त पटना, देहरादून, वाराणसी, जमशेदपुर, कानपुर, हैदराबाद, जम्मू और भारत वर्ष के लगभग प्रत्येक रंगनगर में सफतापूर्वक मंचन किया जा चुका है।

'आधे–अधूरे' नाटक की अभिनेयता निम्नालिखित गुणों एवं विशेषताओं के कारण अत्यन्त सफल मानी जाती है–

1. कथानक के अंगों से संगठन
2. पात्रों की सीमित संख्या एवं यथार्थपरक चित्रण

3. चुस्त संवाद योजना
4. सहज–सरल भाषा योजना
5. सफल दृश्य योजना
6. पर्याप्त रंग संकेत–रंग निर्देश
7. वेशभूषा एवं साज–सज्जा

1. **कथानक के अंगों के संगठन :** 'आधे–अधूरे' नाटक का कथानक अयन्त संघठित, संक्षिप्त, सरल एवं रोचक है। नाटककार ने दिखाया है कि किस प्रकार से एक मध्यवर्गीय परिवार स्तरीकरण की दौड़ में दौड़ता हुआ विघटनशीलता के कगार पर पहुँच गया है। इस परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए सामाजिक, नैतिक एवं पारिवारिक मूल्यों की तिलांजलि दे देकर अपने आपको और पूरे परिवार को मानसिक यान्त्रणाओं के अन्धकूप में धकेल देता है। नाटककार ने कथानक के सभी अंगों में संगठन करते हुए संक्षिप्तता, कसावसहट एवं प्रभविष्णुता के ग्रन्थों को कथानक को समाहित किया है। छब्बीस घण्टे की अल्पावधि में लिपटी–सिमटी संक्षिप्त और रोचक कथावस्तु का सफलतापूर्वक दो–ढाई घण्टे में मंचन किया जा सकता है। उन्होंने कथावस्तु के अन्तराल विकल्प को दो भागों में विभाजित किया है। केवल एक ही दृश्यबन्ध पर सारा नाटक सफलतापूर्वक खेला जा सकता है। किंचित मात्रा में भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। कथानक का विभाजन न अंकों और न दृश्यों में प्रस्तुत किया गया है कथानक को संक्षिप्त रूप देने के लिए उन्होंने अपनी जागृत दृश्य–सूक्ष्म विवेक का भी भरपूर सहारा लिया है।

इसके अतिरिक्त नाटककार की भाषा संवाद एवं रंगसंकेत कथावस्तु का विकास करने की पूरी क्षमता रखते हैं। नाटक में प्रस्तुत (प्रयुक्त) चरित्रों का चरित्रिक विकास कथावस्तु को इतनी गति देता है कि भविष्य में घटने वाली अलक्ष्य घटनाओं का संकेत भी मिल जाता है। इस ही दृश्यबन्ध में सम्पूर्ण कथावस्तु को प्रस्तुत करने के लिए नाटककार में यथास्थान पर्याप्त रंग संकेत दिए है। उससे दृश्य निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है। यथा–

"**पुरुष एक** : (हाथ बढ़ाकर) लाओ, मुझे दे दो।

**स्त्री** : (पाजामें को झाड़कर फिर से तहाती हुई) अब क्या दे दूँ! पहले खुद भी तो देख सकते थे।

गुस्से में कवर्ड खोलकर पाजामें को जैसे उसमें कैद कर देती है। पुरुष एक फालतू–सा इधर–उधर देखता है, फिर एक कुर्सी की पीठ पर हाथ रख लेता है।

(कबर्ड के पास आकर ट्रे उठाती) चाय किस–किसने पी थी?"

जहाँ तक काल–अन्विति का प्रश्न है नाटक में केवल चौदह या पन्द्रह घण्टों की परिस्थितियों को कथावस्तु का जामा पहनाया गया है। पहले दिन पाँच बजे शाम से लेकर दूसरे दिन सात बजे शाम तक की घटनाओं में नाटककार ने बड़ी कुशलता के साथ मंचरच करने का प्रयास किया है। इससे नाटक की अभिनेयता को पर्याप्त बल मिलता है। नाटक का कार्य–व्यापार मंच पर आए हुए पात्रों द्वारा बड़ी तीव्रगति से आगे बढ़ता है। इसका एक कारण यही है कि इसकी कथावस्तु संक्षिप्त है। इसके पात्र घटनाक्रम को मोड़ने में पूर्णतः सक्षम है। कथानक के अंगों में संगठन है। कथा–संयोजक दर्शकों को स्तब्ध एवं जिज्ञासु बनाए रखता है।

2. **पात्रों की सीमित संख्या एवं यथार्थपरक चित्रण :** प्रस्तुत नाटक की पात्रसंख्या भी अत्यन्त सीमित है–केवल दो पुरुष पात्र और तीन स्त्री पात्र ही समस्त कथा को व्यक्त कर देते हैं। एक ही व्यक्ति पुरुष एक, पुरुष दो, पुरुष चार की भूमिकाओं में प्रस्तुत होता है। पात्र–संख्या सीमित होने के कारण उनका चरित्र–चित्रण भी बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ है। महेन्द्रनाथ, सावित्री अशोक, विन्नी आदि सभी पात्रों का चरित्रांकन वास्तविक मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ। इससे जहाँ पात्रों के चरित्र चित्रण में सजीवता आई है। वही रंगमंच पर नग्न यथार्थ से साक्षात्कार भी दर्शकों को हुआ है। दर्शक पात्रों की मनःस्थिति, स्वभाव और आचार–विचारों से शीघ्र ही परिचित हो जाते है **डॉ. रीता कुमार** ने राकेश की पात्र–योजना के बारे में लिखा है–"राकेश ने अपने किसी भी नाटक में पात्रों की भीड़ एकत्रित नहीं की। विभिन्न सामाजिक विसंगतियों को मूर्त्त करने में आवश्यक पात्रों की ही योजना की है। हिन्दी नाटकों में पहली बार पात्रों के आनतरिक द्वन्द्व और मनोभाव, विसंगतियों और संवेदनशील व्यक्ति के संघर्ष को, एकरस जिन्दगी की ऊब और निरर्थक के तथा बेमानी होते पारस्परिक सम्बन्धों के बोझ को ढोती व्यक्ति की विवशता को उनके नाटकों के पात्र बहुत सशक्त रूप में मूर्त्त करते हैं।"

इसके अलावा पात्रों की वेशभूषा, भाषा, संवाद आदि में रंगमंच के अनुकूल है। दर्शक इन यथार्थवादी धरातल के पात्रों से तादात्म्य शीघ्र करके नाटक की कथावस्तु का रस ग्रहण करने लगते हैं। अतः 'आधे–अधूरे' में त्रस्त और परस्त–चरित्र भले ही विकासहीन एवं व्यक्तिवादी 'अहं' से ग्रस्त हो, पर फिर भी ये पात्र एक दर्पण को प्रस्तुत करते हैं जो हमें अपने–आप को अपने आस–पास के जीवन और परिवेश से परिचित कराते हैं।

3. **चुस्त-संवाद योजना :** राकेश जी ने प्रस्तुत नाटक की संवाद योजना एकदम चुस्त, बहुअर्थीगर्भी एवं रंगमंचीय दृष्टि के अनुकूल की है। नाटककार ने प्रत्येक पात्र को रंगमंच पर इस प्रकार अभिव्यक्ति प्रदान की है कि नाटककार का कथ्य एवं पाठकों की संवेदना एकाकार हो गई है। पात्रों के अति लघु तीखे संवाद अन्य पात्रों एवं दर्शकों पर अस्त्र की भाँति वार करते हैं। इस नाटक की संवाद–योजना में संवाद की तीव्रता उसके प्रभाव को और अधिक सघन बनाती है, पात्रों के मानसिक आक्रोश की अभिव्यक्ति का सशक्त साधन बनी है।

मोहन राकेश चुस्त–चुटली, सरल–प्रवाहशील संवाद योजना की अवतरण में निष्णात है। वास्तव में इन सवादों का सारा सौन्दय इनकी रचना–बनावट में है जहाँ नाटकार की आत्मीयता और पात्रों की आत्मीयता एकाकार हो गई है। उन्होंने नायक–नायिका (महेन्द्रनाथ –सावित्री) की टकराहट को संवादों के माध्यम से भी अभिव्यक्त किया है–

**"पुरुष एक** : काफी अच्छा आदमी है जगमोहन और फिर से दिल्ली में उसका ट्रांसफर भी हो गया है...कह रहा था आएगा किसी दिन मिलने।

**स्त्री** : खूब तारीफ करो और जिस–जिसकी हो सके तुमसे।" पूरे नाटक में राकेश की संवाद योजना कहीं भी सतही, उथली, अस्वाभाविक या भाषाजाल प्रतीत नहीं होती। इतने बड़े–बड़े नाटक में एक भी पंक्ति शून्य जड़, अपाठ्य नहीं कही जा सकती। वास्तव में ये लघुकाय संवाद 'देखने में छोटे लगें पर घात कर गम्भीर' की उक्ति को चरितार्थ करते हैं अर्थात आकार में छोटे–छोटे, चुस्त–चुटीले पर सम्पूर्ण अर्थ को वहन करने की क्षमता निहित है।

**डॉ. बन्सल** ने 'आधे–अधूरे के संवादों की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए लिखा है–"आधे–अधूरे के अतिलघु, तीखे संवाद ने अस्त्रों के समान तेजी से उठकर गहरा वार करते है। वे बिजली के समान चमकते हैं और कौंध कर विलीन हो जाते हैं।

यथा–

**स्त्री** : फिर भी कोई खास बात।

**बड़ी लड़की** : खास बात कोई भी नहीं?

**स्त्री** : तो?

**बड़ी लड़की** : और सभी बातें खास हैं।

**स्त्री** : जैसे?

**बड़ी लड़की** : जैसे...सभी बातें?

**स्त्री** : तो मेरा मतलब है कि...?"

अतः आधे–अधूरे की संवाद योजना अत्यन्त संक्षिप्त चुस्त–चुटील और अभिनेय गुण से युक्त है जिसके कारण यह नाटक रंगमंच की कसौटी पर खरा उतरा है।

**डॉ. गिरीश रस्तोगी** कहा कहना है–"इस नाटक के संवाद की गति को ज्यादा महत्त्व दिया गया है, यह विकास का लक्ष्य है। केवल सिंघानियाँ एवं संवादों को एक ठहराव है अन्यथा नाटक के संवादों में मति ही गति है, क्योंकि वह उन सभी पात्रों के मानसिक आक्रोश को अभिव्यक्त करने के लिए जरूरी है और तीखेपन में तेजी और तल्खी सवाभाविक भी है इसके अतिरिक्त कही संवाद अधूरे–अस्फूट है कहीं पूरे–पूरे लम्बे और कहीं एकदम छोटे।" इस नाटक की संवाद–योजना में पात्रानुकूलता स्वाभाविकता, सरलता, संक्षिप्तता, व्यंग्यात्मकता, यर्थापरकता, रोचकता आदि के गुण नाटक के रंगमंच पर सफलतापूवक प्रषित करते है।

सिघांनियाँ प्रकरण में स्त्री एवं लड़के के संवादों से सिंघानियाँ की कामुक एवं स्वार्थपरकता पर व्यंग्य किया गया है। यथा

**"स्त्री** : तू एक मिनट जाएगा बाहर?

**लड़का** : क्यों?

**स्त्री** : बैटरी डाउन हो गई है। धक्का लगाना पड़ेगा।

**लड़का** : अभी से? अभी तो नौकरी की बात तक नहीं की उसने...

**स्त्री** : जल्दी चला जा। उन्हें पहले ही देर हो गई है

**लड़का** : अगर सचमुच दिला दी उसने नौकरी, तब तो पता नहीं।"

4. **सहज-सरल भाषा-योजना** : जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, रंगमंचीय नाटक के लिए उसका अत्यन्त महत्त्व है क्योंकि क्लिष्ट भाषा अक्सर उसके अभिनयन में बाधक बन जाती है। प्रसाद के नाटकों को मंच पर सफलता न मिलने का एक मुख्य कारण उनकी भाषागत क्लिष्टता भी रहा है। उनकी काया–कठिन्य के कारण दर्शक की ग्रहण क्षमता कुण्ठित हो जाती है। राकेश जी को रंगमंच का पूरा अनुभव है और रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटकों की भाषा कैसी होनी चाहिए इसका पूर्ण ज्ञान है। उनके ऐतिहासिक नाटकों में भी रंगमंचानुकूल भाषा का ही प्रयोग हुआ है–यह और बात है कि परिवेशगत यथार्थता को बनाए रखने के लिए उन्हें कुछ संस्कृतनिष्ठ शब्दों को भी प्रयुक्त करना पड़ा। आधे–अधूरे उनका सामाजिक समस्या–नाटक है इसलिए इसमें आधुनिक–परिवेश को यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर सकने वाली उस भाषा को प्रयुक्त किया गया है जो बोलचाल की उर्दू–अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी तो है ही साथ ही नाटकीय कथावस्तु के सर्वथा उपयुक्त है।

'आधे–अधूरे' की भाषा आम आदमी की भाषा होते हुए भी सर्जनात्मक शक्ति और रंगतत्त्वों से पूर्ण है। भाषा की सादगी, सच्चाई और तनाव को व्यक्त करने की क्षमता स्थान–स्थान पर पाठक को करंट के समान छू जाती है। घर–घुसरा, नाशुके आदमी, रबड़ का टुकड़ा–जैसे आज के समाज में प्रचलित इन नये शब्दों से राकेश जी ने इस नाटक की भाषा को रंगमंचीय सम्प्रेषण के अनुकूल और गहन अर्थवत्ता से युक्त बनाया है। अतः प्रस्तुत नाटक की भाषा सर्वत्र सहज, सरल, यथार्थपरक, रोचक प्रवाहमयी एवं व्यंग्यप्रधानता के गुणों से युक्त सही अर्थों में रंगमंचीय भाषा है।

5. **सफल दृश्य योजना** : मंच सज्जा एवं दृश्य योजना का चुनाव राकेश जी ने अत्यन्त सावधानी सुलभता के आधार पर किया है। यह पूरा नाटक एक ही दृश्यबन्ध में सफलतापूर्वक मंच पर अभिनीत हो सकता है। इसकी दृश्य–योजना में दृश्य परिवर्तन करने की आवश्यकता निर्देशक को नहीं पड़ती है। यह सफल दृश्य–योजना राकेश जी की अनुभवी रंगमंचीय दृष्टि का परिणाम है। महेन्द्रनाथ और सावित्री के घर का वह बड़ा कमरा जो बैठने–उठने के लिए प्रयुक्त होता है, में साग नाटक घटित हो जाता है। इस कमरे को नाटककार ने बहुउद्देशीय प्रयोग किया है। नाटककार ने मंच पर दृश्य योजना के इतने पर्याप्त रंग संकेत दिए हैं कि पूरी दृश्य–योजना इसी कमरे में साकार हो जाती है। दृश्य योजना के लिए राकेश जी ने उन उपकरणों का चयन किया जो लगभग हर मध्यवर्गीय परिवार में सहज उपलब्ध हो जाते हैं। इस सहज–सुलभ उपकरणों को जुटाना ही राकेश की अनुभवी रंगदृष्टि का परिणाम है। **श्री ओम शिवपुरी** ने नाटक के दृश्य स्थल के बारे में लिखा है–" 'आधे–अधूरे' कार्य स्थल मकान का बैठने का कमरा है, जिसमें सोफे, कुर्सियाँ, अलमारी, किताबें, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब इस पर धूल की तह जम गई है क्रॉकरी पर चटखन है। दीवारें मटमैली हो गई है। इस परिवार का हर सदस्य एक–दूसरे से कटा हुआ है। घर की हवा तक में तल्खी की गन्ध है, जो पाँच व्यक्तियों के मन में भरी हुई है–अब, घुटन, आक्रोश, विद्रुप, दम घोटने वाली मनहूसियत जो मरघट में होती है।"

अतः राकेश जी ने अपनी दृश्य–योजना में कुछ भी ऐसा नहीं रखा है जो रंगमंच पर उपस्थित करना कठिन हो। इतना ही नहीं उपलब्ध उपकरणों वस्तुओं के भी सरलतम प्रयोग से सफल दृश्य–योजना की है।

6. **पर्याप्त रंग संकेत एवं रंग निर्देश** : मोहन राकेश ने निर्देशक की सुविधा के लिए 'आधे–अधूरे' नाटक में पर्याप्त मात्रा में रंग–संकेत या रंग–निर्देश दिए हैं। नाटक के प्रारम्भ में ही यह रंग संकेत, रंग–निर्देश दृष्टव्य है–"पर्दा उठने पर सबसे पहले चाय पीने के बाद डाइनिंग टैबल पर छोड़ा गया अधटूटा और आलोकित होता है। फिर फटी किताबों और टूटी कुर्सियों में से एक–एक कुछ सेकेंड बाद प्रकाश सोफे के उस भाग पर केन्द्रित हो जाता है जहाँ बैठा काले सूट वाला आदमी सिगार के कश खींच रहा है। उसके सामने रहते प्रकाश उसी तक सीमित रहता है, पर बीच–बीच में कभी यह कोना और कभी वह कोना साथ आलोकित हो जाता है।"

नाटककार ने इन रंग संकेतों या रंग निर्देशों के माध्यम से एक तरफ तो नाटक के रंगमंचीय स्वरूप में मजबूत किया है, दूसरे मध्यवर्गीय परिवार की दयनीय स्थिति, घुटन, कुण्ठा आदि रंगध्वनि में उजागर किया है। राकेश जी ने रंग–संकेतों के साथ

प्रकाश एवं ध्वनि योजना द्वारा भी प्रस्तुत नाटक के मंचन को सफल बनाने की कोशिश की है। नाटक के मार्मिक क्षणों में उभरने वाला शोकप्रद और खण्डहर की वीरानियत का संगीत एवं पात्रों की धुँधली आकृतियों पर सिमटता हल्का प्रकाश नाटक को गहरी अर्थवत्ता प्रदान करता है। इसके साथ–साथ एक ही दृश्यबन्ध पर काल–परिवर्तन का संकेत भी उसके रंग संकेतों की व्यापकता एवं सार्थकता को प्रकट करता है।

अतः राकेश जी ने अपने रंग संकेतों, प्रकाश एवं ध्वनि व्यवस्था से नाटक की अभिनेयता को सफलता की सीढ़ी तक पहुँचाने का काम स्वयं ही कर दिया, न किसी नाट्य निर्देशक पर निर्भर रहे।

**7. वेशभूषा एवं साज-सज्जा :** नाटककार ने अपने पात्रों की वेशभूषा एवं साज–सज्जा के बारे में स्पष्ट रंग निर्देश दिए हैं। चारों पात्रों की वेशभूषा के बारे में रंगसंकेत नाटक के प्रारम्भ में ही मिलते हैं–पुरुष एक के रूप में वेशान्तर पतलून–कमीज, पुरुष दो के रूप में पतलून और बन्द गले का कोट। पुरुष तीन के रूप में पतलून, टीशर्ट तथा पुरुष चार के रूप में–पतलून के साथ में पुरानी काट का लम्बा कोट। इसी प्रकार सावित्री की वेशभूषा–ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण दूसरी साड़ी विशेष अवसर की इसी प्रकार बड़ी लड़की की सगी माँ से साधारण छोटी लड़की फ्रॉक चुस्त, पर एक मोजे में सुराख लड़के की वेशभूषा के बारे में पतलून के अन्दर दबी–भड़कीली बुशर्ट, धुल–धुलकर घिसी हुई इन पात्रों के लिए वेशभूषा अत्यन्त सरल व सहज ग्राह्य है।

इस प्रकार नाटककार ने अपने सभी पात्रों की वेशभूषा को उनके व्यक्तित्व, मनःस्थिति और कार्य कलाप के अनुरूप रखा है। किसी भी पात्र के लिए मेकअप भी अनिवार्य नहीं है जिससे पात्र अपनी सरल और साधारण वेशभूषा में जन–जीवन की समस्याओं को और गहराई से मूर्त करते हुए सीधे दर्शक द्वारा साधारणीकृत हो जाते हैं। **ओम शिवपुरी** ने इस नाटक की वेशभूषा एवं साज–सज्जा के बारे में लिखा है–"प्रस्तुति की अन्य उल्लेखनीय विशेषता थी–मेकअप का न होना। नायिका केवल वही मेकअप किए हुए थी, जो उस जैसी स्त्री वास्तविक जीवन में करती है। इसके अलावा किसी कलाकार ने पाउडर इत्यादि छुआ भी नहीं था। नाटक की साज–सज्जा भी अत्यन्त स्वाभाविक सादी होते हुए भी सार्थक है। इस प्रकार की सरल–सुलभ वेशभूषा कहीं भी सहजता से उपलब्ध हो सकती है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक के कथानक के अंगों में संगठन, पात्रों की सीमित संख्या और यथार्थवादी चित्रण, सरल और सार्थक रंगभाषा, सफल संवाद योजना, पर्याप्त रंग संकेत, पात्रानुकूल वेशभूषा और सरल–सहज प्राप्त मंच सज्जा की सामग्री के कारण रंगमंच की कसौटी पर एकदम खरा उतरता है।

यह नाटक 'धर्मयुग' में अपने प्रकाशन और दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता तथा देशभर में अन्य कई स्थानों पर हुए मंचन के कारण इतना प्रसिद्ध हो गया था कि इसी नाटक पर राकेश जी के 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' और नेहरू फैलोशिप मिली। सुप्रसिद्ध नाट्य–निर्देशक **ब.व. कारंत** के अनुसार, "हिन्दी रंगमंच पर 'आधे–अधूरे' की शायद हिन्दी का एकमात्र मौलिक नाटक है जो सबसे ज्यादा खेला गया और पसन्द किया गया। पहली बार इसने साहित्यिक और रंगमंचीय नाटक में भ्रामक अन्तर को भी मिटाया।"

**नैमिचन्द्र जैन** का कथन भी इस नाटक की रंगमंचीय सफलता के विषय में उल्लेखनीय है–"वह (आधे–अधूरे) निःसंदेह रंगमंच पर प्रस्तुत करने योग्य; सार्थक और समकालीन संवेदना के समीप का नाटक है...'आधे–अधूरे' आज के इंसानों की जिन्दगी को किसी कदर आज के ही मुहावरों में प्रस्तुत करता है।"

# 9

# सावित्री : चरित्र-चित्रण

**सावित्री** 'आधे–अधूरे' नाटक की प्रमुख एवं सशक्त पात्रा है। वह नाटक में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहती है तथा **नाटक** की सभी घटनाओं के मूल में वहीं है। नाटक के अन्य सभी पात्र उससे सम्बन्धित हैं तथा फलभोक्त्री भी वहीं सिद्ध **होती है**। अतः निर्विवाद रूप से नाटक की नायिका है। उसके बहिरंग व्यक्तित्व का चित्रांकन नाटककार ने इस प्रकार से किया **है**–"उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष। ब्लाऊज और साड़ी साधारण होते हुए भी **सुरुचिपूर्ण**। दूसरी साड़ी विशेष अवसर की।"

**सावित्री इस** नाटक की सबसे अधिक विवादास्पद एवं सशक्त पात्रा है। सावित्री का दोहरा व्यक्तित्व है, एक घर के भीतर **और** दूसरा बाहर। घर में उसे अपने पति व बच्चों की देखभाल, चिन्ता करनी है। बाहर उसका अपने बॉस से संबंध बनाए **रखना** तथा अपने बेटे की नौकरी के लिए पर–पुरुषों से संबंध रखना। लेकिन यह न उसके बेटे को पसंद है न पति को। आज **का जमाना** सिफारिश और पैसों का है। सावित्री की त्रासदी ही यह है कि घर में दो पुरुषों के होने पर भी उसे ही बाहर **के आदमियों से** निपटना पड़ता है। सावित्री के निमंत्रण पर घर आए मेहमानों का बेटा मजाक उड़ाता है तो पति घर से गायब **रहता है**। वह तंग आकर एक दिन बेटे से कह देती है–'अगर उसे यह पसन्द नहीं तो वह आज से उसके लिए कोशिश करना **बन्द कर** देगी।' अगर बाप–बेटे को सावित्री का यह रूप पसन्द नहीं तो वे उसकी नौकरी छुड़वाकर स्वयं जा सकते हैं। यह **काम** वे करना नहीं चाहते और उसे ताने देने से भी नहीं चूकते। 'आधे–अधूरे' में नारी की इस मनोव्यथा का यथार्थ चित्रण **हुआ है**। आखिर अपने परिवार के लिए इतना खपकर सावित्री को क्या मिला? वही अपमान ताने व्यंग्य आदि। उसकी आदतें **उन्हें** पसन्द नहीं थी पर वे फिर भी चुप थे क्योंकि उसी से घर का खर्चा चल रहा था।

**कहा** जाता है कि गृहलक्ष्मी से ही घर स्वर्ग बनता है। अगर वह उच्छृंखल हुई तो अच्छा खासा घर भी नरक बन जाता है। **आधुनिक** विचारों वाली शिक्षित एवं नौकरीपेशा नारी भी अपने घर को स्वर्ग बना सकती है, यदि वह खोखली एवं अर्थहीन **महत्वाकांक्षा** में न पड़कर अपने व्यक्तित्व को संयमित बनाए रखे। अगर वह झूठे दिखावे, अर्थहीन स्वाभिमान, कोरी चपलता **से दिग्भ्रमित** हो जाए, तो भले ही वह तितली बन जाएगी पर गृहिणी कदापि नहीं बन सकती। 'आधे–अधूरे' नाटक में सावित्री **एक ऐसी** गृहिणी है जिसका भरा–पूरा परिवार तो है पर वह उस परिवार को घर नहीं बना पाती। वह दीन–हीन और **आत्मसमर्पण** वाली नारी न होकर अपने अहं और स्वाभिमान को सुरक्षित रखने वाली स्वावलम्बी स्त्री है। सारे परिवार के बोझ **को ढोती** वह अपनी मर्जी अपनी इच्छाओं को सब पर लादने की क्षमता रखती है। क्योंकि वह परिवार का आर्थिक केन्द्र बिन्दु **है–अन्य** सभी उस पर आश्रित हैं। आर्थिक रूप से परिवार की पोषिका होने के कारण वह अपनी उच्छृंखल महत्त्वाकांक्षाओं **को जबर्दस्ती** परिवार पर थोपती और पूरे परिवार के विघटन का कारण बनती है। अतः नाटक में सावित्री की प्रमुख रूप **से** निम्नलिखित चारित्रिक विशेषताएँ उभर कर सामने आती है–

1. **कर्त्तव्य बोध युक्त नारी** : नाटक में महेन्द्रनाथ तो कर्त्तव्यपथ से विचलित है। परन्तु सावित्री नाटक में कर्त्तव्यरायण नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। सथवत्री कठोर परिश्रम करके अपने बेकार–बेगार पति महेन्द्रनाथ और अपने बाल–बच्चों का भरण–पोषण करती है। नाटक के प्रारम्भ में ही वह लदी–थकीहारी घर में प्रवेश करती है। नाटककार का कहना है–"स्त्री (सावित्री) कई–कुछ सँभाले बाहर आती है। कई–कुछ में कुछ घर का है, कुछ दफ्तर का है, कुछ अपना। चेहरे पर दिन–भर के काम की थकान है और इतनी चीजों के साथ चलकर आने की उलझन। आकर सामान कुर्सी पर रखती हुई पूरे कमरे पर एक नजर डाल लेती है।" इस प्रकार एक ओर तो सावित्री परिवार के लिए अर्थार्जन करती है तो दूसरी तरफ बाल–बच्चों की जिम्मेदारी–दायित्व को भी अपने दुर्बल कन्धों पर दृढ़ता से सँभाले हुए है। अपने पुत्र अशोक, पुत्री बिन्नी–किन्नी के विकास–सुख–सुविधा के लिए भी चिन्तित है। इस घर का कुछ बन जाए, इसलिए भी वह भरसक प्रयास

करती है। इसी हेतु वह अपने बॉस सिंघानियाँ को घर पर आमन्त्रित करती है। और अपने बच्चों को भविष्य एवं परिवार की आर्थिक दशा सुधारने के लिए अपने चरित्र को भी पतन की गर्त में गिरा देती है।

**डॉ सुन्दर लाल कथरिया** का कहना है--"सावित्री उस आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है जिसका पति महेन्द्रनाथ निठल्ला है। फलतः वह परिवार के संचालन का बोझ ढोती है। उसे अपने बेटे की नौकरी और बेटी के सुख की चिन्ता है। परिवार की आर्थिक अव्यवस्था और उससे उत्पन्न तनाव से वह दिनोंदिन कटु होती जाती है। परिवार के लिए दिन--रात जुटे रहकर भी वह उपेक्षा और तिरस्कार पाती है।"

2. **महत्त्वाकांक्षी आधुनिक नारी :** 'आधे--अधूरे' नाटक में सावित्री एक महत्त्वाकांक्षी नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। महेन्द्रनाथ सावित्री की महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने में सर्वथा असमर्थ है। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु वह अन्य पुरुषों का अवलम्बन पाकर घर में विषैले वातावरण से मुक्त होने का प्रयत्न करती है। किन्तु उसके जीवन में आने वाले सभी पुरुष--जुनेजा, शिवजी, जगमोहन और मनोज--अपनी किसी--न--किसी दुर्बलता से अपूर्ण सिद्ध होते हैं। आगे का मार्ग बन्द पाकर जब वह अतीत में लौटकर एक नई जिन्दगी अपनाने के संकल्प से जाती है, तो वहाँ भी जगमोहन बच्चों के भविष्य की आड़ में अपना दामन छुड़ा लेता है। वह पुनः ढही हुए संकल्पों की रेत में लौट आती है। कितनी त्रासदायक बन जाती है जिन्दगी, जब व्यक्ति चाहकर अपनी परिस्थितियों से मुक्त न हो पाए, जब अतीत और भविष्य वर्तमान के अँधेरे में खो चुके हो। अपूर्णता के इस संसार में पूर्णता की अपेक्षा करना अपने साथ दूसरों के जीवन में विष घोलने के समान है। नाटक के अन्त में आने वाला जुनेजा सावित्री के जीवन की इसी वास्तविकता पर प्रकाश डालता है कि चारों पुरुषों में से कोई भी पुरुष उसका पति होता तो भी उसकी निराशा का स्वरूप यही होता। जुनेजा के निम्न संवाद सावित्री के अवचेतन का प्रतिबिम्ब है--"क्योंकि तुम्हारे यहाँ जीने का मतलब रहा है...कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना।" नाटककार का कहना है--"जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं, उसकी तनख्वाह को, नाम एवं रुतबे को बुलाया है।" प्रारम्भ में महेन्द्रनाथ एक समृद्ध व्यापारी था, इसी हेतु सावित्री उससे विवाह करती है। महेन्द्रनाथ स्पष्ट कहता है--"उन दिनों इस घर का खर्च बहुत अधिक था तथा सावित्री को खुश करने के लिए वह चार सौ रुपए महीना के किराए पर बड़ी--बड़ी कोठियाँ लेता है, किस्तों पर फ्रीज खरीदता है और आना--जाना भी टैक्सियों में होता तथा बच्चों को कॉन्वेंट जैसे महँगे स्कूलों में पढ़ाया जाता है।" परन्तु अब सावित्री अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु विपथगामिनी बन जाती है।

अतः कहा जा सकता है कि सावित्री उस आधुनिक नारी का प्रतिरूप है जो अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और इच्छाओं की पूर्ति हेतु पर--पुरुषों से अनैतिक सम्बन्ध बनाकर भारतीय नारी के आदर्श एवं एक गरिमा को ठेस पहुँचाती है तथा अपने परिवार के विघटन का कारण बनती है।

3. **भौतिक सुख-सुविधा भौतिक भोगिनी नारी :** सावित्री वास्तव में एक सुविधा भोगिनी नारी है। वह केवल अपनी सुविधाओं पर ध्यान देती है। वह यह भी नहीं सोचती कि उसकी भोगवादिता परिवार पर धुन लगा रही है। वह कामुक और सुविधाजीवी नारियों का ही प्रतिनिधित्व करती है। अपना पति उसे आधा--अधूरा लगता है, क्यों? इसलिए कि वह उसमें अपना एक मादा, अपनी एक शख्सियत नहीं देखती। वह आदमी में कई चीजें एक साथ देखना चाहती है--पद भी, व्यक्तित्व भी, वैभव भी और एक पूरा आदमी भी। सावित्री के साथ विवाह के समय महेन्द्रनाथ एक सफल एवं समृद्धशाली व्यापारी था और सावित्री की इच्छाएँ असीम, अनन्त और अपार थी लेकिन महेन्द्रनाथ की नासमझी और ऐय्याशी प्रवृत्ति ने सारे धन को लुटा दिया, जिसके कारण सावित्री की इच्छाओं पर तुषारापात हो गया। सावित्री को कठोर परिश्रम करके अब पूरे परिवार का पालन--पोषण करना पड़ता है और अपने सुखों के प्रति ललक के कारण ही वह जगमोहन के साथ घर छोड़ने के लिए तत्पर है।

सुप्रसिद्ध रंगशिल्पी **ओम शिवपुरी** का कहना है--"महेन्द्रनाथ सावित्री से बहुत प्रेम करता है। सावित्री भी उसे चाहती रही होगी, लेकिन ब्याह के बाद महेन्द्रनाथ को बहुत निकट से जानने पर उसे, उससे वितृष्णा होने लगी, क्योंकि जीवन में सावित्री की अपेक्षाएँ बहुमुखी और अनन्त है।" नाटक में पुरुष चार अर्थात जुनेजा स्त्री की उच्च महत्त्वाकांक्षाओं और मृग तृष्णा और उसके अन्तर्विरोध को प्रकट करते हुए कहता है--

"पुरुष चार : असल बात इतनी है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिंदगी में, तो साल--दो--साल बाद, तुम यही महसूस करतीं कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिंदगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र कोई जुनेजा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचतीं यही सब महसूस करतीं। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है--कितना--कुछ एक साथ होकर,

कितना–कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढकर जीना। वह उतना–कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता इसलिए जिस–किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहतीं।'

4. **दाम्पत्य जीवन से असन्तुष्ट नारी** : सावित्री अपने दाम्पत्य जीवन से असन्तुष्ट है। वह अपने पति महेन्द्रनाथ के निठल्लेपन, पराश्रित एवं दब्बूपन के कारण उसे पति रूप में पाकर सन्तुष्ट नहीं है। विवाह से पूर्व महेन्द्रनाथ एक सफल और धनाढ्य व्यापारी था लेकिन उसने विवाह के बाद सारा पैसा ऐय्याशी में उड़ा दिया जिसके कारण परिवार का जीवन में सुखों के प्रति गहरी ललक थी और उसकी इच्छाएँ भी असीम और अनन्त थी। लेकिन अब उसकी इच्छाएँ पूरी नहीं हो सकती थी, वह महेन्द्रनाथ को आधा–अधूरा मानकर उसके लिए कभी भी पत्नी–प्रेम का समर्पण नहीं कर पाई। इतना ही नहीं क्षुब्ध हालत में तो वह अपने–आप को महेन्द्र की पत्नी मानने से भी इनकार करती है–

"मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी। महेन्द्र भी एक आदमी है, जिसके अपना घर–वार है, पत्नी है, यह बात महेन्द्र ने ब्याह क्या किया, आप लोगों की नजर में आप का ही कुछ आपसे छीन लिया। महेन्द्र अब पहले की तरह हँसता नहीं। महेन्द्र अब दोस्तों में बैठकर पहले की तरह खिलता नहीं। महेन्द्र अब वह पहले वाला महेन्द्र नहीं रह गया। और महेन्द्र ने जी जान से कोशिश कि वह वही बना रहे किसी तरह। कोई यह न कह सके जिससे कि वह पहले वाला महेन्द्र का नहीं गया और इसके लिए महेन्द्र घर के अन्दर रात–दिन छटपटाता है। दीवारों से पटकता है। बच्चों को पीटता है। बीवी के घुटने तोड़ता है।"

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि सावित्री दाम्पत्य जीवन से कितनी असन्तुष्ट थी। विवाह के दो वर्ष के भीतर ही महेन्द्रनाथ सावित्री को एक पूरे आदमी का आधा–चौथाई से भी कम, एक लिजलिजा और चिपचिपा आदमी लगने लगता है और पूरे आदमी की तलाश में उसके सामने सबसे पहले आता है–महेन्द्र का मित्र जुनेज़ा, जो पैसे और दबदबे वाला एक काइयाँ व्यक्ति है। जुनेज़ा के साथ कोई मार्ग न मिल पाने के कारण उसकी दृष्टि क्रमशः शिवजीत, जगमोहन, मनोज एवं सिंघानिया जैसे पर–पुरुषों पर पड़ती है। वह उनके साथ अपने बाकी जीवन को बिताने की असफल कोशिश करती है।

5. **विपथगामिनी एवं अहंकारी महिला** : सावित्री इस नाटक में एक ऐसी कामुक और विपथगामी आधुनिक महिला का प्रतिनिधित्व करती है जो अपनी सुविधाओं के व्यामोह में यहाँ–से–वहाँ भटकती है किन्तु उसे हर पुरुष एक जैसा मिला जिसने उसे निचोड़ा, रस लिया और फिर निचुड़ी स्थिति मे या तो उसकी लड़की को रात के अँधेरे में भगा ले गया या फिर उसे सहानुभूति के दो–चार शब्द कहकर दुत्कार दिया।

अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और काल्पनिक पूरे पन की तलाश में वह भारतीय नारी के समस्त आदर्शों को सूली पर पर चढ़ाकर पाँच–पाँच पुरुषों से अनैतिक सम्बन्ध बनाती है। ऊँचे पद तनख्वाह और व्यक्तित्व के लिए अपने पतिव्रत रूप को त्याग कर विपथगामिनी बनती है। तथा अपने परिवार की घुटन–टूटन का कारण बनती है।

इसके साथ–साथ वह स्वावलम्बी एवं कमाऊ महिला है और उसका पति निठल्ला, बेकार, बेगार है जिसके कारण वह अहं भाव से युक्त हो गई है। वह चाहती है कि इस घर में जो कुछ भी हो वह उसी की इच्छा के अनुरूप हो। वह इतनी अहंकारी महिला है कि अपने पति महेन्द्रनाथ को भी पति स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह स्पष्ट कहती है–'मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी।' वह पग–पग पर महेन्द्र के गृहपतित्व को चुनौती देती है–

"पुरुष एक : पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है।

स्त्री : तुम्हारा घर। हुँह।

पुरुष एक : तो मेरा घर नहीं है यह? कह दो नहीं है।

स्त्री : सचमुच तुम अपना घर समझते इसे, तो।"

वह अपने पति महेन्द्रनाथ के मैले पाजामे को इस प्रकार उठाती है जैसे मरा हुआ जानवर। वह महेन्द्रनाथ को पाजामें, चाय की जूठी प्यालियों आदि के लिए भी डाँटती है।

वह इतनी जिद्दी हठीली एवं अहंभाव से युक्त महिला है कि पुरुष चार (जुनेज़ा) के याद दिलाने पर उसके समक्ष अपनी हठी का प्रदर्शन करते हुए महेन्द्रनाथ को अपने ही पास रख लेने को कहती है। वह पुरुषों की इस साजिश के प्रति क्षुब्ध हो उठती है और कहती है–"आप जाइए और कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रखिए। इस घर में आना और रहना सचमुच हित में नहीं है उसके। और मुझे भी...मुझे भी अपने पास उस मोहरे की बिल्कुल–बिल्कुल जरूरत नहीं है जो न खुद चलता है और न किसी और को चलने देता है।"

6. **यन्त्रणाओं की शिकार** : इस नाटक में सावित्री का इतना फ्लर्ट (आवारा) होना एक मनावैज्ञानिक कारण भी रखता है। यह ठीक है कि वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की मृग-तृष्णा में वह पद, सम्मान, वैभव और पूरे आदमी की तलाश में भटकी है। परन्तु महेन्द्रनाथ के व्यवहार, उसकी परमुखपेक्षिता, दब्बू प्रकृति, निठल्लापन आदि की प्रतिक्रिया में वह मानसिक आघातों से पीड़ित हुई है तथा काल्पनिक पूरेपन की तलाश में आवारा बनी है।

जीवन के हर मोड़ पर अपने पति की असफलताओं से क्षुब्ध सावित्री का नारीत्व विद्रोह करने लगता है। वह अपने पति के रूप में पूरे आदमी की तलाश की एक यथोचित यंत्रणा झेलती है। महेन्द्रनाथ के व्यवहार को नाटककार ने कई स्थलों पर स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। यथा—"फलाँ से तुम ठीक से बात क्यों नहीं करतीं? तुम अपने का पढ़ी-लिखी कहती हो? ..तुम्हें तो लोगों के बीच उनके बैठने की भी तमीज नहीं है...और वही महेन्द्र जो दोस्तों के बीच दब्बू-सा बना हल्के-हल्के मुस्कराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है।...बोल, बोल, बोल, चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे मैं समझता हूँ मानती वह सब नहीं जो मैं कहता हूँ।" पर सावित्री फिर भी वैसे नहीं चलती। वह सब कि नहीं मानती।

बड़ी लड़की बिन्नी के शब्दों में महेन्द्रनाथ का राक्षस रूप ऊभर कर सामने आता है। "आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना...उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बन्द कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने के कमोड पर ले जाकर...(सिहरकर) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।"

इस प्रकार सावित्री के चरित्र में आवारापन वर्तमान आर्थिक विसंगतियों, बढ़ती महत्त्वाकांक्षाओं और पति के निठल्लेपन और पारिवारिक यन्त्रणाओं के कारण हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सावित्री पूरे नाटक की केन्द्रीय पात्रा है। नाटक की समस्त कथावस्तु उसके चारों तरफ घूमती है। नाटक की फलभोगिन भी वही है। अतः हम उसे नाटक की नायिका कह सकते हैं। परिस्थितियों और महत्त्वाकांक्षाओं ने उसे भटकाया है। भटकाया ही नहीं छला भी है। कुल मिलाकर सावित्री का चरित्र वर्तमान समाज में विवशतावश नौकरी के बोझ से दबी मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करता है। पति की आर्थिक असफलता घर के बोझ को पूर्णता उस पर लाद देती है। घर की टूटती-बिखरती जिन्दगी से ऊब कर पिछले बीस-बाईस सालों से अपनी कल्पना के 'एक पूरे आदमी' की तलाश में इधर-उधर भागती रही है। अपने मादे और अपनी शख्सियत वाले पूरे आदमी की तलाश में वह अधूरे आदमियों से टकरा-टकरा कर लौटती है और अपनी खीझ में चीखती-चिल्लाती, तार-तार होती है और उसी अधूरे-पुरुष महेन्द्रनाथ के साथ जीने के लिए मजबूर होती है।

सावित्री को 'आधे-अधूरे' नाटक में उस महत्त्वाकांक्षिणी आधुनिक नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो पति की असमर्थता अथवा आर्थिक वैषम्य को उसका अधूरापन मानकर स्वयं अपने अधूरेपन को अन्य पुरुषों से सम्बन्ध को पूर्ण होने का पूर्ण प्रयास करती है और यह पर-पुरुष आकर्षण उसके व्यक्तित्व को ही तोड़कर रख देता है।

# 10

# महेन्द्रनाथ : चरित्र-चित्रण

दोस्तों का चहेंता और हँसमुख महेन्द्रनाथ सावित्री से शादी के बाद कारोबार में लगातार असफल होकर आज पत्नी की कमाई पर जिन्दा, लड़ने–कुढ़ने वाला और पत्नी के परिचितों या प्रेमियों के आने पर चुपचाप घर से चला जाने वाला एक पराजित, कटु और कभी–कभी खूँखार बन जाने वाला अजीब–सा कुंठित व्यक्ति बन गया है।

महेन्द्रनाथ सम्पूर्ण नाटक में 'पुरुष एक' नाम से ही आता है। उम्र पचास के आस–पास, चेहरे की विशिष्टता में एक व्यंग्य है। यों अपनी स्त्री की कमाई की रोटियाँ तोड़ रहा है और गृह पति की मर्यादा से वंचित है। जीवन की लड़ाई में हार की छटपटाहट है, वह तीन बच्चों का बाप है। पत्नी के परिचितों के आने पर घर से निकल जाता है। "सावित्री को महेन्द्रनाथ सदा से दब्बू, व्यक्तित्वहीन, पर–निर्भर लम्य है और आधा–अधूरा आदमी भी। मन की कटुता और तिम्तता के व्यंग्यबाणों से पत्नी के अन्तरमन को भेदता रहता है। नाटक के प्रारम्भ में पुरुष का परिचय स्वागत भाषण के माध्यम से होता है। वह स्वयं कहता है, "यह नाटक भी अपने में मेरी तरह अनिश्चित है।" महेन्द्रनाथ नाटक का नायक है, साथ ही बेकार, निराश और असफल पति है। शादी के बाद ही उसकी पत्नी को वह एक पूरे आदमी का आधा चौथाई अर्थात् अधूरा, लिवलिवा और चिपचिपाता–सा आदमी लगने लगा।

डॉ. पुष्पा बंसल का कहना है–"गृहपति होते हुए भी वह घर का स्वामी नहीं रह गया है, सबसे बड़ा होने पर भी (वयोवृद्धत्व के नाते) उसको सम्मान नहीं मिलता। मन में एकदम न चाहने पर भी घर के काम–काज में उसका प्रयोग एक स्टैम्प के समान किया जाता है।" नाटक के महेन्द्रनाथ के चरित्र की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ उद्घाटित होती है।

1. **कमजोर एवं पराश्रित व्यक्तित्व :** महेन्द्रनाथ में न तो स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता है और न ही स्वतन्त्र रूप से कोई निर्णय लेने का सामर्थ्य है। न उसकी अपनी कोई विचारधारा है और न उसका अपना कोई व्यक्तित्व है। वह हमेशा प्रत्येक बात के लिए दूसरों पर आश्रित रहता है। वह हर बात के लिए दूसरों के मुँह की ओर ताकता रहता है। सावित्री स्पष्ट घोषणा करती है–"जब से मैंने उसे जाना है, मैंने हमेशा हर चीज के लिए किसी–न–किसी को सहारा ढूँढते पाया है।. ..यह कहना चाहिए या नहीं...जुनेज़ा से पूछ लूँ। यहाँ जाना चाहिए या नहीं जुनेज़ा से राय ले लूँ। कोई छोटी–सी–छोटी चीज खरीदनी है तो भी जुनेज़ा की पसन्द से। कोई बड़े–से–बड़ा खतरा उठाना है–तो जुनेज़ा की सलाह से। यहाँ तक कि मुझसे ब्याह करने का फैसला भी किया, उसने जुनेज़ा की हामी भरने से।" स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेने की क्षमता न होने के कारण तथा पर–आश्रित होने के कारण महेन्द्रनाथ की बौद्धिक क्षमताएँ कुंठित हो गईं तथा व्यक्तित्व का पूर्णरूप से विकास नहीं हो पाया। अतः स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ पर–आश्रित व्यक्ति है।
2. **शंकालु प्रवृत्ति :** महेन्द्रनाथ इस नाटक में शंकालु प्रवृत्ति का स्वामी नजर आता है। अपनी पत्नी सावित्री के कार्यकलाप पर शंकालु दृष्टि रखता है। सावित्री अपने बेटे अशोक की नौकरी लगवाने के लिये अपने कामुक पुरुष–मित्र सिंघानिया को घर बुलाती है तो महेन्द्र सावित्री के चरित्र को शंका की दृष्टि से देखता है–इसकी झलक निम्नलिखित उदाहरण में द्रष्टव्य है–

**"पुरुष एक** : कौन आएगा? सिंघानियाँ

**स्त्री** : उसे किसी के यहाँ खाना खाने जाना है इधर। पाँच मिनट के लिए यहाँ भी आएगा। मुझे यह आदत अच्छी नहीं लगती तुम्हारी कितनी बार कह चुकी हूँ।

**पुरुष एक** : तुम्हीं ने कहा होगा उससे आने के लिए।

**स्त्री** : कहना फर्ज नहीं बनता मेरा, आखिर मेरा बॉस है।

**पुरुष एक** : बॉस का मतलब यह थोड़े ही है कि:..?

**स्त्री** : लोगों को तो ईर्ष्या है मुझसे कि दो बार मेरे घर आ चुका है। आज तीसरी बार आएगा।

**पुरुष एक** : तो लोगों को भी पता है वह आता है?"

महेन्द्रनाथ अपनी इस शंकालु भावना का प्रदर्शन तब भी करता है जब उसकी बड़ी लड़की बिन्नी मनोज के घर से भाग कर चली आती है। वह अपनी शंका सावित्री पर प्रकट करता है और उससे कहता है कि वह बिन्नी से पूछे कि वह अपना घर छोड़कर क्यों चली आई है। वह बिन्नी के विषय में अपनी शंका इस प्रकार प्रकट करता है—

"**पुरुष एक** : मुझे तो यह उस तरह आयी लगती है।

**स्त्री** : चाय ले लो।

**पुरुष एक** : इस बार कुछ सामान भी नहीं है साथ में।

**स्त्री** : हो सकता है थोड़ी ही देर के लिए आई हो।

अतः स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ शंकालु स्वभाव का व्यक्ति है। इसका मुख्य कारण उसकी पत्नी का चरित्रहीन होना है।

3. **ईर्ष्यालु एवं कुढनशील** : महेन्द्रनाथ को सावित्री के चरित्र पर सन्देह तो हमेशा ही रहता है उसके साथ ही सावित्री के पुरुष मित्रों से उसे ईर्ष्या भी होती है। जब–जब कोई व्यक्ति उसके घर आता है वह जल उठता है और वह ऐसे लोगों की उपस्थिति में स्वयं घर से बाहर चला जाता है। बहाने बनाकर घर से चला जाना उसकी ईर्ष्या प्रवृत्ति का ही परिचायक है सिंघानियाँ के आने से पहले का यह वार्तालाप उसकी ईर्ष्या प्रवृत्ति का परिचय देता है।

"**पुरुष एक** : उसमें क्या है? आदमी को काम नहीं हो सकता बाहर?

**स्त्री** : वह तुम्हें आज भी हो जाएगा तुम्हें।

**पुरुष एक** : जाना तो है आज भी मुझे...पर तुम जरूरी समझो मेरा यहाँ रहना तो...।

**स्त्री** : तुम्हें सचमुच कहीं जाना है क्या? कहाँ आने की बात कर रहे थे तुम?

**पुरुष एक** : सोच रहा था जुनेज़ा के यहाँ हो आता।"

**श्री ओम शिवपुरी** का कहना है—"यह सावित्री के पुरुष मित्रों को जानता है, और जब–तब उनका जिक्र करके अपना दिल की भड़ास निकालता रहता है। अपने कुचले आत्मसम्मान को बचाने की खातिर वह अकसर शुक–शनीचर घर छोड़कर चला जाता है। लेकिन कुछ घण्टे बाद वापिस लौट आता है—थका, हारा, पराजित...क्योंकि यहीं उसकी नियति है।"

वह फाइलों से जूझता है। सावित्री की बातें सुनना चाहता है। इसलिए फाइलों की उठा–पटक करता है क्योंकि उसे सिंघानियों से ईर्ष्या भी है। वह इस बात से भी जलता है कि सावित्री जिन लोगों के सम्पर्क में आती है वे महेन्द्रनाथ की अपेक्षा प्रतिष्ठित, सम्मानित और ऊँचे पदों वाले लोग होते हैं। अपनी इस जलन का प्रदर्शन भी वह स्वयं कर देता है, "अधिकार, रुतबा, इज्जत—यह सब बाहर के लोगों से मिल सकता है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे। मेरे भरोसे तो सब कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड सकता है।

नाटक में महेन्द्रनाथ प्रत्येक क्षण एक कुढ़ा हुआ व्यक्ति दिखाई देता है वह स्वयं को सबसे छोटा अपाहिज व्यक्ति अनुभव करता है इसीलिए प्रत्येक बात पर कुढ़ता रहता है। स्वयं उसके घर के सदस्य ही उसकी उपेक्षा करते हैं और बात–बात पर अपमानित करते रहते हैं। अपनी पत्नी की घोर उपेक्षा और प्रताड़ना के कारण ही वह ओछा बन जाता है और न कहने योग्य बात भी अपने बच्चों के सामने ही कह देता है। पत्नी की उपेक्षा से वह तिलमिला जाता है किन्तु प्रतिरोध करने की शक्ति न होने के कारण केवल कुढ़ता ही रह जाता है यथा—

"**पुरुष एक** : यह सब कहता है वह? और क्या–क्या कहता है?

**स्त्री** : वह इस वक्त तुमसे बात नही कर रह रही।

"**पुरुष एक** : पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है।

**स्त्री** : तुम्हारा घर! हहँ!

**पुरुष एक** : तो मेरा घर नहीं है यह? कह दो नहीं है।

**स्त्री** : सचमुच तुम अपना घर समझते इसे तो...।

**पुरुष एक** : कह दो, जो कहना चाहती हो।

**स्त्री** : दस साल पहले कहना चाहिए था मुझे...जो कहना चाहती हूँ।

**पुरुष एक** : कह दो अब भी...इससे पहले कि दस साल, ग्यारह साल।"

नाटक में और कई स्थल हैं जहाँ पर ईर्ष्याभाव एवं कुढ़नशीलता महेन्द्रनाथ की चारित्रिक विशेषता बनकर उभरती है।

4. **प्रभावहीन व्यक्तित्व एवं आरामतलब :** महेन्द्रनाथ का व्यक्तित्व अपनी पराश्रिता, दब्बूपन एवं आरामतलब जिन्दगी के कारण प्रभावहीन हो गया है। वह गृहस्वामी होकर भी गृहपति की मर्यादा से वंचित है। उसे न घर में सम्मान प्राप्त है न बाहर। उसकी पत्नी उसे पति मानने से इन्कार करती है—"मत कहिए मुझे महेन्द्रनाथ की पत्नी।" बड़ी लड़की घर से भाग जाती है। लड़का अशोक निकम्मा हो जाता है तथा छोटी लड़की उद्दण्ड हो जाती है। महेन्द्रनाथ अपने को 'रबड़ स्टैम्प' और रबड़ का टुकड़ा मानता है। उसका जीवन अस्तित्वहीन और अर्थहीन हो गया है, ऐसा उसे हरदम लगता है। वह अपना आत्म–विश्लेषण और आत्म–परीक्षण करते हुए कहता है—"अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ.. .इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ...क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ।" अपना आत्मपरीक्षण करते हुए आगे कहता है, "मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूँ, जिसने अन्दर–ही–अन्दर इस घर को खा लिया है। महेन्द्रनाथ सारा दिन घर में बेकार–बेगार रहकर चाय पीता रहता है, अखबार पढ़ता रहता है और घर के सारे सामान को अव्यस्थित करके रख छोड़ता है जिससे सावित्री आकर बड़बड़ाती है। बाल बच्चों के प्रति कर्त्तव्य को वह निभाता नहीं है बल्कि उन्हीं के समक्ष सावित्री को पीटता है, उसके बाल नोचता है, जिससे बालक उसका सम्मान नहीं करते। महेन्द्रनाथ स्पष्ट कहता है—"मेरी क्या यही हैसियत है इस घर में जो जब जिस वजह से जो भी कह दे, चुपचाप सुन लिया करूँ? हर वक्त की धुतकार, हर वक्त की कोंच, बस यही कमाई है यहाँ मेरी इतने सालों से।"

अतः स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ अपने परिवार में उपेक्षित.और तिरस्कृतपूर्ण जीवनयापन कर रहा है। न ही उसको अपने घर में सम्मान–प्राप्त है और न बाहर। आरामतलबी एवं आलसी प्रवृत्ति ने उसके हृदय में हीन भावना उत्पन्न कर दी है। इसीलिए बेकारी की हालत के कारण बच्चे एवं पत्नी उससे दूर होते जा रहे हैं। बच्चों एवं पत्नी के प्रति कर्त्तव्य को भी वह भली–भाँति नहीं निभाता तथा अपनी ऐय्यासी के कारण पूरे परिवार को आर्थिक अभाव की दलदल में धकेल दिया है। महेन्द्रनाथ की बेकारी–बेगारी एवं आरामतबली–अकर्मकता के कारण सावित्री की इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती जिसके कारण वह पर–पुरुषों से सम्पर्क जोड़ती है। जिससे उसका परिवार विघटन के कगार पर पहुँच जाता है।

अतः कहा जा सकता है कि महेन्द्रनाथ के रूप में मोहन राकेश जी ने एक ऐसे मध्यवर्गीय निम्न आय वाले परिवार के मुखिया का चित्रण किया है जो अपने पराश्रित, आलसीपन और दब्बूपन के कारण एक–दूसरा हुआ आधा–अधूरा व्यक्ति है। वह नाटक का नायक है परन्तु सबसे दुर्बल और दयनीय पात्र भी है। वह गृहस्वामी होकर गृहपति की मर्यादा से वंचित है। पूरे परिवार की भर्त्सना सहता है। अपमानित होकर घर छोड़ता है परन्तु अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण उसी घर में लौटकर अपमानित और निरर्थक जिन्दगी जीने के लिए मजबूर है।

# 1 1

# अशोक का चरित्र-चित्रण

'आधे–अधूरे' नाटक में अशोक एक महत्त्वपूर्ण सहायक पात्र के रूप में उपस्थित हुआ है। अशोक इस नाटक में आधुनिक युवा पीढ़ी की पीड़ा, आक्रोश, अकर्मण्यता, अस्वीकार और पलायन को साक्षात रूप में मंच पर प्रस्तुत करता है।

आधुनिक विचारधारा से अनुप्राणित यह नवयुवक फ्रेंच कट दाढ़ी, रंग–बिरंगी बुशर्ट–पतलून तथा नई–नई पत्रिकाओं का अध्ययन आदि में रुचि रखता है। वह कर्तव्य पथ से च्यूत, बेकार–बेगार नवयुक है, जो सारा दिन घर पर रहकर पत्रिकाओं में से अश्लील तस्वीरें काटता रहता है। उद्योग सैंटर वाली वर्णा के पीछे जूतियाँ चटखाता फिरता है। नाटककार मोहन राकेश ने उसका परिचय इस प्रकार दिया है–"उम्र इक्कीस के आसपास। पतलून के अन्दर दबी भड़कीली बुशर्ट धुल–धुलकर घिसी हुई। चेहरे से, यहाँ तक कि हँसी से भी झलकती खास तरह की कड़वाहट।" अशोक की महेन्द्रनाथ भी भाँति बेकार–बेगार है और कोई भी कार्य निष्ठापूर्वक नहीं कर सकता। वह न तो मन लगाकर पढ़ाई कर सका और न एयरफ्रीज में नौकरी ठीक प्रकार से कर पाता है। उसके चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

1. **स्पष्टवादिता एवं वाकपटुता :** अशोक पूरे नाटक में एक स्पष्टवादी वाकपटु पात्र के रूप में प्रकट होता है। वह अपनी रुचि के प्रतिकूल बात को चाहे वह बात कड़वी हो, भद्दी हो या अच्छी हो। नई स्पष्ट एवं वाक्चातुर्य से प्रकट कर देता है। वह जानता है कि उसकी माँ अपने बॉस सिंघानिया का बहुत आदर करती है और उसके विषय में अपमानजनक बातें नहीं सुन सकती, किन्तु स्वयं उसके मन में सिंघानियाँ की जो 'इमेज' बनी है उसे भी वह झुठला नहीं सकता। निम्नलिखित वार्तालाप में उसकी स्पष्टवादिता स्पष्ट रूप से मुखर हो रही है। देखिए–

**'स्त्री** : दोनों बार इसी के लिए बुलाया था मैंने उसे। आज भी इसी की खातिर...।

**लड़का** : मेरी खातिर? मुझे लेना–देना है उससे?

**बड़ी लड़की** : ममा उसके जरिए तेरी नौकरी के लिए कोशिश कर रही होंगी न...।

**लड़का** : मुझे नहीं चाहिए नौकरी। कम–से–कम उस आदमी के जरिए हरगिज नहीं।

**बड़ी लड़की** : क्यों, उस आदमी को क्या है?

**लड़का** : चुकन्दर है वह आदमी है? जिसे न बैठने का शऊर है न बात करने का।

**स्त्री** : पाँच हजार तनख्वाह है उसकी। पूरा दफ्तर सँभालता हैं

**लड़का** : पाँच हजार तनख्वाह है, पूरा दफ्तर सँभालता है, पर इतना होश नहीं कि अपनी पतलून के बटन

**स्त्री** : अशोक।"

इतना ही नहीं है वह अपनी माँ सावित्री को भी उसके गलत कार्यों के लिए फटकारने में नहीं हिचकता। वह जानता है कि सिंघानियाँ जैसे लोगों की मनोवृत्ति कैसी है इसलिए वह अपनी माँ से कहता है–

'नहीं बर्दाश्त है, तो बुलाती क्यों हो ऐसे लोगों को घर कि जिनके आगे...? जिनके आगे हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।...आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है उसकी किसी 'बड़ी चीज' की वजह से। एक को कि वह इंटलेक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे कि उसकी तनख्वाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तरक्की चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं–उसकी तनख्वाह को, नाम को रुतबे में बुलाया है। बात को रहने दो, ममा! मैं नहीं चाहता मेरे मुँह से कुछ ऐसा निकल जाय तुम...।"

इन संवादों से अशोक की स्पष्टवादिता ही नहीं अपितु वाक्पटुता भी झलकती है।

2. **आवारा एवं चरित्रहीन युवक :** इस नाटक में अशोक के कार्यकलापों से पता चलता है कि वह एक आवारा एवं चरित्रहीन युवक है। वह घर को घर न समझकर तीन–तीन दिन तक घर से गायब रहता है। लड़कियों के पीछे जूती चटकाता फिरता है। पढ़ाई की किताबों से नाता तोड़कर अश्लील किताबें पढ़ता है। अभिनेत्रियों के अश्लील चित्र जमा करने का उसे विशेष शौक है। बिन्नी के शब्दों में, वह सेंटर वाली वर्णा के पीछे भागता है और घर की अनेक वस्तुएँ उसे भेंट कर चुका है। अश्लील पुस्तकें पढ़ने के आरोप में पकड़े जाने पर भी वह अपनी हठता का परिचय देता है। यथा–

**छोटी लड़की :** झूठ बिल्कुल झूठ। मैंने देखी भी नहीं यह किताब।

**लड़का :** नहीं देखी?

**छोटी लड़की :** तू तकिए के नीचे रखकर सोए, तो भी कुछ नहीं, मैंने जरा निकलकर देख भर ली, तो...।

**पुरुष एक :** मैं देख सकता हूँ?

**लड़का :** नहीं...आपके देखने की नहीं है। अब फिर पूछो मुझसे कि इसकी उम्र कितने साल की है।

**बड़ी लड़की :** क्यों अशोक...यह वही किताब है न कैसनीवा वाली?"

इसके साथ–साथ वह अपनी माँ की जरा सी भी इज्जत नहीं करता है एवं अपने आवारापन के कारण पढ़ाई एवं नौकरी दोनों में असफल है।

3. **अशिष्ट एवं विद्रोही युवक :** अशोक के माध्यम से मोहन राकेश ने आज के युग वर्ग की अशिष्टता एवं विद्रोहीपन को चित्रित किया है। माँ सावित्री के चारित्रिक पतन एवं पिता की महत्त्वहीन स्थिति ने अशोक की मानसिकता को विद्रोही एवं अशिष्ट बना दिया है। अपने पारिवारिक तनावपूर्ण सम्बन्धों से उसके अन्दर खीज एवं विद्रोह की प्रवृत्ति पनपती है। वह अपने घर के परिवेश में विद्रोही हो जाता है। इसी विद्रोहीपन के कारण उसके व्यवहार में भी अशिष्टता आ गई है। अशोक के विद्रोह एवं अशिष्टता का एक उदाहरण देखिए।

**"लड़का :** मतलब वही जो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने किस वजह से बुलाया है?

**स्त्री :** तू क्या समझता है, किस वजह से बुलाया है?

**लड़का :** उसकी किसी 'बड़ी' चीज की वजह से। एक को कि वह इंटेलेक्युअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनख्वाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं—उसकी तनख्वाह को, नाम को रुतबे को बुलाया है।

**स्त्री :** और मैं उन्हें इसलिए बुलाती हूँ कि...

**लड़का :** पता नहीं किसलिए बुलाती हो पर बुलावा सिर्फ ऐसे ही लोगों को ही। अच्छा, तुम्हीं बताओ, किसलिए बुलाती हो?"

अतः कहा जा सकता है कि अशोक के चरित्र में विद्रोह का भाव अपनी तमाम विद्रूपताओं के साथ प्रकट हुआ है।

4. **आधुनिक विचारधारा का फैशनपरस्त युवक :** इस नाटक में अशोक आधुनिक विचारधारा के फैशनपरस्त युवक के रूप में चित्रित है। वह पाश्चात्य संस्कृति में अंधानुकरण से भौतिकता से जुड़ा नवयुवक है। वह आधुनिकता के आवरण में अपने बड़ों की इज्जत करना भूल गया है तथा नित बदलते फैशनों को अपनाता है। वह शरीर से दुबला–पतला है किन्तु फैशन की तरफ उसमें विशिष्ट आकर्षण है। नाटककार ने उसकी वेशभूषा के बारे में लिखा है–

"पतलून के अन्दर दबी भड़कीली बुशर्ट धुल–धुलकर घिसी हुई।"

जब बिन्नी उससे शेव न बनाने का कारण पूछती है तो वह इस प्रकार से कहता यथा–

**"बड़ी लड़की :** शेव करना छोड़ दिया है क्या तूने?

**लड़का :** (अपने चेहरे को छूता हुआ) मैं फ्रेंचकट रखने की सोच रहा हूँ। कैसी लगेगी चेहरे पर?"

इतना ही नहीं वह अपनी फैशनपरस्ती में पत्रिकाओं से भी नये–नये फैशनों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है।

5. **बेरोजगार एवं दायित्वहीन युवक :** अशोक एक बेरोजगार दायित्वबोधहीन युवक है। वह अपनी नौकरी को अपनी दायित्वहीनता के कारण छोड़ देता है। एयरफ्रीज में मिली नौकरी को वह अपनी अकर्मण्यता के कारण छोड़ देता है। इसके

अलावा वयस्क होने पर भी वह अपने घर के प्रति जरा भी चिन्तित नहीं है। वह विदेशी मैग्जीनों से तस्वीर काट-काटकर अपना खाली समय काट रहा है।

नाटक के प्रारम्भ में ही सावित्री अशोक की कारगुजारी पर प्रकाश डालते हुए कहती है—"और अशोक बाबू यह कमाइ करते रहे हैं दिनभर। (तस्वीरें उठाकर देखती) एलिजाबेथ टेलर...आड्रेहेबर्न...शैल मैम्लेन। जिन्दगी काट रहे हैं इन तस्वीरों के साथ।"

इस सन्दर्भ में डॉ. सुन्दर लाल कथूरिया का कथन है—

"वह अपनी इक्कीस वर्षीय आयु में ही, जब उसे अपने पैरों पर चलना चाहिए था, विरक्त होकर अथवा निरुपाय अवस्था में निकम्मा हो बैठता है। उसकी सहानुभूति पिता महेन्द्रनाथ के प्रति शायद इसलिए है कि उन दोनों की प्रवृत्ति में कहीं गहरी समानता है। उसके क्रिया-कलापों में अभिनेत्रियों की तस्वीरें काटना, यौन-विषयक पुस्तकों को पढ़ने आदि में जहाँ यौवन के एक यथार्थ को अभिव्यक्ति मिलती है वहाँ अनेक यथार्थ निकम्मेपन की आड़ में दब भी जाते हैं।"

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अशोक आज की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है। चेहरे पर हँसी के साथ ही युवा पीढ़ी की बेचैनी, दुःख, हैरानी, अस्वीकार, पलायन और आक्रोश भी व्यक्त होता है। अपने को बेकार और आवारा सिद्ध करता है। परिवार के तनाव, विद्रोह और उबाऊ सन्दर्भों के कारण अशोक के व्यक्तित्व में भी नकारात्मक तत्त्व आ गए हैं।

डॉ. जयदेव तनेजा ने अशोक के चरित्र की गुण-दोष की विवेचना करते हुए स्पष्ट लिखा है—"लड़के अशोक के चेहरे की हँसी से झलकती कड़वाहट आज की युवा पीढ़ी की पीड़ा अस्वीकार, पलायन और आक्रोश तथा आन्तरिक तनाव को अपनी तेजाबी से प्रकट करती है। इक्कीस वर्षीय अशोक चलना शुरू करने से पहले ही विरक्त और निकम्मा होकर बैठ गया है। उसकी प्रच्छन्न सहानुभूति पिता के प्रति (क्योंकि शायद उन दोनों में कहीं गहरी समानता है) और माँ के प्रति प्रकट वितृष्णा एवं असहमति है। काम-काज और जीवन के यथार्थ से मुँह मोड़कर अभिनेत्रियों की तस्वीरों, यौन-विषयक पुस्तकों और वर्णों से रोमांस के बीच जिन्दगी बिता रहा है।"

# 12

# बड़ी लड़की अर्थात् बिन्नी का चरित्र-चित्रण

इस नाटक में बड़ी लड़की अर्थात् बिन्नी की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वह महेन्द्रनाथ एवं सावित्री की बड़ी लड़की तथा अशोक एवं बिन्नी की बड़ी बहन है। नाटककार ने उसका परिचय इस प्रकार दिया है—"उम्र बीस से ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का अवसाद और उतावलापन। कभी–कभी उम्र से बढ़कर बड़प्पन। साड़ी माँ से साधारण। पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।"

बिन्नी अपनी मर्जी से अपनी माँ के प्रेमी मनोज से शादी करने पर भी विवाहित जीवन की खुशियों से वंचित है। मनोज के साथ रहते हुए भी अलगाव–बोध से पीड़ित है सावित्री द्वारा पूछने पर वह स्पष्ट कहती है कि, "शादी से पहले मुझे लगता था कि मैं मनोज को अच्छी तरह जानती हूँ पर अब आकर...अब आकर लगने लगा है कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।"

बिन्नी के विषय में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसकी स्थिति नाटक की मूल समस्या का उद्‌घाटन करने में बहुत सहायक है। वह अपने परिवार की स्थिति को अपने संवादों एवं व्यवहार से स्पष्ट करती है। अपने माता–पिता के आपसी सम्बन्धों के खोखलेपन और पारिवारिक परिवेश की कटुता को स्पष्ट करते हुए वह पुरुष चार अर्थात जुनेज़ा को बताती है—

"आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या–क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार–तार कर देना. ..उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बंद कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर...(सिहरन) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने–कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।" बिन्नी की चारित्रिक विशेषताएँ इस नाटक में निम्नलिखित रूप में ऊभर कर आई है—

1. **आवारा एवं हताश युवती :** बिन्नी के चरित्र में अपनी माँ सावित्री की भाँति ही आवारापन भी दिखाई देता है। यह आवारापन सम्भवतः उसके अन्दर अपने माता–पिता के आवारापन को देखकर ही उपजा है। वह अपनी माँ के प्रेमियों को प्रत्यक्ष रूप से घर में आता–जाता देखती थी। एक दिन स्वभावतः अपने घर में आने वाले मनोज नामक युवक के प्रति वह भी आकर्षित हो जाती है और एक रात बिना घर वालों को बताए वह मनोज के साथ भाग जाती है—एक नया घर बसाने। वह घर तो बसा लेती है किन्तु वहाँ खुश नहीं रह पाती क्योंकि एक व्यक्ति से आजीवन सम्बद्ध हो जाना तो उसने सीखा ही नहीं था। उसकी माँ ही जब एक व्यक्ति से सम्बन्ध न रख सकी तो वह कैसे रह पाती। और भागकर अपने पिता के घर आ गई। इस प्रकार उसके चरित्र में आवारापन के साथ ही हताशा भी घर कर गई। उसकी निराशा का चित्रण निम्नलिखित संवाद से होता है—

**"स्त्री** : तू खुश है वहाँ पर?

**बड़ी लड़की** : (बचते स्वर में) हाँ SS बहुत खुश हूँ।

**स्त्री** : सचमुच खुश है?

**बड़ी लड़की** : और क्या ऐसे ही कह रही हूँ?

**पुरुष एक** : (बिल्कुल दूसरी तरफ मुँह किए) यह तो कोई जवाब नहीं है।

**बड़ी लड़की** : (तुनककर) तो जवाब क्या तभी होता अगर मैं कहती कि मैं खुश नहीं हूँ, बहुत दुखी हूँ?"घर के कुण्ठित और विषैले वातावरण से मुक्ति के लिए वह मनोज के साथ भाग जाती है, किन्तु अपने नये जीवन को स्वाभाविक नहीं बना पाती। यही बिन्नी का आवारापन है और इसी आवारापन के कारण अपने नये घर में दमघोटू वातावरण, अपरिचय, अजनबीपन से हताश एवं निराश है।

2. **पारिवारिक-यन्त्रणाओं से पीड़ित :** बिन्नी जिस परिवार में पली और बड़ी हुई है। वह इतना अनुशासनहीन एवं चरित्रहीन परिवार है कि बिन्नी को संस्कारगत आदर्श मिल नहीं पाते हैं। बिन्नी ने विघटनशील परिवार के विघटन को प्रत्यक्ष रूप से झेला है। पिता महेन्द्रनाथ के रूप मे कभी दब्बूपन देखती है तो कभी अपने उसी पिता का राक्षसी रूप। माँ सावित्री की महत्वाकांक्षाओं से उसे वह आवारापन की शिक्षा–दीक्षा मिली है। अपने घर को वह चिड़ियाघर मानती है। वह अपने घर के दमघोटू एवं भयावह वातावरण का खुलाशा जुनेज़ा अंकल के सामने करती है–

"आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या–क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार–तार कर देना. ..उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बन्द कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर...(सिहरकर) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने–कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।"

इतना ही नहीं घर में उससे छोटे अशोक और किन्नी भी उसका सम्मान नहीं करते हैं।

प्रेमी मनोज के संग भागकर नया घर बसाती है तो यहाँ भी पारिवारिक यातनाएँ उसकी पीछा नहीं छोड़ती हैं। उसका दामपत्य जीवन सुखी नहीं है। वह मनोज को छोड़कर वापस उसी घर के विषाक्त वातावरण में आने के लिए मजबूर है। वह मानती है कि वह इस घर से कुछ ऐसी चीज या हवा ले गई है जो उसे सहज नहीं रहने देती है।

3. **बिखराव भरा व्यक्तित्व :** पारिवारिक विघटन अजनबीपन कुण्ठा एवं अलगाव–बोध ने बिन्नी के व्यक्तित्व को कुचल कर रख दिया है। सम्पूर्ण नाटक में उसके चेहरे पर अवसाद तथा उतावलापन झलकता है। वह कभी युवाओं की तरह चंचल होकर मनोज के साथ घर से भाग जाती है और कभी प्रौढ़ों की तरह अपने परिवार के सदस्यों को शिक्षाप्रद सांत्वना देती है। अपने इस बिखराव को दूर करने अथवा उससे मुक्ति पाने के लिए बीना कभी मनोज से लड़ पड़ती है, कभी उससे दूर रहना चाहती है, कभी उसकी इच्छा के विरुद्ध नौकरी कर लेना चाहती है। उसके मन में गुबार फट नहीं पाता, अपनी माँ से अपने इस बिखराव को वह इन शब्दों में व्यक्त करती है–

"एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अन्दर भरा रहता है और मैं इंतजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे बाहर निकल लूँ।...क्योंकि मुझे कहीं लगता है कि...कैसे बताऊँ क्या लगता है? वह (मनोज) जितने विश्वास के साथ यह बात करता है, उससे...उससे मुझे अपने से एक अजब–सी चिढ़ होने लगती है। मन कहता है–मन करता है कि आस–पास की हर चीज़ को तोड़–फोड़ डालूँ।"

बिन्नी का यह बिखराव उसके व्यक्तित्व को अधूरा बना देता है। वह मनोज से सच्चा प्यार करके भी उसके साथ अजनबीपन महसूस करती है। उसके मन की यही अशान्ति उसके दुःखों का मूल कारण बनती है।

4. **पारिवारिक रिश्तों में संवेदनशीलता :** बिन्नी के चरित्र का सबसे उज्ज्वल पक्ष यह है कि वह पारिवारिक रिश्तों में अत्यन्त संवेदनशील है। वह अपने माता–पिता, भाई–बहन एवं पति मनोज के साथ गहन रूप से जुड़ी है। माता–पिता के घर का तनाव उसे खलता है। वह घर के दमघोटू वातावरण से भागी जरूर थी। परन्तु उसे अपने परिवार के सभी सदस्यों से बहुत लगाव है। बिन्नी खुद अपने दाम्पत्य जीवन की एक रसता से तनाव पूर्ण है। फिर भी अपने माता–पिता का तनाव कम करना चाहती है। वह अपनी माँ की सहेली जैसी बनकर उसके तनाव को कम करना चाहती है–यथा

**"बड़ी लड़की :** (उसके पीछे जाकर) ममा!
तुम तो आदी ही रोज–रोज ऐसी बातें सुनने की। कब तक इन्हें मन पर लाती रहोगी?
(उसकी तरफ आती) एक तुम्हीं करने वाली हो सब कुछ इस घर में। अगर तुम्हीं

पिता के प्रति भी उसकी सहानुभूति है। वह अपने भाई–बहन को ममता एवं शिक्षा देती है। परन्तु उसकी विडम्बना यह है कि वह अपने परिवार को तनाव एंव घुटन से मुक्ति दिलाने में कोई कारगर भूमिका नहीं निभा पाती है। वस्तुतः उसकी एक भूल ने उसके संघर्ष की जड़ बना दिया है।

अतः कहा जा सकता है कि पारिवारिक परिस्थितियों ने बिन्नी जैसी सुशिक्षित युवती को चंचल हृदया, आवारा कुण्ठित एवं बिखर व्यक्तित्व की स्वामिनी बना दिया है। पारिवारिक यन्त्रणाओं से अभिशप्त इस युवती के पूरे व्यक्तित्व में बिखराव एवं अधूरापन दिखाई देता है। परन्तु अपने इस बिखरे व्यक्तित्व में भी वह पारिवारिक रिश्तों में अत्यन्त संवेदनशील है। अपने आप टूटकर अपने परिवार को बचाए रखने की कोशिश उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष है।

# खण्ड ग

# लघूत्तरीय प्रश्न

**प्रश्न 1** : 'आधे–अधूरे' नाटक के प्रतिपाद्य (उद्देश्य) पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में नाटककार ने आधुनिक परिवेश में महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार के अभावपूर्ण जीवन तथा आपसी तनाव को यथातथ्य रूप में प्रस्तुत किया है। पूँजीवादी प्रणाली में स्तरीकरण की दौड़ तथा यान्त्रिक सभ्यता के प्रभाव से उत्पन्न स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में तनाव और इस तनावजन्य पारिवारिक विघटन के साथ–साथ मानवीय असन्तोष के अधूरेपन को मूर्त किया गया है। इसके साथ–साथ नाटककार ने मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक विषमता के सम्भाव्य परिणामों की खोज करते हुए आधुनिक नारी की स्वच्छन्द मनोवृत्ति, कशमकश, दिशाहीनता, आवारगी के साथ पारिवारिक विघटन को कई कोणों से तदरूप रूप में चित्रित है।

**प्रश्न 2** : 'आधे–अधूरे' नाटक की कथावस्तु पर टिप्पणी लिखिए।

**उत्तर** : इस नाटक में स्थूल रूप से कोई निश्चित कथावस्तु नहीं हैं सम्पूर्ण नाटक में विषम परिस्थितियों में उलझे पात्रों की मनःस्थित की टकराहट, अन्तर्द्वन्द, आक्रोश, तल्खी और कुण्ठाएँ सामयिक की अभिशप्तता को उजागर करती है। नाटक में निश्चित कथा न होते हुए परिस्थितियाँ ही कथावस्तु का निर्माण करती चलती है। पाँच सदस्यों के परिवार में आर्थिक कठिनाइयों ने मनुष्यों में ही नहीं, घर के वातावरण को भी दमघोंटू बना दिया है। घर के सभी सदस्य एक–दूसरे से दूर छिटकना चाहते हैं, घर से बाहर निकलना चाहते हैं। परन्तु नियति ने उन्हें पंगु बना दिया है। अन्ततः क्लांत होकर उन्हें वापस उसी दमघोंटू वातावरण में लौटना पड़ता है। नाटक का प्रारम्भ एक काले सूट वाले व्यक्ति के स्वयं को 'सड़क पर टकराने वाला आदमी' कहने से होता है। इस नाटक की कथावस्तु की प्रमुख विशेषता हमारी जानी–पहचानी जिन्दगी की साधारण बातों को असाधारण ढंग से प्रकट करने में है।

**प्रश्न 3** : 'आधे–अधूरे' नाटक के नायकत्व पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : 'आधे–अधूरे' नाटक में प्रमुख पुरुष पात्र तो महेन्द्रनाथ है। परन्तु इस नाटक में परिस्थितियों के उलट–फेर ने उसे नाटक का सबसे दयनीय, कमजोर एवं विवश पात्र बना दिया है। इसके विपरीत महेन्द्रनाथ की पत्नी पूरे नाटक की घटनाओं, परिस्थितियों की नियामक बन कर उभरी है। आधुनिक जीवन की अधिकाधिक विसंगतियाँ सावित्री के माध्यम से ही प्रकट हुई है, जो कि नाटक की कथावस्तु की मूल हैं। वह आधुनिक महत्त्वाकांक्षी नारी के रूप में अपना ऐसा दबदबा बनाती है कि नाटक के बाकी पात्र उसी के चरित्र का विकास करने के उपकरण बन जाते हैं। वह कथावस्तु में अन्त तक प्रभावी भूमिका में उपस्थित रहती है और फलभोक्त्री होती है। अतः कहा जा सकता है कि पिछले दोनों नाटक की तरह यह नाटक भी नायिका प्रधान है। सावित्री निर्विवाद रूप से नाटक की नायिक है।

**प्रश्न 4** : 'आधे–अधूरे' नाटक के नामकरण पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : 'आधू–अधूरे' नाटक के नामकरण का आधार मोहन राकेश ने इस नाटक के मूल अथवा केन्द्रीय भाव को बनाया है। इस नाटक में मोहन राकेश ने अधूरे व्यक्तित्व प्रस्तुत करके उसकी परिस्थितियों और आधे–अधूरेपन की अभिव्यक्ति की है। इस नाटक के सभी पात्र खासकर नाटक की नायिका सावित्री अपनी असीमित आकांक्षाओं के मध्य अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों एवं परिवेशगत आधे–अधूरेपन की भावना से ग्रस्त हैं। पूरे नाटक में सावित्री

काल्पनिक पूरेपन की तलाश में व्यर्थ ही भटकती है। अपने परिवार के विघटन का कारण बनता है। महेन्द्र, अशोक, बिन्नी और किन्नी भी आधे–अधूरेपन, अलगावबोध तथा मानसिक कुण्ठा एवं तनाव से ग्रस्त हैं। इस प्रकार नाटककार ने मध्यवर्गीय परिवार के आधे–अधूरे व्यक्तित्व को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिए सर्वथा उपयुक्त नाम रखा है।

**प्रश्न. 5** : 'आधे–अधूरे' नाटक में आधा–अधूरा क्या है?

**उत्तर** : इस नाटक में अधूरे व्यक्तित्व, अधूरे प्रसंग, अधूरी दायित्वहीनता अधूरी समर्पण भावना, अधूरी ... व्याख्या से जनित अधूरी–आधुनिकता, अनिश्चित और अधूरा जीवन–दर्शक आदि को नाटककार ने ... के धरातल पर चित्रित किया है। यान्त्रिकता और स्तरीकरण की होड़ में एक महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार की विडम्बनाओं और विसंगतियों ने परिवार के सभी सदस्यों में अपने व्यक्तित्व में तथा अपने सम्बन्धों में अधूरापन, अलगावबोध और दिशाहीनता का आभास कराया गया है। पति–पत्नी, माँ–बेटी माँ–बेटे आदि सम्बन्धों में अजनबीपन, ने अधूरेपन की अनिश्चित कार्यकलाप, अधूरी कथावस्तु अर्द्धविकसित पात्रों के ... मंच पर प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार इस नाटक का चित्रित अधूरापन अनेक स्तरों पर मानवीय जीवन की विडम्बनाओं को निरूपित करता है।

**प्रश्न 6** : 'आधे–अधूरे' नाटक की प्रयोगधर्मिता पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : यह नाटक आधुनिक नाट्य साहित्य नई प्रवृत्तियों का अग्रदूत माना जा सकता है। नाटककार ने कथावस्तु एवं नाट्य शिल्प दोनों दृष्टि से नये–नये और सार्थक प्रयोग किए हैं। महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक विषमता, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की आधुनिक परिणति और दमघोटू पारिवारिक वातावरण में घुटते पिसते पारिवारिक सदस्यों की नियति का यथार्थ के धरातल पर चित्रण है। इतना ही नहीं घर के सदस्य काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटकते–टूटते रहते हैं। कथ्य की दृष्टि से राकेश जी का यह नया प्रयोग है। पाश्चात्य अस्तित्ववादी और विसंगतिवादी की तर्ज पर विसंगति, अजनवीपन, और अधूरेपन का चित्रण भी सर्वथा नया प्रयोग है।

नाट्य शिल्प की दृष्टि से काले सूट वाले व्यक्ति का दर्शकों से वार्तालाप, एक पुरुष का चार भूमिकाओं में ... भाषा एवं संवादों की अतिरिक्त सजगता, एक ही दृश्यबन्ध में नाटक समाप्त होना और फिल्मों की तरह ... में अन्तराल देना आदि नवीन एवं सार्थक प्रयोग हैं।

**प्रश्न 7** : 'आधे–अधूरे' नाटक की आधुनिकता पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में पात्रों की ऊबं, एकाकीपन, मृत्युबोध, आत्मपीड़ा, अन्तर्विरोध, अस्तित्व संकेत, निराशा ... और मूल्यहीनता आदि का बोध सर्वत्र दिखाई देता है। यह आधुनिकता का नकारात्मक पहलू है। इस नाटक का सम्पूर्ण परिवेश आधुनिक है। पारिवारिक विघटन में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की कड़वाहट, तनाव और जुड़े रहने की छटपटाहट के साथ–साथ बौद्धिक वर्ग के कनफ्यूजन में नये मूल्यों की तलाश है। यह नये मूल्यों की ... आधुनिकता के सन्दर्भ में व्यक्त है। लड़की अस्वाभविक होने का कारण घर की हवा बताया गया है। आधुनिक नारी सावित्री की खोखली महत्त्वाकांक्षाएँ, आक्रोश एवं काल्पनिक पूरेपन की तलाश में चार–चार पुरुषों से सम्पर्क बनाना भी आधुनिक परिवेश की कटुता को मूर्त करता है।

नाटक में शिल्प की दृष्टि से भी रंगसंकेतों एवं अच्छा से अस्त–व्यस्त चीजें, पात्रों की स्थिति, मंच पर प्रकाश की स्थिति आधुनिक युग की विसंगतियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करती है। नाटक में दर्शाया गया है कि आज का व्यक्ति किस प्रकार विभिन्न स्तरों पर तनाव झेलने के लिए विवश है।

**प्रश्न 6** : 'आधे–अधूरे' नाटक के युगबोध पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : मोहन राकेश अपने युग के वातावरण, परिवेश, घटनाओं और समस्याओं का अपना सृजन ... मध्यवित्तीय स्तर से ढहकर निम्न मध्यवित्तीय स्तर पर आए हुए परिवार की समस्याओं को ... बनाया है। इस पूरे नाटक में वर्तमान युग के मानव की आत्मकेन्द्रिता, अजनवीपन, नपुंसक ... की ... चीख, असहनीय नैराश्य, अस्तित्व संकट और भटकाव की स्थिति का चित्रण है। सावित्री ... युग की ... आधुनिकता है जो अपनी असीम एवं खोखली महत्त्वाकांक्षाओं के लिए पूरे परिवार की ...

है। टूटते परिवार की तनाव–खीझ, तनातनी, लाचारी और स्तरीकरण की झूठी दौड़ समसामयिक युग की ज्वलन्त समस्याएँ हैं। अतः आज की रसहीन और अनिश्चित जिन्दगी की विडम्बना को ही उजागर करता है।

**प्रश्न 9** : 'आधे–अधूरे' नाटक अभिनेयता पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : मोहन राकेश की रंगचेतना अत्यन्त परिष्कृत एवं बहुमुखी थी। आधे–अधूरे रंगमंचीय प्रयोगों का नाटक है। इस नाटक का कथानक अत्यन्त संघठित, संक्षिप्त, सरल एवं रोचक है। छब्बीस घण्टे की अल्पावधि में लिपटी–सिमटी संक्षिप्त कथावस्तु का सफलतापूर्वक दो–ढाई घण्टे में मंचन किया जा सकता है। पात्रों की सीमित संख्या होने के कारण उनका चरित्र बड़ा मनोवैज्ञानिक ढंग से स्पष्ट होता है। संवाद–योजना भी पात्रानुकूल, एकदम चुस्त एवं बहुअर्थी है, जो रंगमंचीय दृष्टि से अनुकूल है। बोलचाल की सामान्य, सरल भाषा अभिनय के लिए है। तथा विशेष शब्दों का प्रयोग व्यंगपरकता को सार्थक बनाता है। एक ही दृश्यबन्ध में पूरे होने वाले नाटक की मंचीय सामग्री इसकी साधारण है कि हर माध्यवर्गीय परिवार में सहज उपलब्ध हो जाती है। पर्याप्त रंग संकेतों के माध्यम से नाटक के मंचीय स्वरूप को मजबूती मिली है। तथा मार्मिक स्थलों की विशिष्ट संवेदना प्रकट होती है। पात्रों की वेशभूषा एवं साज–सज्जा भी उनके व्यक्तित्व, मनःस्थिति और कार्यकलापों के अनुरूप है। किसी पात्र के लिए मेकअप अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस नाटक में वे सभी गुण हैं जो एक नाटक को रंगमंच पर खरा उतरने के लिए आवश्यक है।

**प्रश्न 10** : 'आधे–अधूरे' नाटक की भाषा–शैली पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक की भाषा हमारे आधुनिक समाज की जन–प्रचलित भाषा है। सर्वत्र व्यावहारिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है। बोलचाल की सरल भाषा के अनुरूप तत्सम, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। सपाटबयानी और व्यंगता इस नाटक की भाषा शैली की विशेषता है। हास्यपूर्ण प्रसंगों, व्यंग्यपूर्ण संवादों, ध्वन्यात्मकता युक्त और मुहावरेदार भाषा में वह सामर्थ्य है जो समकालीन तनाव को पकड़कर तथ्य का सफल सम्प्रेषण करें।

**प्रश्न 11** : 'आधे–अधूरे' नाटक की पात्र–सृष्टि पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : आधे–अधूरे नाटक के सभी पात्र अपने अधूरेपन में भी पूरेपन की तलाश के लिए बेचैन हैं। सभी पात्र त्रस्त एवं पस्त चरित्र के स्वामी हैं और स्थिर तथा विकासहीन प्रवृत्ति वाले हैं। परन्तु ये एक ऐसा दर्पण हमारे सामने रखते हैं कि आस–पास के जीवन और परिवेश की कड़वी सच्चाइयों से हमारा साक्षात्कार होता है। एक ही पुरुष पात्र चार विभिन्न पात्रों की भूमिका में वस्तुपरक सच्चाई को व्यक्त करता है। सावित्री के रूप में ऐसी आधुनिका का चित्रण है जो सामयिक युग की कोई भी शिक्षित एवं महत्त्वाकांक्षी नारी हो सकती है। अशोक, किन्नी, विन्नी, सिंघानिया आदि पात्रों का भी स्वाभाविक यथार्थपरक, एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण करके नाटककार ने जीवन की विद्रपूताओं और विसंगतियों का चित्रण किया है।

**प्रश्न 12** : 'आधे–अधूरे' नाटक की संवाद–योजना पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक की संवाद–योजना विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण है। नाटक के संवाद प्रारम्भ से अन्त तक गत्यात्मक और क्रियात्मक हैं। प्रत्येक पात्र नपा–तुला बोलता है। इन संवादों में भावों की पूर्णता, अर्थ की सहज ग्राहिता और पात्रानुकूलता के गुण विद्यमान हैं। कई स्थलों पर संवाद देखने में अधेरे लगते हैं परन्तु अभीष्ट अर्थ देने में परे हैं। कहीं–कहीं संवाद मानसिक ग्राफ़ को शब्दवद्ध करते हैं। प्रत्येक पात्र की मन–स्थितियों की घुटन, तनाव, ऊब आदि को स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करने में संवादों की भूमिका महत्त्वपूर्ण बन पड़ी है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस नाटक के संवाद संक्षिप्त, गतिशील, चरित्रोद्वारक रंगमंचीय एवं नाटकीयता पूर्ण हैं।

**प्रश्न 13** : 'आधे–अधूरे' नाटक के देशकाल या वातावरण पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में देशकाल या वातावरण का सुन्दर एवं सजीव वर्णन हुआ है। नाटककार ने पात्रों के स्वरूप विधान, गतिविधियों संवाद योजना आदि में देशकाल का विशेष ध्यान रखा हैं नाटक में महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार

का बाह्य चित्रण ही नहीं अपितु उनके खान–पान, रहन–सहन वेशभूषा, मान्यताओं परम्पराओं का सुन्दर चित्रण है। नाटक में मध्यवर्गीय आधुनिक परिवारों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। घर बाह्य स्थिति का वर्णन रग निर्देशों द्वारा स्पष्ट किया गया है। अतः नाटक देशकाल और वातावरण की दृष्टि से सफल नाटक है।

**प्रश्न 14** : 'आधे–अधूरे' नाटक में प्रयुक्त रंग–निर्देशों पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में प्रयुक्त रंगनिर्देश इसके मंचीकरण में सहायक होने के साथ–साथ पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक क्षोभ तथा विसंगत परिस्थितियों में भी जीवन घसीटने की विवशता को मुखरित करते हैं। पुरुष एक का अखबार की रस्सी बनाना और बाद में उसके टुकड़े–टुकड़े कर देना उसके झुँझलाए मन का क्षोभ है। अशोक का पतलून में क्रीड़ा महसूस करना तथा उसे मार देना पूँजीपतियों के शोषण को खत्म करने के प्रयास का संकेत है। इसके अलावा नाटक में स्थान–स्थान पर प्रयुक्त रंग निर्देश कथानक और चरित्रों को सुनियन्त्रित रखते है और नाटक के मंचीय गुण बढ़ाते हैं।

**प्रश्न 15** : आधे–अधूरे' नाटक की संगीत योजना पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस मैं नाटककार ने मंच पर दृश्यों को प्रभावी बनाने के लिए संगीत की सार्थक योजना की है। नाटक के भावनात्मक स्थलों को प्रभावशाली बनाने के लिए कहीं पर मंद–मंद संगीत और कहीं पर तेज आवाज में संगीत का प्रयोग किया है। खण्डहर में आत्मा को व्यक्त करने का हल्का संगीत, कैंची की चक्–चक् ध्वनि तथा नाटक के अन्त में खण्डित होकर स्त्री और लड़के का रह जाना हल्के मातमी संगीत से प्रभावपूर्ण बनाया गया है इस प्रकार नाटककार की संगीत–योजना उसके गहरे रंगानुभव का प्रमाण है।

**प्रश्न 16** : 'आधे–अधूरे" नाटक की प्रकाश योजना पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : पूरे नाटक में प्रकाश एवं ध्वनि–योजना का समन्वित प्रयोग किया गया है। नाटककार ने पात्रों की मनःस्थिति, भावनाओं को गहरे स्तर पर अभिव्यक्ति करने के लिए विभिन्न रंगों का प्रयोग किया है। नाटक के आरम्भ में कमरे की वस्तुओं पर भटकता प्रकाश, अन्तराल के स्थान पर हल्के–प्रकाश का प्रयोग करके नाटककार ने नाटक के कथ्य को अधिक प्रभावी बनाया है। यह नाटककार की अनुभवी संचीय दृष्टि की परिचायक है।

**प्रश्न 17** : 'आधे–अधूरे' नाटक की दृश्य–योजना पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : यह नाटक एक ही दृश्यबन्ध में पूरा हो जाता है। इसमें नाटककार ने प्रतीकात्मक शैली में पात्रों के जीवन और वातावरण में व्याप्त विघटन और संत्रास की अनुभूति का परिचय दिया है। धूल–धूसरित वस्तुएँ, फटी किताबें और कमरे में आँकते तीन दरवाजे पात्रों की भटकती अपूर्ण जिन्दगी को सांकेतित करते हैं। प्रारम्भ के ही दृश्य में सशक्त नाटकीय बिम्ब है—टूटे–फूटे फर्नीचर का ढेर, दीमक लगी टाइलें, टूटा टी सेट आदि वस्तुओं म पात्रों की विशृंखलित जिन्दगी का आभास भी मिलता है और दर्शकों को नाटकोचित मनःस्थिति में लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी हो जाता है। इसी प्रकार पूरे नाटक में सरल–दृश्य–योजना द्वारा नाटक को मंचीय सृष्टि से सफल बनाया गया है।

**प्रश्न 18** : आधे–अधूरे नाटक की वेशभूषा पर टिप्पणी कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में वेश परिवर्तन तो है ही नहीं, जिस वेशभूषा में पात्र एक बार मंच पर उपस्थित होता है। चार पुरुष पात्रों तथा तीनों स्त्री पात्रों की वेशभूषा उनकी भावदशा के अनुकूल साधारण और सहत प्राप्य है! चार पुरुषों की वेशभूषा में क्रमशः पतलून कमीजें, पतलून बदगले का कोट, पतलून–टीशर्ट और पतलून–पुराने कार्ट का लम्बा कोट है। सावित्री और बिन्नी की वेशभूषा में ब्लाउज और साधारण साड़ी है। छोटी लड़की किन्नी को चुस्त फ्रॉक तथा लड़के अशोक की भड़कीली बुराई सभी पात्रानुकूल मनःस्थितियों को प्रकट करने में पूर्णता सक्षम है। इसके साथ–साथ नाटककार ने वेशभूशा सम्बन्धी पर्याप्त संकेत को देकर नाटक के मंचन को सफल बनाने में सहयोग दिया है।

**प्रश्न 19** : महेन्द्रनाथ का चरित्र–चित्रण कीजिए।

**उत्तर** : महेन्द्रनाथ सम्पूर्ण नाटक में 'प्रमुख एक' नाम से आता है। उम्र पचास के आसपास और चेहरे की विशिष्टता में एक व्यंग्य है। वह इस नाटक में गृहपति होते हुए भी गृहपति की मर्यादा से च्यूत, बेकार, निराश और असफल पति है। घर में उसकी हैसियत मात्र एक 'रबर स्टैम्प' है। राकेश जी ने महेन्द्रनाथ को ऐसे मध्यवर्गीय निम्न आय के मुखिया का प्रतिरूप बनाया है जो अपनी पराश्रिता, आलसीपन, शंकालु एवं ईर्ष्यालु प्रवृत्ति और प्रभावहीन व्यक्तित्व की आरामतलबी के कारण पूरे परिवार की भर्त्सना करता रहता है और अपमानित होकर भी उसी रूप में रहने के लिए विवश है।

**प्रश्न 20** : सावित्री का चरित्र–चित्रण कीजिए।

**उत्तर** : सावित्री इस नाटक की सबसे विवादास्पद और प्रमुख पात्र है। वह उस महत्त्वाकांक्षिणी आधुनिक नारी के रूप में चित्रित की गई है जो अपने पति की बेकारी और आर्थिक वैषम्य के कारण एक तरफ तो नौकरी करके पूरे परिवार का भरण–पोषण कर रही है तो दूसरी तरफ उसके अन्दर कुछ भोर हासिल करके ही कचोट उसे आवारा बना देती है। वह आत्मसमर्पण करने वाली भारतीय नारी न होकर स्वावलम्बी एवं भौतिक सुख–सुविधाओं की पिपासी नारी है। शीर्ष पदस्थ पुरुषों से सम्बन्ध बनाकर एक तरफ तो अपने बेटे को नौकरी दिलाना चाहती है तो दूसरी तरफ अपनी काम–भावना की पूर्ति। अपने पति को आधा–अधूरा मानकर चार–चार पुरुषों से अनैतिक सम्बन्ध बनाती है। लेकिन उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ फिर भी पूरी नहीं होती है। सावित्री की यह पूरेपन की तलाश उसे आवारा बना देती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सावित्री एक महत्त्वाकांक्षी और कामुक नारी है जो भौतिक सुविधाओं, पर–पुरुष आकर्षण एवं काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटकती है, टूटती है और अन्त में उसी अधूरे पुरुष के साथ कटुतापूर्ण जीवन जीने के लिए मजबूर होती है।

**प्रश्न 21** : अशोक का चरित्र–चित्रण कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में अशोक आज की युवापीढ़ी के आक्रोश उग्रता, मूल्यहीनता, बेरोजगारी की पीड़ा आदि का प्रतिनिधित्व करता है। वह जीवन की कर्मशीलता भूलकर अभिनेताओं की तस्वीरें काटने में ही जीवन की इतिश्री समझता है। उसे अपनी माँ के पुरुष–मित्रों से घृणा होती है। अपनी घृणा को वह विद्रोही स्वरूप में व्यक्त करता है। पारिवारिक वातावरण और अपनी अकर्मण्यता से अशोक के अन्दर खीज, अशिष्टता, आवारापन एवं नपुंसक विद्रोह उत्पन्न होता है। साथी है वह फ्रेंच कट रखने वाला फैशनपरस्त नवयुवक है और अपनी बेकारी एवं पारिवारिक तनाव के कारण उसके व्यक्तित्व में ये नकारात्मक तत्त्व आ गए हैं।

**प्रश्न 22** : बड़ी लड़की का चरित्र–चित्रण कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में बिन्नी का चरित्र विशुद्ध मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत हुआ है। पारिवारिक परिस्थितियों ने इस सुशिक्षित युवती के व्यक्तित्व में सर्वत्र बिखराव पैदा किया है। बिन्नी में अवसाद, उतावलापन, असन्तोष और अतृप्ति है। मनोज के साथ जिन्दगी जीने को विवश है। सम्भवतः अपनी माँ सावित्री भी जीवन के बिखराव और घुटन, टूटन की स्थिति उसके जीवन से भी लिपट गई है। परन्तु अपने इस बिखरे व्यक्तित्व में संवेदनशीलता है।

**प्रश्न 23** : छोटी लड़की किन्नी का चरित्र–चित्रण कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में छोटी लड़की किन्नी समाज के उन बच्चों का प्रतीक है, जो माता–पिता की उपेक्षा का शिकार होने पर असमय ही यौन–प्रसंगों में रुचि लेकर अपने भविष्य को अन्धकार में धकेलते हैं। अपने जिद्दीपन एवं मुँह पर प्रवृत्ति के कारण व नाटक में स्थान–स्थान पर अपने बड़ों का ध्यान आकृष्ट करती है। बारह–तेरह वर्ष की आयु में 'कैसोनोवा' जैसी कामुक पुस्तकें पढ़ने वाली बिगड़ी हुई लड़की है। घर के सभी सदस्यों को वह मिट्टी के लोदे समझती है।

**प्रश्न 24** : सिंघानिया का चरित्र–चित्रण कीजिए।

**उत्तर** : इस नाटक में सिंघानिया सावित्री का बोस है। वह एक ऐसे प्रवंचक अधिकारी के [illegible] चित्रित [illegible] प्रवृत्ति का स्वामी तथा आत्मप्रसंशक है। सभ्यता, आचरण व शिष्टाचार का उसमें सर्वथा अभाव है। उसकी कामुक नजर सावित्री के साथ–साथ, बिन्नी पर भी पड़ती है। अतः सिंघानिया एक कामुक [illegible] का वाल्बाज़ और महिला सहकर्मी के यौन–शोषण करने वाला घटिया किस्म का अधिकारी जो अपने पद एवं वेतन का भरपूर फायदा उठता है।

**प्रश्न 25** : जुनेज़ा का चरित्र–चित्रण कीजिए।

**उत्तर** : जुनेज़ा इस नाटक के समस्त क्रिया–व्यापार सशक्त गवाह एवं वस्तु स्थितियों [illegible] परिचायक बनकर सशक्त पात्र के रूप में उभरता है। वह स्पष्टवादी एवं भविश्य दृष्टा के साथ–साथ महेन्द्रनाथ का सच्चा मित्र भी है। वह महेन्द्रनाथ का हितचिन्तक एवं हितसाधक बनकर उसकी उन्नति में सहायक बनता रहता है। इतना ही नहीं सावित्री को सुपथ पर लाने की कोशिश करता है। सटीक तर्क देकर वह सच को [illegible] उद्घाटित करने [illegible] है। इस नाटक में वह महेन्द्रनाथ के परिवार का हितचिन्तक, अनुभवी, दूरदर्शी तथा तार्किक व्यक्तित्व के रूप में चित्रित हुआ है।

# चन्द्रगुप्त

**खण्ड-कः व्याख्या**

गद्य

पद्य

**खण्ड-खः आलोचना**

1. चन्द्रगुप्त की कथा–योजना
2. चन्द्रगुप्त नाटक में चित्रित परिस्थितियाँ
3. चन्द्रगुप्त नाटक की अभिनेयता
4. चन्द्रगुप्त नाटक की गति–योजना
5. चन्द्रगुप्त नाटक में ऐतिहासिकता और कल्पना का समन्वय
6. चन्द्रगुप्त नाटक की संवाद योजना
7. चन्द्रगुप्त नाटक मे अन्तर्द्वन्द्व – योजना
8. चन्द्रगुप्त नाटक में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना
9. चन्द्रगुप्त नाटक मे चरित्र–चित्रण
    - क. चन्द्रगुप्त
    - ख. चाणक्य
    - ग. सिंहरण
    - घ अम्भीक
    - ङ. सिकंदर
    - च पर्वतेश्वर
    - छ राक्षस
    - ज अल्का
    - झ सुवासिनी
    - ट कल्याणी
    - ञ कार्नेलिया
10. चन्द्रगुप्त नाटक की भाषा–शैली
11. चन्द्रगुप्त नाटक का उद्देश्य/संदेश

# खण्ड-क: व्याख्या

१. **"आर्यावर्त्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रताड़ना की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्ड-राज्य से जर्जर है। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा।" (पृष्ठ ४५)**

**संदर्भ-प्रसंग**

चन्द्रगुप्त नाटक में प्रथम अंक से उद्धत प्रस्तुत गद्यांश में मालवगणपति का पुत्र सिंहरण भारतवर्ष के भावी विनाश की सूचना देता है। वह तक्षशीला के गुरुकुल से निकला है। वहाँ उसे तक्षशिला की राजनीति के विषय में जानकारी प्राप्त करने का आदेश मिलता है। अतः वह देशद्रोही आम्भीक के कुचक्रों के प्रति सजग है। चाणक्य के इस कथन पर कि यवनों के दूत यहाँ क्यों आये हैं, सिंहरण उत्तर देता है।

**व्याख्या**

मैं यह जानने का प्रयास कर रहा हूँ कि यवन के दूत तक्षशिला में क्यों आए हैं? उनका आना अकारण नहीं है। तक्षशिला के राजकुमार से मिलकर वे षड्यंत्र रच रहे हैं। वे सम्पूर्ण आर्यावर्त्त को गुलाम बनाना चाहते हैं ये लोग धोखे और जालसाजी का जाल बुनकर समस्त आर्य--खण्ड पर अधिकार जमाना चाहते हैं। तक्षशिला के राजकुमार से ये यवन मिलकर ऐसी तैयारी कर रहे हैं कि भविष्य में आर्यावर्त्त इनका गुलाम हो जाए। उत्तर भारत के सब राज्य आपस में द्वेष--भाव से भरे हैं। द्वेष के कारण वे आपस में ही लड़ते रहते हैं और समय आने पर एक--दूसरे की सहायता नहीं करते। अतः जल्दी ही चौकाने वाली एक विनाशक घटनाएँ घटेंगी। जैसे विस्फोट से पूर्व धीरे--धीरे आग सुलगती रहती है वैसी ही उत्तराखण्ड के राज्यों में राग--द्वेष--स्वार्थ की आग सुलग रही है। यह आग शीघ्र ही विस्फोट का भयानक रूप लेगी।

**विशेष**

1. सिंहरण ने आम्भीक द्वारा यवनों से की गई अभिसन्धि की ओर संकेत किया है।
2. सिंहरण के चरित्र की विशेषताएं आरम्भ से ही उभरने लगती हैं। वह भारत के प्रति कर्त्तव्य परायण है, भविष्य को देखने वाला है, वर्तमान में सजग है जागरूक है।
3. नाटक की 'प्रारम्भावस्था' की सिद्धि होती है।
4. कथन एवं भाषा पात्रोचित होते हुए भी नाटकोपयोगी है।

२. **''ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। वह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी, स्वेच्छा से इन माया-स्तूपों को ठुकरा देता है, प्रकृति के कल्याण के लिए ज्ञान का दान देता है। (पृष्ठ ४६)**

**संदर्भ प्रसंग**

'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रयय अंक से उद्घृत प्रस्तुत गद्यांश में मालवगणपति का पुत्र सिंहरण भारतवर्ष के भावी विनाश की सूचना देता है वह तक्षशिला के गुरुकुल से निकला है। वहाँ उसे तक्षशिला की राजनीति के विषय में जानकारी प्राप्त करने का आदेश मिलता है, अतः वह देशद्रोही आम्भीक के कुचक्रों के प्रति सजग है। चाणक्य के इस कथन पर कि यवनों के दूत यहा क्यों आये हैं, सिंहरण उत्तर देता है:

**व्याख्या**

तुम भ्रम में हो राजकुमार! तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि ब्राह्मण किसी के राज्य में किसी के अधीन नहीं रहता। वह न ही किसी के अन्न पर पलता है जहाँ रहता है वही कल्याण करता है अतः ब्राह्मण पर किसी का कोई एहसान नही। वह तो अपने ही मन के राज्य में रहता है। मन जैसा कहे वैसा ही करता है। राज्य नामक राजनीतिक संस्था के नियमों को ब्राह्मण नही

मानता। वह तो अमृत के समान सुख व शांति देने के लिए ही जीवित रहता है। अतः तुम व्यर्थ ही यह घमण्ड मत करो कि मैं तुम्हारे राज्य में रहता हूँ और तुम्हारे अन्न पर पलता हूँ। ब्राह्मण कमजोर नहीं होता। उसमें सब प्रकार के सुख व शक्ति प्राप्त करने की क्षमता होती है किन्तु वह कभी भी भौतिक समृद्धि के पीछे नहीं दौड़ता। धन–सम्पति माया है और ब्राह्मण माया के इस भण्डार का बेहियक ठुकरा देता है। सृष्टि में जितने भी लोग रहते हैं उन सब की भलाई के लिए ब्राह्मण उनको ज्ञान देता है उनको जीवन के सही तत्त्व समझता है।

**विशेष**

1. चाणक्य के चरित्र का प्रकाशन।
2. चाणक्य के माध्यम से प्रसाद जी ने ब्राह्मणत्व का महत्त्व स्थापित किया है।
3. चाणक्य ब्राह्मण का वही आदर्श स्थापित करता है, जो गीता में श्री कृष्ण ने कर्मयोगी का निश्चित किया है वहाँ भी कर्म योगी को विश्व के माया स्तूपों से सर्वथा मुक्त माना है। यहाँ भी ब्राह्मण को निस्वार्थ भाव से विश्व के मायाजालों से मुक्त रहकर विश्व कल्याण करने वाला कहा है।
4. आम्भीक एवं चाणक्य के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है एक का मिथ्या गर्व व्यंजित है दूसरे की विश्व–कल्याण करने की भावना एवं स्पष्टवादिता व्यंग्य है।
5. भाषा परिष्कृत, अलंकृत एवं नाटकोचित है।
6. 'माया–स्तूपों' में रुपक अलंकार है।
8. **"हाँ-हाँ, रहस्य है। यवन आक्रमणकारियों के पुष्कल-स्वर्ण से पुलकित होकर, आर्यावर्त्त को सुख-रजनी की शांति-निदा में उत्तरापथ की अगेला धीरे से खोल देवे का रहस्य है; क्यों राजकुमार! सम्भवतः तक्षशिलाधीश बाल्हीक तक इसी रहस्य का उद्‌घाटन करने गये थे। (पृष्ठ 47)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत अवतरण 'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य से उद्धत है। आम्भीक देश–द्रोही होने के कारण सदैव सतर्क रहता है। उसे चाणक्य, सिंहरण आदि के वार्तालाप में अपने विरुद्ध कुचक्रों का सृजन प्रतीत होता है। उसे आशंका है कि ये लोगों ने राजनीतिक मामलों में कुछ रहस्य छिपा रखा है। अतः वह क्रोधपूर्वक अलका से चुप रहने को कहता है। उसके क्रोध को तीव्रतर करने के लिए सिंहरण अत्यंत व्यग्यंपूर्ण शब्दों में कहता है।

**व्याख्या**

हाँ, निश्चय ही कोई रहस्य है और इस रहस्य को मैं बताता हूँ -- तुम अपने स्वार्थ अपने स्वार्थ के लिए सारे आर्यावर्त्त के साथ विश्वासघात करना चाहते हो। आर्यावर्त्त अभी सुखी है। सब तरफ शांति छाई हुई है। तुम यवनों के साथ मिलकर इस सुख–शांति को नष्ट करने पर तुले हुए हो। यवन आक्रमणकारियों ने तुमको काफी स्वर्ग दिया है, शायद और तुम उसी की खुशी में अपने ही देश के साथ विश्वासघात करने जा रहे हो। मुझे यह सब पता है। तुम तो यह काम इतना चुपचाप करना चाहते हो कि किसी को भी इसकी भनक न पड़े किन्तु तुम्हारा यह रहस्य मुझसे नहीं छपा है। तक्षशिला महाराजा बाल्हीक के पास भी शायद तुम यही गोपनीय बात बतलाने गये थे।

**विशेष**

1. आम्भीक की स्वार्थपरता एवं शङ्कालुता पर प्रकाश पड़ता है।
2. सिंहरण की निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता व्यंजित है।
3. व्यग्यात्मक भाषा का कुशलतापूर्वक वर्णन किया गया है।
4. 'तुम मालव हो और यह मगध.....का सर्वनाश होगा।'

8. **"तुम मालव हो और यह मागध, यहीं तुम्हारे मान का अवसान है न? परन्तु आत्म-सम्मान इतने ही से संतुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्यावर्त्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनंतर दूसरे विदेशी विजेता से पद्‌दलित होंगे? आज जिस व्यंग्य**

**को लेकर इतनी घटना हो गई है, वह बात भावी गांधार-नरेश आम्भीक के हृदय में शल्य के समान चुभ गई है। पञ्चनद-नरेश पर्वतेश्वर के विरोध के कारण यह क्षुद्र-हृदय आम्भीक यवनों का स्वागत करेगा और आर्यावर्त्त का सर्वनाश होगा।" (पृष्ठ ४८)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत कथन जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य से उद्धृत किया गया है। आम्भीक एवं अलका के चले जाने के बाद चंद्रगुप्त, आम्भीक द्वारा किए गए सिंहरण के अपमान का बदला लेने के लिए कहता है। वह उसके अपमान को अपना अपमान समझता है किंतु चाणक्य सम्पूर्ण राष्ट्र को एक समझता है, वह व्यक्ति एवं क्षेत्रवाद को गर्हित समझता है। सम्पूर्ण आर्यवर्त्त की रक्षा एवं सम्मान उसका ध्येय है। वह दोनों को समझाते हुए कहता है।

**व्याख्या**

जब तुम लोग मालव एवं मगध होने का संकुचित दृष्टिकोण दोगे और राष्ट्र की व्यापक भावना को स्वीकार करोगे तभी राष्ट्र का कल्याण सम्भव है और तुम अपने को मालव समझ कर अपने सम्मान की रक्षा को आवश्यक समझ रहे हो या अपने सम्मान की पूर्णता समझ रहे हो। सिंहरण से यह कहने के पश्चात् वे चंद्रगुप्त से कहते हैं कि तुम भी अपने को मगध के प्रति अपनी निष्ठा के बल पर गौरवान्वित समझते हो किन्तु इनके अलग–अलग स्वाभिमान से राष्ट्र को कभी भी सम्मान नहीं मिलेगा। तुम्हारा वास्तविक स्वाभिमान यही है कि तुम अपनी संकुचितता का परित्याग करके समस्त आर्यावर्त्त को अपना समझ कर उसके सम्मान की रक्षा करो। यदि हमने अपने इस संकुचित दृष्टिकोण को नहीं त्यागा तो निकट भविष्य में ही आर्यावर्त्त के सभी राष्ट्र स्वतंत्र रहकर अलग–अलग पड़ जायगें और विदेशी आक्रमणकारी एक–एक करके इन सभी को अपने वश में करते चले जायेंगे। आज की छोटी–सी घटना ने ही आम्भीक को उत्तेजित कर दिया है वह गांधार का भावी राजकुमार है। आज की घटना उसके हृदय में कांटा बन कर चुभ गई और अवसर मिलने पर वह सम्पूर्ण देश का अमंगल करने के लिए पर्याप्त है। फिर गांधार नरेश का पंचनंद नरेश पर्वतेश्वर से विरोधी भी है। अतः यह भी सम्भव है कि अवसर मिलने पर वह उससे भी बदला लेने के लिए सन्नद्ध हो जाए। वह लालची युवक यदि यवन–आक्रमणकारियों का स्वागत करे और सम्पूर्ण राष्ट्र का अमंगल करे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होगा क्योंकि ये सारे कार्य उसकी प्रवृत्ति के अनुसार ही होंगे। अतः इन परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि हम मालव एवं मगध होने की संकुचित भावना को त्याग कर सारे राष्ट्र को एक समझे।

**विशेष**

1. प्रसाद जी ने अपनी सभी नाटकों में राष्ट्रीय भावना को मुखर किया है। यहाँ भी चाणक्य के माध्यम से ऐसा किया गया है। उनकी राष्ट्रीयता की भावना अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई पड़ती है।
2. अतीत से सामग्री ग्रहण कर तत्कालीन परिस्थितियों को मुखरित किया गया है।
3. चाणक्य की राष्ट्रीयता एवं दूरदर्शिता अंकित की गई है।
4. यहाँ सूच्य वस्तु के रूप में आम्भीक के द्वारा यवन आक्रमणकारियों की सहायता की सम्भावना को प्रस्तुत किया गया है आम्भीक के चरित्र का पतन भी मुखरित होता है।
5. भाषा परिष्कृत एवं सुंसस्कृत है।

**५. "एक अ[illegible]भय गंधक का स्रोत आर्यावर्त्त के लौह-अस्त्रागार में घुसकर विस्फोट करेगा। चञ्चला रण-लक्ष्मी इंद्र-धनुष-सी विजय माला हाथ में लिये उस सुंदर नील-लोहित प्रलय-जलद में विचरण करेगी और वीर-हृदय मयूर-से नाचेंगे।" (पृष्ठ ४६)**

**संदर्भ प्रसंग**

'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य से अवतरित प्रस्तुत गद्यांश में 'प्रसाद' ने वीर पुरुष के निर्भीक हृदय का स्पष्टीकरण किया है। सिंहरण एक ऐसा वीर है जो युद्ध की आशंका से भयभीत न होकर प्रोत्साहित होता है जब उसे निकट भविष्य में भारत पर होने वाले आक्रमण का निश्चय हो जाने पर वह समय की उस चुनौती का सामना शौर्यपूर्वक करने के लिए सन्नद्ध हो जाता है।

**व्याख्या**

यवन–सेवा आर्यावर्त्त पर आक्रमण करेगी उस समय वीरों के शरीर में शौर्य अग्निमय गंधक की भांति बहेगा। जैसे गंधक में जलने की क्षमता होती है वैसी ही वीर सैनिक में शत्रु को खाक कर देने वाला जोश बहेगा। शस्त्रों के भंडार में जिस प्रकार आग लगने से भयानक विस्फोट होता है वैसे ही आर्यावर्त्त के शस्त्र भंडार से वीर सैनिक हथियार लेकर शत्रुओं के बीच विस्फोट करेंगे। चारों ओर प्रलय का सा विनाश फैलेगा। जैसे प्रलय–कालीन बादलों में बिजली चमकती है वैसी ही भयानक रण में रण की देवी विचरणा करेगी। उसके हाथों में विजय की सतंरगी माला होगी। रण में जीतने वाले के गले में रण–देवी वह सतरंगी माला डालेगी। रण की देवी भी लक्ष्मी के सम्मान अत्यंत चंचल होती है। पल–पाल में विजय–पराजय की स्थितियां बदलती रहती है। रण क्षेत्र में रक्त व आग के बीच इसी रण देवी को देखकर वीर सैनिक प्रसन्न होंगे। रण की भयानकता से वे उसी तरह पुलकित होंगे जैसे कि बादलों को देखकर मोर खुशी से नाचने लगता है।

**विशेष**

1. युद्ध की विभीषका का वर्णन किया है।
2. जिस समय प्रसाद जी ने इस नाटक सृजन किया उस समय भारत पर अंग्रेजों का राज्य था। उनकी फूट डालने की नीति का परिणाम सभी भारतवासी भोग रहे थे। उसकी अभिव्यंजना भी यहां हुई है।
3. सिंहरण की वीरता प्रदर्शित की गई है। उसके उत्साह का वर्णन किया गया है।
4. भाषा कलात्मक एवं आलंकारित होने से विलष्ट हो गई है। प्रथम पंक्ति में रूपक अलंकार है तो दूसरे वाक्य में निश्चय ही सागरूपक है। 'इन्द्रधनुष सी विजय माल' और 'वीर हृदय मयूर–से' उपमा अलंकार का प्रयोग है।
5. वीर–हृदय का एक चित्र स्व. दिनकर जी के शब्दों में देखिये:

   **"युद्ध की ललकार सुन प्रतिरोध से,**
   **दीप्त हो अभिमान उठता बोल है।**
   **चाहता बस तोड़ कर बहना लहू,**
   **आ स्वयं तलवार जाती हाथ में।"**
6. स्वगत कथन होते हुए भी कथन की दीर्घता तो नहीं किन्तु रंगमच की दृष्टि से भाषा दुरूह अवश्य है।

६. **"मानव कब दानव से भी दुर्दान्त, पशु से भी बर्बर और पत्थर से भी कठोर, करूणा के लिए निखकाश हृदयवाला हो जाएगा, नहीं जाना जा सकता। अतीत सुखों के लिए सोच क्यों अनागत भविष्य के लिए भय क्यों और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूंगा; फिर चिंता किस बात की?" (पृष्ठ ४६)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पद्यांश 'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य से अवतरित है। 'प्रसाद' जी की यह विशेषता है कि वे अपनें विभिन्न नाटकीय पात्रों के माध्यम से अपने जीवन के अनुभवों एवं सिद्धान्तों को स्पष्ट कर देते हैं अलका सिंहरण को देखते ही उसके निर्भीक व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाती है। आम्भीक के चले जाने पर वह सिंहरण को अत्यंत प्रेमपूर्वक समझाती है कि मनुष्य को अपने जीवन और सुख का भी ध्यान रखना चाहिए वह कहती है कि जिस ढंग से तुमने तक्षशिला के राजकुमार आम्भीक को अपमानजनक उत्तर दिये है, उनसे तुम्हारा जीवन विपत्तिग्रस्त हो सकता है, आम्भीक तुम्हारी जीवनलीला समाप्त कर सकता है। अलंका के उक्त कथन के प्रत्युत्तर से सिंहरण पहले आम्भीक के पतन की ओर संकेत करता है और फिर अपने प्रति प्रकट की गई अल्का की सहानुभूति का उत्तर देता है।

**व्याख्या**

मनुष्य का जीवन बड़ा अनिश्चित है उसके विषय में ठोस रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वह कब किस तरह का आचरण करेगा, यह कोई नहीं जानता। मानव किसी भी समय दानव से भी अधिक भयानक बन सकता है। वह कभी–कभी पशु से भी अधिक हिंसक बन जाता है और कभी इतना अधिक कठोर रूप धारण कर लेता है कि उसके सामने पत्थर की कठोरता भी कुछ नहीं रहती। जिस मनुष्य के मन में करूणा छिपी रहती है। वही मनुष्य कभी–कभी इतना हृदयहीन बन जाता है कि उसमें करूणा का एक कण भी नजर नहीं आता। इसलिए मनुष्य जीवन के विषय में सोचना व्यर्थ है। रही बात जीवन के सुख की,

तो मेरे मतानुसार आदमी को बीते हुए सुखों की चिंता नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनको किसी भी कीमत पर नहीं लौटाया जा सकता। उधर जो भविष्य अभी आया भी नहीं है उसके लिए डरे क्यों? पता नही भविष्य आए भी या नहीं भी आए। अब रहा वर्तमान तो उसको अपने अनुकूल बना लेने की मुझ में क्षमता है। इसलिए मैं किसी भी प्रकार के सुख की चिंता नहीं करता।

**विशेष**

1. प्रस्तुत पंक्तियों में सिंहरण का आत्मविश्वास एवं कर्मयोग और बाहुबल का विश्वास दृष्टिगोचर होता है वह वास्तव में एक वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें कर्त्तव्य एवं साहस के दर्शन होते हैं।
2. यहां मानव जीवन के दौर्बल्य एवं उसके अद्यः पतन की ओर संकेत किया गया है।
3. भाषा में ओजगुण दृष्टव्य है।

**७. "झोंपड़ी ही तो थी, पिताजी यही मुझे गोद में बिठा कर राज-मन्दिर का सुख अनुभव करते थे। ब्राह्मण थे, ऋतु और अमृत जीविका से संतुष्ट थे, पर वे भी न रहे। कहां गये, कोई नहीं जानता। मुझे भी कोई नहीं पहचानता यही तो मगध का राष्ट्र है। प्रजा की खोज है किसे? वृद्ध दरिद्र ब्राह्मण कहीं ठोकरें खाता होगा या मर गया होगा।" (पृष्ठ ५४)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद जी द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य से उद्धत की गई है चाणक्य तक्षशिला से अपने निवास स्थान पर पाटिलीपुत्र में वापिस आता है किन्तु उसे वहाँ अपना कुछ भी अवशिष्ट नहीं मिला। वह कहता है कि:

**व्याख्या**

यही वह स्थान है जहां पर मेरी छोटी–सी झोपड़ी थी। आज वह भी जीर्ण–शीर्ण दशा में है। मेरे पिताजी इसी स्थान पर बैठकर गोदी में लेकर मुझे खिलाया करते थे। वे पूर्ण संतुष्ट रहते थे। मुझे गोदी में लेकर इस झोंपड़ी में ही राज–भवन का सा सुख अनुभव किया करते थे। अर्थात् उन्हें जो कुछ प्राप्त था उसी में वह आनंद एवं संतुष्टि का अनुभव करते थे। वे ब्राह्मण थे और ज्ञान के आधार पर विश्व के सामान्य नियमों का पालन करते हुए जीवन यापन करते थे। अर्थात् विश्व के नियामक नियमों अर्थात् वे नियम जिनके द्वारा विश्व का नियमित संचालन होता है, का पालन करते हुए यज्ञ करके उससे बची सामग्री से अपनी जीविका चलाते थे। किन्तु आज कोई नहीं जानता वे कहां है। मुझे भी आज कोई पहचानता नहीं है कि वह किस अवस्था में हैं। आगे वह अपने पिता के विषय में सोचता हुआ कहता है कि वे गरीब ब्राह्मण थे न जाने आज कहां मारे–मारे फिरते होंगे या कौन कह सकता है कि वे मृत्यु को प्यारे हो गए हों।

**विशेष**

1. मानव प्रकृति का चित्रण किया गया है मानव को अपनो से प्रेम होता है। उनका ध्यान उन्हें सदा बना रहता है।
2. चाणक्य के हृदय में सहज स्वाभाविकता, कोमलता आदि भावनाओं का निदर्शन यहां हुआ है।
3. प्रजा के प्रति मगध की उदासीनता का वर्णन है।
4. भाषा भावानुकूल, सहज, स्वाभाविक एवं प्रवाहपूर्ण है।

**८. "पिता का पता नहीं, झोपड़ी भी न रह गयी। सुवासिनी अभिनेत्री हो गयी–सम्भवतः पेट की ज्वाला से। एक साथ दो-दो कुटुम्बों का सर्वनाम और कुसुमपुर फूलों की सेज में ऊँघ रहा है। क्या इसीलिए राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था? मगध! मगध! सावधान! इतना अत्याचार! सहन असम्भव है? तुझे उलट दूंगा। क्या बनाऊँगा, नहीं, तो नाश ही करूँगा। एक बार चलूँ नंद से कहूँ। नहीं, परन्तु मेरी भूमि, मेरी वृत्ति, वहीं मिल जाय, मैं शास्त्र-व्यवसायी न रहूँगा, मैं कृषक बनूँगा। मुझे राष्ट्र की भलाई-बुराई से क्या। तो चलूँ यह एक लकड़ी का स्तम्भ अभी उसी झोपड़ी का खड़ा है, इसके साथ मेरे बाल्यकाल की सहस्त्रों भाँवरिया लिपटी हुई हैं, जिन पर मेरी धवल मधुर हँसी का आवरण चढ़ा रहता था। शैशव की स्निग्ध स्मृति। त्रिलीन हो जा।" (पृष्ठ ५६)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पक्तियां जयशंकर प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य से उद्धृत है। जब चाणक्य पाटिलीपुत्र लौट कर आता है तो उसे प्रतिवेशी से पता लगता है कि उसके पिता को मगध सम्राट ने निर्वासित कर दिया है और शकटार बन्दीगृह में पड़ा है उसकी बाल परिचिता सुवासिनी अभिनेत्री बनने पर मजबूर हो गई है तो वे क्रोधाभिभूत हो गए। प्रतिवेशी के चले जाने पर चंद्रगुप्त क्रोधावेश में सोचता है।

**व्याख्या**

पिताजी का कोई ज्ञान नहीं कि वे कहां है एक झोपड़ी थी। वह भी टूट–फूट गई। सुवासिनी अभिनेत्री बन गई। सम्भव है उसका जब कोई वाक्य न रहा हो तो पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए उसने अभिनेत्री बनना स्वीकार किया हो। इस प्रकार एक साथ दो परिवार – एक मेरा (चाणक्य) और दूसरा शकटार का – नष्ट हो गये, राजा को किसी की कोई चिंता नहीं। पाटिलीपुत्र – मगध की राजधानी मानो कुसुमपुर ही विलासिता का कानन है, फूलों की सेज पर क्रीड़ा कर रही है। अर्थात् विलासिता की क्रीड़ में सो रहा है। क्या मानव समाज ने राष्ट्र एवं स्वराज्ञा का निर्माण इसलिए किया था कि वह आनंद मनाए और प्रजा त्रस्त रहे। वस्तुतः राष्ट्र का निर्माण किया तो इसलिए था कि मानव उसकी छत्र–छाया में रहकर सुख–शांति से रह सके किन्तु यहां इसका विपरित हो ही रहा है। चाणक्य पुनः उत्तेजित हो जाता है। वह अत्याचार के बाहुल्य की कल्पना करके चिल्ला पड़ता है, मगध शासक सावधान हो जाओ। अब और अधिक अत्याचार सहन नहीं किये जा सकते हैं मैं तुझे नष्ट कर दूंगा तुझे पलट दूंगा। अर्थात् अत्याचारी शासक को बदल दूंगा। तेरे स्थान पर नवीन शासन व्यवस्था की स्थापना करूंगा। वह कुछ देर सोचकर कहता है कि एक बार कम से कम नन्द से भेंट करके कह कर देख लिया जाये कि मुझे मेरी भूमि मिल जाये, वृत्ति मिल जाए तो मैं सब झगड़ों को छोड़कर कृषक का जीवन व्यतीत करूंगा। मैं अब अध्यापन कार्य भी नहीं करूंगा। मुझे इस विश्व से क्या लेना देना है, मुझे राष्ट्र की अच्छाई बुराई से क्या तात्पर्य है, चाणक्य की एक लकड़ी के खड़े खम्बे को देखकर कहते हैं कि सम्पूर्ण झोंपड़ी तो गिर गई है – नष्ट हो गई है केवल एक खम्बा शेष रह गया है। इसी स्तम्भ के साथ न जाने मेरी कितनी स्मृतियां सम्बन्धित हैं न जाने मैंने कितनी क्रीड़ाएँ इस स्तम्भ के साथ की थीं इसके साथ मधुर एवं सहज क्रीड़ाओं की स्मृतिया लिपटी हुई हैं। इसे देखकर आज वे सब स्मृति–पटल पर उभर कर आ रही हैं। जब सब कुछ समाप्त हो गया। तो मेरे हृदय की स्मृति का यह अवशेष भी क्यों रह जाये और वह सोचकर उस खम्बे को भी खींच कर गिरा दिया है।

**विशेष**

1. चाणक्य का अंतर्द्वन्द्व मुखर हो उठा है एक ओर वे मगध को उलटने की बात सोचते हैं दूसरी ओर शांतिप्रिय जीवन के लिये कृषक का जीवन बिताने की बात करते हैं।
2. मानव की सहज उदासीनता का भी वर्णन यहां किया गया है।
3. मगध के अत्याचारी शासक की प्रजा के प्रति उदासीन भाव की व्यंजना की गई है।

**६. "वह तो रहेगा ही! जिस दिन उसका अन्त होगा, उसी दिन आर्यावर्त्त का ध्वंस होगा। यदि अमात्य ने ब्राह्मण-नाश करने का विचार किया हो तो जन्मभूमि की भलाई के लिए उसका त्याग कर दें, क्योंकि राष्ट्र का शुभचिंतन केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं एक जीव की हत्या से डरने वाले तपस्वी बौद्ध, सिर पर मैडराने वाली विपत्तियों से रक्त-समुद्र की आंधियों से, आर्यावर्त्त की रक्षा करने में असमर्थ प्रमाणित होंगे।" (पृष्ठ ६१)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के पंचम दृश्य से ली गई हैं। चाणक्य ने नंद सभा में अचानक प्रवेश करके बौद्ध धर्म के मानव–जीवन के लिए अपूर्ण बताया और अपने को ब्राह्मणत्व स्नातक के रूप में प्रस्तुत किया। नंद ब्राह्मणों से जलता है। वह इन्हें जलता हुआ अंगारा समझाता है और ताप केन्द्र समझता है इसी पर चाणक्य कहता है कि:

**व्याख्या**

ब्राह्मण निश्चय ही तेजवान रहेगा। उसी से राष्ट्र का भला होगा वह परिस्थितियों का अध्ययन करता है और मार्ग का निर्माण करता है जिस दिन ब्राह्मणों का नाश हो जाएगा। उसी दिन आर्यावर्त्त का भी नाश हो जाएगा। यदि अमात्य ने यह निश्चय

कर लिया है कि वह ब्राह्मणों को समाप्त करके राष्ट्र का बौद्ध धर्म के सहारे उद्धार करेंगे तो यह उनकी महामूर्खता होगी। और उन्हें अपना अनिष्टकारी विचार त्याग देना चाहिए क्योंकि ब्राह्मण ही राष्ट्र की भलाई के विषय में सोच सकता है ब्राह्मणत्व के समाप्त होने के साथ–साथ राष्ट्र भी परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा जाएगा। क्योंकि बौद्ध लोग तो एक जीव की हत्या करने से भी डरने वाले होते हैं और राष्ट्र की रक्षा में नर हत्या भी सम्भव है इसलिए वे राष्ट्र पर आने वाली विपत्तियों से उसकी रक्षा कर पाने में असमर्थ ही रहेंगे। यहां तो रक्त पात की सम्भावना है। अतः बौद्ध धर्म का प्रसार करना निरर्थक है।

**विशेष**

1. चाणक्य की स्पष्टवादिता एवं दूरदर्शिता द्रष्टव्य है।
2. भाषा सीधी–सरल एवं प्रवाहयुक्त है।

**१०. "जन्म भूमि के लिए ही यह जीवन है फिर जब आप-सी सुकुमारियां इसके सेवा में कटिबद्ध है, तब मैं पीछे कब रहूंगा।" (पृष्ठ ६६)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद जी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के पांचवे दृश्य से उद्धृत की गई हैं। सिंहरण यवन द्वारा घायल हो जाता है। अलका का स्नेह सिंहरण पर बढ़ता जा रहा है। सिंहरण साहसी और निर्भीक युवक है। अलका उसे विदा देने के लिए आयी है। वह अपने देश वापिस जा रहा है? अलका उसके साथ मालविका को भेज रही है क्योंकि वह अकेला जाने की स्थिति में नही है। तभी सिंहरण अलका से कह रहा है कि:

**व्याख्या**

जैसा तुम कहोगी मैं वैसा ही करूंगा। मैं शीघ्र ही वापिस आऊँगा। अब आप जैसी सुकुमारी नारियां राष्ट्र सेवा के लिये प्रस्तुत हैं तो मैं देश सेवा के कार्य करने में कदापि पीछे नहीं रहूँगा। मातृभूमि की रक्षा करना पवित्र कार्य है। ऐसे पवित्र कार्य करने में कभी भी पीछे नही रह सकता। मेरे जीवन की सार्थकता मातृभूमि की रक्षा करने में ही है जब कोमल नारियां युद्ध की भयानकता वरण कर सकती हैं तो मैं तो पुरुष हूँ जो नैसर्गिक रूप से कठोरता एवं ओज के प्रतिरूप हैं। अतः मैं राष्ट्र के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए कटिबद्ध हूँ।

**विशेष**

1. इन पंक्तियों के लिखने के काल में नारियां भारतीय स्वातंत्रय युद्ध में भाग लेने लगी थीं। इस प्राचीन भाव का मुखर करके नाटककार ने युवकों को उत्तेजना प्रदान की है।
2. सिंहरण की राष्ट्रीयता, निर्भीकता, कर्त्तव्य परायणता आदि तो व्यंजित हैं ही; अलका की देशभक्ति भी अभिव्यक्त हुई है।

**११. "समीर की गति भी अवरूद्ध है, शरीर का फिर क्या कहना है। परन्तु मन में इतने संकल्प और विकल्प? एक बार निकलने पाता तो दिखा देता कि इन दुर्बल हाथों में साम्राज्य उलटने की शक्ति है और ब्राह्मण के कोमल हृदय में कर्त्तव्य के लिए प्रलय की आंधी चला देने की भी कठोरता है। जकड़ी हुई लौह श्रृंखले। एक बार तू फूलों की माला बन जा और मैं मदोन्मत विलासी के समान तेरी सुंदरता को भंग कर दूँ। क्या रोने लगूँ? इस निष्ठुर यंत्रणा की कठोरता से बिलबिलाकर दया की भिक्षा माँगू? माँगू कि मुझे भोजन के लिए एक मुट्ठी चने जो देते हों, न दो, एक बार स्वतन्त्र कर दो? नहीं, चाणक्य! ऐसा न करना। नहीं तो तू भी साधारण-सी ठोकर खाकर चूर-चूर हो जाने वाली एक रामी हो जाएगा। तब मैं आज से प्रण करता हूँ कि दया किसी से न माँगूगा और अधिकार तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूँगा क्या कभी नहीं? हाँ-हाँ कभी किसी पर नहीं। मैं प्रलय के समान अबाध गति और कर्त्तव्य में इन्द्र के वज्र के समान भयानक बनूँगा।" (पृष्ठ ६८)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के सप्तम दृश्य से उद्धृत की गई है। चाणक्य को नंद ने पकड़ कर बन्दीगृह में रख छोड़ा है। चाणक्य ने प्रतिज्ञा की है कि वह नंद वंश का समूल नाश करेगा। बन्दीगृह में चाणक्य अपने विचार पर पुनर्विचार करते हैं। यहाँ उनका अंतर्द्वन्द्व मुखर हुआ है। वे सोचते हैं कि:

**व्याख्या**

यहाँ जब, बन्दीगृह में हवा तक प्रवेश नहीं कर सकती तो इस शरीर के विषय में क्या कहा जा सकता है? वह तो पूर्ण रूप से अपने वश में नहीं है किन्तु मन में फिर भी अनेकानेक विचार आ रहे हैं एक आन्दोलन मन में चल रहा है। कभी एक विचार आता है तो कभी दूसरा विचार आता है। यदि किसी प्रकार से भी मैं एक बार इस बन्दीगृह से अपने आपको मुक्त कर पाता तो मैं ... सिद्ध कर देता कि यह दुर्बल ब्राह्मण राज्य को उलटने की शक्ति भी रखता है। ब्राह्मण अगर एक ओर कोमल है। दया का पुतला है तो वह अवसर पड़ने पर कर्त्तव्य पालन करने के लिए अत्यंत कठोर भी होता है, वह प्रलय तीव्र वायु एवं ... का कारण भी बन सकता है। यदि मेरे शरीर को जकड़ने वाली इस्पात की कठोर शृखलाएं व पुष्प मालाओं के समान कोमल पड़ जाएं और मैं मदोन्मत होकर इनको एक झटके के साथ तोड़ दूं। अगले ही क्षण वे सोचते हैं कि यह सब कुछ हो सकना अत्यंत ही कठिन है? असम्भव है तो मैं क्या करूँ? क्या रोने लगूँ? बन्दीगृह की कठोरता से भयभीत होकर शिथिल बन जाऊँ। बंदी गृह से मुक्त होने की भीख माँगू कि बंदीगृह के कष्ट सहन करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मुझे मुक्त कर दो। क्या मैं इन क्रूर अत्याचारी शासकों से भिक्षा मांगू कि मुझे मुक्त कर दो। किन्तु अगले क्षण ही उसके मस्तिष्क में दूसरा विपरीत भाव आ जाता है। चाणक्य सोचता है कि नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा, मैं कभी भी ऐसा नहीं करूँगा। यदि मैं इन छोटे–से कष्टों से ही विचलित हो गया तो मेरी स्थिति वैसी ही हो जायेगी जैसी कि एक छोटी–सी ठोकर खाने वाले की हो जाती है और वह उसे चूर–चूर होकर साहस त्याग बैठता है। मैं इतना दुर्बल भी नहीं हूँ। कि साधारण–सी यंत्रणा भी सहन न कर सकूं, मैं सब कुछ सहन करने के लिए कठोर हूँ। वह फिर प्रतिज्ञा करता है कि जीवन में वह कभी भी किसी से दयां याचना नहीं करेगा और वह कभी समर्थ एवं लायक होने पर किसी पर दया करेगा भी नहीं। क्योंकि जो जैसा करता है वैसे वैसा मिलना ही चाहिये। वे कहते हैं कि मैं अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिये प्रलय की आँधी के समान अत्यंत तीव्र गति से बढ़ूंगा। मैं कर्त्तव्य मार्ग में इन्द्र के वज्र के समान भयानक एवं कठोर बनकर अग्रसर रहूँगा।

**विशेष**

1. इस स्वागत कथन में चाणक्य का अन्तर्द्वन्द्व मुखर हुआ है किन्तु वह कर्त्तव्य को नहीं भूल पाता है जो इसका उज्जवल पक्ष हैं।
2. चाणक्य के चरित्र की दृढ़ता पर भी प्रकाश पड़ता है।
3. भाषा का प्रवाह तो सराहनीय है किन्तु आलंकारिता से दुरूहता आ गई है, जो रंगमंच की दृष्टि से बहुत उपयुक्त नहीं है किन्तु पात्रानुकूल भाषा उपयोगी है।
4. मध्य में रूपक एवं 'मदोन्मत, विलासी के समान' और 'प्रलय के समान अबाध गति' में उपमा अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया गया है।

**१२. "त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और सम्मान के लिए हैं लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। हमारी दी हुई विभूति से हमीं को अपमानित किया जाए, ऐसा नहीं हो सकता। कात्यायन! अब केवल पाणिनि से काम न चलेगा। अर्थशास्त्र और दण्डनीति की आवश्यकता है।" (पृष्ठ ६६)**

**संदर्भ प्रसंग**

मगध के बंदीगृह में ब्राह्मण चाणक्य को समझाने के लिए वररूचि को उसके तप और त्याग का ध्यान दिलाकर उससे क्षमा का आग्रह करने लगा। उत्तर में चाणक्य ने ब्राह्मणत्व का वास्तविक अर्थ बताते हुए उसको इन शब्दों में सावधान किया:

**व्याख्या**

मैं ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण होने के नाते हमने समस्त भौतिक सुखों का त्याग किया है? किसी के बुरे कामों से भी हम तिलमिलाने नहीं प्रत्युत उसे माफ कर देते हैं। हम सद्कर्मों के लिए तपस्या करते हैं और विद्या का उपार्जन करते हैं। इन सब के पीछे हमारा लक्ष्य केवल इतना ही है कि हम संसार का भला करने की शक्ति प्राप्त कर सकें और लोगों को ऐसा ज्ञान दें सकें कि वे उसके आधार पर उत्तम जीवन व्यतीत कर सकें हमने यह सब इसलिए नहीं किया हैं कि राजाओं की तलवार से डरकर सिर झुकालें का धन के लोभ में जीवन की सच्चाई को छोड़ दें। हमें किसी भी प्रकार का भय और अपने पथ से विचलित नहीं कर सकता। तुम्हारे पास जो धन सम्पत्ति है, तुम मुझे उसका लोभ क्यों देते हो? धन को तो हम लोगों में अपनी इच्छा से त्याग

है पर आज तुम उसी का सहारा लेकर और मुझे उसी का लोभ देकर मुझे अपमानित करना चाहते हो, मुझे अपने पद से विचलित करना चाहते हो लेकिन यह तुम्हारी भूल है। मैं ऐसे प्रलोभन से कभी विचलित नहीं हो सकता। कात्यायन! तुम भूल रहे हो, आज हमारे देश की स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट हो गया है कि यहां की जनता को पाणिनि की व्याकरण को पढ़ाने से काम नहीं चलेगा। बल्कि इन्हें अर्थशास्त्र और दण्डनीति भी पढ़ानी होगी – जनता को शास्त्रों का ज्ञान कराना होगा, उसे राजनीतिक दांव–पेच समझाने होंगे और जो गलत काम करता है उसे दंड देना होगा।

**विशेष**

1. चाणक्य के माध्यम से ब्राह्मणत्व धर्म का सुंदर चित्र खींच गया है नाट्यकार ने ब्राह्मण के लिए क्षमा एवं त्याग आवश्यक गुण माने है। इन्हीं के आधार पर उसे सम्मान मिलता है।
2. प्रसाद जी ने 'स्कंदगुप्त' नाटक में भी ब्राह्मण को 'त्याग और क्षमा' की प्रतिमूर्ति प्रतिपादित किया है।
3. प्रसाद ने आधुनिक जीवन में पश्चिमी सभ्यता के कारण दो दोषों – सत्ता (लोहा) और आर्थिक शोषण (सोना) की ओर भी इंगित किया है।
4. भाषा में ओज एवं श्रोत को बांधने की शक्ति है।

**१३. "महाराज! मुझे दण्ड दीजिए, कारागार में भेजिए, नहीं तो मैं मुक्त होने पर भी यही करूंगी। कुलपुत्रों के रक्त से आर्यावर्त्त की भूमि सिंचेगी। दानवी बनकर जननी जन्मभूमि अपनी संतान को खायेगी। महाराज! आर्यावर्त्त के सब बच्चे आम्भीक जैसे नहीं होंगे। वे इसकी मान-प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-तिल कट जाएंगे। स्मरण रहे, यवनों की विजयवाहिनी के आक्रमण को प्रत्यावर्त्तन बनाने वाले यही भारत संतान होंगे। सब बचे हुए क्षतांग वीर, गंधार को भारत के द्वार-रक्षक को विश्वासघाती के नाम से पुकारेंगे और उसमें नाम लिख जाएगा मेरे पिता का आह! उसे सुनने के लिए मुझे जीवित न छोड़िए, दण्ड दीजिए! मृत्यु-दण्ड।" (पृष्ठ ६६)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद जी द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के अष्टम दृश्य से उद्धृत की गई है सिल्यूकस का दूत अलका को बंदी बनाना चाहता था। वह स्वयं ही अपने पिता के पास आ गई है। गंधार नरेश को अलका के अपमान का दुख है। इस सबका कारण वह आम्भीक के कृत्यों को ठहराता है। अलका कह रही है कि:

**व्याख्या**

महाराज आप मुझे कठोर दण्ड दीजिए। बंदीगृह में बंद करवा दीजिए अन्यथा मैं तो फिर वही कार्य करूंगी जो अब तक करती रही हूं अर्थात् देशप्रेमियों की सहायता करूंगी। देश की रक्षा में हाथ बटाऊंगी यह भारतभूमि अपने ही शूरवीर, योद्धाओं के रक्त से रंजित होगी। जो मातृभूमि देवी के समान पालक होती है अब वही राक्षसी का रूप धारण करके अपनी संतानों की हत्या करेगी, उनके रक्त से स्नान करेगी अर्थात् यहां के वीर युद्ध करेंगे और मरेंगे और उनके रक्त में यह भूमि रंजित हो उठेगी। वह आगे कहती है कि सभी लोग एक जैसे नहीं होते हैं। सभी लोग आम्भीक की भांति देशद्रोही अथवा लालची नहीं होंगे। अनेकों वीर निश्चय ही आर्यावर्त्त के सम्मान के लिए – इस भूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे, क्योंकि वे देश का सम्मान अपना ही सम्मान समझते हैं आप मेरी बात याद रखना कि अपने को विश्वविजयी समझने वाली यवनों की सेना ने आर्यावर्त्त की पद्दलित कहने का दुस्साहस किया तो आर्यावर्त्त के वीर पुरुष निश्चय ही शत्रु को नाकों चने चबा देंगे, उनके आक्रमण को विफल बनाने में सफल होंगे और योद्धा जो युद्ध के पश्चात् विकलांग बचेंगे, अपंग एवं निस्सहाय व्यक्ति गंधार नरेश को विश्वासघाती समझेंगे और कहेंगे कि यह देश आर्यावर्त्त का द्वार था और उसके राजकुमार ने स्वर्ण–मुद्राएं लेकर देशद्रोहियों का परिचय दिया है और देशद्रोहियों की पंक्ति में मेरे पिता का नाम सबसे ऊपर होगा। महाराज! मैं यह सब कुछ सुनना नहीं चाहती। मुझे जीवित न छोड़िए और वह मृत्यु दण्ड की याचना करती है।

**विशेष**

1. अलका का क्षत्राणि के रूप में चित्रण है।
2. विश्वासघाती के प्रति रोष एवं घृणा भाव।
3. भाषा ओजपूर्ण और अभिनयोचित।

**१४. "महाराज! धर्म के नियामक ब्राह्मण है, मुझे पात्र देखकर उसका संस्कार करने का अधिकार है। ब्राह्मणत्व एवं सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है। वह अपनी रक्षा के लिए, पुष्टि के लिए और सेवा के लिए इतर वर्णों का संगठन कर लेगा। राजन्य संस्कृति से पूर्ण मनुष्य को मूर्धाभिषिक्त बनाने में दोष ही क्या।" (पृष्ठ ७४)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद जी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के नवम दृश्य से उद्धृत की गई है आचार्य चाणक्य ने पर्वतेश्वर से आग्रह किया कि मगध उद्धार के लिए वह अपनी सेना भेजें। वह वहां चन्द्रगुप्त को शासनाधीन बनाना चाहते हैं पर्वतेश्वर ने चन्द्रगुप्त को वृषण कहा तो आचार्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय सिद्ध किया और कहा कि:

**व्याख्या**

महाराजा! धर्म क्या है, इसका निश्चय करने का अधिकार ब्राह्मण को होता है। समाज में ब्राह्मण ही धर्म की व्यवस्था करता है। इसलिए ब्राह्मण होने के नाते मुझे यह हक है कि मैं इस बात का निर्माण करूं कि कौन व्यक्ति कौन से धर्म का पालन करने योग्य है। अगर पात्र में योग्यता है तो ब्राह्मण उसका किसी भी धर्म में संस्कार कर सकता है। तुम्हें इस मामले में दखल नहीं देना चाहिए। सब लोग यह जानते हैं कि ब्राह्मण का धर्म उसकी विद्या पर आधारित होता है। उसकी बात सब लोगों को माननी पड़ती है आदिकाल से आज तक हर कहीं ब्राह्मण अपनी बुद्धि के बल पर ही धर्म की व्यवस्था करता रहा है । ब्राह्मण का धर्म है उसकी रक्षा के लिए और समाज की व्यवस्था बनाये रखने के लिए उसी में अन्य कई वर्णों की व्यवस्था की है, जैसे –क्षत्रिण, वैश्य और शूद्र। इन वर्णों से अलग–अलग काम है और ब्राह्मण ही इन सबका नियमन करता है ' मैं जानता हूं कि चन्द्रगुप्त में एक राजा होने के सब गुण विद्यमान हैं। इसलिए उसको राजा के पद पर बैठने में कोई दोष नहीं है।

**विशेष**

1. यहां ब्राह्मण को महत्व न दिया जाकर ब्राह्मणत्व पर बल दिया गया है, जो तप, त्याग और विद्या संचयन की तत्परता से प्राप्त होता है।
2. प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त को मौर्य वंशी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है जो चन्द्रगुप्त के नायक होने में सहायक है।
3. ओजस्वी भाषा का वर्णन किया है।

**१५. "रे पद्दलित ब्राह्मणत्व? देख, शूद्र ने निगड़बद्ध किया, क्षत्रिय निर्वासित करता है, तब जल–एक बार अपनी ज्वाला से जल! उसकी चिनगारी से तेरे पोषक वैश्य, सेवक शूद्र और रक्षक क्षत्रिय उत्पन्न हों जात हूं पौरव।" (पृष्ठ ७५)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद द्वारा प्रणीत नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के नवम् दृश्य से उद्धृत की गई हैं। चाणक्य पर्वतेश्वर की सभा में पर्वतेश्वर से सहायता के लिए कहता है। किन्तु वह तैयार नहीं होता। चाणक्य भी क्रोधाभिभूत होकर उसके गर्व के चूर होने और आर्यावर्त्त के यवनों द्वारा पदाक्रांत होने की सम्भावना ही नहीं भविष्यवाणी भी करता है। इस पर पर्वतेश्वर ने चाणक्य से उसकी सीमा से बाहर हो जाने के लिए कहा तो चाणक्य आकाश की ओर देखकर कहता है:

**व्याख्या**

मेरे ब्राह्मण होने को आज सब लोगों ने अपमानित किया है। मेरे ब्राह्मण धर्म की इन्होंने शक्ति के भेद में अंधे होकर कुचला है। शुद्र राजा नंद ने मेरी शिखा खींचकर मुझे अपमानित किया और क्षत्रिय राजा पर्वतेश्वर ने आज मुझे अपने राज्य से निकाल दिया है। तब क्या करूं? इसी तरह अपमानित होता रहूँ? नहीं यह नहीं हो सकता मुझे अब अपनी बुद्धि बल का प्रयोग करना होगा। अत्याचारी के विनाश की आग में मैं जलूँ और चारों ओर उसी आग को फैला दूं। सब लोग ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए आगे बढ़े। अब मुझे वह काम करना चाहिए जिसके प्रभाव से ब्राह्मणों का पोषण करने वाले वैश्य पैदा हों ताकि ब्राह्मण निराश्रय न रहें। ब्राह्मण की सेवा करने वाले के लिए शूद्र पैदा हों और उसकी रक्षा करने वाले क्षत्रिय आगे बढ़े। इस समय तो न कोई ब्राह्मण का पोषक है न सेवक और न ही रक्षक। तो आज से मेरा यही संकल्प रहा कि मैं अब वह काम करूंगा जिससे ब्राह्मण को कभी अपमानित न होना पड़े। राजा पौरव। मैं जा रहा हूँ किन्तु अब तुम सावधान रहना।

**विशेष**

1. यहाँ चाणक्य का आत्मसम्मान बोल रहा है। उसकी प्रतिज्ञा से एक बार सहृदय को लगने लगता है कि यवन मगध में न टिकने पायेंगे और मगध की जनता को भी नन्द से छुटकारा मिल जायेगा।
2. ओजमयी भाषा का प्रयोग किया गया है।

**१६. "जब आंधी और करका-वृष्टि, अवर्षण और दावाग्नि का प्रकोप हो, तब देश की हरी-भरी खेती का रक्षक कौन है? शून्य व्योम प्रश्न को बिना उत्तर दिये लौटा देता है? ऐसे लोग भी आक्रमणकारियों के चुंगल में फँस रहे हों; तब रक्षा की क्या आशा! झेलम के पार सेना उतरना चाहती है, उन्मत्त पर्वतेश्वर अपने विचारों में मग्न है।"** (पृष्ठ ७७)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद जी द्वारा विरचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के दशम दृश्य के अंत से ली गई है। चन्द्रगुप्त की सिंह से रक्षा करने के बाद, उसे चाणक्य के साथ, सिल्यूकस अपने शिवर में ले जाता है उन्हें परस्पर मित्रता का व्यवहार करते हुए देखकर अलका चक्कर में पड़ जाती है। वह सोचती है कि कहीं ये लोग भी यवन आक्रमणकारियों की राजनीति के शिकार तो नहीं हो गये हैं। अलका के इस स्वागत कथन में इसी को अभिव्यक्ति दी गई है।

**व्याख्या**

आर्य – चाणक्य और चन्द्रगुप्त भी यवनों का साथ दे रहे हैं। अब इस देश की रक्षा कैसे होगी? इन्हीं पर तो आर्यावर्त की रक्षा का भार था। किन्तु अब कोई आशा नहीं। जिस समय भयानक आंधी चल रही हो और ओलों की वृष्टि हो रही हो तब खेती की रक्षा सम्भव नहीं होती। इसी भांति आज चारों तरफ ही देशद्रोही अपने–अपने स्वार्थों में लगे हुए हैं। ऐसी दशा में देश की रक्षा नहीं हो सकती। यदि चारों ओर सूखा पड़ रहा हो और साथ ही जंगलों में आग लग जाये तब भी खेतों को कौन बचा सकता है। अर्थात् उस दशा में खेती उजड़ती ही है। इसी भांति इस देश का उजड़ना भी अब निश्चित है। मेरे मन में अनेक प्रश्न उठ रहे हैं। लेकिन जैसे मेरे मन का आकाश मेरे प्रश्नों को ज्यों का त्यों लौटा देता है। वहाँ इन प्रश्नों का कोई जवाब नहीं। मुझे समझ में नहीं आता अब देश की रक्षा कैसे होगी? चाणक्य और चन्द्रगुप्त के अलावा और कौन है ऐसा जो देश को बचा सके? ये देशभक्त समझे जाने वाले महापुरुष भी जब यवन आक्रमणकारियों के जाल में फंस रहे हैं उस दशा में यहां की रक्षा की आशा करना व्यर्थ है और लोग तो पहले से ही विदेशियों से मिल चुके या अपने–अपने है क्षेत्र में [illegible] बैठे हैं।

**विशेष**

1. यहाँ अलका को नारी सुलभ शका अभिव्यक्त है।
2. अलका की राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं सजगता का प्रमाण भी मिलता है।
3. भाषा आलंकारिक बन गई है। स्वगत कथन प्रायः भाषा की बोझिलता वहन करते पाये जाते हैं? यहाँ भी यही [illegible]

**१७. "भूमा का सूख और उसकी महत्ता का जिसको आभासमात्र हो जाता है, उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते, दूत! वह किसी बलवान की इच्छा का क्रीड़ा-कन्दुक नहीं बन सकता। तुम्हारा राजा अभी झेलम भी नहीं पार कर सका, फिर भी जगद्विजेता की उपाधि लेकर जगत को वंचित करता है। मैं लोभ से, सम्मान से या भय से किसी के पास नहीं जा सकता।"** (पृष्ठ ७८)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद द्वारा प्रणीत नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के ग्यारहवें दृश्य से उद्धृत किया गया है [illegible] पर दाण्डयायन ऋषि का आश्रम है। सिकंदर के दूत ने उनसे आकर कहा कि जगत विजेता सिंकदर आपसे कुछ उपदेश [illegible] करना चाहते हैं। 'जगद् विजेता' शब्द पर व्यंग्य करते हुए दाण्ड्यायन का विचार है:

**व्याख्या**

उस पर मसत्ता की शक्ति एवं महत्ता का जिसे बोध हो जाता है, जिसे समस्त सृष्टि में व्याप्त उस दिव्य शक्ति का [illegible] थोड़ा–सा भी भान हो जाता है, उसे इस संसार के भौतिक नश्वर उपकरणों से प्राप्त होने वाले सुख [illegible] भी आकृष्ट नहीं कर सकते। ऐसा व्यक्ति किसी बलवान् एवं सत्तासम्पन्न व्यक्ति की इच्छा का दास नहीं बनता। वह प्रत्येक कर्म [illegible]

से प्रेरित होकर करता है उसे सांसारिक आकर्षणों एवं मोह–ममताओं से कोई प्रयोजन नहीं रहता। कारण भूमा का सुख अपरिमेय एवं अनंत है, जबकि भौतिक सुख उसकी तुलना में अत्यंत सीमित और क्षणिक है। अतः जिसे उस सुख का अणुमात्र भी प्राप्त हो जाता है, उसे भौतिक सुखों की अपार–राशि भी उसकी तुलना में नगण्य प्रतीत होती है। इसलिए दाण्ड्यायन को सिंकदर का वैभवसम्पन्न रूप तनिक भी प्रभवित नहीं कर सकता। वह उच्च विचारों वाले महात्मा एवं तपस्वी है और ब्राह्मानंद के आस्वादयिता है। वह सिंकदर के हाथों की कठपुतली नहीं – वह जो करते हैं, अपन अन्तः करण की प्रेरणा से प्रेरित होकर। फिर दाण्ड्यायन सिंकदर के लिए प्रयुक्त 'जगद्विजेता' शब्द का उपहास करते हुए कहते हैं कि अभी तो वह झेलम भी नहीं पार कर पाया, तो फिर उसे 'जगद्विजेता' की उपाधि से सम्बोधित करना निरर्थक है। अभी तो उसे समग्र भारतवर्ष पर विजय प्राप्त करती है – फिर 'जगद्विजेता' कहलाने का कैसा?

विशेष

1. दाण्ड्यान के माध्यम से भारतीय ऋषियों का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।
2. यहां शैवागम की शब्दावली प्रयुक्त है प्रसाद जी के दर्शन को अभिव्यक्ति मिली है।

**१८. ''समस्त आलोक, चैतन्य और प्राणशक्ति, प्रभु की दी गई है। मृत्यु के द्वारा वही इसको लौटा लेता है। जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले लेने की स्पर्धा से बढ़कर दूसरा दम्भ नहीं। मैं फल-मूल खाकर अंजलि से जलपान कर, तृण-शय्या पर आंख बन्द किये सो रहा हूँ। न मुझसे किसी को डर है और न मुझको डरने का कारण है। तुम ही यदि हठात् मुझे ले जाना चाहो तो केवल मेरे शरीर को ले जा सकते हो, मेरी स्वतंत्र आत्मा पर तुम्हारे देवपुत्र का भी अधिकार नहीं हो सकता।'' (पृष्ठ-७६)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद जी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के ग्यारहवें दृश्य से उद्धत की गई है। सिंकदर के दूत ऐनिसाक्रीटीज से दाण्ड्यान ने जाने से इन्कार कर दिया तो ऐनी. ने कहा 'यदि न जाने पर देवपुत्र दण्ड दें'। तो इस पर बडी ही निडरता से दाण्डयायन उत्तर देता है।

**व्याख्या**

मैं अपनी जरूरत की वस्तुओं के लिए किसी का मोहताज नही भगवान ने प्रकृति को अनेक वस्तुओं से भर रखा है। मैं अपनी आवश्यकताएं उसी से पूरी कर लेता हूँ। अतः मैं दूसरों के आधीन कैसे रहूँ। प्रकृति की भांति मैं भी स्वतंत्र हूं। किसी और भी आज्ञा मानने के लिए मैं मजबूर नहीं। इस संसार में जितना भी प्रकाश फैला हुआ है और जितना भी ज्ञान है। वह भगवान का दिया हुआ है इसी भांति सारी प्रकृति में जो चेतना फैली है वह भी भगवान की दी हुई है और हम मनुष्यों में जो प्राणशक्ति है। वही भी भगवान ने ही दी है अब जो चीज भगवान ने दी है। उसे आदमी कैसे छीन सकता है। जब आदमी मर जाता है तो मानों भगवान उससे अपनी दी गई ये सारी वस्तुएं वापस ले लेता है। मनुष्य चूंकि किसी को चेतना और प्राण दे नहीं सकता इसलिए उसे यह भी हक नहीं कि वह किसी के प्राण ले ले। तुम्हें सोचों जो वस्तु मनुष्य किसी को दे नहीं सकता उसे दूसरे से छीन लेने का क्या हक है? ऐसा करना सबसे बड़ा मिथ्या वर्ग है, अतः तुम्हारा बादशाह भी यदि मेरे प्राणों को लेने का गर्व करे तो यह झूठा घमण्ड है। आदमी को ऐसे मिथ्या गर्व का शिकार नहीं होना चाहिए।

**विशेष**

1. प्रसाद जी द्वारा दाण्ड्यान के माध्यम से भारत के तत्वज्ञानी महात्मा का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।
2. दार्शनिक विचारों पर गीता का प्रभाव स्पष्ट है।
3. ओजस्वी भाषा का प्रभावी रूप।

**१९. 'जयघोष तुम्हारे चारण करेंगे, हत्या, रक्तपात और अग्निकांड के लिए उपकरण जुटाने में मुझे आनंद नहीं। विजय-तृष्णा का अंत पराभव में होता है। अलक्षेन्द्र। राजसत्ता सुव्यवस्था से बढ़े तो बढ़ सकती है, केवल विजयों से नहीं। इसलिए अपनी प्रजा के कल्याण में लगो।'' (पृष्ठ-८०.८१)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के ग्याहरवें दृश्य से उद्धत की गई है। सिकंदर, सिल्यूकस, कार्नेलिया, एनिसाक्रीटीज के साथ दाण्ड्यायन के आश्रम पर जाता है दाण्ड्यायन ने अलक्षेन्द्र का स्वागत किया। किन्तु सिंकदर तो आर्शीवाद में जयघोष सुनना चाहता था? दाण्ड्यायन ने निर्भीकता से कहाः

**व्याख्या**

तुम्हारी जयजयकार चारण करेंगे। मैं तुम्हारा चारण नहीं इसलिए तुम्हें जय की बात नहीं कह सकता। तुम युद्ध के नाम पर ऐसे ही हत्या और क्रूर कर्म करने वाले लोगों को इकट्ठा कर रखा है तुम्हें इसी में आनंद मिलता है लेकिन मुझे ऐसा नहीं होता है। सिकंदर! तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तृष्णा किसी भी चीज की बुरी है। जो आदमी विजय की तृष्णा के वशीभूत होकर भटकता है उसे अंत में पराजित होना पड़ता है इसलिए तुम इस तृष्णा को छोड़ दो। तुम अपना साम्राज्य बढ़ाना चाहते हो तो उसके लिए सुव्यवस्था से काम लो। तुम जनता पर इतने बढ़िया तरह से शासन करो कि लोगों का दिल जीत लो और वे अपने आप ही तुम्हारा साम्राज्य में मिलते जायें। इस तरह लोगों का दिल जीतने से तो साम्राज्य बढ़ सकता है? किन्तु रक्तपात और हत्या करके विजय हांसिल कर लेने से साम्राज्य नहीं बढ़ते। वे जल्दी ही बिखर जाते हैं? इसलिए मैं तो तुम्हें यही सलाह दूंगा कि अपनी प्रजा का कल्याण करो। अपने आप को अपनी प्रजा की भलाई में लगा दो।

**विशेष**

1. भारत के विद्वानों में राजनीतिक रहस्यों का उद्घाटन है।
2. भारतीय राजनीति का विशद आकर्षक परिचय दिया है।
3. भाषा प्रसंगानुकूल, नाटकीय व प्रवाहमयी है।

**२०. "लूट के लोभ से हत्या - व्यवासियों को एकत्र करके उन्हें वीर-सेना कहना, रण-कला का उपहास करना है।" (पृष्ठ-८७)**

**सदंर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद कृत 'चन्द्रगुप्त' नाटक के द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य से लिया गया है। चन्द्रगुप्त और सिंकदर की परस्पर वार्ता चल रही है। चन्द्रगुप्त मगध का उद्धार करना चाहता है, जबकि सिकंदर का कहना है कि वह उसे हस्तगत करने का प्रयत्न कर रहा है। चन्द्रगुप्त को सिकंदर का उक्त कथन उप्रिय लगता है। जब सिकंदर उसे अपनी सहायता देने की बात करता है। तब वह निर्भीक शब्दों में कहता है। – 'मैं मगध का उद्धार करना चाहता हूँ, परन्तु यवन लुटेरों की सहायता से नहीं'। इस पर सिकंदर उसे भय दिखाता है, किन्तु वह यवनों के लुटेरेपन को अधिक स्पष्ट करते हुए कहता है।

**व्याख्या**

चन्द्रगुप्त निर्भीकता से कहता है। यवन वास्तविक वीर नहीं है। वे वास्तव में लुटेरे हैं जिस भांति लुटेरे अन्यान्य साधन अपना कर दूसरों का माल हड़प करना चाहते हैं। उसी प्रकार यवन भी लुटेरे हैं वे हत्या करके दूसरों को डरा कर उनका वैभव, सम्पन्नता अपहत करना चाहते हैं। ये वीर नहीं है। वे वीरता के नाम पर कलंक हैं। ये रणकला का मजाक उड़ाते फिरते हैं। विश्व में वास्तविक वीर सदा कर्त्तव्य भावना के वशीभूत होकर ही युद्ध करते हैं राज्य, धन, दौलत के वशीभूत होकर नहीं, लोभी बन कर नहीं। यवन भी इसी प्रकार भारतीय जनता को लूटते हैं, उस पर अत्याचार करते हैं, गरीब एवं निरीह प्रजा पर इस प्रकार के कहर ढाना वीरता का उपहास नहीं तो और क्या हैं? वीरता तो यह है कि सेना से उड़ा जाए। ये वीर नहीं ये वास्तविक लुटेरे हैं। वास्तविक वीर वे हैं जो प्रजा के कल्याण के लिए अत्याचार एवं अत्याचारी से युद्ध करते हैं वे लोभी बनकर कभी भी नरहत्या नहीं करते हैं। वास्तविक वीर सदा मानव कल्याण की बात सोचते हैं। इस प्रकार यवनों को वीर कहना निश्चय ही वीरता एवं रण कौशल का उपहास करना है।

**विशेष**

1. प्रसाद ने एक वाक्य में ही यवन रणनीति का विश्लेषण किया है।
2. चन्द्रगुप्त की निर्भीकता, वीरता, साहस, स्पष्टवादिता आदि के दर्शन होते हैं।
3. भारतीय वीरता का आदर्श भी अभिव्यजित हुआ है।
4. भाषा पर अपूर्व प्रभावी अधिकार का एक वाक्य में ही हो तो वह वाक्य उदृधृत किया जा सकता है।

**२१. "पौधे अन्धकार में बढ़ते हैं, और मेरी नीलिलता भी उसी भांति विपत्ति तम में लहलही होगी। हाँ केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा। एक बात समझ लो चाणक्य सिद्ध देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों।"** (पृष्ठ-८१)

**संदभ प्रसंग**

प्रस्तुत पद्यांश जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के दूसरे अंक के दूसरे दृश्य से उद्धत है। मगध पर विपत्तियों के बादल घिर रहे हैं। सिंहरण को यवन आक्रमण की सूचना प्राप्त हुई और वह चला आया। वह गुरूदेव चाणक्य की आज्ञा पाकर कर्त्तव्य में लग जाने के लिए तत्पर है। चाणक्य निश्चित है। वह झेलम तट पर चन्द्रगुप्त एवं सिंहरण को अपनी नीति समझ रहा है।

**व्याख्या**

पौधे अंधकार में बढ़कर यौवन प्राप्त करते हैं, मेरी नीति रूपी लता भी विपत्ति – धनिष्ठतम् विपत्ति – रूपी अंधकार में बढ़ती है, फलीभूत होती है। जब विपत्ति के मेघों की मात्रा अधिक होती है तभी उसका मस्तिष्क भी या बुद्धि और भी उत्तम नीतियों का निर्धारण करती है वह इन विपत्तियों से विचलित नहीं होता अपितु और भी अधिक सूझ–बूझ का परिचय देता है। वह कहता है कि इस समय की परिस्थितियों को देखते हुए हम केवल वीरता और शौर्य के आधार पर सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि हमारे पास यवनों से टक्कर लेने के लिए पर्याप्त सैन्य–शक्ति का अभाव है अतः हमें जिस मार्ग से सफलता मिल सकती है उसे अपनाना चाहिए। वह अपना मत स्पष्ट करता है कि सफलता के लिये साधना चाहे जैसे अपनाई जाये किन्तु सफलता मिलनी चाहिए। उसकी नीति में सफलता या परिणाम आवश्यक है। साधन को वह महत्त्व नहीं देता है। यह सिद्धि की प्राप्ति के लिए साधनों की नैतिकता को आगे नहीं रखता है। उसे जैसे भी हो सफलता मिलनी चाहिए।

**विशेष**

1. चाणक्य की राजनीति स्पष्ट की गई है। उसने अलका, सिंहरण और चन्द्रगुप्त को छद्मवेश धारण करके यवन सेना में अवरोध उत्पन्न कराया है। स्वयं भी ब्रह्मचारी बनकर इसमें भाग लेता है।
2. चाणक्य का राजनैतिक या नीति निर्धारक रूप मुखरित हुआ है।
3. भाषा नाटकीय प्रभावशाली एवं आलंकारिक है।

**२२. "फूल हंसते हुए आते हैं, मकरंद गिराकर मुरझा जाते हैं, आँसू से धारणी को भिगोकर चले जाते हैं। एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है, निःश्वास फेंककर चला जाता है।" (पृष्ठ-६५)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत पक्तियाँ जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अंक चतुर्थ दृश्य से उद्धृत की गई है, सिन्धु देश की कुमारी मालविका मालव में सिंहरण की वाटिका में चन्द्रगुप्त के विरह में निमग्न है। उसका मन उदास है। वह अपने मन के अनुकूल ही प्राकृतिक अपकरणों में निराशापूर्ण प्रतिबिम्ब देखती है।

**व्याख्या**

मालविका कहती है कि विश्व में सभी पुरुष मुसकराते हुये, हँसते हुए आते है और मकरंद गिराकर अर्थात् वातावरण को सुगन्धित करके फिर मुरझा जाते हैं अर्थात् इनका जीवन अत्यंत ही करूणापूर्ण है। एक क्षण में मुस्कराते हैं, तो दूसरे ही क्षण वे मुरझा कर गिर पड़ते हैं। वह महसूस करती है कि ये पुण्य ओस के रूप मे अपनी व्यथा के अश्रु गिराते हैं और समाप्त हो जाते हैं। वह इसी प्रकार की दशा यवन की भी सोचती है। कि पवन का अत्यन्त कोमल झोंका आता है, प्रफुल्ल होकर आता है। किन्तु विश्वास लेता हुआ यहाँ से चला जाता है पवन के इस प्रकार दीर्घ श्वास छोड़ने में ऐसा विदित होता है मानो वह जगत के प्रति दुखात्मक भाव प्रकट करता है। वह आगे सोचती है। कि क्या वास्तव में यह सम्पूर्ण विश्व, यहां के सभी प्राणी एवं पदार्थ रोने के लिए नहीं है किन्तु अगले ही क्षण वह सोचती है कि नहीं ऐसा नहीं है, सभी के लिये एक जैसे नियम नहीं है। यदि किसी के भाग्य में रोना अर्थात् कष्ट सहन करना लिखा है तो किसी के भाग्य में हर्ष अर्थात् सोभाग्य, आनंद आदि लिखा है। किन्तु वह सोचती है कि उसके भाग्य में तो रोना ही रोना लिखा है।

**विशेष**

1. मालविका के चरित्र का सुभ चित्रांकत है।
2. मालविका के मन में चन्द्रगुप्त के प्रति सोई भावना पल्लवित हो गई है।
3. प्रकृति के उद्दीपनकारी रूप में मालविका के मनोगत भावों का साम्य है।

**२३. ''स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है। परन्तु बिछलने का भय भी हो जाता है। अद्‌भुत युवक है। देखूं कुमार सिंहरण कब आते हैं।'' (पृष्ठ-६६)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत वाक्य जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अंक के चतुर्थ दृश्य के अंतिम भाग से उद्धृत है। मालविका अन्य देशों को घूमने की इच्छा से आई थी किन्तु वह अलका के स्नेह से प्रभावित होकर तक्षशिला में रहने लगी। वह चन्द्रगुप्त के इन्द्रजाली रूप पर विमुग्ध हो जाती है वह एक सरल हृदय नारी है जिसके कारण चन्द्रगुप्त उससे प्रभावित है वह रस भाव को मालविका से स्पष्ट करके चला जाता है मालविका का सोपा प्रेमांकुर प्रस्फुटित हो उठा।

**व्याख्या**

मालविका कहती है कि प्रेम संसार का तत्त्व है प्रेम हृदय की कोमल एवं स्निग्ध बना देता है किन्तु यह भी तथ्य ही है कि जहाँ चिकनापन होता है वहाँ विघलन भी आ जाती है। यही कारण है कि प्रेम मार्ग पर चलते समय विचलित होने का भय सर्वदा बना रहता है? वास्तविकता यह है कि मालविका को चन्द्रगुप्त से शंका होती है कि वह प्रेम मार्ग में विचलित न हो जाये ओर उससे सम्बन्ध स्थापन में यही भय रहता है।

**विशेष**

1. यहाँ मालविका के निश्छल हृदय का दर्शन होता है।
2. भाषा प्रभावी नाटकीय है।
3. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।
4. प्रेम का मनमोहक चित्रण है।

**२४. ''तारों से भरी हुई काली रजनी का नीला आकाश- जैसे कोई विराट् गणितज्ञ निभृत में रेखा-गणित की समस्या सिद्ध करने के लिए बिन्दु दे रहा है।'' (पृष्ठ-१०५)**

**संदर्भ-प्रसंग**

जय शंकर प्रसाद कृत 'चन्द्रगुप्त' नाटक के द्वितीय अंक से उद्धत प्रस्तुत गद्यांश में अलका के हृदय में विद्यमान पर्वतश्वर के प्रसाद में है। यद्यपि चाणक्य की मंत्रणानुसार वह पर्वतेश्वर की प्रिया बनना अगीकार कर लेती है, तथापि उसके हृदय--मंदिर में उसका इष्टदेव सिंहरण ही निवास करता है। सिंहरण को भुला पाना उसके लिए किसी भी मूल्य पर सम्भव नहीं है। सहसा वह आकाश की ओर दृष्टिपात करती है।

व्याख्या

अलका कहती है कि तारों की भरी हुई काली रात्री और नीलाकाश भी क्या है। ऐसा लक्षित होता है मानो कोई सत्य के ऊपर रहस्य का आवरण डाल रहा हो, किन्तु असंख्य नक्षत्र भी तो झिलमिला रहे हैं। ये नक्षत्र मानो अंधकार के आवरण को हटाकर वास्तविकता तक पहुंचना चाहते हैं। अलका को यह रात्रि ऐसी प्रतीत होती है मानो कोई विराट गणितज्ञ शून्य में रेखागणित की किसी जटिल समस्या का समाधान करने के लिए बिन्दु दे रहा हो।

**विशेष**

1. अलका के आन्तरिक भावनाओं का प्राकृतिक उपादानों पर सुन्दर आरोपण है।
2. संस्कृतनिष्ठ प्रभावी भाषा का प्रयोग है।

3. सुंदर चिंतन का प्रभावी चित्रण है।

4. आकर्षक भावभिव्यक्ति है।

**२५. ''ब्राह्मण राज्य करना, नहीं जानता करना भी नहीं चाहता, है।, वह राजाओं का नियमन करना चाहता है; राजा बनाना जानता है। इसलिए तुम्हें अभी राज्य करना होगा और करना होगा वह कार्य जिसमें भारतीयों का गौरव हो और क्षात्र धर्म का पालना हो।'' (पृष्ठ-११७-११८)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के तृतीय अंक के द्वितीय दृश्य से उद्धृत की गई हैं। पर्वतेश्वर एक वीर एवं साहसी योद्धा है किन्तु वह अलका से पराजित होता है। वह भावना – आत्मग्लानि के भाव से अभिभूत होकर आत्महत्या करने पर तुला है किन्तु चाणक्य उचित अवसर पर पहुँच कर उसे बचा लेता है पर्वतेश्वर चन्द्रगुप्त से भी प्रसन्न है वह जब कहता है कि मैं विश्वस्त हृदय से कहता हूँ कि चन्द्रगुप्त आर्यावर्त्त का एक छत्र सम्राट होने के उपयुक्त है।''

**व्याख्या**

चाणक्य कहता है कि हे पर्वतेश्वर। ब्राह्मण स्वयं राज्य नहीं करता और न राज्य करने की उसमें योग्यता ही होती है। परन्तु वह इससे कठिनतर कार्य कर सकता है। वह योग्य व्यक्ति को राजा बनाना जानता है, उसके राज्य का संचालन कर सकता है अतः तुम्हें भी अपने क्षत्रिय–धर्म का पालन करते हुए राज्य करना होगा। जिन यवनों ने तुम्हें लाच्छित और अपमानित किया है, उनसे किसी न किसी प्रकार प्रतिशोध लेना ही होगा। ऐसा करने से एक और तुम्हारा सम्मान होगा और दूसरी और भारतीय गौरवान्वित होंगे।

**विशेष**

1. देश रक्षक चाणक्य के समक्ष भारत का सम्मान सदा रहता है।

2. भाषा सरल, सुगम, सुबोध है।
   अभिव्यक्ति स्पष्ट है।

**२६. ''मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली-भांति परिचित रहता है। परन्तु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिए। असम्भव कहकर किसी काम को करने से पहले कर्मक्षेत्र में कांपकर लड़खड़ाओं मत पौरव! तुम क्या हो - विचार कर देखो तो। सिकंदर ने जो क्षत्रय नियुक्त किया है, जिन सन्धियों को वह प्रगतिशील रखना चाहता है वे सब क्या है? अपनी लूट-पाट को वह साम्राज्य के रूप में देखना चाहता है। चाणक्य जीते-जी यह नहीं होने देगा। तुम राज्य करो। (पृष्ठ-११८)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के तृतीय अंक के द्वितीय दृश्य से उद्धृत की गई हैं चाणक्य ने पर्वतेश्वर के गए सम्मान को पुनः प्रतिष्ठित करने की बात कही तो पर्वतेश्वर ने उसे असम्भव कहा। चाणक्य को अप्रिय लगा।

**व्याख्या**

चाणक्य कहता है कि वीर व्यक्ति के लिए इस संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है सच्ची लगन एवं उत्साह द्वारा वह कठिन–से–कठिन एवं विकट से विकट समस्याओं एवं परिस्थितियों का भी सामना कर सकता है। अतः उसका कर्त्तव्य है कि वह किसी कार्य को करने से पूर्व लड़खड़ाये नहीं। यह सत्य है कि मनुष्य में दुर्बलता एवं सबलता दोनों तत्व विद्यमान रहते हैं और वह अपनी दुर्बलताओं से ही प्रायः परिचित रहता है, किन्तु उसे अपनी शक्ति से भी अवगत रहना चाहिए। यद्यपि तुम अपनी दुर्बलताओं के कारण यवनों को पराजित न कर सके, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि तुम सामर्थ्य–विहीन हो, अशक्त हो, अपने उद्योग बल द्वारा तुम निश्चय ही असम्भव को सम्भव तथा कठिन को सरल बना सकते हो। कर्मक्षेत्र में कांप लड़खड़ाना अशोभनीय है।

**विशेष**

1. यहाँ चाणक्य के माध्यम से कर्मवाद की स्थापना है।
2. प्रसाद का जीवन–दर्शन मुखरित हुआ है।
3. आलंकारिक भाषा होते हुए भी दुरूहता नहीं है।
4. सहृदय भाषा से बंधा रहता है।

**२७. ''नहीं चन्द्रगुप्त, मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल-कुंज, घने जंगल सरिताओं की माला पहने हुए शैल-श्रेणी, हरी-भरी वर्षा, गर्मी की चांदनी, शीतकाल की धूप, और भोले कृषक तथा सरला कृषक-बालिकाएं बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमाएं हैं। यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि भारतभूमि क्या भुलायी जा सकती है? कदापि नहीं अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है। यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।'' (पृष्ठ-११६)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के तृतीय अंक के द्वितीय दृश्य से उद्धृत है? कार्नेलिया भारतीय संस्कृति एवं चन्द्रगुप्त से प्रभावित है उसे अपनी ग्रीक देश स्मृति भी बनी रहती है। चन्द्रगुप्त कार्नेलिया से भारत देश के साथ–साथ चन्द्रगुप्त को भुलाने की पेशकश करता है।

**व्याख्या**

कार्नेलिया कहती है कि चन्द्रगुप्त ऐसा नहीं हो सकता, वह भारत को नहीं भूला सकती। भारत देश उसे अपनी मातृभूमि की भांति लगने लगा है। इस देश के हरे–भरे वन, सघन कानन, फली–फूली क्यारिया, पर्वत–श्रेणियां पर कलकल ध्वनि करती हुई अमृत के समान जल वाली नदियां, जो ऐसी लगती हैं, मानों पर्वतों के गले की हार हो, वर्षा से उत्पन्न होने वाली हरियाली ग्रीष्म ऋतु की कोमल चांदनी, शीतकाल में मधुर लगने वाली सुंदर धूप, यहां के अत्यंत मृदुल स्वभाव वाले निष्कपट कृषक और प्राकृतिक सौन्दर्य ने नैसर्गिक सौन्दर्य लिए कृषक बालिकाएं बहुत प्रिय लगते हैं। इस देश का सुख–सौन्दर्य स्वप्न के समान आकर्षक है अर्थात् यह देश सुख–सम्पदा से परिपूर्ण है। इस देश ने सदैव ज्ञान की रक्षा की है, यह ज्ञान का पोषक है और सदा दूसरों को ज्ञान का दान दिया करता है। यहां के प्रत्येक मानव का हृदय प्रेम से भरा हुआ है, सभी का व्यवहार सौहार्दपूर्ण होता है। मनमोहक एवं स्नेहशील, प्रणयपूर्ण भूमि–भारत को भुला पाना सम्भव नहीं है। भारत से इतर देश केवल स्त्री–पुरुष को जन्म देते हैं। किन्तु भारत में मानव के साथ–साथ मनवोचित गुणों को भी जन्म दिया जाता है यहाँ का मानव मानवीय गुणों से परिपूर्ण है।

**विशेष**

1. भारतीय प्रकृति का मनोरम चित्रण किया गया है।
2. भारत में मानवीय गुणों का जन्म दिखाकर तो भारतीय संस्कृति एवं यहां के महानुभावों के गौरव को अत्यंत उच्च भूमि पर पहुँचा दिया है।
3. सहज कथन में माधुर्य–गुण दर्शनीय है।
4. रूपक अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है।

**२८. ''सिकंदर ने भारत से युद्ध किया है और मैंने भारत का अध्ययन किया है। मैं देखती हूं कि ग्रीक और भारतीयों के अस्त्र का ही नहीं, इसमें दो बुद्धियां भी लड़ रही है। यह अरस्तू और चाणक्य की चोट है, सिकंदर और चन्द्रगुप्त उनके अस्त्र हैं।'' (पृष्ठ-१२०)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत अभिनयपूर्ण कथन प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के तृतीय अंक के द्वितीय दृश्य से उद्धृत किया गया है। कार्नेलिया को ज्ञात है कि चन्द्रगुप्त और सिकंदर का युद्ध अवश्य होगा। वह इनके पारस्परिक युद्ध के प्रति अपने निष्कर्ष को बताते हुए चन्द्रगुप्त से कहती है कि:

**व्याख्या**

सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया है किन्तु उसने (कार्नेलिया ने) भारत के विषय में विचार किया है। मैंने इसे, इसके निवासियों को, यहां की संस्कृति को जानने का प्रयास किया है। ग्रीक निवासी होने के कारण मैं वहां से तो पहले ही अच्छी तरह परिचित हूं। यह जो ग्रीक एवं भारतीयों का युद्ध है, यह केवल बाहुबल और अस्त्र–शास्त्रों का ही युद्ध नहीं है अपितु यहां बुद्धियों का युद्ध भी है। वास्तव मे यहां दो देशों के दो विशिष्ट मनीषी–बुद्धिमान अरस्तु एवं चाणक्य की बुद्धियां भी युद्धरत हैं। ग्रीक की मनीषा का प्रतिनिधित्व कर रहा है। सिकंदर और भारतीय बुद्धि कौशल का प्रतिनिधित्व कर रहा है। चन्द्रगुप्त। वास्तव में युद्ध तो अरस्तु और चाणक्य की बुद्धियों का है। सिकंदर एवं चन्द्रगुप्त तो इन दोनों के इशारे पर युद्ध करने वाले अर्थात् ये दोनों इनकी युद्धनीति से युद्ध करते हैं अर्थात् चन्द्रगुप्त की शक्ति एवं नीति का निर्धारण चाणक्य के अनुसार है तो सिकंदर अरस्तु की नीति पर कार्य कर रहा है। यहां सैन्य बल के साथ–साथ कूटनीति का विशेष संघर्ष है।

**विशेष**

1. ग्रीक एवं भारत की तुलनात्मक प्रस्तुति है।
2. कार्नेलिया का गंभीर चिंतन का वर्णन है।
3. यहां चाणक्य भारतीय विचारधारा और अरस्तु ग्रीक की विचारधारा के प्रतीक रूप है।
4. भाषा ओजगुण और अभिनयोचित है।

**२६. "समझदारी आने पर यौवन चला जाता है - जब तक माला गूँधी जाती है, तब तक फूल कुम्हला जाते हैं। जिससे मिलने के सम्भार की इतनी धूमधाम, सजावट, बनावट होती है, उसके आने तक मनुष्य हृदय को सुंदर और उपयुक्त नहीं बनाये रह सकता। मनुष्य की चंचल स्थिति तब तक श्यामल कोमल हृदय को मरूभूमि बना देती है। यही तो विषमता है। मैं–अविश्वास कूट-चक्र और छलनाओं का कंकाल, कठोरताओं का केन्द्र! आह! तो इस विश्व में मेरा कोई सुहृद नहीं?" (पृष्ठ-१२६)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद कृते नाटक 'चन्द्रगुप्त' के तृतीय अंक के छठवें दृश्य से उद्धत है। कुसुमपुर में मालविका एवं पुलका चली जाती हैं। चाणक्य के विचारों में खो जाती है। उसमें प्रेम की अनेकानेक तरंगे आ रही थी। वह अपने प्रिय के प्रति समर्पित रहने के लिये उन्मुक्त रहता था। किन्तु राजनीतिक दांव–पेचों ने उसके सभी भावों को कुचल दियां था, उसी समय वह एक सुन्दरी–सुवासिनी के सम्पर्क में आया था किन्तु उसे भी नन्द के दुर्व्यवहार ने गायब कर दिया। इन पंक्तियों में चाणक्य इन्हीं कल्पनाओं एवं यथार्थपूर्ण जीवन पर विचार करता हुआ कहता है कि:

**व्याख्या**

जीवन में यौवन पहले आते है और समझदारी बाद में। जब तक आदमी जीवन को सही तरीके से समझने के योग्य बनता है तब तक यौवन बीत जाता है। उस समय तक न यौवन रहता है न यौवन का उन्माद। जिस तरह फूल को गंध लेनी हो तो उसे टहनी से तोड़ते ही सूघ लो या उसे अपनी शोभा बना लो। किन्तु यदि हम उसे माला में गूंथने बैठ जायें, तो जब तक माला गुंथकर तैयार होगी तब तक फूल मुरझा जाएगें, उनमें न रंग रहेगा न चमक। यही दशा जीवन की भी है। आदमी समझदारी के साथ जीवन का उपभोग करने का प्रयत्न करे तो जीवन को समझने, समझने में ही यौवन बीत जाता है और फिर पश्चाताप के अतिरिक्त आदमी के पास कुछ नहीं रह जाता। आदमी विवाह करके जिसे अपने जीवन में बुला लेना चाहता है उसके स्वागत के लिए वह खूब सजावट करता है। उत्सव करता है और अनेक प्रकार का आडम्बर करता है। किन्तु जब तक वह उसे प्राप्त करने में समर्थ होता है, तब तक वह अपने हृदय को सुन्दर और यौवन के अनुकूल भावनाओं से पूर्ण नहीं रख पाता। मैने सुहासिनी को चाहा था। मन में उसके लिए कैसी–कैसी कल्पानाएँ की थीं लेकिन उस समय शायद समझ नहीं थी। आज जब समझ आ गयी तो हृदय में यौवन का उन्माद नहीं है आज तो मेरा हृदय रेगिस्तान की भांति सूखा और भावनाहीन हो गया है। यौवन की अस्थिर चंचलता समाप्त सी हो गई है। यौवन की मधुर भावनाओं से भरे रहने वाले कोमल हृदय में अब तो वैसा कुछ भी नहीं रह गया है। यही जीवन का आत्मविरोध है। यौवन काल में मनुष्य का हृदय उन्माद से भरा रहता है, लेकिन समझ नहीं होती और जब समझ आती है तो यौवन नहीं रहता। मैं इसका साक्षात उदाहरण हूँ। आज मेरे मन में किसी के प्रति कोई

विश्वास नहीं। हृदय में अनेक प्रकार की कुटिलताएँ और राजनीतिक प्रपंच भरे हुए हैं। यौवन की भासलता का तो एक कण भी अब शेष नहीं। हृदय में कोमलता और दया भी नहीं रही। अपने लक्ष्य को हर कीमत पर पूरा करने की कठोरता भरी हुई है। लगता है कि इस सम्पूर्ण विश्व में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं जो मुझे प्यार कर सके या जिसे मैं प्यार कर सकूँ।

**विशेष**

1. चाणक्य के प्रभावी अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण है।
2. प्रसाद यथार्थ जीवन के दर्शन को सुन्दर प्रस्तुत करते हैं।
3. भाषा काव्यात्मक एवं आलंकारिक अभिनयोचित है।

**३०. "तुम सहायता करोगे? आश्चर्य! मनुष्य, मनुष्य की सहायता करेगा, वह उसे हिंस्रपशु के समान नोच न डालेगा। हाँ, यह दूसरी बात है कि वह जोक की तरह बिना कष्ट दिये रक्त चूसे। जिसमें कोई स्वार्थ न हो, ऐसी सहायता। तुम भूखे भेड़िये।"** (पृष्ठ-१३०)

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के तृतीय अंक के छठवें दृश्य से उद्धत है। राकटार वनमानुष की भांति एक मिट्टी के ठेर से बाहर निकल आया है। प्रकाश में उसकी आंखे चौधियां रही है। उसके सात पुत्रों की हत्या का दोष नन्द के सिर पर है। वह इस अंधकूप में अत्यंत कष्टमय जीवन व्यतीत करके बाहर आया है। वह निश्चित हो जाता है। चाणक्य उसे दुःखी समझ कर उसे जल पिलाकर होश में लाता है और उसकी सहायता करता है।

**व्याख्या**

नाटककार कहता है कि आज के संसार में वस्तुतः वह अत्यन्त आश्चर्य का ही विषय है कि मनुष्य दूसरे मनुष्य की सहायता करे। वह तो किसी न किसी प्रकार से दूसरे का शोषण ही करेगा। नंद ने उसके प्रति जो विष्ठुर अत्याचार किये, क्या वे मानवीय कृत्य वह भला उन्हें कभी भूल सकता है। वस्तुतः मनुष्य मनुष्य की सहायता न करके हिंसक वन्य--पशु की भांति उसे नोचने की ही चेष्टा करता है। हाँ, यह दूसरी बात है कि वह मानवता के नाते कभी पशुवत् न नोचे और जोक की भांति ही उसका धीरे–धीरे रक्त चूस–चूस कर उसे खोखला कर देती है, यही स्थिति चाणक्य जैसे मनुष्यों की है। इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जो सर्वथा निःस्वार्थ भाव से किसी अन्य मनुष्य की सहायता प्रवृत्त हो।

**विशेष**

1. प्रतिहिंसा की अग्नि मानव को अत्यन्त कठोर एवं अविश्वासी बना देती है, चित्रांकन है।
2. नंद के अत्याचारों का वर्णन है।
3. भाषा अभिनयोचित प्रवाहपूर्ण एवं ओजपूर्ण है।

**३१. 'चन्द्रगुप्त! मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा साम्राज्य करूणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था। आनंद-समुद्र में शांति द्वीप का अधिवासी ब्राह्मण मैं, चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र मेरे दीप थे, अनन्त आकाश बिताना था, शस्यामला कोमला विश्वम्भरा मेरी शय्या थी। बौद्धिक विनोद कर्म था, सन्तोष धन था। उस अपनी ब्राह्मण की, जन्म-भूमि को छोड़कर कहाँ आ गया।** (पृष्ठ-१५६)

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत पक्तियां जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के चतुर्थ अंक के पांचवें दृश्य के नायक चन्द्रगुप्त के पिता चाणक्य द्वारा उस समय कही गई हैं, जब चन्द्रगुप्त उससे अपने माता–पिता के अपमान करने का कारण पूछता है– "यह अक्षुण्णा अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं? केवल साम्राज्य का ही नहीं, देखता हूँ, आप मेरे कुटुम्ब का भी नियंत्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं।"

**व्याख्या**

चाणक्य कहता है कि चन्द्रगुप्त। मैं ब्राह्मण हूँ। आज मुझे पछतावा हो रहा है कि ब्राह्मण होकर भी मैं राजनीति मे क्यों फंस गया। मेरा साम्राज्य राजनीति का नहीं बल्कि करूणा का था। अधिक से अधिक लोगों पर दया करना अपनी दया भावना म

अधिकाधिक लोगों का मन जीतना, यही मेरे लिए उपयुक्त था। मेरा धर्म शासन को उलटना नहीं और न ही वह राजनैतिक दावपेंचों में है अपितु मेरा धर्म तो प्रेम था – बिना किसी भेदभाव के सब लोगों को समान रूप से प्रेम करना ही मेरा धर्म था। – ब्राह्मण होने के नाते मुझे शान्तिप्रिय होना चाहिए था और राजनीतिक कुचकों से दूर रहना चाहिए था। लोक कल्याण में ही आनंद महसूस करते हुए मुझे शान्तिपूर्वक रहना था। लेकिन मैं वैसा नहीं कर सका। स्वतंत्र प्रकृति में रहते हुये मैं देखता था कि चाँद–सूरज और तारे मेरे लिए द्वीपों का काम करते थे, खुला हुआ नीला आकाश मेरे सीर पर बिताने का काम करता था और हरी–भरी धरती ही मेरा बिछौना थी। किन्तु देखते–देखते यह सब बदल गया। अपनी बुद्धि के द्वारा लोगों को ज्ञान देते रहना ही मेरा कर्म था। मेरा कर्त्तव्य यही था। कि मैं अज्ञान को मिटांऊ। संतोष ही मेरा सबसे बड़ा धन था – मुझे न किसी प्रकार की तृष्णा थी न ही कोई लोभ था। अपनी स्थिति से मैं पूर्णतः संतुष्ट था। लेकिन मैं अपने उस ब्राह्मण धर्म को छोड़कर राजनीति में चला आया। और इस तरह न जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गया।

**विशेष**

1. ब्राह्मण का सुंदर विवेचन है।
2. भाव अत्यंत प्रभावी और मनमोहक है।
3. भाषा अभिनयोचित ओजपूर्ण है।

**३२. "मानव-हृदय में वह भाव दृष्टि तो हुआ ही करती है। यही हृदय का रहस्य है, तब हम लोग जिस सृष्टि में स्वतंत्र हो, उसमें परखता क्यों मानें? मैं क्रूर हूँ, केवल वर्तमान के लिए; भविष्य के सुख और शान्ति के लिए, परिणाम के लिए नहीं। श्रेय के लिए मनुष्य को सब त्याग करना चाहिए; सुवासिनी। जाओ।" (पृष्ठ-१६५-१६६)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत गद्यांश प्रस्तुत कृत नाटक चन्द्रगुप्त के चौथे अंक के अष्ठ दृश्य से लिया गया है सुवासिनी और चाणक्य का वार्तालाप है। चाणक्य सुवासिनी को समझाता है कि वह राक्षस के साथ ही जुड़ने का प्रयास करे। वही उसका सच्चा साथी हो सकता है। इसी क्रम में वह कहता है:

**व्याख्या**

मनुष्य के हृदय में प्रेम और उदासीनता के ऐसे भाव तो पनपते ही रहते हैं। इन भावों की दुनिया केवल मानव हृदय ही है। मानव हृदय में ऐसे भावों का उदय और अवसान कोई अस्वाभाविकता नहीं। ये भाव चूंकि हमारे हृदय तक ही सीमित रहते हैं इसलिए हम चाहे तो इन पर नियंत्रण भी कर सकते है कम से कम हृदय में उत्पन्न होने वाले इन भावों के विषय में आदमी स्वतंत्र होता है; चाहे जिस भाव को पनपने दे चाहे जिसे कुचल दे। अतः इस प्रसंग में हमें दूसरों के अधीन नहीं होना चाहिए। इसीलिए मैं अपने आप को तुमसे तटस्थ करके तुम्हें सलाह दे रहा हूँ कि राक्षस पर ही विश्वास करो। मेरे हृदय में जितनी भी कठोरता है वह केवल वर्तमान जीवन तक ही सीमित है; मैं वर्तमान को अपने अनुकूल करने के लिए ही कठोर बनाता हूँ। मैं किसी भी ऐसे काम को पसंद नहीं करता जिससे भविष्य की सुख–शांति नष्ट हो जाय। जिन कामों को भविष्य में करता जिससे भविष्य ही सुख–शांति नष्ट हो जाए। जिन कामों का भविष्य में अच्छा परिणाम हो उनके लिए मैं वर्तमान में किसी भी प्रकार का कष्ट सहन कर सकता हूँ। अच्छे काम के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह हर प्रकार का त्याग करने को तैयार रहे। हमें भी ऐसा करने के लिए तत्पर रहना चाहिए, इसीलिए सुवासिनी। तुम जाओ और राक्षस में ही विश्वास रखो।

**विशेष**

1. मानवीय कार्य चित्रांकन है।
2. चाणक्य का सुंदर चरित्र प्रकट हुआ है।
3. भाषा अभिनयोचित आकर्षक है।
4. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

# व्याख्या (पद्य)

1. **तुम कनक किरण के अन्तराल में**
**लुक-छिप कर चलते हों क्यों?**
**नत मस्तक गर्व वहन करते**
**यौवन के धन, रस कन ढरते।**
**हे लाज भरे सौन्दर्य।**
**बता दो मौन बने रहते हो क्यों? (पृष्ठ-५२)**

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियां 'जयशंकर प्रसाद' को नाटक 'चन्द्रगुप्त' से संकलित की गई हैं। नाटककार ने इन पंक्तियों में सुवासिनी के जीवन, परिस्थिति, वृत्ति और प्रण्य का स्पष्टीकरण करते हुए नारी का अद्वितीय रूपचित्र अंकित किया है।

**व्याख्या**

इन पंक्तियों में 'प्रसाद' ने अत्यन्त सूक्ष्म तरीके से नारी–सौंदर्य का वर्णन किया है। नारी का सौन्दर्य सुनहरी किरणों के सुनहरेपन में निहित नहीं है, अपितु उन किरणों के अर्न्तजगत में विद्यमान है। यह सौन्दर्य अत्यन्त गोपनीय भाव से मनुष्य के हृदय को झककोर देता है। सौन्दर्य गर्व से गर्वित यह सुन्दरी नतमस्तक है। नाटककार उसे सम्बोधित करते हुए कहता है कि वह तो साक्षा् यौवन के बादल के समान है, जो जलकणों की बारिश न करके रस और आनन्द की वर्षा करता है। उसका लज्जायुक्त सौन्दर्य उसके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देता है। वह सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति न जाने लज्जाभार से नत क्यों रहती है?

**विशेष**

1. इन पंक्तियों में नाट्ककार ने सूक्ष्य भावों के माध्यम से नारी सौन्दर्य का सुन्दर एवं मनमोहक वर्णन प्रस्तुत किया है।
2. छायावादी विचार प्रतिपादित किये गये हैं।
3. उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
4. नारी के लिए 'लाज भरे सौन्दर्य' विशेषण का प्रयोग किया गया है।

2. अधरों के मधुर कगारों में
कलकल ध्वनि की गुंजरों में?
मधुसरिता–सी यह हँसी तरल
अपनी पीते रहते हो क्यों?
बेला विभ्रम की बीत चली
रजनीगंधा की कली खिली
अब सान्ध्य मलम–आकुलित
दुकूल कलित हो, यों छिपते हो क्यों?

(पृष्ठ-५२)

**संदर्भ-प्रसंग**

प्रस्तुत गीत नाट्ककार 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के दूसरे दृश्य से उद्धत किया गया है। इन पंक्तियों में नाटककार सौन्दर्य को एक वेगवती सरिता के समान गतिशील मानते हुए अपनी ही हँसी के आनन्द में झूमकर मतवाली सौन्दर्यवती का वर्णन करते हैं:

**व्याख्या**

नाटककार ने सौन्दर्य को एक वेगवती सरिता माना है वह अपनी ही हँसी में आनन्दमय मतवाली क्यों हो रही है? उस ऐसा

प्रतीत हो रहा है कि वह मदिरापान करके मतवाली हँसी–हँस रही है। उसे होंठ सरिता के कगारों के समान हैं तथा उन पर उमड़ने वाला कल–कल हास सरिता की कल–कल ध्वनि के समान आकर्षक हैं आगे नाटककार कहते हैं कि अब सांध्यकाली–बेला समाप्त हो गई है। रात्रि में चन्द्रमा विकसित होकर प्रफुल्लित है। अब रजनी के आगमन के साथ–साथ उन्मुक्त मिलन का उपयुक्त अवसर है। अब संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसे अपने मुख–मण्डल पर सन्ध्याकालीन मलय–समीर द्वारा चंचल बने अवगुंठन धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

**विशेष**

1. नाटककार की भाषा–शैली अत्यन्त सरल एवं सहज है।
2. छायावादी विशेषताओं का आकलन भी सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।
3. उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
4. आन्तरिक भावों को लक्षण–व्यंजना के माध्यम से अभिव्यक्ति मिल पाई है।
5. रजनीगन्धा की कली खिली में सांकेतिक अर्थाभिव्यक्ति का मार्मिक प्रयोग हुआ है।

3. **निकल मत बाहर दर्बल आह!**
   **लगेगा तुझे हँसी का शीत**
   **शरद नीरद माला के बीच**
   **तड़प ले चपला-सी भयभीत**
   **पड़ रहे पावन प्रेम-फुहार**
   **जलन कुछ-कुछ है मीठी पीर**
   **सम्हाले चल कितनी है दूर**
   **प्रलय तक व्याकुल हो न अधीर** (पृष्ठ **53**)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत गीत 'जयशंकर प्रसाद' द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य से उद्धत किया गया है। इस गीत में राक्षस ने सुवासिनी द्वारा गाए गए गीत के भावों का उत्तर देने की कोशिश की है।

**व्याख्या**

नाटककार राक्षस के माध्यम से कह रहे हैं – हे वेदना तुम हृदय में ही स्थित रह, अपने आपको विश्व के समक्ष प्रस्तुत न होने दे, अन्यथा तुझे विश्वजन का उपहास–पात्र बनना पड़ेगा। तुझे विश्व की सहानुभूति प्राप्त नहीं हो सकेगी। तू इस तदभ में उसी प्रकार तड़प ले जिस प्रकार शरदकालीन घने बादलों के मध्य बिजली चमकतीं है। प्रेम प्रंसग को इंगित करते हुए नाटककार कहते हैं कि उसके जीवन में प्रेम की दृष्टि हो रही है। इस प्रेम द्वारा ही उसे मधुर वेदना का अनुभव होता है। यह वेदना एक ओर उन्हें जलाती है, तो दूसरी ओर आंनद भी प्रदान करती है। अपनी वेदना को अभिव्यक्त करने के लिए उसे व्याकुल नहीं होना चाहिए और उसके अन्तिम परिणाम को जानने के लिए अधीर नहीं होना चाहिए।

**विशेष–**

1. राक्षस के हृदयगत भाषा को इस गीत में सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है।
2. नाटककार की भाषा–शैली सरल एवं सरस है।
3. छायावादी भावों को अभिव्यक्ति मिली है।
4. **अश्रुमय सुन्दर विरहं निशीथ**
   **भरे तारे न दुलकते आह!**
   **न उफना दे आँसू हैं भरें**
   ***इन्हीं आँखों में उनकी चाह***

**काकली-सी बनने की तुम्हें**
**लगन लग जाय न हे भगवान्**
**पपीहा का पी सुनता कभी।**
**अरे कोकिल की देख दशा न; (पृष्ठ 53)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' से उद्धत की गई हैं इनमें नाटककार स्वयं को रजनी से उपमित करते हुए कहा है–

**व्याख्या**

नाटककार कह रहे है कि जिस प्रकार उसका हृदय अश्रुपूर्ण है, उसी प्रकार रजनी का भी । रजनी की सुन्दरता का कारण उसका विरह ही है। तारे रजनी के नेत्र है, किन्तु वे अश्रु–वर्षण नहीं करते नाटककार की कामना है कि उसके नेत्रों से अश्रुपात न हो। कारण वही तों उसकी सम्पदा है, उन्हीं में उसके प्रिय की स्मृति एवं चाहत व्याप्त है। नाटककार भगवान से प्रार्थना करता है कि कहीं उसे भी कोकिला एवं पपीहे की भाँति अपनी वेदना को मुखारित करने की लगन न लग जाय। कोयल अपनी मनोव्यथा को पंचक तान में व्यक्त करती है, उसकी मीठी आवाज संपूर्ण वातावरण को झंकृत कर देती है, किन्तु उसे अपने अभीष्ट–प्रियतम – की प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार यदि पपीहा भी कितनी ही रट लगाकर प्रियतम को पुकारे उसे सुनकर कौन आता है।

**विशेष–**

1. नाटककार ने वेदना की अभिव्यक्ति को मर्म स्पर्शी भावों में व्यक्त किया है।
2. छायावादी विशेषताओं का आकलन भी सुन्दर बन पड़ा है।
3. अर्थ गरिमा, कल्पना की रमणीयता, भाव सौन्दर्य के लिए यह अन्यतम गीत है।
4. माधुर्य एवं संगीत सभी इस गीत में पाये जाते हैं।
5. **हृदय है पास, साँस की राह**
   **चले आना-जाना चुपचाप**
   **अरे छाया बन, छू मत उसे**
   **भरा है तुझमें भीषण ताप**
   **हिलाकर धड़कन से अविनीत**
   **जगा मत सोया है सुकुमार**
   **देखता है स्मृतियों का स्वप्न**
   **हृदय पर मत कर अत्याचार (पृष्ठ 53)**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के दूसरे दृश्य से उद्धत की गई हैं इनमें नाटककार ने वेदना के सामीप्य होने का आह्वान करते हुए कहा है–

**व्याख्या**

नाटककार कह रहे है कि वेदना उसके समीप अत्यन्त मौन भाव से श्वासों के मार्ग से आय और वही स्थिर हो जाए, क्योंकि उसका हृदय भी पास ही शयन कर रहा है। वह छाया बनकर भी उसे स्पर्श न करे। क्योंकि उसका हृदय अत्यन्त सुकुमार एवं स्निग्ध है, जबकि वह भीषण ताप की जवाला से परिपूर्ण है नाटककार का सुकुमान हृदय निद्रालीन है, इसलिए वेदना को उसे किसी भी प्रकार से कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए। नाटककार का हृदय तन्द्रवस्था में प्रियतम की मधुर स्मृतियों का आनन्द लूट रहा है, वह अपनी इस दशा में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहता । वियोग के क्षणों में प्रिय की विगत स्मृतियाँ ही प्रणयी का एकमात्र सहयोगी होती हैं।

**विशेष-**

1. संक्षिप्त शब्दों में प्रेम का मुखर इतिहास प्रस्तुत किया गया है।
2. नाटककार की भाषा–शैली सहज भावों से युक्त है।
3. छायावादी विचारों की अभिव्यक्ति अत्यन्त मनमोहक रूप में प्रस्तुत की गई है।

**अरूण यह मधुमय देश हमारा।**
**जहाँ पहुँच जनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।**
**सरस तामरस गर्भ विभा पर- नाच रही तरूशिखा-मनहोर।**
**घिटका जीवन हरियाली पर-मंगल कुंकुम सारा।**
**लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे ।**
**उड़ते खग जिस ओर मुँह किये - समझ नीड़ निज प्यारा।**
**बरसाती आँखों के बादल-बनते जहाँ भरे करूणा जल।**
**लहरें टकराती अनन्त की-पाकर जहाँ किनारा।**
**हेम-कुम्भ ले उषा सवेरे - भरती ढलकाती सुख मेरे।**
**मंदिर ऊँघते रहते जब-जग कर रजनी भर तारा।**

(पृष्ठ 82)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य से उद्धृत की गई हैं इनमें सेनापति सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया ने गाया है। वह भारतीय संस्कृति एवं दर्शन से प्रभावित है तथा चन्द्रगुप्त पर आसक्त देते हुए कहती है कि–

**व्याख्या**

नाटककार कह रहे है कि भारत अत्यन्त सौन्दर्यशाली एवं शोभा का अगाध आगार है। यह देश माधुर्य से परिपूर्ण है। भारत वर्ष की भूमि सिद्धों एवं महात्माओं की पावन भूमि है। इस देश में आने पर अनन्त एवम् असीम आकाश को भी आधार मिल जाता है। प्रातः कालीन सूर्योदय के कुकुंम रंग के प्रकाश में सुन्दर एवं सरस कमल के उपर केशर की पीली–पीली पंखुड़ियों के समान परमाणु क्रिड़ाएँ करने लगते हैं। और वृक्षों की सुन्दर–सुन्दर शाखाऐं भी नृत्य करने लगती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उषा के आगमन से चारों ओर जीवन एवं जागृति और स्फूर्ति की लहर का आगमन हो गया हो। समस्त पक्षी, भारतवर्ष को अपना प्रियतम नीड़ समझ कर प्रातःकालीन मलयगिरि पवन की धारा के साथ–साथ इन्द्रधनुष की भाँति विभिन्न रंगों वाले पंखों को फैलाए हुए, उड़ें चले आ रहे हैं। वे समझ रहे है की यही हमारा आश्रय स्थल है और यहीं उनको वास करना है। यहा नेत्र रूपी बादल करूणा–जल की दृष्टि करते रहते हैं इसी देश में अनन्त सागर की परस्पर टकराने वाली लहरों को एकं किनारा मिलता है। प्रभातकालीन बेला में रतिभर जागने के कारण जब तारक समुदाय उन्माद में मस्त हुआ–सा गुँघने लगता है, तो यहाँ उषा रूपी सुन्दरी सूर्य रूपी स्वर्णिम कुंभ से जन–जीवन पर सुख–सौन्दर्य, आशा एवं स्फूर्ति बंरसाने लगती है।

**विशेष-**

1. नाटककार ने इन पंक्तियों में अर्थ–गरिमा, आवगत गव्यता, कल्पना की रमणीयता एवं सौंदर्य का मार्मिक वर्णन किया है।
2. राष्ट्रीयता की परिपाटी को नाटककार ने अत्यन्त उच्च शिखर पर पहुँचा दिया है।
3. छायावादी प्रकृति को उभारा गया है।
4. नाटककार की भाषा–शैली मर्मस्पर्शी भाव–युक्त है।

**प्रथम यौवन-मदिरा से मत्त, प्रेम करने की भी परवाह,**
**और किसको देना है हृदय, चीन्हने की न तनिक थी चाह।**

**बेच डाला था हृदय अमोल, आज वह माँग रहा था दाम,**
**वेदना मिली तुला पर तोल, उसे लोभी ने ली बेकाम उड़ रही है।**
**हृत्पथ में धूल, आ रहे हो तुम वे परवाह,**
**करू क्या दृग-जल से छिडकाव, बनाऊँ मैं यह बिछलन राह।**
**सँभलने धीरे-धीरे चलो, इसी मिस तुमको लगे विलम्ब;**
**सफल हो जीवन की सब साघ मिले आशा का कुछ-अवलम्ब।**
**विश्व की सुषमाओं का स्रोत, वह चलेगा आँखो की राह,**
**और दुर्लभ होगी पहचान, रूप-रत्नाकर भरा अथाह।**

(पृष्ठ 101)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत गीत 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अकं के पंचम दृश्य से लिया गया है। अलका सिंहरण की ओर आ कृष्ट है इसी परिदृश्य की नाटककार ने चित्रित करते हुए कहा है-

**व्याख्या**

जिस समय उसके जीवन में यौवन ने प्रवेश किया था तो उसे मस्ती से परिपूर्ण बना दिया और उसके हृदय में प्रेम की भावना भर दी इससे उसने अपना ही बेच दिया। उसे इस बात की तनिक भी परवाह नहीं की कि वह अपना हृदय किसे समर्पित कर रही है। उसे उस समय अच्छे–बुरे की कोई पहचान तक नही की थी। अपने प्रिय पात्र के प्रति बिना सोच–विचार के पूर्ण समर्पित कर दिया था। किंन्तु जब उसने पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया है और उसके हृदय का रस घट रिक्त होने लगा है, उसके हृदय पर कुठाराघात होने लगा हे। (क्योंकि उसे सिहरन से विरक्त होना पड़ रहा था) उसे विगत समय की मधुर स्मृति वेदना दे री है। उसका हृदय पीडा से भरा हुआ है। वेदना इतनी अधिक है कि उसके हृदय की कोमलता भी नष्ट हो रही है। हृदय शुष्क हो चला है, नेत्रों से आसुओ की धारा फूट निकली है और आहें स्वतः निकल पड़ी है। प्रिय की स्मृति अब उसे सता रही है तथा अश्रुओं का मार्ग पर छिड़काव हो रहा है। अब प्रियतम इस मार्ग पर सोच--विचार से चलना पड़ेगा चाहे कितने ज्यादा लग जायें । वह अपनी मनोकामनाएँ सिद्ध करने में लगी हैं उसके जीवन के समस्त अरमान पूर्ण हो जायें तथा उसकी आकांक्षाओं की तनिक अवलम्बन मिल जाय। यदि किसी कारणवश प्रिय न आ सकेगा, तो वह उसके समस्त रूप–सौदर्य एवं आकर्षण को नेत्रों के अश्रुओं के माध्यम से बहा देने को तत्पर रहेगी। जिससे वह अपने प्रियतम की पहचान न कर पाये।

**विशेष-**

1. नाटककार ने प्रेम के राग को अत्यन्त सुन्दर ढंग से चित्रित किया है।
2. भावों एवं विचारों की सुन्दर अभिव्यक्ति देखने में आई है।
3. प्रेम के साथ–साथ आत्म–निष्ठा का आकलन मार्मिक रूप से उभरा है।
4. गीत छायावादी शैली पर आधारित रहा है।
5. सूक्ष्मता, कल्पना तथा वैयक्तिकता के दर्शन अवलोकनीय हैं।

**8** **बिखरी किरन अलका व्याकुल हो विरस वदन पर चिन्ता लेख,**
**छायापथ में राह देखती गिनती प्रणत-अवधि की रेख।**
**प्रियतम के आगमन-पंथ में उड़ न रही है कौमल धूल,**
**कादम्बिनी उठी यह ढँकने वाली दूर जलधि के कूल।**
**समय-विहग के कृष्णाक्ष में रजत चित्र-सी अंकित कौन-**
**तुम हो सुन्दरि तरल तारिके! बोलो कुछ, बैठो मत मौन!**
**मन्दाकिनी समीप भरी फिर प्यासी आँखे क्यों नादान।**
**रूप-निशा की उषा में फिर कौन सुनेगा तेरा गान।**

(पृष्ठ 106)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अकं के सप्तम दृश्य से उद्धत की गई हैं। अलका पर्वतेश्वर के प्रासाद में अपने जीवन के संघर्षमय श्रण बिता रही है। उसके हृदय में प्रेम की ललक उठ रही है उन्हीं का उल्लेख नाटककार ने यहां पर किया है।

**व्याख्या**

आकाश मण्डल में जिस प्रक़ार तारों के प्रकाश की किरणें फैल रही हैं ठीक उसी प्रकार उसके बालों की लटे उसके कुम्हलाए मुखमण्डल पर बिखर रहीं हैं। वह आकाश गंगा देखते हुए अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। छायापथ में उड़ने वाले परमाणु उसके प्रियतम के आगमन की आशा को जीवित करते हैं किंतु आकाश में अचानक गहरे काले बादल छाकर उसकी आशा को निराशा में बदल देते हैं। उसका यौवन धीरे–धीरे खत्म होता जा रहा हैं वह क्षीण होने पर है। वह जीवन के इस कृष्णपक्ष में समय रूपी पक्षी को अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। उसकी स्थिति इस समय चंचल तारिका के समान है जो सुन्दर होते हुए भी मौन है।

नाटककार को अलका का यह मौन खलता है वह उसे बोलने के लिए प्रेरित करते हैं कि अपने प्रिय के निकट रहते हुए तू जाकर उसके दर्शन से अपने नेत्रों को तृप्त कर सकती हो। नाटककार का आशय यह है कि वह अपने सौंदर्य को रात्री के समय आनन्दमय कर ले अन्यथा यह प्रातः काल के आगमन के साथ ही उसका यह सुन्दर यौवन फीका पड़ जाएगा। कहने का भाव यह है कि यौवन की समाप्ति पर उसकी महत्ता कम हो जाएगी।

**विशेष-**

1. नाटककार ने यहा पर संघर्षमय जीवन का चित्रण किया है।
2. रूपक अंलकार का सुन्दर चित्रण देखने में आया है, यथा 'किरण–अलक' 'चिन्ता–लेख' 'रूप–निशा' आदि।
3. भावों को गीत के अनुरूप अभिव्यक्ति मिली है।
4. वैयक्तिकता के दर्शन आवलोकनीय है।

**आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा!**
**मधु पीकर पागल हुआ, करता प्रेम-प्रलाप,**
**शिथिल हुआ जाता हृदय जाता हृदय, जैसे अपने आप!**
**लाज के बन्धन खोल रहा!**
**बिछल रही चाँदनी, छवि-मतवाली रात,**
**कहती कम्पित अधर से, बहकाने की बात।**
**कौन मधु-मदिरा घोल रहा?**

**(पृष्ठ 126)**

**संदर्भ प्रसंग-** प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के तृतीय अंक के पंचम दृश्य से ली गई हैं। इनमें सुवासिनी नन्द सभा में अपना गीत प्रस्तुत कर रही हैं –

**व्याख्या-** आज उसके जीवन में यौवन अंकुरित हुआ है। उसके हृदय के तार प्रेम एवं यौवन की मादकता से झंकृत हो रहे हैं। उसके भाव कोयल की वाणी के समान हो चुके हैं। आज उसे ऐसा अनुभव होने लगा है कि मानों उसमें मदिरा–पान के कारण उन्मत्तता छा रही है। आनन्द एवं सुख की अनुभूति के कारण मानो उसका शरीर शिथल हो रहा है, वह अपनी भावनाओं को स्वयं अभिव्यक्त कर रहा है। यौवनकाल ने उसे अधिक मादक बना दिया है। और इसी कारण उसने लज्जा का आवरण उतार कर फैंक दिया है। प्राकृतिक उपादानों का वर्णन करत हुए वह कहती हैं कि चारों और चाँदनी फैल रही है जो वातावरण को और भी मतवाला बना रहीं है। यह सुन्दरी रूपी निशा झिलमिलाते नक्षत्रों रूपी अधरों के माध्यम से उसे इस बात का संकेत दे रही है कि यौवन की रात्री बहुत कम रह चुकी है तथा इसका जितना चाहे अभी आनन्द लिया जा सकता है। वह कहती है कि मुझे ज्ञात नहीं है कि मेरे मादक यौवन को कौन उत्तेजित करने के लिए मदिरा का मिश्रण घोल रहा है और इसे उत्तेजना दे रहा है।

**विशेष-**

1. संक्षिप्तता एवं माधुर्य को इस गीत में देखा जा सकता है।
2. 'मधुमदिरा' 'कहती–कम्पित' अलंकार इस गीत में प्रयुक्त किये गये हैं।
3. प्राकृतिक उपादानों का चित्रण नाटककार ने पूर्ण सफलता के साथ प्रस्तुत किया है, जो कि गीत के अनुरूप हुआ है।
4. उत्तेजित भाव का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

**10 सुधा सीकर से नहला दो!**
**लहरें डूब रही हों रस में,**
**रह न जाएँ वे अपने वश में,**
**रूप राशि इस कथित हृदय सागर को बहला दो।**
**अन्धकार उजला हो जाए,**
**हँसी हंस माला मँडराये,**
**मधुर का आगमन कलरव के मिस कहला दो।**
**करूणा के आंचल पर निखरे,**
**घायल आँसू हैं जो बिखरे, ये मोती बन जायँ, मृदुल कर से लो सहला दो**

पृष्ठ 145

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत गीत 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के प्रथम दृश्य से उद्धत किया गया है। इनमें कल्याणी पर्वतेश्वर यहाँ बन्दी होने तथा प्रियतम की स्मृति में उसके मनोभावों को अभिव्यक्त दी गई है।

**व्याख्या**

वह कहती है कि जिस प्रकार चन्द्रमा समस्त प्रकृति का अपनी अनूठी आभा से आलोकित कर देता हे। उसी प्रकार वह उस भी अपने अमृत तुल्य कणों से आप्लवित कर दे। इससे उसके समस्त कष्ट अपने आप ही मिट जायेंगे। उसके हृदय में उठने वाली उमंगे रस में अभिषिक्त हो जायेगी। इस हृदय रूपी सागर को आनन्द रस में डूबो कर वेदना को दूर भगा डालो। उसके जीवन में निराशा एवं वेदना के अन्धकार ने डेरा जमाया हुआ है। उसे अपने उज्जवल धवन रश्मियों से परिपूरित कर दे। पक्षियो के कलरव के माध्यम से बसन्त की पूर्णीम उसके हृदय के आनन्द एवं हर्षोल्लास का आगार बन जाए। अपनी स्निग्ध भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए वह आगे कहती है कि उसके करूणा से व्याप्त हृदय को वेदना अश्रुओं के रूप में नेत्रों के अन्त मे एकत्र हैं। तुम उन अश्रुओं को अपने कोमल हाथों की अंगुलियों से इस प्रकार सहलाओ की वह मोती बन जाएँ अर्थात तुम इस मायूसी को हर्षोल्लास एवं खुशी में परिवर्तित कर दो।

**विशेष –**

1. करूणा एवं दयनीय स्थिति का आकलन सुन्दर शब्दों में किया गया है।
2. हँसी हँसमाला में रूपक और मधुराका आगमन कलरवों में अलंकार है।
3. नाटककार की भाषा शैली अत्यन्त सरल एवं सरस तथा भावोनुकुल रही है।

**11 कैसी कड़ी रूप की ज्वाला?**
**पड़ता है पतंग सा इसमें मन होकर मतवाला,**
**सान्धय गगन सी रागमयी यह बड़ी तीव्र है हाला,**
**लासैह-श्रंखला से न कड़ी क्या यह फूलों की माला?**

(पृष्ठ 148)

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत, पंक्तिभाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के द्वितीय अंक से ली गई हैं। सुवासिनी एवं राक्षस का

वार्तालाप तथा राक्षस का पुनः क्रियाशील होना दिखाया गया है।

**व्याख्या** – रूप सौन्दर्य का प्रखर अत्यन्त तीव्र होता है। इसकी प्रचण्डता से हृदय बुरी तरह घायल हो जाता है। रूप का प्रभाव सीधे हृदय को प्रभावित करता है। यह हृदय में शूल की भांति चुभता है। इसमे जादू की सी शक्ति होती है। मानव का मन रूप सौन्दर्य पर उसी प्रकार से आसक्त होता है, जिस प्रकार पतंग दीपक की लौ पर अपने प्राण न्यौछावर कर देता है। रूप सौन्दर्य अत्यन्त मादक होता है। इसकी मादकता सांध्यकालीन लालिमा के समान होती है। यह सौन्दर्य देखने में तो अत्यन्त कोमल, पुष्पों के समान सुगन्धित एक पुष्पमाला के समान मधुर लगता है। परन्तु वास्तव में यह लौह से भी अधिक कठोर होता है, जो शरीर की व्यवस्था ही बिगाड़ देता है।

**विशेष** –

1. लेखक ने रूप सौन्दर्य का महत्त्व अत्येन्त मनमोहक रूप में प्रेषित किया है।
2. पतंग सा एवं 'सान्धय–गगन–सी' में उपमा की छंटा विकीर्ण हो रही है।
3. 'रागमयी' में श्लेष का आगमन हुआ है।

**12 मधुप कब एक कली का है।**
**पाया जिसमें प्रेम रस, सौरभ और सुहाग**
**बेसुध हो उस कली से, मिलता भर अनुराग,**
**बिहारी कुञ्जगली का है।**
**कुसुम धुल से धूसरित, चलता है उस राह,**
**काँटों में उलझा तदपि, रही लगन की चाह,**
**बावला रंगरली का है।**
**हो मल्लिका, सरोजनी, या यूथी का पुञ्ज,**
**अलि को केवल चाहिए, सुखमय क्रीडा-कुञ्जः**
**मधुप कब एक कली का है!**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत गीत 'जयशंकर प्रसाद' द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के चतुर्थ दृश्य से उद्धत किया गया है। मालविका ने चन्द्रगुप्त की आसक्ति की प्रवृति को मधुप के माध्यम से अभिव्यक्त किया है–

**व्याख्या**

भ्रमर कभी भी पुष्प पर आश्रित रहने वाला नहीं है। वह जिस कली में रस देखता है उसी की ओर आकृष्ट हो जाता है। वह पुष्प के यौवन, सुगन्ध आदि को देखकर उसी में उलझ जाता है और मदमस्त होकर उसका रस चूसता है और पूर्ण आनन्द लेकर वह उस पर से उड़ जाता है। इस प्रकार वह एकानिष्ठ प्रेमालाप नहीं करता वह तो कुञ्जों में विहार करने वाला होता है।स्वार्थ प्रधान होता है। यदि भ्रमर को कोई पुष्प धूल धूसरित दिखाई पड़ता है और उससे उसकी लगन लग गई है तो वह फिर धूल, काँटो आदि की चिन्ता नहीं करता। वह काँटों से उलझ कर भी उससे लिपट जाता है। वास्तविक रूप से उसे पागल प्रेमी ही कहा जायेगा। जो प्रेम के मार्ग में किसी विघ्न बाधा की चिन्ता नहीं करता और रंगरलियाँ मनाने में मस्त रहता है। भ्रमर को तो इस संचयन मात्र से लगन है। उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि पुष्प मल्लिका है। भ्रमर तो सदैव आनन्द क्रीडा को ही पसन्द करता है। वह कभी भी एक पुष्प पर आश्रित नहीं रहता है। तथापि पुष्प बदलता रहता है।

**विशेष** –

1. सम्पूर्ण गीत में अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है।
2. नाटककार की भाषा शैली प्रभावशाली एवं युक्तियुक्त है।
3. भ्रमर के माध्यम से मानव मन के मनोभावों को सुन्दर अभिव्यक्ति दी गई हैं।

**13 ओ मेरी जीवन की स्मृति! ओ अन्तर के आतुर अनुराग।**
**बैठ गुलाबी विजन ऊषा में गाते कौन मनोहर राग?**

**चेतन सागर उर्मिल होता यह कैसी कम्पनमय तान,**
**यो अधीरता से न मीड़ लो अभी हुए हैं पुलकित प्राण।**
**कैसा है यह प्रेम, तुम्हारा युगल मूर्ति की बलिहारी।**
**यह उन्मत विलास बता दो कुचलेगा किसकी क्यारी?**
**इस अनन्त निधि के है नाविक, हे मेरे अनंग अनुराग।**
**पाल सुनीला बन, तनती है, स्मृति यों उस अतीत में जाग।**
**कहाँ ले चले कोलाहल से मुखरित तट को छोड़ सुदूर,**
**आह! तुम्हारे निर्दय डाँडों में होती है लहरे चूर।**
**देख नहीं सकते तुम दोनो चकित निराशा है भीमा,**
**बहको मत क्या न है बता दो क्षितिज तुम्हारी नव सीमा?**

**संदर्भ प्रसंग**

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जय शंकर प्रसाद' के चतुर्थ अंक के चतुर्थ दृश्य से संकलित की गई है। मालविका किसी के प्रति प्रेमाभिभूत है। वह अपने संवेदनशील मन को सम्बोधित करती हुई कह रही है–

**व्याख्या**

वह कह रही है कि न जाने उसके हृदय में अवस्थित स्मृतियाँ उसे क्यों आहादित कर रही है। उसके हृदय में अनेक प्रकार के स्वर्णिम स्वपन जन्म ले रहे हैं। वह सचेत है फिर भी न जाने क्यों वह एक विशेष प्रकार की आशंका एव कम्पन से पुलकित हो उठती है। उसे एक आशंका भी लगी हुई है कि अभी जो मन पुलकित हुआ है वह व्याकुलता के कारण समाप्त न हो जाए। वह अपने प्रेमी को सम्बोधित करती हुई कह रही है कि उसका प्रेमी चन्द्रगुप्त भी एक विचित्र प्रकार का प्राणी है। उसका प्रेम तीव्रता एवं आतुरता प्रदान करने वाला है। जिसके कारण इन युगल मुर्तियों ने उसके हृदय में स्थान बना लिया है। तुम मेरे भावना रूपी अनुराग के नाविक हो नाविक को हृदय से अतीत की मादक स्मृतियों में चले जाने का अवसर प्रदान कर रहे हो। अतीत की मादक स्मृतियाँ मुझे व्याकुल कर रही हैं। जिससे वह स्मृतियों के पंखो पर चढ़कर स्वार्थ, घृणा, प्रवंचना आदि से भरे विश्व से दूर जाने का प्रयास करती हैं। साथ ही उसकी पूर्वानुभूति एवं स्मृतियाँ उसे द्वन्द्व में खींच लाती हैं। उसे अनेक प्रकार के विचार भावनाओं के सागर में डुबाने लगते हैं। भावनाओं के सागर के शान्त हो जाने पर वह अपने आतुर अनुराग को सम्बोधित करती हुई कहती है कि वे उसके निराशाजन्य एवं कुण्ठाग्रस्त जीवन को नहीं देखना चाहते तो उसे एक नवजीवन की रूपरेखा तो स्पष्ट कर दें।

**विशेष –**

1. स्मृतियों का सागर नाटककार की लेखनी से हिलोरे खाने लगता है जो कि मर्मस्पर्शी है।
2. मानसिक अन्तर्दन्द्व सुन्दर रूप से उद्घाटित हुआ है।
3. भाषा शैली भावानुकूल है।

**14 हिमाद्री तुंग शृंग से**
**प्रबुद्ध शुद्ध भारती**
**स्वयंप्रभा समुज्ज्वला**
**स्वतन्त्रता पुकारती**
**अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,**
**प्रशस्त पुण्य पंथ है- बढ़े चलो, बढ़े चलो।।**
**असंख्य कीर्ति रश्मियाँ,**
**विकीर्ण दिव्य दाह सी।**
**सपूत मातृभूमि के**
**रूको न शूर साहसी।**
**अराति सैन्य सिन्धु में। सुवाडवाग्नि से जलो, प्रवीर हो जयी बनो बढ़े चलो बढ़े चलो।** (पृष्ठ 161-62)

**संदर्भ प्रसंग** – प्रयुक्त पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के षष्ठम दृश्य से उद्धत कि गई है। भारतीयता की पुकार एवं नवयुग की चेतना गीत का प्राण है।

**व्याख्या** – नाटककार ने भारतीयों की सुप्त चेतना को जागृत करते हुए कहा है कि हिमालय के उन्नत शिखर से प्रबुद्ध एवं शुद्ध सरस्वती, जो अपने प्रकाश से दीप्त एवं सदैव स्वतन्त्र रहने वाली है। उन्हें पुकार–पुकार कर यह संदेश दे रही है कि वे देवताओं की वीर सन्तान है, मृत्यु से भयभीत होना उनके लिए अशोभनीय है। निरन्तर संघर्ष करते–करते अपने प्राणों का विसर्जन कर देना ही उनका कर्तव्य है। यदि वे दृढ़ प्रतिपन होकर चिन्तन करें तो उन्हें याद होगा कि कर्तव्यपथ कितना प्रशस्त एवं व्यापक होता है। इस मार्ग में कहीं कोई बाधा नहीं है। उनकी यश रूपी असंख्य किरणें दिव्य ज्वाला बनकर इस मार्ग को सदैव आलोकित करती चलेंगी। अतएव मातृभूमि के इन सुपुत्रों को अपने कर्त्तव्य से कदापि विचलित नहीं होना चाहिए। अपनी गति एवं उर्जा में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देना चाहिए। यदि शत्रुओं की सेना रूपी सागर उन्हें बहाने की चेष्टा करे तो भी उन्हें भयभीत नहीं होना चाहिए। श्रेष्ठ वीर सदैव कर्तव्य पथ पर अग्रसर होकर अन्ततः विजय पताका फहराते है।

**विशेष** –

1. गीत की भाषा ओजस्विनी एवं शैली उद्‌बोधनात्मक है।
2. प्रस्तुत गीत पद सौष्ठव, ओजगुण एवं वीरत्व भावना की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है।
3. राष्ट्रीय भावना को उत्तम ढ़ंग से मुखरित किया गया है।
4. भाषा शैली भावोनुकूल रही है।

**15 सखे! वह प्रेममयी रजनी।**
**आँखों में स्वपन बनी,**
**सखे! वह प्रेममयी रजनी।**
**कोमल द्रुमदल निष्कम्प रहे,**
**ठिठका सा चन्द्र खड़ा**
**माधव सुमनों में गूँथ रहा**
**तारों की किरन अनी।**
**सखे वह प्रेममयी रजनी।**
**नयनों में मंदिर विलास लिये,**
**उज्जवल आलोक खिला।**
**हँसती सी सुरभी सुधार रही,**
**अलको की मृदुल अनी।**
**सखे! वह प्रेममयी रजनी।**
**मधुर मन्दिर सा यह विश्व बना,**
**मीठी झनकार उठी।**
**केवल तुमको भी देख रही**
**स्मृतियों की भीड़ घनी।**
**सखे! वह प्रेममयी रजनी।**

(पृष्ठ 174–175)

**संदर्भ प्रसंग** – प्रस्तुत पंक्तियाँ 'जयशंकर प्रसाद' के नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के नवम् दृश्य से उद्धत की गई हैं। सुवासिनी कार्नेलिया के साथ हैं। वह उसके मन में चन्द्रगुप्त के प्रति अनुराग जागृत करने के लिए अभिनय करती हैं। उसी के उद्धेलित यहाँ पर मुखरित हुए हैं।

**व्याख्या** – सुवासिनी कार्नेलिया के प्रति प्रेममयी रजनी का रहस्य उद्‌घाटित करते हुए कहती हैं कि हे सखी, यह रात्रि अत्यन्त मादक हैं। यह मन में अनेक प्रेम एवं सौन्दर्य के भाव जागृत करने वाली हैं। यह रजनी मानव के नेत्रों में अनेक प्रकार के स्वपनों

का संचरण करने वाली हैं। यह हमारी सुसुप्त भावों को झंकृत करके हमारे अतीत के भावों को साकार रूप प्रदान करने का प्रयास करती हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों रात्रि का सौन्दर्य नेत्रों में स्वपन बनकर प्रवेश कर गया है। रात्रि के प्रेममयी होने से प्रेम के प्रभाव प्रकृति के अनेक उदाहरण पर दिखाई पड़ते है।। वृक्षों पर कोमल किसलय कम्पन विहीन हैं। चन्द्रमा की मानों ठिठक कर खड़ा हो, बसन्त भी मानों पुष्पों की माला गुँथ रही हो, वह पुष्पों में मानों तारों की प्रकाश किरणों के आगे पिरो रहा है। चन्द्रमा में विशेष आभा है। उसके नेत्रों के मादक बनाने की शक्ति न जाने कहाँ से आ गई है। चारों ओर उज्जवल प्रकाश फैला है सौरभ से वातावरण सुगन्धित है ऐसा प्रतीत होता है कि चारों ओर साज–श्रंगार चल रहा है। इसीलिए यह रात्री प्रेममयी है। सृष्टि बसन्त ऋतु का रूप धारण कर गई सी लगती है। इस मादक रजनी में, तुम्हारी प्रेम की मादक स्मृति हो उठी है। स्मृतियों का ऐसा सिलसिला चला है कि अब हृदय तुम्हारे दर्शन के भूखे हैं। यह रजनी अत्यधिक प्रेममयी होकर उदित हुई है।

**विशेष** –

1. रात्रि के उद्दीपनकारी रूप की चर्चा की गई है।
2. इस गीत में अनेक विशेषताओं का आगमन हुआ है, संगीत माधुर्य गुण आदि।
3. नाटककार की भाषा शैली प्रभावशाली एवं युक्तियुक्त रही है।
4. प्रस्तुत गीत में पद साष्ठव भावात्मक की दृष्टि अत्यन्त उत्कृष्ट है।

# खण्ड खः आलोचना

## 1-'चन्द्रगुप्त' नाटक की कथा योजना

नाटककार प्रसाद ने 325 ई॰ पूर्व के भारत की राजनीति को आधार बनाकर कथानक खड़ा किया है। इस नाटक की कथा वस्तु संक्षेप में इस प्रकार है।

यूनान का सम्राट सिंकदर भारत पर आक्रमण करता है। भारत की उत्तरी सीमा पर पहला राज्य गांधार का होता है। गांधार का राजकुमार आम्भीक धन के लोभ से सिकंदर के साथ मिल जाता है। नाटके में इस घटना की सूचना सिंहरण, चाणक्य और आम्भीक के वार्तालाप से मिलती है।

सिंहरण मालव राज्य का महाबलीाधिकृत होता है। उसने चन्द्रगुप्त के साथ ही तक्षशीला के गुरूकुल के स्नातक की उपाधी प्राप्त की होती है। चाणक्य उस गुरूकुल का आचार्य होता है। चाणक्य अपने गुरूकुल के स्नातकों को लेकर मगध के राजा के पास जाता है। वहाँ बौद्ध धर्म समर्थक राजा नंद के साथ विवाद बढ़ जाने के कारण चाणक्य को भरी सभा में अपमानित होना पड़ता है। चन्द्रगुप्त को भी वहाँ सं भागना पड़ता है।

चाणक्य को देश की चिंता होती है। वह एक ओर नंद वंश का नाश करने की प्रतिज्ञा किये होता है और दूसरी तरफ उसका लक्ष्य होता है आर्यावर्त की रक्षा। नंद की कैद में उसे मगध का आमात्य फुसलाने के लिए आता है। लेकिन चाणक्य उसे मुँह तोड़ ज्वाब देता है कि वह मगध के लिए दूत का कार्य नहीं कर सकता। चन्द्रगुप्त चाणक्य की मगध की कैद से छुड़ता है। बाहर आकर चाणक्य देश की शक्ति संगठित करने के कार्य में लग जाता है।

उधर पर्वतेश्वर को सिकंदर के आक्रमण का सामना करना होता है। पर्वतेश्वर ने मगध के राजा को शुद्र कहकर अपमानित किया था।इसलिए मगध का राजा नंद उसकी सहायता नहीं करता। चाणक्य जानता है कि अकेला पर्वतेश्वर सिंकदर का सामना नहीं कर सकता। इसलिए वह पर्वतेश्वर के पास जाता है कि वह चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में मालव और मगध की सेना को साथ लेकर सिकंदर के विरूद्ध लड़े। लेकिन पर्वतेश्वर उसकी बात नहीं मानता और उसे अपमानित करके अपने राज्य से निकाल देता है। उधर सिंहरण भी विदेशी आक्रमण की ओर से सचेत रहता है। मगध का राजा नंद विलासिता में डूबा रहता है। मगध का आमत्य राक्षस अपनी प्रेयसी के आँचल को ही क्षितिज मानकर असके तले सोया रहना चाहता है। दाण्डयानपन के तपोवन में अलका, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, सिकंदर, सिल्यूकस आदि का एक साथ मेल होता है। सिल्यूकस ने मुर्छित चन्द्रगुप्त को सिंह से बचाया होता है। तपोवन में दाण्डयापन सिकंदर के सामने चन्द्रगुप्त के सम्राट होने की भविष्यवाणी करता है।

चन्द्रगुप्त सिकंदर के निमन्त्रण पर कुछ समय के लिए यवन सेना के शिविर में रहता है। सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया उससे प्रभावित होती है। सिकंदर पर व्यंग्यात्मक चौट करने के कारण चन्द्रगुपत को वहाँ से भी भागना पड़ता हे। उधर चाणक्य की सलाह से सिंहरण चन्द्रगुप्त और नटों का रूप धारण करके पर्वतेश्वर की सेना के शिविर में जाते हैं। मगध की राजकुमारी कल्याणी भी पुरूष वेश में पर्वतेश्वर का सिकंदर के साथ युद्ध होता है। प्रकृति उसका साथ नहीं देती। सिंहरण उसकी वंक्त पर सहायता करता है। फिर भी पर्वतेश्वर की पराजय होती है। सिकंदर उसकी वीरता से प्रभावित होकर उसके साथ मैत्री कर लेता है। सिंहरण और अलका को पर्वतेश्वर के बन्दीगृह में स्थान मिलता है।

सिकंदर की नीयत मगध पर आक्रमण करने की भी होती है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त और सिंहरण उसे रोकने की योजना बनाते हैं। मालव गणराज्य के सैनिक चन्द्रगुप्त को अपना सेनापति स्वीकार कर लेते हैं। अलका पर्वतेश्वर को लोभ देती है कि वह उसके साथ विवाह कर लेगी और बदले में वह सिंहरण को मुक्त करा लेती है। अलका पर्वतेश्वर को बाध्य करती है कि वह सिकंदर के रण निमंत्रण पर न जाये।

इसी बीच मालविका व चन्द्रगुप्त की बीच प्रणय पनपता है। सिकंदर मगध पर आक्रमण करने की योजना बदल देता है। भारत से लौटते समय उसे मालव गणराज्य से लड़ना पड़ता है। चन्द्रगुप्त सिंहरण आदि सामूहिक रूप से सिकंदर का मुकाबला करते हैं। युद्ध में सिकंदर घायल होता है। सिंहरण सिकंदर को प्राणशिक्षा देता है और चन्द्रगुप्त कृतज्ञतावश सिल्यूकस को छोड़ता है। सिकंदर इन सबसे मैत्री करके लौट जाता है।

इस बीच चाणक्य राक्षस को अपनी चाल में फँसा लेता है। इसके परिणामस्वरूप मगध का राजा नंद राक्षस के विरूद्ध हो जाता है। राक्षस के मगध पहुँचाने ही उसको सुहासिनी के साथ ही बंदी बना लिया जाता है। बाद में शकटकार, सेनापति मौर्य, राक्षस, सुवासिनी आदि सभी नंद की कैद से भाग निकलते हैं। चन्द्रगुप्त मगध के सैनिकों को पराजित करता हुआ नंद की राजसभा में आता है। प्रजा के सामने उसके अत्याचारों की कहानी दोहराई जाती है। शकटकार नंद की हत्या कर देता है। चन्द्रगुप्त मगध का सम्राट बनता है। सिंहरण और अलका का विवाह हो जाता है। पर्वतेश्वर इसे अपमान समझकर मरना चाहता है। किन्तु चाणक्य उसे बचा लेता है। चाणक्य अपनी कूट नीति से पर्वतेश्वर को चन्द्रगुप्त का अनुगत बना देता है।

उधर नन्द की हत्या के बाद उसकी पुत्री कल्याणी अस्थिर हो जाती है। पर्वतेश्वर उसे बलपूर्वक अपनी बनाना चाहता है। किंतु कल्याणी उसे मार देती है। और स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है। दूसरी तरफ मालविका भी चन्द्रगुप्त का बचाने के लिए अपने प्राण दे देती है। चन्द्रगुप्त का अब एक विरोधी रहता है। आम्भीक। वह भी चाणक्य, अलका और चन्द्रगुप्त के प्रभाव से ही सही मार्ग पर आ जाता है।

चाणक्य से बदला लेकने के लिए राक्षस सिल्यूकस से मिल जाता है। सुवासिनी कैदी के रूप में कार्नेलिया के पास पहूँचा दी जाती है। सिल्यूकस फिर से भारत पर आक्रमण करता है। दोनों में युद्ध होता है। कार्नेलिया को चन्द्रगुप्त के साथ उसके पिता का युद्ध अच्छा नहीं लगता। सही अवसर पर सिंहरण आकर चन्द्रगुप्त की सहायता करता है। सिल्यूकस पराजित होता है। चाणक्य सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करवा देता हे। और स्वयं सन्यास गृहण कर लेता है।

**कथानक की समीक्षा** – प्रस्तुत नाटक में मुख्य कथा है, चन्द्रगुप्त व चाणक्य द्वारा मिलकर नंद वंश का नाश और सिकंदर के आक्रमण से भारत की रक्षा। इसमें सिल्यूकस की पराजय सिंहरण और अलका, राक्षस, सुवासिनी, आम्भीक, अलका कल्याणी कार्नेलिया व मालविका की कथाये प्रासंगिक कथाये मुख्य कथा की सहायक बनकर आई हैं। सिंहरण और अलका चन्द्रगुप्त के कार्य को ही सरल बनाते हैं। कल्याणी और मालविका चन्द्रगुप्त के लिए मर जाती हैं। राक्षस और सुवासिनी को भी चाणक्य मोहरों के रूप में चलता है। नंद की हत्या शकटयार द्वारा कर दी जाती है। इस प्रकार नाटक के अंत तक भी प्रासंगिक कथाओं का लोप हो जाता है। चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया के परिणाम के साथ कथा का अंत होता है। अतः कथा विभाजन की दृष्टि से कथानक इतना उलझ जाता है कि उसे सम्भालने के लिए लेखक ने जुदाई चमत्कार सा किया है, जैसे – शटकार का भूमि तोड़कर बाहर आना। कथा सुत्र काफी बिखरे हुए से लगते हैं बीच–बीच में आपस जुड़ते हुए अन्त तक एकमय हो जाते हैं। यही कथा संगठन की सफलता है।

कथा विकास की दृष्टि से कथानक की पाँच अवस्थाएं होती हैं। आरम्भ, उत्कर्ष, प्रात्याशा, नियताप्ति और फलागम। प्रस्तुत नाटक में इन पांचों अवस्थाओं का सफल निर्वाह हुआ है। चूँकि प्रसाद पर पाश्चात्य नाटयकला का प्रभाव भी था इसलिए उनके नाटकों में संघर्ष को बहुत विस्तार मिला है। संघर्ष के कारण ही कथानक में क्रियाशीलता बनी रहती है। शिथिलता नहीं आती।

नाटक का आरम्भ जिज्ञासा से भरा हुआ है। सिंहरण की बातों से अनेक प्रश्न मन में उठते हैं– आम्भीक यवनों से क्यों मिला है? यवन राजा कौन है? वह भारत पर आक्रमण क्यों कर रहा है? क्या आर्यवर्त की रक्षा हो सकेगी? आदि। इस दृष्टि से नाटक का आरम्भ एकदम सफल माना जाएगा। कथानक के मध्य तक घटनाएं बढ़ जाती हैं। सिकंदर दांडयान के आश्रम में विजय का आशीर्वाद लेने आता है और यही उसे दाण्डयान की भविष्यवाणी सुननी पड़ती है कि भारत का भावी सम्राट चन्द्रगुप्त होगा। यह उत्कर्ष बहुत ही नाटकीय है। चाणक्य की चालें यहाँ तक प्रत्यक्ष होने लगती हैं।

पर्वतेश्वर और सिकंदर के बीच युद्ध होता है और इस युद्ध में पर्वतेश्वर की पराजय प्रात्याशा की स्थिति मानी जा सकती है इसके बाद सिकंदर मगध पर आक्रमण करने का विचार छोड़कर लौट जाता है। चाणक्य अपनी चालाकी से पर्वतेश्वर का भी सिकंदर के विरूद्ध कर लेता हे। मालवो के साथ होने वाले युद्ध में सिकंदर बुरी तरह घायल होता है और चन्द्रगुप्त के साथ मैत्री करके जलमार्ग से लौट जाता है। यह स्थिति नियताप्ति की कही जा सकती है। उधर नंद के शासन का भी अन्त होता है। शकटकार द्वारा नंद की हत्या कर दी जाती है। पर्वतेश्वर का भी अन्त हो जाता है। मगध की एकमात्र राजकुमारी कल्याणी आत्महत्या कर लेती है। एक तरह से यह निश्चित सा हो जाता है कि चन्द्रगुप्त को ही फल की प्राप्ति होगी लेकिन तभी कथानक फिर मोड़ लेता है। चाणक्य चन्द्रगुप्त के कटु अहंकार से रूठकर चला जाता है। सिंहरण भी चन्द्रगुप्त का साथ छोड देता है।

उसी समय सिल्यूकस भारत पर आक्रमण करता है। चन्द्रगुप्त की फल प्राप्ति एक बार फिर डगमगा जाती है। ऐसा लगता है कि कहीं चन्द्रगुप्त अकेला होने के कारण अंत में आकर पिट ना जाए। किंतु युद्ध के दौरान अचानक सिंहरण और चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त को सहायता मिलती है। इस सहायता पर चन्द्रगुप्त भी चौंक जाता है युद्ध के फलस्वरूप चन्द्रगुप्त ही विजय होता है। सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ हो जाता है, यही फलागाम की अवस्था है।

कथानक में अंतर्द्वन्द्व, स्वागत कथन, हत्या व आत्महत्या के दृश्य व संघर्ष की तीव्रता पाश्चात्य तत्त्व हैं। नियताप्ति और फलागाम के बीच कथानक में नाटकीय परिवर्तन भी पाश्चात्य नाटय कला के संघर्ष तत्त्व से प्रभावित है। इस तरह कथानक में भारतीय व पाश्चात्य तत्त्वों का समन्वय मिलता है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त नाटक की कथावस्तु सुसंगठित है। कथानक का कलेवर विस्तृत होते हुए भी बिखरा नहीं है। प्रसाद ने अत्यंत कुशलता के साथ कथा सूत्रों को एक दूसरे से मिलाया है।

# 2.'चन्द्रगुप्त' नाटक में चित्रित परिस्थितियाँ

'चन्द्रगुप्त' एक ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक में चन्द्रगुप्त मौर्य के समय भारत की जैसी स्थिति थी, उसका वर्णन किया गया है। लेखन ने प्रस्तुत नाटक के माध्यम से उस युग को हमारे सामने प्रस्तुत किया है ऐतिहासिक नाटक लिखने के पीछे प्रसाद का दृष्टिकोण भी यही रहा है कि इतिहास के अप्रकाशित तथ्यों को सामने लाया जाये। यही कारण है कि उनके सामने नाटकों में युग बोलता है, इतिहास बोलता है और अतीत की परिस्थितियां अपनी कहानी अपने आप कहती सी लगती है। वैसे भी यह माना ही जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। इसके लिए जरूरी है कि साहित्य में समाज की परिस्थितियों का चित्रण भी हो। फिर मनुष्य भी तो सदैव समाज के बीच ही रहता है। अतः जहां मनुष्य है वहीं उसका समाज भी होगा, भले ही वह साहित्य हो या कला, इतिहास हो या कविता।

चन्द्रगुप्त नाटक प्रसाद की प्रसिद्ध नाट्य कृतियों में गिना जाता है। इस नाटक में जिस युग का कथानक है उस युग की राजनीतिक स्थिति का व्यापक चित्रण हुआ है। लेखन ने प्रस्तुत नाटक में जिन विविध परिस्थितियों का चित्रण किया है। उन्हें हम निम्नलिखित शीर्षकों में देख सकते हैं।

(i) **राजनैतिक स्थिति**—'चन्द्रगुप्त' नाटक में मौर्ययुगीन भारत की राजनैतिक दशा का विस्तृत चित्रण हुआ है।

(अ) **विदेशी आक्रमण** : उस समय उत्तरी भारत की सीमाओं पर यवन आक्रमणकारियों का आतंक था। विश्व की यात्रा पर निकले सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया था। यवन आक्रमणकारी सीमावर्ती राजाओं से मिलकर इस देश को जीतना चाहते थे। सिंकदर ने गंधार नरेश को अपने पक्ष में मिलाकर पंजाब पर आक्रमण किया। पंजाब के राजा पौरस ने यवन सेना का डटकर मुकाबला किया लेकिन अंततः उसे पराजित होना पड़ा। पंजाब को जीत लेने के बाद सिकंदर ने मगध पर आक्रमण का विचार किया लेकिन मगध की लक्षाधिक सेना के विषय में सुनकर यवन आक्रमणकारी डर गये। भारत से लौटते हुये सिंकदर को मालवा गणराज्य का विरोध सहना पड़ा। उस युद्ध सिकंदर घायल हुआ। वहां से सिकंदर जल मार्ग द्वारा लौट गया। फिलिप्स को उसने भारत का क्षत्रय बनाया।

सिकंदर के बाद उसी के एक सेनापति सेल्यूकस ने एक बार फिर भारत पर आक्रमण किया। इस बार सेल्यूकस का सामना चन्द्रगुप्त ने किया था। युद्ध में सेल्यूकस पराजित हुआ। उसने चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि कर ली। इस तरह उस युग में देश की उत्तरी सीमाओं पर विदेशी आक्रमणकारियों का आतंक बना रहा। नाटक में इनका कई स्थलो पर वर्णन हुआ है।

(ब) **आन्तरिक फूट**- उस समय भारत की आंतरिक स्थिति बिखरी हुई थी। उत्तराखंड के राजा आपसी राग–द्वेष के कारण बिखरे हुये थे। .गंधार, पंजाब व मगध के राजाओं में दुश्मनी थी। सिकंदर के भारत आक्रमण के समय गंधार और मगध के राजाओं ने पर्वतेश्वर का साथ नही दिया। नाटक के आरम्भ में ही सिहरण कहता है "उत्तरापथ के खण्ड राज–द्वेष से जर्जर है।" चाणक्य भी संकेत करता है "क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्यावर्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनंतर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होगे।" चाणक्य पर्वतेश्वर के पास जाकर उसे समझाता भी है कि वह मगध की सहायता लेकर सिकंदर के आक्रमण का विरोध करे। किन्तु पर्वतेश्वर उसे स्वीकार नहीं करता। मगध का राजा नंद पर्वतेश्वर की सहायता करना नहीं चाहता क्योंकि उसने नंद की शुद्र कहकर उसका अपमान किया था। और उसकी कन्या के साथ विवाह करने से इंकार कर दिया। ऐसे ही व्यक्तिगत कारणों से उत्तराखंड के राजा एक दूसरे से नाराज हुये बैठे थे। सिकंदर ने इसका फायदा उठाया और उसने इतिहास पन्नों पर सदैव के लिए राजा पौरस का दुर्भाग्य लिख दिया।

(स) **राजनीतिक कूचक्र**- उस समय गन्धार का राजकुमार आम्भीक लोभ और स्वार्थ में फंसकर सिकंदर की सहायता कर रहा होता है। वह सिकंदर का विरोध किये बिना उसे पंजाब की ओर बढ़ने देता है। नाटक के आरम्भ मे ही सिंहरण इस और संकेत कर देता है– "आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारण की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है।" इसके अनंतर एक बार फिर सिंहरण आम्भीक पर चोट करता है। यवन आक्रमणकारियों के पुष्कल स्वर्ण से पुलकित होकर आर्यावर्त की सुख–रजनी की शान्ति निद्रा में उत्तरापथ की अर्गला धीरे से खोल देने का रहस्य हैं क्योंकि राजकुमार सम्भवतः तक्षशिलाधीश वाल्हीक तक इसी रहस्य का उद्घाटन करने गये थे?"

इसी भांति राक्षस आदि अपने स्वार्थ के कारण देश के भीतर ही राजनैतिक कुचक्र रचते रहते है। मगध के कैद में

चाणक्य को प्रलोभन देकर राक्षस चाहता है कि चाणक्य तक्षशिला में मगध के दूत का कार्य करे। बाद में वही राक्षस अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सेल्यूकस से मिल जाता है। और मगध के नष्ट करने में उसकी सहायता करता है।

(द) **शासन के अत्याचार** - मगध का राजा नन्द अत्यंत विलासी होता है। वह मगध के शासन को सुरा और सुंदरी के नाम लिखकर जैसे विलासिता में डूबा रहता है। सीमा पर विदेशियों के आक्रमण की उसे कोई चिंता नहीं। वह अपनी जिंदगी की विलासिता पर कोई आक्रमण सहन नहीं करता। इसके लिए वह प्रजा पर खुलकर अत्याचार करता है। शकटार और उसके बच्चों को अंधे कुएँ में डाल देता है।, मौर्य सेनापति और उसकी पत्नी को कैद लेता है। तथा राक्षस और सुवासिनी को शादी के मंडप से उठाकर कारावास में डाल देता हैं इसी भांति चाणक्य के पिता चणक को मरवाकर वह सारे कुसुमपुर को नष्ट देता है। जनता भी उसके अत्याचारों से बहुत दुखी होती है एक ब्रह्मचारी के शब्दों में नंद के अत्याचारों का विवरण इस प्रकार है "महापद्म का जारज–पुत्र नन्द केवल शस्त्रबल और कूटनीति के द्वारा सदाचारों के शिर पर ताण्डव नृत्य कर रहा है। वह सिद्धांत विहीन, नृशंस, कभी बौद्धों का पक्षपाती, कभी वैदिक का अनुयायी बनकर दोनों में भेद नीति चलाकर बल संचय करता रहता है।

(ii) **धार्मिक स्थिति** - उस समय वैदिक धर्म का पतन हो रहा था। बौद धर्म को राज्य की और से प्रोत्साहन मिल रहा था। चाणक्य ब्राह्मण होने के कारण ही नंद के दरबार में अपमानित होता हैं मगध का राजा और उसके मंत्री सभी बौद्ध धर्म के अनुयायी होते है। ब्राह्मण लोग भी बौद्धों पर जब तक कटाक्ष करते रहते हैं और बौद्ध धर्म के मानने वाले बाह्मण को नष्ट कर देना चाहते है। राक्षस स्पष्ट कहता है। "मैं स्वयं हृदय से बौद्ध मत का समर्थक हूँ। " राष्ट्र का शुभ चिंतन केवल ब्राह्मण ही कर सकते है। एक जीव की हत्या से डरने वाले तपस्वी बौद्ध, सिर पर मड़राने वाली विपत्तियों से रक्त समुद्र की आंधियों से, आर्यावर्त की रक्षा करने में असमर्थ प्रमाणित होगे।" चाणक्य एक अन्य स्थल पर यह भी कहता है कि यवन आक्रमणकारी ब्राह्मण और बौद्ध का भेद नहीं देखेंगे, धार्मिक भेद के आधार पर एक दूसरे की सहायता न करके शत्रु को मौका देना सबसे बड़ी भूल हैं किन्तु उसकी बात कोई नहीं मानता। ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का भेद, सिकंदर के विरूद्ध पर्वतेश्वर की पराजय के रूप में, भारत को कलंकित कर देता है।

(iii) **समाजिक स्थिति** - उस समय समाज में शायद आर्थिक कठिनाइयों नहीं थी। कला और सगींत को बढ़ावा मिला हुआ था। राजा के साथ नगर की प्रजा भी कभी–कभी आमोद–प्रमोद में सम्मिलित होती थी। नृत्य और संगीत में लोगों की रूचि थी। राक्षस, सुवासिनी, मालिका आदि पात्र संगीत और नृत्य में पारंगत होते है तो चन्द्रगुप्त, कार्नेलिया आदि की रूचि संगीत व नृत्य की ओर अधिक झुकी हुई होती है। कला का उत्कर्ष समाज की आर्थिक समृद्धि का सूचक होता है। नगरवधुओं की प्रथा भी समाज में प्रचलित थी। नटों का खेल भी होता था, चाणक्य की प्रैरणा से चन्द्रगुप्त व अलका नट–नटी का रूप धरकर पर्वतेश्वर के शिविर में जाते है। समाज में सन्यासियों का आदर था। शिक्षा को राज्य की ओर से प्रोत्साहन मिला हुआ था। मगध राज्य की ओर से युवकों को गुरूकुल में शिक्षा प्राप्ति के लिए भेजा जाता था, एक नियत राशि उन खर्च की जाती थी। तभी तो नंद कहता है "किन्तु राजकोष का रूपया व्यर्थ ही स्नातको को भेजने में लगता है या इसका सदुपयोग होता है, इसका निर्णय कैसे हो?"

इतना होने के उपरान्त भी प्रजा पर राज्य का आंतक छाया रहता था। प्रजा अपने राजा के गलत कार्यो की भी आलोचना नहीं कर सकती थी; उसके लिए भी प्रजा को दण्ड भोगना पड़ता था। आश्रम व्यवस्था का प्रचलन था। चाणक्य चन्द्रगुप्त के पिता को वानप्रस्थ आश्रम में दीक्षा लेने की बात कहता है। चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाने के बाद वह स्वयं भी तपस्वी हो जाता है।

पतिव्रता की धारणा उस समय भी स्त्रियों के मन में बैठी हुई थी। सुवासिनी स्वयं का राक्षस की घरोहर समझाते हुये नंद की विलासिता का उपकरण बनने से मना कर देती हैं प्रस्तुत नाटक के सभी स्त्री पात्रों में यह एक निष्ठा देखी जाती है। प्रेम विवाह का भी प्रचलन था– सिंहरण अलका और चन्द्रगुप्त कार्नेलिया और राक्षस सुवासिनी प्रेम विवाह ही करते है।

वर्ग व्यवस्था और जाति व्यवस्था विद्यमान थी। ब्राह्मण केवल विद्या–दान ही करते थे तथा देश की रक्षा का भार क्षात्रियों पर था शूद्रों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। ऊंचे वर्ग में विलासिता व्याप्त थी।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में प्रसाद ने उस युग के सभी पक्षों को उभारने का प्रयास किया है। एक नाटक रचना में युग–चित्रण जिस सीमा तक होना चाहिये, प्रसाद ने उसका निर्वाह किया हैं हर घटना के साथ परिस्थतियां जुड़ी हुई है; कोई भी घटना शून्य से टपकी हुई नहीं लगती। घटनाओं और परिस्थितियों में विरोधाभास कंही भी नहीं है।

**चद्रगुप्त नाटक की अभिनेयता-** प्रसाद के नाटकों की अभिनेयता बहुत अधिक विवादास्पद है। आलोचकों के अनुसार प्रसाद के नाटकों का रगमंच पर अभिनेय नहीं किया जा सकता। प्रसाद के नाटकों का अभिनय करने के लिए जैसे रंगमंच होना जरूरी है वे हमारे देश में नहीं है। प्रसाद ने रंगमंच को ध्यान में रखकर नाटक नहीं लिखे हैं। प्रसाद के नाटक अपेक्षाकृत लम्बे हैं प्रसाद के नाटकों की भाषा क्लिष्ट होती हैं जिसे कि सामान्य दर्शक नहीं समझ सकते। ऐसे ही कई आरोप प्रसाद के नाटकों पर लगाये जाते है।

**यहाँ एक बात विचारणीय है**– नाटक के अनुकूल रंगमंच का निर्माण किया जाये या रंगमंच के अनुसार नाटक लिखे जाय? सामान्यतः तो नाटक पहले लिखे गये होते है और रंगमंच का निर्माण बाद में होता है। अतः रंगमंच की कमजोरी का दोष नाटककार पर नहीं लगाना चाहिए। हमारा देश समृद्ध नहीं है।, यहाँ की जनता का मानस नाटको की दृष्टि से परिपक्व नहीं हैं इसीलिए यहा उत्तम कोटि के रंगमंच भी नहीं बने है। अब यदि किसी श्रेष्ठ नाटक का अभिनय करने के लिए श्रेष्ठ रंगमंच न मिले तो उसमें नाटककार का क्या दोष? यदि कोई यह कहे कि कुछ भी हो रंगमंच के अनुसार ही नाटक लिखे जाने चाहिऐ, तब तो नाटक साहित्य की दशा बहुत शोचनीय हो गई होती। प्रसाद के युग में 'नौटकी', 'रास' आदि प्रचलित थे किसी भी स्थान पर दो तख्ते डालकर वे लोग अपना काम चला लेते थें। उनमें व्यर्थ की उछल–कूद ओर सस्ती किस्म का मनोरंजन अधिक होता था। यदि प्रसाद भी तख्तों पर दिखाये जाने वाले नाटक ही लिखते तो नाटक की जो दशा होती उसके विषय में सोचना भी अच्छा नहीं लगता। यदि प्रसाद के नाटकों का अभिनय विदेशों के रंगमंच पर किया जाये तो कही कोई समस्या नहीं आयेगी। विदेशों में रंगमंच इतने समृद्ध है कि वहाँ हवाईजहाज की उड़ान, चलती रेलगाड़ी आदि के दृश्य भी रंगमंच पर दिखाये जा सकते है। अतः यह स्पष्ट है कि प्रसाद के नाटको पर अभिनेयता का दोष लगाने वालों की बात में कितना दम है।

इस सम्बंध में प्रसाद का दृष्टिकोण भी जानलेवा जरूरी है। प्रसाद ने लिखा था कि वे फारसी कम्पनियों और नाटकों वालों के लिए नाटक  नही लिखते जो तांगे खोमचे वालों को दर्शक के रूप में जुटाकर तमाशा दिखला देते है। निश्चय ही उनका उद्धेश्य नाटकों के माध्यम से भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के गौरवशाली पक्षों को प्रकाश में लाना था। फिर, प्रसाद पर विदेशी नाटय कला का प्रभाव भी खूब पड़ा। इसीलिये उनके नाटकों के आत्महत्या, बध आदि के दृश्य आ गये है। संक्षेप मे समृद्ध रंगमंच के अभाववश यदि अच्छे नाटकों का अभियन न किया जा सके तो उसके लिए नाटककार पर दोष लगाना व्यर्थ है।

## 3-'चन्द्रगुप्त' नाटक की अभिनेयता

चन्द्रगुप्त प्रसाद का प्रसिद्ध नाटक गिना जाता है। बनारस में इस नाटक का सफल अभिनय किया जा चुका हैं प्रस्तुत नाटक की अभिनेयता पर निम्नलिखित शीर्षकों के सहारे विचार किया जा सकता है–

(i) **दृश्य योजना**- चन्द्रगुप्त नाटक के चार अंक हैं और चार अंकों में कुल 44 दृश्य हैं प्रथम अंक में ग्यारह, दूसरे अंक में दस, तीसरे अंक में नौ और चौथे अंक में चौदह दृश्य हैं इतने अधिक दृश्यों की योजना साधारण बात नहीं हैं कई दृश्य तो एक–दम अलग और भिन्न प्रकार है जिनकी योजना के लिए बीच में पर्याप्त समय जरूरी है। किन्तु दृश्य ऐसे भी नहीं हैं जिनकी योजना असम्भव हो। पहले अंक को ही लीजिये इसमें प्रथम दृश्य गुरूकुल का है। दूसरा दृश्य उद्यान का, तीसरा दृश्य एक मग्न कुटीर का चौथा उपवन का। इन चार दृश्यों की योजना सुगमता के साथ की जा सकती हैं पांचवा दृश्य मगध की राजसभा का है। जिसके लिए थोड़ा परिवर्तन जरूरी होगा। छठा दृश्य फिर सिन्धु नदी के किनारे का है। सातवां दृश्य बन्दी ग्रह का, आठवां प्रकोष्ठ का, नवां राजसभा का, दसवा कानन पथ का और ग्यारहवा दाण्डयायन आश्रम का। इनमें छः सात, आठ व नवें दृश्य की योजना लगभग एक जैसी ही हैं अतः प्रथम अंक के लिए दो पर्दे पर्याप्त है।

दूसरे अंक में दस दृश्य हैं–पहला दृश्य सिन्धु का किनारा, दूसरा झेलम का तट, ये दोनों दृश्य एक जैसे ही हैं तीसरा दृश्य युद्ध भूमि का हैं जिसके लिए विशेष परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। चौथे दृश्य में एक उद्यान दिखाया जाता हैं यहा तक की दृश्य योजना भी सुगम है पांचवा दृश्य बन्दीग्रह, का छठा परिषद का, सातवां महल का। ये तीनों दृश्य एक जैसे ही है। आठवां दृश्य फिर रावी के तट का है, नवां दृश्य भी वैसे ही है और नवे दृश्य में दुर्ग दिखाया जाता है। स्पष्ट है कि दूसरा अंक भी दृश्य योजना की दृष्टि से आपत्तिजनक नहीं है।

तीसरे अंक में नौ दृश्य है। प्रथम तीन दृश्य क्रमशः विपाशा और रावी के तट के हैं। चौथा दृश्य मार्ग का है इन चारों दृश्यों की एक साथ योजना की जा सकती हैं पांचवा दृश्य नंद की रंगशाला है। छठा कुसुमपुर के प्रान्त मार्ग का है। सातवां महल के प्रकोष्ठ का, आठवां पथ का और नवां फिर नंद की रंगशल्य का। अतः तीसरा अंक भी दृश्य योजना के लिए सामान्य है।

चौथे अंक में चौदह दृश्य हैं। पहला उपवन का, दूसरा पद का , तीसरा परिषद गृह का चौथा प्रकोष्ठ का, पांचवा महल का एक भाग, छठा सिन्धु तट का, सातवां महल का, आठवां पथ का, नवां ग्रीक शिविर का, दसवां युद्ध भूमि का, ग्याहरवां शिविर का, बारहवा पथ का, तेरहवा तपोवन का, चौदहवां राजसभा का, दृश्य है।इस अंक की दृश्य योजना में कुछ अधिक परिवर्तन है उसके लिए अधिक स्फूर्ति, दक्षता और सूझबूझ की आवश्यकता है।

कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक की दृश्य योजना असम्भव नहीं। चार–पांच प्रकार के पर्दो से काम चलाया जा सकता हैं यदि दृश्यों की संख्या किसी को अधिक लगे तो समझदारी के साथ उनका सम्पादन करके संख्या को घटाया जा सकता है। यही बात नाटक के दीर्घ कलेवर के सम्बंध में भी कही जा सकती है।

(i) **पात्र**- नाटक की सफलता पात्र योजना पर भी निर्भर करती है। अभिनेयता दृष्टि से पात्र यथा सम्भव कम होने चाहिए। क्योंकि अधिक पात्रों को दर्शक याद नहीं रख पाते हैं। इसके अतिरिक्त पार्टी व्यवस्थापक के लिए अधिक पात्रों की व्यवस्था करना कठिन एवं महंगा पड़ता है।

'चन्द्रगुप्त में कुल 21 पात्र है।– 18 पुरूष पात्र और 8 स्त्री पात्र है यह संख्या निश्चय ही अधिक है किन्तु यदि ध्यान से देखा जाये तो मुख्य रूप से चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिहंरण, पर्वतेश्वर, सिकंदर, सिल्यूकस, अलका, कार्नेलिया आदि 8. 10 पात्र ही अधिक महत्त्व रखते है। शेष पात्रों का काम कम है और वे रंगमंच पर भी कम आते है। अतः पात्रों की अधिकता से इस नाटक में तो कोई विशेष व्यवधान नही पड़ता फिर भी पात्रों की संख्या कम ही होनी चाहिये।

इस नाटक के पात्र प्रभावशाली व्यक्तित्व के है चाणक्य के प्रति दर्शको में हर बार एक नया कोतूहल जागृत होता है। चन्द्रगुप्त तो वैसे भी बार–बार आकर प्रभाव शाली कार्य करता है। सिंहरण नाटक के आरम्भ में ही अपनी छाप जमा जाता है। युद्ध वाले दृश्य में पर्वतेश्वर भी दर्शको का दिल जीत लेता है, सिंकदर भारत से लौटते समय अपने हृदय की विशालता के कारण एक अमित याद छोड़ जाता है। स्त्री पात्रों में प्रायः सभी के व्यक्तित्व प्रभावशाली है। अतः पात्रों की तरफ से दर्शकों के मन में उकताहट आने की कोई सम्भावना नहीं रहती।

(ii) **संवाद**- नाटक का आनंद दर्शकगण घटनाओं को देखकर और पात्रों की बातें सुनकर प्राप्त करते है। नाटक में दर्शक जितनी बात देखता हैं उतनी ही बात सुनता भी है। अतः रंगमंच पर संवादों का महत्त्व भी बढ़ जाता है। संवाद छोटे–छोटे सरल, नाटकीय और मुहावरेदार हो तो बढ़िया है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के सवादों का पक्ष थोड़ा शिथिल कहा जा सकता है। इसमे 16 के लगभाग स्वगत कथन है और स्वगत कथन प्रायः उकताने वाले होते है। कहीं–कहीं वार्तालाप भी लम्बे हो गये है। नाटक के शुरू वाले संवाद अच्छे हैं उनमें प्रभावामकता गति, सरसता, चुस्ती आदि भी है। कई स्थलों पर संवादों की भाषा कठिन है और कुछ संवाद काव्यात्मद भाषा में भी हैं फिर भी कुछ सरल, प्रतिकात्मक और व्यग्यात्मक संवादों का कारण नाटक आकर्षण बना रहता है। संवादों की क्लिष्टता तो प्रयास करके दूर की जा सकती है तथा लम्बे संवाद भी छोटे किया जा सकते है। इस तरह थोड़ा सा प्रयत्न करके चन्द्रगुप्त वाटक के संवाद भी अभिनय की दृष्टि से सफल बनाये जा सकते है।

(iii) **रस**- 'चन्द्रगुप्त' नाटक में वीर रस का प्राधान्य है नाटक के आरम्भ में ही वीर रस के छीटें लगना शुरू हो जाते हैं युद्ध के स्थल सभी वीर रस से पूर्ण हैं इसके अतिरिक्त श्रृंगार रस का भी परिपाक हुआ है। सभी प्रणय पक्षो में श्रृगार रस की निष्पति हुई हैं नाटक के गीतों में भी श्रृंगार और वीर रस का परिपाक हुआ है। अलका और चन्द्रगुप्त नट–नटी के वेश में जब पर्वतेश्वर के पास जाते हैं उस समय हास्य रस की योजना भी हुई है। इस तरह रस–योजना की दृष्टि से भी चन्द्रगुप्त सफल नाटक है। मुख्य रस इसमें वीर ही है। श्रृंगार वीर का सहकारी बनकर आया है।

(iv) **अभिनय योजना**- अभिनय, भारतीय शास्त्रों के अनुसार, चार प्रकार का होता है– आहार्य आंगिक, वाचिक और सात्विक

**अ. आहार्य**- इसमें पात्रों की वेश–भूषा आती है। प्रस्तुत नाटक में वेशभषा के कोई संकेत नहीं है। इस प्रसंग में निर्देशक को स्वयं निर्णय लेना पड़ेगा।

**आ. आगिक**- युद्ध आदि के दृश्यों व नृत्य में इस प्रकार का अभिनय होता है। 'चन्द्रगुप्त' में कई स्थलों पर इसके संकेत होते है। सिकदर–पुरू का युद्ध, मालवों के विरूद्ध सिकंदर का युद्ध, चन्द्रगुप्त व सिल्यूकस का युद्ध आदि युद्धों के नृत्य में भी इसका उदाहरण देखा जा सकता है।

**इ. वाचिक**- मगध की कैद में चाणक्य, सिकंदर से पराजिक पुरू व सिल्यूकस–कार्नेलिया के अन्तिम संवाद से इसके उदाहरण मिलते है।

**ई. सात्त्विक** – रूदन, हास्य, करूणा, उन्माद आदि में सात्विक अभिनय के उदाहरण देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार अभिनय के चारों और अंगों की योजना प्रस्तुत नाटक में मिलती है।

अन्तः में हम यह कह सकते हैं कि 'चन्द्रगुप्त' नाटक का अभिनय सफलतापूर्वक किया जा सकता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक निश्चय ही बड़ा है। दृश्य भी अधिक है। पात्रों की संख्या भी अधिक है। किंतु ये सब बाधायें तो सफल सम्पादन द्वारा दूर की जा सकती है यदि रंगमंच विकसित हो तो यह नाटक भी निश्चित ही अभिनेय है यह बात प्रसाद के सभी नाटकों पर चरितार्थ की जा सकती है। फिर प्रसाद ने जिस में नाटक लिखे थे। उसके मुकाबले आज तो रंगमंच और अधिक विकसित हो चुके हैं इस वैज्ञानिक युग में किसी भी प्रकार के दृश्य को रंगमंच पर दर्शा देना मुश्किल नहीं।

# 4-'चन्द्रगुप्त' नाटक की गीत-योजना

नाटककार प्रसाद मूलतः कवि थे। उनके कविमन की भावुकता एवं तरलता उनकी किसी भी साहित्यिक रचना की प्रसाद दिए बिना नहीं रही हैं। यही कारण है कि उनका गद्य भी काव्यमय हो गया है।

नाटकों में तो गीतों का प्रयोग संस्कृत साहित्य में भी होता था। हिन्दी नाटकों में गीतों की प्रवृत्ति संस्कृत से ही आई है। पहले तो नाटक में गीतों का उद्देश्य दर्शकों को प्रभावित करना व उनका मनोरंजन करना होता था। किंतु बाद में गीत मनोविज्ञान परक होने लगे। गीतों का उद्देश्य पात्रों का चरित्र विश्लेषण व उनके आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति हो गया।

प्रसाद के नाटकों में गीत निश्चय ही मनोविज्ञान परक हैं। उनके प्रारम्भिक नाटकों में तो गीत अपेक्षाकृत कम रहे है किंतु बाद के नाटकों में गीत बढ़ते गए। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में 13 गीत हैं– पहले अंक में दो, दूसरे में तीन, तीसरे में एक और चौथे में छः गीत हैं। सभी गीत भाव–भाषा की दृष्टि से उत्कृष्ठ हैं। परिस्थितयों की दृष्टि से इस नाटक के गीतों को पांच भागों में बांटा जा सकता है–

(i) एक या अधिक लोगों के समक्ष गाये गए गीत–

नाटक में कुछ गीत ऐसे हैं जो किसी एक से अधिक व्यक्तियों के आग्रह पर गाये गए हैं, यथा प्रथम अंक में सुवासिनी नंद के उद्यान मे कई लोगों के समक्ष गाती है।

**"तुम कनक किरण के अन्तराल में**
**लुक-छिप कर चलते हो क्यों ?**
**नत मस्तक गर्व वहन करते**
**यौवन के घन, रस कन ठरते।"**

इसी अंक में राक्षस भी गीत गाता है। जिसके श्रोता मगध के कई नागरिक भी होते हैं ऐसे गीतों की संख्या इस नाटक में छः है। अन्य गीत मालविका व सुवासिनी गाती है– तीन गीत मालविका चन्द्रगुप्त के आग्रह पर गाती है। और एक गीत सुवासिनी कार्नेलिया के आग्रह पर गाती है।

(ii) एकांत गीत–

ऐसे गीत नाटक के पात्रों ने केवल एकांत में गाए हैं अपने ही मन की प्रेरणा से व स्वयं की ही तुष्टि के लिए। ऐस चार गीत हैं। जिन्हें कार्नेलिया, अलका, कल्याणी व मालविका गाती है। इन गीतों में गाने वाले पात्रों की मानसिक स्थिति व्यक्त हुई है द्वितीय अंक में कार्नेलिया का गाया गीत–

**"अरुण यह मधुमय देश हमारा !**
**जहां पहुंच जजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।**
**सरस तामरस गर्भ विभा पर-नाच रही तरूशिखा मनोहर**
**छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुकुंम सारा।**
**लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे।**
**उड़ते खग जिस ओर मुंह किये समझ नीड निज प्यारा।"**

(iii) नेपथ्य गीत–

इस कोटि का केवल एक गीत है। ऐसे गीत का उद्देश्य भावों को उत्तेजित करना है। 'कैसी कड़ी रूप की ज्वाला' गीता इसी कोटि का है।

(iv) प्रयाण गीत–

इस प्रकार का भी केवल एक गीत है। नाटक में चौथे अंक में अलका इस गीत को गाती हैं। इसका लक्ष्य जन मानस में राष्ट्रीय भावना जागृत करना है।

"हिमाद्रि तुंग श्रृगं से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती–

स्वयं प्रभा समुज्जवला
स्वतंत्रता पुकारती–
अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पथं है– बढ़े चलों, बढ़े चलों।।"

उक्त गीत परिस्थित व अवसर के सर्वथा अनुकूल है।

(v) एक अन्य गीत अलका द्वारा पर्ववेश्वर के समक्ष गाया जाता है। जो एक तरह से एंकात गीत ही है जिस का लक्ष्य परिस्थित व भावना के रंग को गहरा करना है।

विषय की दृष्टि से–

इस दृष्टि से प्रस्तुत नाटक के गीतों को दो भागों में बांटा जा सकता है– सौन्दर्य–प्रेम सम्बंधी तथा राष्ट्र सम्बन्धी

सौन्दर्य–प्रेम सम्बंधी–

लगभग ग्यारह गीत सौन्दर्य और प्रेम सम्बंधी ही हैं, यथा–

**नेपथ्य गीत-'कैसी कड़ी रूप की ज्वाला'**
**राक्षस द्वारा गाया गया- 'निकल मत बाहर दुर्बल आह'**
**सुवासिनी के गीत - 'तुम कनक किरण के अंतराल में'**
**'आज इस यौवन के माधवी कुंज में'**
**'सखे वह प्रेममयी रजनी'**
**अलका द्वारा गाया गया- 'प्रथम यौवन की मदिरा से मत'**
**'बिखरी किरण अलस व्याकुल हो'**
**मालविका के गीत- 'मधुप कब एक कली का है'**
**'बज रही वंशी आठों याम की'**
**'आ मेरी जीवन की स्मृति'**
**कल्याणी- 'सुधा सीकर से नहला दो'**

इसके सभी गीतों में मन की कोमक भावनाएं भरी हुई हैं। सुवासिनी का 'हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो मौन बने रहते हो क्यों? गीत अत्यन्त प्रभावशाली व रोमाचंक है प्रेम में मिलने वाली आशा–निराशा, संयोग–वियोग, उल्लास–उमंग आदि को प्रसाद ने अत्यन्त रमणीय ढ़ग से व्यक्त किया है। रूप–सुधा के हर–प्यालों में डूबता मन, अनन्त अनुराग का मनोहरी राग, पुष्प क्यारी के कुचले जाने की आशंका, प्रेममय रजनी में चाँद की ठिठकन आदि की कई स्वर्गिक अनुभूतियां इन गीतों में व्यक्त हैं

**देश भक्ति के गीत-**

दो गीत देश भक्ति के हैं। उनमें उनमें से एक गीत कार्नेलिया गाती हैं अरूण यह मधुमय देश हमारा ? इस गीत मे भारतीय संस्कृति की उस गरिमा का चित्रण है जिससे कार्नेलिया प्रभावित होती है। नाटक मे तो ऐसा लगता है मानों कार्नेलिया के मन में भारत के प्रति जो भावना है वही गीत में ढल कर प्रत्यक्ष हो गई है।

दूसरा गीत अलका गीत है। सिल्यूक्स का मुकाबला करने के लिए वह जनता में राष्ट्रीय चेतना जागृत करती है। यह गीत अत्यंत भावपूर्ण व प्रेरणादायक है– 'हिमादि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती'।

क्या ये गीत अभिनव में बाधक हैं ?

कुछ आलोचकों का मत है कि प्रसाद ने गीत नाटक के लिए नहीं लिखे प्रत्युत स्वतंत्र रूप से लिखे हुए लिखे गीतों को नाटक में जड़ दिया है। इसके जवाब में यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार से जड़ना भी गलत नहीं यदि वह पात्र, स्थान व परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल बैठ जाय। प्रसाद का कोई भी गीत, इस नाटक में, अप्रासंगिक नहीं लगता।

दूसरा आरोप यह लगाया जाता है कि गीतों के कारण अभिनय की हानि होती क्योंकि काफी समय तो गीतों में ही निकल जाता

है, जैसे–चौथे अंक में मालविका एक साथ तीन गीत गाती है जिनके अभिनय में चालीस मिनट लग सकते हैं। किंतु आलोचक यहां भूल जाते हैं। कि समय व अभिनय सम्बंधी दिक्कतें निर्देशक के सोचने की बात है। वह आवश्यक समझे तो गीतों में कांट–छांट भी कर सकता है।

अतः गीतों से प्रसाद के नाटक के माधुर्य कोमलता व रसात्मकता ही आई हैं उनकी गीत–योजना परिस्थिति, पात्र, स्थान, मनोदशा आदि के अर्वथा अनुकूल है।

# 5-'चन्द्रगुप्त' नाटक में ऐतिहासिकता और कल्पना का समन्वय

चन्द्रगुप्त प्रसाद का सर्वोत्तम नाटक है। नाटककार का दृष्टिकोण इतिहास क्षेत्र में सर्वत्र ही खोजपूर्ण रहा है और उन्हाने मौर्यवंश और तत्कालीन भारत–दशा के ऊपर पड़े हुए जन–श्रुतियों एवं अज्ञानेता के आवरण को हटाकर प्रकाश में लाना चाहा है कहीं भी उन्होनें ऐतिहासिक घटना अथवा सत्य को लोक प्रसिद्धि से पोषित अथवा ग्रन्थित करके समन्वय का झूठा प्रयास नहीं किया। विशेषता यह है कि ऐतिहासिकता निभाई है। समाज, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता आदि स्तम्भों का दिव्यदर्शन है। पात्रों का चरित्र का विकास ऐतिहासिकता के आधार पर ही हुआ है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक के पात्र अधिकांश में ऐतिहासिक ही है। भारतीय पात्रों में नंद, राक्षस, वररूचि, शकटार चन्द्रगुप्त चाणक्य, आम्भीक और पर्ववेश्वर तथा यवन पात्रों में सिकंदर, सिल्यूकस, फिलिप्स, मेगाास्थनीज ये सभी इतिहास के प्रसिद्ध नाम हैं। स्त्री पात्रों में नंद और सिल्यूकस की एक–एक कन्या की चर्चा भी इतिहास में मिलती है, प्रसाद जी ने उन्हीं का कल्याणी और कार्नेलिया नाम रखा है। घटनाएं तो अधिकांश में ऐतिहासिक हैं ही। विवादग्रस्त विषयों पर प्रसाद जी ने स्वयं भूमिका में लिख दिया हैं। उनकी भूमिका में वर्णित उल्लेखनीय तत्व निम्न हैं।–

1. भारत में इससे 800 वर्ष पूर्व एक क्रांति हुई थी, जिसमें जिन जातियों को अपने कुल की क्रमागत वशं मर्यादा विस्मृत हो गई थी वे याज्ञिक पवित्र ब्राह्माणों के अर्बुगिरि वाले महान यज्ञ से सुसंस्कृत होकर चार जातियों मे विभक्त हो गई। सभी का नाम 'अग्निकुल' प्रसिद्ध हुआ। धीरे–धीरे अपनी कर्तव्य–निष्ठा और वीरता पूर्ण पराक्रमों से इनकी गणना श्रेष्ठा और वीरतापूर्ण पराक्रमों से इनकी गणना श्रेष्ठ क्षत्रियवंश में होने लगी। इस कुल की अनेक शाखाएँ है। पर मौर्यशाखा लोकवियुक्त है। इनकी प्रमुख राजधानी पिप्पली कानन थी।
2. नाटककार विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त को प्रायः 'वृषल' कहकर सम्बोधित किया है। इससे तत्कालीन हिन्दी काल की मनोवृत्ति ही ध्वनित होती है। वस्तुतः 'वृषल' शब्द में तो उनका क्षचियत्व और भी प्रमाणित होता है——जो क्षत्रिय वैदिक क्रियाओं से उदासीन हो जाते थे, वे धार्मिक दृष्टि से वृषलत्व को प्राप्त होते थे। वस्तुतः वे जाति के क्षत्रिय थे।
3. ग्रीक इतिहास–लेखक भी सहमत है कि चन्द्रगुप्त को राजक्रोध के कारण पाटलिपुत्र छोड़ना पड़ा था।
4. पुरू के युद्ध मे जगद्विजयी सिकंदर को कहना पड़ा–आज हमें बराबरी का पराक्रमी शत्रु मिला। 'इस युद्ध के सिकदर का अश्व 'बूका फेलस' हत हुआ और स्वयं सिकंदर भी घायल हुआ।
5. इतिहास से पता चलता है कि कि सिल्यूकस से चन्द्रगुप्त का युद्ध सिन्धु तट पर हुआ था।
6. बौद्धधर्म तथा पुराणों की कथाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि चाणक्य के वेद धर्मवलम्बी, कूट राजनीतिज्ञ, प्रखर प्रतिभाव हठी और चन्द्रगुप्त की उन्नति का मूल कारण है।

इस प्रकार उपरोक्त ऐतिहासिक उल्लेखों को आधार मानकर तथा अपनी साहित्यिक प्रतिमा से उनमें श्रृखंला आरोपित करक प्रसाद जी ने प्रस्तुत नाटक को जो स्वरूप प्रदान किया है उसमें चाहे नाटककार ने कल्पना का कितना ही उपयोग किया हो, पर इसकी ऐतिहासिकता निर्विवाद है।

### इतिहास सम्मत घटनाएँ-

नाटक के अधिकांश पात्र ऐतिहासिक हैं, ऐतिहासिक तथ्य सर्वथा इतिहास सम्मत हैं–चन्द्रगुप्त क्षत्रिय है। इसके लिए प्रसाद जी ने भूमिका में विष्णु पुराण का उदाहरण दिया है। 'वृषल' कहने का तात्पर्य केवल यही है कि उसके वशं मे आर्य–सस्कारों की तुष्टि एवं सम्वृद्धि नहीं हो सकी इतिहास कारों ने भी उसे क्षात्रिय प्रमाणित किया है और पिप्लीकानन का मौर्य राजकुमार बतलाता है।

(i) नाटक में वर्णित चन्द्रगुप्त की सशक्त क्षमताओं की देखकर उसका क्षत्रियत्व स्वयं सिद्ध होता है।

(ii) चन्द्रगुप्त सिकंदर से उसी के शिविर में मिला और वहीं यवन राजनीति की उसने समझा है तथा सिकंदर के युद्ध होने पर वह ग्रीक शिविर से पराक्रम और कौशल पूर्वक भागा है। यह भी इतिहासानुकूल ही हैं।

(iii) आम्भीक ने पुरू के जन्मजात वैर के कारण ही उसे नीचा दिखाने के लिए सिकंदर से अभिसन्धि की है। साथ ही सिकदर

के साथ हुए संघर्ष में पुरू पराजित भी हुआ है। तत्पश्चात् वचनबद्ध होकर उसका मित्र भी बना है– यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है।

(iv) जगंल में चन्द्रगुप्त का व्याघ्र से सामना दिखाना ऐतिहासिक घटना है।

(v) चाणक्य की कूटनीति तथा चन्द्रगुप्त के भुजबल से नंद वंश का समूल उन्मूलन इतिहास के अनुसार ही नाटक में दिखाया गया है। इतिहास के अनुसार इस नाटक में भी पर्वतेश्वर (पुरु) ने चन्द्रगुप्त की सहायता की है। उसके दक्षिण विजय के अभियान का संकेत भी नाटक में मिलता है।

(vi) नाटक का चतुर्थ अकं उसी ऐतिहासिक घटना की पुष्टि के लिए है जिसमें सिल्यूकस का भारत पर आक्रमण तथा चन्द्रगुप्त का उससे संघर्ष करते हुए उसे पराजित करना तथा उसकी पुत्री का चन्द्रगुप्त से विवाह होना सिद्ध होता है।

### लोक-भुत घटनांए-

नाटक में उन घटनाओं के रेखाचित्र में रंग भर गया है जो इतिहास में तो कहीं–कहीं ही, पर संस्कृत साहित्य और लोक विश्रुति में प्रचलित है। वे घटनाएं निम्नलिखित हैं।

(i) नंद के द्वारा चाणक्य की शिखा खिंचवाकर अपमानित किया जाना।

(ii) नंद की हत्या में अकेले चाणक्य का ही हाथ न होना और व्यक्तियों का भी उसमें हाथ होना।

(iii) चाणक्य और चन्द्रगुप्त तक्षशिला में मिलने से पूर्व भी परिचित थे पर इसका कोई भी संकेत नाटक में नहीं है।

(iv) नंद की पुत्री और चन्द्रगुप्त का प्रणय सम्बंध था, जो विवाह में परिणत हुआ, पर नाटक में इसे नहीं दिखाया गया।

(v) चाणक्य की जन्मभूमि पाटलिपुत्र ही बताई गई है।

### परिवर्तित घटनाएँ-

प्रसाद जी एक बड़े कुशल नाटककार हैं। अतः प्रसाद जी ने भी ऐतिहासिक घटनाओं को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही संयोजित किया है प्रसाद जी ने कल्पना के मनोवांछित योग से कथानक को राष्ट्रीयता से परिपुष्ट बनाया है।

(i) चन्द्रगुप्त मगध सेनापति के रूप में चित्रित है। पर्वतेश्वर के द्वारा उसके क्षत्रियत्व में शंका उठाई गई है और चाणक्य ने पर्वतेश्वर के समक्ष चन्द्रगुप्त का क्षत्रित्व सिद्ध किया है।

(ii) नाटक में चन्द्रगुप्त और चाणक्य को वहां पूर्व परिचित न दिखाकर तक्षशिला विद्यालय में भेंट कराई है चाणक्य को वहां पहले स्नातक, फ़िर आर्चाय के रूप में चित्रित किया है और चन्द्रगुप्त को मगध से शिक्षा–प्राप्ति के लिए तक्षशिला गया हुआ बताया है।

(iii) मालव सेना का संचालन सिंहरण द्वारा कराके प्रसाद जी ने इतिहास के मौन को मुखरित किया है और कल्पना द्वारा ही उससे सम्बधित घटनाओं की सृष्टि की है।

(iv) इतिहास नन्द के बधिक को व्यक्तिगत रूप से बताने में असमर्थ है। पर प्रसाद ने शकटार द्वारा उसका वध करके घटना की तर्क संगति बैठाई है।

(v) चाणक्य द्वारा सिकंदर के परिवर्तित होने पर सम्मानपूर्वक विदा किए जाने में प्रसाद जी ने इतिहास के तथ्यों को नए रूप में प्रकाशित करने की प्रवृति दिखाई है।

(vi) पुरु, पौरस के स्थान पर पर्वतेश्वर नाम देने में प्रसाद जी की सांस्कृतिक रुचि की झलक मिलती है।

(vii) इतिहास आम्भीक को अपनी करनी में दुखी होते हुए नहीं बतलाता, पर प्रसाद ने उसे पश्चाताप की अग्नि में शुद्ध करके देश भक्ति के पक्ष में खड़ा किया है

### काल्पनिक घटनाएँ-

प्रसाद जी ने कुछ घटनाएं तथा पात्रों का काल्पनिक रूप पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। घटनाओं को नवीन घटनाओं के नवीन रूप देने एवं प्राचीन पात्रों के नए ढ़ग से तथा नवीन पात्रों के सजृन प्रस्तुत किया है।

प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त नाटक के कुछ नवीन घटनाओं एवं नवीन पात्रों की सृष्टि भी की है। ये काल्पनिक घटनाए और पात्र निम्न है।

(i) तक्षशिला की राजकुमारी अलका एवं मालव कुमार सिंहरण का प्रेम–प्रसंग काल्पनिक है, फिर भी नाम और उनक सम्बन्धित घटनाओं से तत्कालीनता की गंध लाने लगी है।

(ii) चन्द्रगुप्त और कल्याणी का प्रणय–प्रसंग तथा कल्याणी का आत्महत्या करके मरना। चन्द्रगुप्त और मालविका की प्रेमिका स्निग्धता तथा मालविका द्वारा अपना जीवन चन्द्रगुप्त के लिए उत्सर्ग करना।

(iii) चन्द्रगुप्त की हार्दिकता के साथ सुवासिनी के प्रति उनकी उनकी कोमल भावनाओं के प्रसंग।

(v) राक्षस और चाणक्य का संघर्ष। इसी प्रसंग में चाणक्य द्वारा जाली पत्र लिखकर राक्षस को पराभूत करके हुए सुवासिनी को विस्मय–विमुग्ध करना नवीन ही है। हा मुद्राराक्षस में राक्षस की मुद्रा से सम्बन्धित कुछ तथ्य अवश्य मिले जाते हैं।

(vi) चाणक्य के द्वारा सुवासिनी को कार्नेलिया के समीप भेजना।

(vii) चन्द्रगुप्त के साथ चाणक्य का कृत्रिम कलह दिखाना आदि घटनाएं पूर्णतः नवीन है।

**पूर्ण रूपेण ऐतिहासिक पात्र**– चन्द्रगुप्त, चाणक्य, नन्द, राक्षस, वरूचि, शकटार, पुरू या पर्वतेश्वर, सिकंदर, सिल्यूकस, दाण्डायन।

**अर्ध ऐतिहासिक पात्र**– कार्नेलिया और सुवासिनी

**काल्पनिक पात्र**– अलका, मालविका, सिंहरण, चाणक्य आदि

इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त नाटक के कथानक और चरित्र सृष्टि द्वारा इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय किया है। प्रसाद जी की अनुशीलनगत समन्वयात्मक दृष्टि ने इतिहास की विस्मृतियों एवं अंधकार युग को आलोकित करके हमारे समक्ष रखा है।

# 6-'चन्द्रगुप्त' नाटक की संवाद-योजना

नाटक में संवादों का बहुत अधिक महत्त्व होता है। संवादों से ही नाटक में नाटकीयता आती है। इन्ही के सहारे कथा आगे बढ़ती है। संवाद पात्रों के चरित्र का भी उदघाटन करते है। कहीं–कहीं संवादपूर्ण घटनाओं की सूचना देते है। कथा सगंठन में भी संवाद सहायक होते हैं। इस प्रकार संवादों का नाटक में अत्यधिक महत्व होता है।

प्रसाद के नाटकों में संवाद–योजना प्रभाशाली होती है भाषा की दृष्टि से कहीं–कहीं संवाद कठिन अवश्य लगते हैं फिर भी नटकीयता में कोई कमी नहीं आती। चन्द्रगुप्त नाटक की संवाद–योजना भी स्पृहरणीय हैं।

(1) **परिस्थिति के परिचायक संवाद**– नाटक के प्रारम्भ में ही चाणक्य सिहंरण–आम्भीक–चंद्रगुप्त व अलका के संवादों से देश की तत्कालीन राजनीतिक दशा का ज्ञान होता है। उनके संवादों से ज्ञात होता है कि यवन–सेना को भारत पर आक्रमण होना है, तक्षशिला का राजकुमार आम्भीक पवनों की सहायता कर रहा हैं, देश के राजा परस्पर द्वेषवश्या बिखरे पड़े है आदि।

जैसे–

*"चाणक्य :––––––क्या तुम जानते हो कि यवनों के दूत यंहा क्यों आये हैं?*

सिंहरण : मैं उसे जानने की चेष्ठा कर रहा हूँ। अर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रतारण की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्ड राजदेष से जर्जर है।"

.....

"आम्भीक : वह काल्पनिक मायाजाल है ; तुम्होरे प्रत्यक्ष नीच कर्म उन पर पर्दा नहीं डाल सकते।

चाणक्य : सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय ! इसी दस्यु से और मलेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य जाति पतन के कगार पर खड़ी और मलेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य जाति पतन के कगार पर खड़ी धक्के की राह देख नही है।

(2) **छोटे व प्रवाहशील संवाद**– प्रस्तुत नाटक में छोटे–छोटे संवाद भी हैं। ऐसे संवाद सरल, चदुल, अर्थपूर्ण, और प्रवाहपूर्ण है, यथा–

"आम्भीक : कैसा विस्फोट ? युवक तुम कौन हो ?
सिंहरण : एक मालव।
आम्भीक : नही, विशेष परिचय की आवश्यकता है ?
सिंहरण : तक्षशिला गुरुकुल का एक छात्र।"

.....

"सेनापति : राजकुमारी !
कल्याणी : सावधान सेनापति !
सेनापति : क्षमा हो, अब ऐसी भूल न होगी। हॉ, तो केवल एक मार्ग है।
कल्याणी : वह क्या ?
सेनापति : घायलों की शुश्रषा का भार ले लेना है।"

ऐसे छोटे–छोटे सरल संवादों से नाटक बोझिल नहीं बनता। उसमें सरसला बनी रहती है। एकदम पक्की सड़क पर चलने जैसा आनंद महसूस होता है।

(3) **चरित्र के उद्घाटन-**

नाटक में पात्रों के कथन ही उसके चरित्र का निर्धारण करते हैं। उनकी बातें उनके चरित्र का पैमाना बन जाती है या तो उनके कार्यों से उनका व्यक्तित्व उभरता है या उनकी बातों से। इसीलिए संवाद इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण होते है। आम्भीक और सिंहरण का ही संवाद देखिये। "आम्भीक : बस–बस दुर्धर्ष युवक ! बता, तेरा अभिप्राय क्या है ?

सिंहरण : कुछ नहीं।

आम्भीक : नहीं, बताना होगा। मेरी आज्ञा है।

सिंहरण : गुरुकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है ; अन्य आज्ञाएं अवज्ञा के कान से सुनी जाती है राजकुमार।"

यहां आम्भीक की आशिष्टता की आशिष्टता व घमण्ड के साथ–साथ सिंहरण की विनम्रता साहस और निर्भीकता का उद्‌घाटन हुआ है। प्रसाद ने प्रस्तुत नाटक में कई स्थलों पर इस प्रकार संवाद–शैली से चरित्र का उद्‌घाटन किया है। प्रथम अंक के हो ग्यारहवें दृश्य में एक छोटा सा संवाद तीन पात्रों के व्यक्तित्व का दर्पण बन गया है। तीन वाक्य! तीन पात्र और तीन ही चरित्र ! देखिये–

"चन्द्रगुप्त : देवि ! कृतज्ञता का बंधन अमोध है'

चाणक्य : राजकुमारी ! उस परिस्थिति पर उपने विचार नहीं किया है, आपकी शंका निर्मूल है।

दाण्डयायन : संदेह न करो अलका ! कल्याण कृत को पूर्ण विश्वासी होना पड़ेगा। विश्वास सुफल देगा, दुर्गति नहीं।

एक उदाहरण और देखिये। दूसरा अंक और पहला दृश्यः फिलिप्स और कार्नेलिया का वार्तालाप। प्रेम का विज्ञापन करता फिलिप्स और दूसरी तरफ चन्द्रगुप्त की अनुरक्ता कार्नेलिया–

"फिलिप्स : कुमारी ! न जाने फिर कब दर्शन हों, इसलिए एक बार इन कोमल करों को चुमने की आज्ञा दो।

कार्नेलिया : तुम मेरा अपमान करने का साहस न करो फिलिप्स।

फिलिप्स : प्राण देकर भी नही कुमारी ! परन्तु प्रेम अंधा है।

कार्नेलिया : तुम अपने अन्धेपन से दूसरे की ठुकराने का लाभ नहीं उठा सकते फिलिप्स ! चरित्र के प्रकाशक ऐसे सफल संवाद प्रसाद के किसी भी नाटक में देखे जा सकते है।

**घटनाओं के परिचायक :**

नाटक में घटनाओं को प्रत्यक्ष घटते हुए कम दिखाया जाता है अधिकतर उन्हें पात्रों द्वारा कहलवा दिया जाता है। इसीलिए संवादों से घटनाओं का परिचय मिलता है। इससे संकलन त्रय का भी निर्वाह हो जाता है। प्रस्तुत नाटक में प्रथम अंक का तीसरा दृश्य ! चाणक्य और प्रतिवेशी का संवाद ! इसके द्वारा पता चलता है कि चाणक्य के पिता ने किया व नन्द ने उन्हें कैसा दण्ड दिया ? इसी के आगे का एक अंश देखिये–

"चाणक्य : होने दो ; परन्तु यह तो बताओं–शकटार का कुटुम्ब कहां पर है ?

प्रतिवेशी : कैसे मनुष्य हो ? अरे राज–कोपानल में वे सब जल मरें ।----------

चाणक्य : हे भगवान ! एक बात दया करके और बता दो– शकटार की कन्या सुवासिनी कहां है !

प्रतिवेशी युवक ! वह बौद्ध बिहार मे चली गयी थी, परंतु वहां भी न नह सकी ! पहले तो अभिनय करती फिरती थी, आजकल कहां है, नही जानता।"

तीसरे अंक के प्रथम दृश्य का एक संवाद देखिये।

राक्षस और एक चर की वार्ता–

राक्षस : क्या समाचार है ?

चर : बड़ा ही आतंक जनक है अमात्य !

राक्षस : कुछ कहो भी।

चर : सुवासिनी पर आप से मिलकर कुचक्र करने का अभियोग है, वह कारागार में है।

राक्षस : और भी कुछ ?

चर : हां अमात्य प्रान्त दुर्ग पर अधिकतर करके विद्रोह करने के अपराध में आपको बन्दी बनाकर ले आने वाले के लिए पुरस्कार की घोषणा की गई।

इस प्रकार के संवादों से नाटक के कथानक में गति आती है। निश्चय ही ऐसे संवादों का नाटक में बहुत महत्व होता है।

**दार्शिनिकता से प्रभावित** संवाद–

प्रसाद ने इतिहास, पुराण व दर्शन का गहन अध्ययन किया था। इसलिए उनकी रचनाओं में दार्शनिक विचारों का प्राचुर्य है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के प्रथम अंक के ग्यारवहें दृश्य में दार्शिनिक विचारों की अभिव्यक्ति है। दाण्डयायन बिल्कुल दार्शनिक लगते है ; उनकी वार्ता में भी दार्शनिकता है, यथा–

"एनिसाक्रीटीज : महात्मन,
दाण्डयायन : चुप रहो, सब चले जा रहे है, तुम भी चले जाओ। अवकाश नहीं, अवसर नहीं।
एनिसाकीटीज : मुझ से कुछ मत कहो। की अपने आप ही कही, जिसे आवश्यकता होगी, सुन लेगा।

.....

"एनिसाक्रीटीज : देवपुत्र जगद्विजेता सिकंदर ने आपका स्मरण किया है।
दाण्डयायन : भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास मात्र हो जाता है उनको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते।–––––
एनिसाक्रीटीज : महात्मन ! ऐसा क्यों ? यदि न जाने पर देव पुत्र दण्ड दें ?
दाण्डयायन : मेरी आवश्यकताए परमात्मा की विभूति प्रकृति पूरी करती है। उसके रहते दूसरों का शासन कैसा ?–––––

ऐसे दार्शनिक सम्वादों से लेखक की विचारधारा का ज्ञान होता है। लेखक इसके द्वारा जीवन के परिष्कार का भी प्रयत्न करता है।

**भावपूर्ण संवाद-**

मन की कोमलता व भावुकता से भरे संवाद भी प्रस्तुत नाटक में आए हैं। मालविका 'चन्द्रगुप्त' नंद–सुवासिनी, सुवासिनी–राक्षस, कार्नेलिया सुवासिनी व कार्नेलिया–एलिस आदि के कई संवाद भावपूर्ण, तरल एवं स्निग्ध है। ये प्रणय की मधुरिमा से सिक्त है।

"सिंहरण : मैं ..... अलका ! मुझसे पूछती हो
अलका : दूसरा उपाय क्या है ?
सिंहरण : मेरा सिर घूम रहा है। अलका। तुम पतेश्वर की प्रणयिनी बनोगी ! अच्छा होता कि इसके पहले ही में न रह जातां।
अलका : क्यों मालव, इससे तुम्कारी कुछ हानि है ?
सिंहरण : कठिन परीक्षा न लो अलका ! मै बड़ा दुर्बल हूँ। मैं ने जीवन और मरण में तुम्हारा संग न छोडने का प्ररण किया है।"

.....

"सुवासिनी : राजकुमारी ! प्रेम में स्मृति का ही सुख है। एक ठीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है।
कार्नेलिया : तुम क्या कहती हो ?
सुवासिनी : ..... धधकते हुए रमणी–वक्ष पर हाथ रख कर उसी कम्पन में स्वर मिलाकर कामदेव गाता है। ..... वही काम संगीत की तान ..... युक्तियों के मुख में लज्जा और स्वास्थ्य की लाली चढ़ाया करती है।
कार्नेलिया : सखी। मदिरा की प्याली में तू स्वप्न–सी लहरों की मत आन्दोलित कर।

ऐसे संवादों से नाटक मनोरमा माधुर्य और रस की सृष्टि होती है।

**वनोदपूर्ण संवाद-**

प्रस्तुत नाटक में दों–तीन स्थलों पर विनोद पूर्ण संवादों की योजना हुई है। एक स्थल पर नट–नटी के वेश में चन्द्रगुप्त, अलका आदि पर्वतेश्वर के साथ विनोद करते है। चौथे अंक के छठे दृश्य में कात्पायन और चाणक्य का विनोद पूर्ण संवाद थोड़ा मनोरंजक है, यथा–

"कात्यायन : (हंसकर) - यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि तुम..... सुवासिनी अच्छा विष्णुगुप्त गार्हस्थ्य जीवन कितना सुंदर है।

चाणक्य : मूर्ख हो, अब हम–तुम साथ ही ब्याह करेंगें।

कात्यायन : मैं ? मुझे नही---- मेरी गृहिणी तो है।

चाणक्य : (हंसकर) – एक ब्याह और सही। अच्छा बताओं, काम कहाँ तक हुआ ?"

इस प्रकार चन्द्रगुप्त नाटक में लेखक ने विविध प्रकार के संवादों की योजना-की है। कही–कही भाषा की दृष्टि से संवाद थोड़े कठिन भी लगते है, जैसे कार्नेलिया के साथ सुवासिनी की वार्ता ; आम्भीक के साथ सिंहरण की बातचीत आदि। वैसे इस नाटक में संवादों की कुछ अन्य कोटियों भी मिलती हैं, यथा व्यग्यात्मक, उत्तेजनात्मक, काव्यात्मक आदि फिर भी कुल मिलाकर प्रस्तुत नाटक की संवाद योजना सफल मानी जायेगी। हाँ, जहाँ–जहाँ स्वपत आये है वे स्थल निश्चय ही संवाद सौष्ठव की दृष्टि से शिथिल कहे जायेगें। प्रस्तुत नाटक में लगभग पन्द्रह स्वगत आये हों प्रायः स्वगत लम्बे, द्वन्द्वात्मक और थोड़े बहुत कठिन है। संवाद योजना में जहां तक सम्भव हो ऐसे स्वगत कथन नही होने चाहिये। किंतु प्रसाद के अधिकांश नाटकों में यह दोष पाया जाता है। इसे हम उनके दार्शनिक व चिंतनशील व्यक्तित्व का परिणाम ही मान सकते हैं।

# 7-'चन्द्रगुप्त' नाटक में अन्तर्द्वंद्व-योजना

द्वंद्व का अर्थ है संघर्ष ; दो विरोधी पक्षों का टकारव। दो व्यक्ति, दो गुट, दो भावना, दो विचार। इनमें से किसी के भी टक्कराव को संघर्ष या द्वंद्व कहां जायेगा। अतः द्वंद्व दो प्रकार का होता है– आंतरिक और बाहरी। हृदय में उठने वाले विरोधी विचारों को आंतरिक द्वंद्व या अंतर्द्वंद्व कहते है। तथा समाज में दो व्यक्ति या पक्षों के टकराव को बाह्य द्वन्द्व कहते है।

यह द्वंद्व या संघर्ष पाश्चात्य नाटकों की विशेष्ता है। इसकी योजना से कथानक में क्षिप्रता आती है, गतिशीलता बढ़ती है वे क्रियाशीलता बनी रहती है। प्रसाद के नाटकों में संघर्ष आघात मिलता है। उनमें संघर्ष के दोनों पक्ष मिलते हैं। कहीं–कहीं अन्तर्द्वन्द्व बढ़ा–चढ़ा मिलता है।

'चन्द्रगुप्त' प्रसाद के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटकों में गिना जाता है। इसमें द्वन्द्व की दोनो स्थितियाँ है। इसी कारण कथानक में शिथिलता नहीं आ पाई है। हाँ, अन्तर्द्वन्द्व वाले स्थल निश्चय ही कहीं–कहीं कथानक में शिथिलता ला देते हैं।

**बाह्य द्वन्द्व-**

इसे हम स्पष्ट शब्दों में संघर्ष कहेंगें कि नाटक के आरम्भ में ही संघर्ष का सूत्रपात हो जाता है। गुरुकूल में आम्भीक अपनी अशिष्टता से वातावरण में तनाव ला देता है और फिर चन्द्रगुप्त के साथ द्वन्द में पराजित होता है। उधर सिंहरण व चाणक्य की बातों से ज्ञात होता है कि भारत की उत्तरी सीमा पर सिकंदर का आक्रमण होने वाला है। संघर्ष की पृष्ठभूमि यहीं दिखने लगती है। आगे यह संघर्ष अन्त तक चलता है। नाटक में बाहरी संघर्ष कई रूपों में चलता है– (अ) सिकन्दर व पर्वतेश्वर के बीच, (आ) सिकंदर व चन्द्रगुप्त, चाणक्य, सिंहरण के बीच, (इ) चन्द्रगुप्त–सिल्यूकस का संघर्ष, (ई) नंद और चन्द्रगुप्त–चाणक्य के बीच, (उ) राक्षस व चाणक्य के बीच, (ऊ) पर्ववेश्वर व मगध के बीच, (ए) आम्भीक व पर्ववेश्वर के बीच, (ऐ) आरम्भीक व चाणक्य के बीच, (ओ) नन्द व राक्षस के बीच, (औ) नन्द व शकटार के बीच आदि।

(अ) **सिकंदर व पर्वतेश्वर के बीच-** सिकंदर आम्भीक को अपने पक्ष में मिला कर पर्ववेश्वर पर आक्रमण करता है। आम्भीक व्यक्तिगत अनबन के कारण पर्वतेश्वर के विरूद्ध सिकंदर की सहायता करता है। युद्ध में पर्वतेश्वर पराजित होता है पर सिकंदर उसके साथ मैत्री स्थापित करता है। किंतु इस संघर्ष का अभी अन्त नहीं होता।

(आ) **सिकंदर का चन्द्रगुप्त–चाणक्य आदि के साथ युद्ध-** भारत से लौटते वक्त सिकंदर को चन्द्रगुप्त–सिंहरण आदि के संगठन का मुकाबला करना पड़ता है। इसमें सिकंदर पराजित होता है। वह चाणक्य व चन्द्रगुप्त के साथ मित्रता का हाथ बढ़ाकर लौटता है। सिकंदर के साथ नाटक के विविध पात्रों का संघर्ष यहाँ समाप्त होता है।

(इ) **चन्द्रगुप्त व सिल्यूकस का युद्ध-** सिकंदर की मृत्यु के बाद सिल्यूकस एक बार फिर भारत पर आक्रमण करता है। इस बार आम्भीक पर्ववेश्वर व मगध की सेना भी चन्द्रगुप्त का साथ देती है। सिल्यूकस पराजित होता है। वह अपनी पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करता है। इस सघर्ष की समाप्ति यहीं पर हो जाती है।

(ई) **नन्द व चन्द्रगुप्त चाणक्य के बीच-** सीमा पर संर्घर्ष के अतिरिक्त देश में आंरिक संघर्ष भी चलते हैं। मगध राजा नन्द अत्यंत विलासी व अत्याचारी होता है। वह चाणक्य का अपमान कर उसे व चन्द्रगुप्त को निर्वासित करता है, शकटार को उसके पुत्रों के साथ अन्धे कुएं में डाल देता है, चन्द्रगुप्त के पिता व माता को कैद कर लेता है, चाणक्य नंद के नाश की प्रतिज्ञा करता है। वह चन्द्रगुप्त के साथ मिलकर इस प्रण को पूरा करता है। जनता के सामने भरी सभा में नन्द के विरुद्ध आरोप लगाये जाते है। उसी समय शकटार उसका वध कर देता है।

(उ) **राक्षस व चाणक्य के बीच-** राक्षस चाणक्य को आरम्भ से ही नहीं स्वीकारता। मगध के कैद में चाणक्य को वह प्रलोभन देकर मिलाना चाहता है पर सफल नही होता। बाद में चाणक्य उसके विरुद्ध चाल चलता है। वह राक्षस को नन्द के विरुद्ध भड़का देता है और एक चाल द्वारा नंद के मन में य बात बैठा देता है कि राक्षस गद्धार है। नंद राक्षस को विवाह के मंडप से उठवा कर कैद कर लेता है। राक्षस को चाणक्य की चाल ज्ञात हो जाती है। वह फिर से चाणक्य का विरोधी हो जाता है। बाद में मगध पर चन्द्रगुप्त का अधिकार हो जाने का राक्षस सिल्यूस से मिलकर अपना प्रतिशोध पूरा करना चाहता है। किंतु सिल्यूकस पराजित हो जाता है। चाणक्य सुवासिनी व राक्षस का परिणाम कराता है। राक्षस अंत में चाणक्य की महानता हृदय से स्वीकार कर लेता है।

(ऊ) **पर्वतेश्वर व मगध के बीच**– पर्वतेश्वर मगध के राजा को शुद्ध कहकर उसकी कन्या के साथ विवाह करने से इन्कार कर देता है। इसके कारण मगध का राजा व राजकुमारी कल्याणी उसके विरोधी हो जाते है। बाद में पर्वतेश्वर कल्याणी पर बलात हक जमाना चाहता है कि किन्तु कल्याणी उसकी हत्या कर देती है।

(ए) **आम्भीक व पर्वतेश्वर के बीच**- आम्भीक पर्वतेश्वर के विरूद्ध सिकंदर की सहायता करता है। युद्ध के मैदान में दोनों का सामना होता है। बाद में चाणक्य के प्रयत्नों से इस विरोध का शमन होता है।

(ऐ) **आम्भीक व चाणक्य**- आम्भीक शुरू से ही चाणक्य व चन्द्रगुप्त का विरोध करता है। बाद में चाणक्य की कूटनीति व अलका के त्याग से प्रभावित होकर आम्भीक चाणक्य की महानता स्वीकार कर लेता है।

(ओ) **नंद व राक्षस**– चाणक्य की चाल में फंस कर राक्षस नन्द की निगाह में गद्धार हो जाता है। अतः नंद राक्षस व सुवासिनी को कैद कर लेता है। राक्षस के मन से नंद से प्रतिशोध की भावना जाग उठती है। लेकिन इस बीच शकटार नंद का वध कर देता है।

(औ) **नंद व शकटार**- शकटार नंद का अमात्य होता है। किंतु किसी कारण वश नंद उसे व उसके सात बच्चों का अन्ध कुएं में डाल देता है शकटार के सब बच्चे मर जाते हैं। वह किसी तरह कैद से निकल भागता है। अंत में वह नंद की हत्या करता है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में शुरू से अंत तक संघर्ष चलता है। संघर्ष के कारण कथा में गति बनी रहती है। क्रियाशीलता कहीं भी नहीं रूकती। नाटक के अंत के सब संघर्षो का शमन हो जाता है। संघर्ष की कड़ियों में नाटकीय मोड़ा भी है। इसक कारण नाटक में रूचि बनी रहती है।

***अन्तर्द्वन्द्व***– प्रस्तुत में अन्तर्द्वन्द्व भी अन्त तक चलता है इन अन्तर्द्वन्द्वों से पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ा है। कथानक को गति मिली है घटनाओं का ज्ञान हुआ है, कथा के भावी मोड़ के संकेत भी मिलते हैं।

चाणक्य का अन्तर्द्वन्द्व सबसे लम्बा है। उसके स्वागत से ज्ञात होता है कि उसके मन में सुवासिनी के प्रति आसक्ति है। वह नंद का नाश करना चाहता है और लक्ष्य की सिद्धि के लिए वह कुछ त्याग सकता है यथा "जकड़ी हुई लोह श्रखंले। एक बार तू फूलों की माला बन जा और मैं मदोन्मत विलासी के समान तेरी सुंदरता को भंग कर दूँ। क्या रोने लगूं? इस निष्ठुर यत्रणाओं की कठोरता से बिलबिलाकर दया की भिक्षा मांगू?"

प्रथम अंक के अंत में अलका के मन में द्वंद्व उठता है क्या चाणक्य और चन्द्रगुप्त भी देश द्रोही ही गए? वे भी यवनों से मिल गए? "आर्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त – ये भी यवनों के साथी। जब आँधी और कारका वृष्टि अवर्षण और दावाग्नि का प्रकोप हो तब देश की हरी–भरी खेती का रक्षक कौप है? शून्य व्योग प्रश्न को उत्तर दिये बिना लौटा देता है। ऐसे लोग भी आक्रमणकारियों के चंगुल में फंसे रहे हों, तब रक्षा की क्या आशा। झेलम के पार सेना उतरना चाहती है, उन्मत्त पर्वतेश्वर अपने विचारों में मग्न हैं।" (पृ. 77) इससे एक ओर उसकी राष्ट्र भक्ति प्रकट होती है तो दूसरी और उतावलापन जो उसे बिना समझे ही निर्णय लेने पर बाध्य कर देता है।

चतुर्थ अध्याय में कल्याणी के मन में उसकी वर्तमान दशा को लेकर द्वन्द्व उठता है – नन्द की हत्या। मगध पर चन्द्रगुप्त का शासन। वह इस अवस्था में जीवित रहे या मर जाय? "मैं अब सुख नहीं चाहती। सुख अच्छा है न दो।..... हाँ, यह सच है। परन्तु तुम मेरे पिता के विरोधी हुए इसलिए उस प्रणय को प्रेम की पीड़ा को मैं पैरों से कुचल कर, दबा कर खड़ी री। अब मेरे लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा।" (पृ. 146) इससे कल्याणी के मन में कोमलता व अस्थिरता प्रकट होती है।

चतुर्थ अंक में मालविका और चाणक्य संवाद के समय चन्द्रगुप्त के मन में द्वन्द्व उठता है कि इतना संघर्ष होने के बाद भी उसकी स्थिति क्या है?

"संघर्ष। युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़कर देखो, मालविका, आशा और निराशा का युद्ध, भावों और अभावों का द्वंद्व। कोई कमी नहीं, फिर भी न जाने कौन मेरी सम्पूर्ण सूची में रिक्त–चिह्न लगा देता है।"

क्या वह चाणक्य के हाथों में कठपुतली बनकर रहना पड़ेगा? यह अन्तर्द्वन्द्व चन्द्रगुप्त की मानसिक दुर्बलता को प्रकट करता

है। जिस चाणक्य ने उसे सम्राट बनाया था। उसी चाणक्य पर वह शक करता है।

चतुर्थ अंक में भारत और यहाँ के आकर्षण में कार्नेलिया का अन्तर्द्वन्द्व उसके चरित्र का उद्‌घाटक है। उसे भारत से प्रेम है, भारतीय चन्द्रगुप्त से प्रेम है। वह चाहती है कि उसके पिता शांति पूर्वक रहे आक्रमण न करें। "कार्नेलिया – किस पर आक्रमण होगा, पिताजी?

सिल्यूकस– चन्द्रगुप्त की सेना पर। वितस्ता के इस पार सेना आ पहुंची है अब युद्ध में विलम्ब नहीं।

कार्नेलिया– पिताजी, उसी चन्द्रगुप्त से युद्ध होगा जिसके लिए उस साधु ने भविष्यवाणी की थी? वही तो भारत का राजा हुआ न!

सिल्यूकस– हाँ, वही तो,....."

कार्नेलिया– और उसी ने आपकी कन्या के सम्मान की रक्षा की थी – फिलप्स का वह अशिष्ट आचरण।"

(पृ. 173)

इस स्थल पर कार्नेलिया के मन की उज्जवलता सामने आई है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में आंतरिक एवं बाहरी संघर्ष की एक साथ सुंदर योजना हुई है। प्रसाद के सभी नाटकों में अन्तर्बाह्य संघर्ष का समन्वय मिलता है। संघर्ष नाटक का अनिवार्य तत्त्व है और प्रसाद ने इस तत्त्व की महत्त समझते हुए ही अपने सभी नाटकों में इसका निर्वाह किया है। प्रसाद की नाट्यकला में भारतीय एवं पश्चिमी नाट्य तत्त्वों का समन्वय मिलता है। संघर्ष तत्त्व भी इसी का प्रमाण है।

# 8.'चन्द्रगुप्त' नाटक में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना

साहित्यकार युग दृष्टा एव युग सृष्टा होता है। समय की आवश्यकता को समझ कर तदनुरूप अपनी लेखिनी का उपयोग करना प्रसाद जी जैसे सजग साहित्यकार की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल था। प्रसाद जी ने अनुभव किया था कि भारत दिनानुदिन अधिक पंगु होता जा रहा है। कारण यह कि विदेशी सरकार ने दीर्घकाल तक भारत पर शासन करने के उद्देश्य से यहां की जनता को मानसिक दृष्टि के रूग्ण और हीनता की भावना से ग्रस्त रखने को निश्चय कर रखा था ताकि जनमानस जागृत होकर आजादी की माँग न करें। प्रसाद जी ने इस तथ्य को समझा कि राष्ट्रीयता की भावना का विकास करके ही अंग्रेज जैसे खूंखार शत्रु से आजादी प्राप्त की जा सकती है। यही कारण है कि उन्होंने अपने सभी नाटकों में राष्ट्रीयता की भावना के उन्मेष के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किये। किन्तु प्रसाद की राष्ट्रीय भावना एक विशेष कोटि की है। दूसरे शब्दों में उनकी राष्ट्रीयता का विवेचन करते हुए समय हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि वे ऐतिहासिक नाटककार हैं और ऐतिहासिक नाटककार इतिहास की सर्वथा उपेक्षा कैसे कर सकता है। यदि वह ऐसा करेगा तो अनेक सैद्धान्तिक दोष स्वत: उठ खड़े होंगे। यही कारण है कि व्यापक राष्ट्रीय भावना के समर्थक होते हुए भी प्रसाद जी ने राष्ट्रीयता के पुराने और संकीर्ण विचारों को भी यथास्थान अभिव्यक्ति दी है। ऐसे स्थलों को देखकर हमें प्रसाद की राष्ट्रीय भावना पर संदेह नहीं करना चाहिए बल्कि ऐतिहासिक नाटककार की सीमा समझकर उसे प्रांसगिक अभिव्यक्ति मान लेना चाहिए। उदाहरणार्थ प्रसाद ने जिस युग को अपने नाटक को विषय बनाया है उस युग में राष्ट्रीयता की भावना प्रान्तीयता की भावना तक ही सीमित थी। यही कारण है कि चन्द्रगुप्त अलका आदि जैसे सजग पात्र भी प्रान्तीयता की भावना से ग्रस्त प्रतीत होते हैं। चन्द्रगुप्त कहता है -

**"आर्य हम मागध हैं और यह मालव।"**

अलका प्रान्तीयता की भावना से आक्रांत है–

"गणतन्त्र में सब प्रजा वन्यवीरूध के समान फल फूल रही है। इधर उन्मत्त मगध साम्राज्य की कल्पना में निमग्न है।

राष्ट्रीयता की भावना का संदेह साहित्यकार दो रूपों में दे सकता है–(1) जातीय अभिमान से मण्डित पूर्व पुरूषों की वीरता का गौरव गान कर तथा (2) वर्तमान परिस्थिति की हीनता की ओर पाठको का ध्यान आकृष्ट कर उससे मुक्त होने की प्रेरणा देकर। प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में राष्ट्रीयता की भावना जगाने के उद्देश्य से इन दोनों पद्धतियों का उपयोग हुआ है। चन्द्रगुप्त के स्त्री एवं पुरूष दोनों ही श्रेणियों के पात्र देश भक्ति की भावना से ओत–प्रोत हैं। चन्द्रगुप्त, अलका और सिंहरण जिस प्रकार निजी सुख–सुविधाओं का त्याग कर राष्ट्रीय हित में लगे रहते हैं, वह वास्तव में उत्कृष्टतम है। प्रसाद की लेखिनी से प्रसूत राष्ट्रीयता की अजस्त्रधारा ने तत्कालीन विद्वानों को भी आकृष्ट किया था। तभी एक विद्वान ने कहा था

"नैराश्यपूर्ण वर्तमान और भविष्य में प्रसाद जी के आशावादी नाटक राष्ट्रीय आन्दोलन को अग्रसर करने के अनुपम साधन हैं। इस रूप में इनका महत्व किसी राष्ट्रीय नेता से कम नहीं। नाटककार प्रसाद की अन्यतम विशेषता यही है कि उनके नाटक साहित्यिक दृष्टि से जितने उपादेय है, राष्ट्रीय भावना को उन्मेय करने में भी वे इतने सफल है।

राष्ट्रीयता की भावना के उन्मेष के लिए सर्वप्रमुख चीज यह है कि देश के गौरवमय अतीत के प्रति जनता में आकर्षण पैदा किया जाय। प्रसाद जी ने इस कार्य को बड़ी दक्षता पूर्वक किया है। उन्होंने अपने नाटकों की कथावस्तु का चयन भारतीय इतिहास के गौरवमय अतीत से किया है। इस उद्देश्य से उन्होने वैदिक काल से लेकर बारहवीं शती तक के भारतीय इतिहास का मनोयोग पूर्वक अध्ययन मनन और आलोड़न किया। 'करूणालय' में वैदिक काल का, 'सज्जन' में महाभारत काल का 'कल्याणी परिणय' का नागयज्ञ' में उपनिषदकाल का 'अजातशत्रु' में बौद्ध काल का , विशाख में बौद्धों के पतन काल का, 'चन्द्रगुप्त' में यूनानियों के आक्रमण काल का, 'स्कंदगुप्त' में हूणविद्रोह काल का, 'राज्यश्री' में हर्षकाल का तथा 'प्रायश्चित' में जयचन्द काल का ऐतिहासिक अवलम्ब लेकर कथावस्तु निर्मित की गई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसाद का समग्र नाटक–साहित्य ही राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत है। फिर भी 'चन्द्रगुप्त' में व्यक्त राष्ट्रीयता की भावना अधिक सशक्त है।

डा॰ दशरथ ओझा ने उचित ही कहा है–

"प्रसाद जी जिस प्रवृत्ति और उद्देश्य को लेकर नाटक–निर्माण में तल्लीन हुए थे, उसका चरम उत्कर्ष 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रकट होता है। प्रसाद जी भारत के प्राचीन गौरव का गान करने वाले, राष्ट्रीयता के चटक रंग में रंगे ऐसे कुशल नाटककार हैं जिन्होंने

भारतीय इतिहास के उस उन्नत हिन्दू काल की प्रमुख घटनाओं को अपने ग्रन्थों के लिए चुना है जिस पर आज कोई भी देश गौरव कर सकता है।" इस नाटक में तत्कालीन इतिहास को राष्ट्रीयता के ढाँचे में ढालने का सफल प्रयत्न किया गया है। उस समय का भारत व्यक्तिगत वैमनस्य का भार था, जबकि "आर्यावर्त का इतिहास लिखने के लिए कुचक्र और प्रताड़ना की लेखिनी और मसि प्रस्तुत हो रही थी "और" उत्तरापथ के खण्डराज्य द्वेष से जर्जर" थे, संभवतः समस्त आर्यावर्त पदाक्रांत होने वाला था। उत्तरापथ में बहुत से छोटे–छोटे गणतन्त्र थे जो 'सम्मिलित यवनबल को रोकने में असमर्थ' थे। सारांश यह कि उचित नेतृत्व और स्वस्थ भावना के अभाव में देश की राष्ट्रीयता की प्रेरणा देने वाला तथा छिन्न–भिन्न हुई इस राष्ट्रीय शक्ति को एकत्रित करने वाले किसी महामानव या प्रभावशाली व्यक्ति की आवश्यकता थी। आचार्य चाणक्य ने अभी आवश्यकता की पूर्ति 'चन्द्रगुप्त' नाटक में की है। प्रसाद ने चाणक्य के माध्यम से देश के प्रति अपनी समग्र श्रद्धा भावना को उड़ेल दिया है। आचार्य चाणक्य अपने शिष्यों को इसी व्यापक राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाते हैं–

"तुम मालव हो और यह मागध, यही तुम्हारे मान का अवसान है न, परन्तु आत्मसम्मान इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यव्रर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा।" देश में कुछ अभीक जैसे गद्दार भी होते हैं किन्तु सिंहरण जैसे वीर की कमी भी नही होती। अलका कहती है–

आर्यावर्त के सब बच्चे अंभीक जैसे नहीं, वे इनकी मान प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल–तिल कर जायेंगे। अलका का यह विश्वास निराधार नहीं क्योंकि उसे सिंहरण जैसे वीर पुरूष की निम्न उक्ति पर विश्वास है–

"परन्तु मेरा देश मालव ही नहीं गांधार भी है। यही क्या समग्र आर्यावर्त है। .. गांधार आर्यावर्त से भिन्न नहीं है, इसलिए उसके पतन को मैं अपना अपमान समझता हूँ।" इस प्रकार स्पष्ट है कि नाटककार ने तत्कालीन इतिहास का सहारा लेकर 'चन्द्रगुप्त' में राष्ट्रीय–भावना के उन्मेष में एक गति दी, अतीत की घटनाओं द्वारा वर्तमान के लिए राष्ट्रीयता का अमर सन्देश दिया है जो 'चन्द्रगुप्त' के एक–एक पात्र के जीवन और उसे उनके कार्यों से स्पष्ट है। यदि हम चाणक्य और अलका इन पात्रों की उक्तियों पर ध्यान दें तो उक्त तथ्यों की पुष्टि होगी। चाणक्य की चित्रंण नाटककार ने राष्ट्रनायक के रूप में किया है। वह दूरदर्श राजनीतिज्ञ है। वह समझ जाते है कि–"अब केवल परिणित से काम नहीं चलेगा। अर्थशास्त्र और दण्डनीति की आवश्यकता है। हर सच्चे राष्ट्र सेवक की भाँति उसे भी क्षोभ है कि–

"कुसुमपुर फूलों की सेज में ऊँघ रहा है। क्या इसलिए राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था। ... यवन आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मणों का भेद न रखेंगे। राष्ट्र जब शत्रुओं के आक्रमण के खतरे से गुजर रहा हो, तो उस समय अलका जैसी राष्ट्र–सेविका का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। अलका कितनी सजग है, यह निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है–

'तक्षशिला के वीर नागरिको! एक बार अभी--अभी सम्राट् चन्द्रगुप्त ने इसका उद्धार किया था, आर्यावर्त--प्यारा देश–ग्रीकों की विजय–लालसा से पुनः पद्दलित होने जा रहा है, तब तुम्हारा शासक तटस्थ रहने का ढोंग करके पुण्यभूमि को परतन्त्रता की श्रृंखला पहनाने का दृश्य राजमहल के झरोखों में देखेगां। राजा कायर है और तुम?" राष्ट्र के नौजवान सपूतों को सम्बोधित कर अलका कहती है--

**हिमाद्रि तुंग श्रृंग से**
**प्रबुद्ध शुद्ध भारती–**
**स्वयं प्रभा समुज्वला**
**स्वतन्त्रता पुकारती–**
**अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।**
**प्रशस्त पुण्य पंथ है-बढ़े चलो, बढ़े चलो।**
**असंख्या कीर्ति-रश्मियाँ,**
**विकीर्ण दिव्य दाहसी,**
**सपूत मातृभूमि के**

**रूको न शूर साहसी**

**अराति सैन्य सिन्धु में-सुवाडवाग्नि से जलो,**

**प्रवीर हो जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।**

प्रस्तुत गीत की एक–एक पंक्तियाँ देशभक्ति की भावना से ओत–प्रोत हैं। नाटककार ने अलका के माध्यम से अपने उस हृदय के उद्‌गार को शब्द प्रदान किया है जो सदा सर्वदा यही चाहता है कि देश सुखी और समृद्ध बने। अलका के निम्न शब्द–

"राज्य किसी का नहीं है। वह अनुशासन का है– भाई, तक्षशिला तुम्हारी नहीं और हमारी भी नहीं है। तक्षशिला आर्यावर्त का एक भू–भाग है, वह आर्यवर्त का होकर रहे, इसके लिए मरे मिटो।" यह सिद्ध करते हैं कि प्रसाद जी राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानते थे।

पराधीन जनमानस में शक्ति–संचार के लिए प्रसाद जी ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में जातीय अभिमान की अभिव्यक्ति को बड़े प्रभावशाली ढंग से की है। किये गए उपकार का बदला चुकाना भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। तभी चन्द्रगुप्त सेल्यूकस को बन्दी नहीं बनाता। वह कहता है–

"यवन सेनापति ! आय कृतध्न नहीं होते। आपको सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देना ही मेरा कार्य था।" भारतीय गुणग्राहक होते हैं चाणक्य सिकन्दर से कहते हैं–

"तुम वीर हो सिकन्दर ? भारतीय सदैव उत्तम गुणों की पूजा करते हैं।" प्रसाद जी ने विदेशी पात्रों के मुख से भी भारतीय गौरव का कथन कराया है। कार्नेलिया का 'अरूण यह मधुमय देश हमारा' शीर्षक गीत अत्यंत मार्मिक है।

सिकन्दर कहता है–

"आर्यवीर ! मैंने भारत में हरक्यूलिस, एचलिस्त की आत्माओं को भी देखा और देखा डिमास्थनीज को।"

इस प्रकार सिद्ध है कि 'चन्द्रगुप्त' में राष्ट्रीय–भावना की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है।

# 9-'चन्द्रगुप्त' नाटक में चरित्र-चित्रण

चन्द्रगुप्त इस नाटक का सर्वप्रमुख पात्र है। यह मगध का निर्वासित राजकुमार होता है। उसके पिता मगध की सेना के माहबलधिकृत थे। किन्तु नन्द द्वारा उन्हें पद से हटा दिये जाने पर उनका परिवार बिखर गया। चन्द्रगुप्त भी भटकने लगा। फिर चाणक्य ने इसकी सहायता की। चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त आगे चलकर सम्पूर्ण आर्यावर्त का सम्राट बना। चन्द्रगुप्त की चारित्रिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैः–

1. ***स्वतन्त्रता रक्षक***– नाटक के आरम्भ में ही चन्द्रगुप्त को हम सर्वसाधारण की स्वतन्त्रता के रक्षक के रूप में देखते हैं। वह सिंहरण व आम्भीक को कहता है– "प्रत्येक निरापद आर्य स्वतन्त्र है, उसे बन्दी नहीं बना सकता।" उसकी यह भावना नाटक में अन्त तक बनी रहती है। यह आर्यावर्त की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए शक्तिभर प्रयन्तन करता है। उसे यह सहन नहीं होता कि यवन आक्रमणकारी आर्यावर्त को गुलाम बनाये। वह इसलिए सिकन्दर को कहता है– "मैं यवनों को अपना शासक बनने को आमन्त्रित करने नहीं आँया है।"

2. **आत्मसम्मानी**– चन्द्रगुप्त स्वाभिमानी राजकुमार है। वह किसी भी कीमत पर अपने आत्मसम्मान को ठेस नहीं लगने देता। उसके मत में आत्मसम्मान की रक्षा ही जीवन की सार्थकता है। वह चाणक्य को कहता भी है– "आर्य! संसार भी की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्मसम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।" अपने स्वाभिमान के प्रति वह कितना जागरूक है इसका उदाहरण एक अन्य स्थल पर भी मिलता है। सिकन्दर उसे भारत का सम्राट बनाने में सहायता देना चाहता है लेकिन वह साफ कह देता है "मुझे आपसे सहायता नहीं लेनी।" इतना ही नहीं वह इसी क्रम में आगे कहता है–"मुझे लाभ से पराभूत गान्धार राज आम्भीक समझने की भूल न होनी चाहिए, मैं मगध का उद्धार करना चाहता हूँ।" नाटक के चौथे अंक में यूनानी सेनापति फिलिप्स उसे द्वन्द्व युद्ध के लिए चुनौती देता है तब भी वह साफ कह देता है कि "आधी रात, पिछले पहर, जब तुम्हारी इच्छा हो।"

3. **दृढ़प्रतिज्ञ**– चन्द्रगुप्त चाणक्य के सामने प्रतिज्ञा करता है कि उसके रहते आक्रमणकारी आर्यावर्त का नाश नहीं कर सकते। वह चाणक्य को कहता है "गुरूदेव, विश्वास रखिए! यह सब कुछ नहीं होने पायेगा। यह चन्द्रगुप्त आपके चरणों की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता है कि यवन यहाँ कुछ न कर सकेंगे।" चौथे अंक में भी जब चन्द्रगुप्त को ज्ञात होता है कि सिंहरण सेनापति के पद को छोड़ना चाहता है तो चन्द्रगुप्त विचलित नहीं होता। बल्कि कहता है कि आज से मै ही बलाधिकृत हूँ। कोई सहायता न दे तो भी मैं विचलित नहीं होऊँगा।

4. ***कृतज्ञ***– चन्द्रगुप्त, सिल्यूकस के अहसान को भूलता नहीं है। सिल्यूकस ने जंगल में उसे व्याघ्र का शिकार होने से बचाया था। उसके लिए चन्द्रगुप्त सदैव सिल्यूकस का कृतज्ञ बना रहता है। वह कहता भी है–"भारतीय कृतघ्न नहीं होते। सेनापति! मैं आपका अनुगृहित हूँ, अवश्य आपके पास आऊँगा।" इसी भांति सिकन्दर के विरूद्ध लड़ाई में वह सिल्यूकस को घेर लेता है किन्तु उसे मारता नहीं, निकल जाने देता है। क्योंकि सिल्यूकस ने भी एक बार उसके प्राण बचाये थे। वह कहता है– "यवन सेनापति, मार्ग चाहते हो या युद्ध? मुझ पर कृतज्ञता का बोझ है। तुम्हारा जीवन! इतना ही नहीं नाटक के अन्त में भी, सिकन्दर की मृत्यु के बाद जब सिल्यूकस पुनः भारत पर आक्रमण करता है तो भी चन्द्रगुप्त युद्ध में सिल्यूकस को मारता नहीं। इस तरह प्रमाणित होता है कि चन्द्रगुप्त में कृतज्ञता की भावना अन्त तक बनी रहती है।"

5. **विनम्रता** – कृतज्ञता के साथ–साथ चन्द्रगुप्त में विनग्रता भी मिलती है। वह वीर है पर उद्दण्ड नहीं। तपोवन में जब सिकन्दर उसे अपने शिविर मं निमन्त्रित करता है तो चन्द्रगुप्त बहुत ही विनम्रता के साथ जवाब देता है– "अनु–गृहीतं हुआ। आर्य लोग किसी नियन्त्रण को अस्वीकार नहीं करते।" कहीं–कहीं उसमें जो उग्रता दिखती है वहाँ उसका स्वाभिमान भी प्रकट हुआ है; उसे उद्दण्डता समझना भूल होगी।

6. **निडर व स्पष्टवादी**– सही बात कहने में चन्द्रगुप्त को कोई संकोच नहीं होता। वह सिकन्दर के शिविर में कुछ दिन रहा। वहीं वर उसने सिकन्दर को साफ बतला दिया कि वह उनकी रण कला का अध्ययन करने के लिए ही उनके शिविर में टिका रहा। उसे अन्य और कोई लोभ नहीं– "अवश्य ही यहां रह कर यवन रण नीति से मैं कुछ परिचित हो गया हूँ.......मैं मग्ध का उद्धार करना चाहता हूँ पर यवन लूटेरों की सहायता से नहीं।" वह सिकन्दर के शिविर में ही बिना किसी भय के साफ चोट करने वाले शब्दों में कहता है–"लूट के लोभ से हत्या, व्यावसायियों को एकत्र

करके वीर सेना कहना, रण कला का उपहास करना है।" सिकन्दर के सामने ही वह आम्भीक को बुरी तरह फटकार देता है– "स्वच्छ हृदय भीरू कायरों की सी वंचक शिष्टता नहीं जानता। अनार्य! देशद्रोही! आम्भीक! चन्द्रगुप्त राज्य के लालच या घृणाजनक लोभ से सिकन्दर के पास नहीं आया है।"

7. **कर्त्तव्यनिष्ठ**– चन्द्रगुप्त को इस नाटक में हम एक कर्मठ योद्धा के रूप में देखते है। वह व्यक्तिगत सुख के लिए देश के प्रति अपने कर्तव्य की हानि नहीं होने देता। राजकुमारी कल्याणी के प्रति उसका यह कथन उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है– "राजकुमारी से मेरा प्रणाम कहना और कह देना कि मैं सेनापति का पुत्र हूँ, युद्ध ही मेरी अजीविका है।" इसी भांति एक अन्य स्थल पर भी जब सिल्यूकस के विरूद्ध युद्ध के समय सिंहरण सेनापति का पद छोड़ देता है उस समय चन्द्रगुप्त की जागरूकता और कर्मठता प्रशंसनीय है। कर्तव्य के प्रति वह कितना कठोर हो जाता है इसका उदाहरण प्रस्तुत करने वाली पंक्तियां दृष्टव्य हैं– "देश में डोंडी फेर दो कि आर्यावर्त में शस्त्र ग्रहण करने में जो समर्थ है, सैनिक है और जितनी सम्पत्ति है, युद्ध विभाग की है।" इसी के बाद जब एक सैनिक उससे पूछता है कि शिविर आज कहाँ रहेगा? तब चन्द्रगुप्त जवाब देता है " अश्व की पीठ पर सैनिक। कुछ खिला दो, और अश्व बदलो। एक क्षण विश्राम नहीं।"

8. **नीतिज्ञ**– चन्द्रगुप्त को सेनापति होने के नाते युद्ध कौशल और युद्ध नीति का पूरा ज्ञान है। वह जानता है कि यवन सेना का मुकाबला भारतीय रण नीति को अपनाकर नहीं किया जा सकता। इसीलिए वह ग्रीक शिविर में उनकी रण नीति का अध्ययन करता है। युद्ध के मैदान में सेना को किस तरह जमाया जाय यह भी चन्द्रगुप्त भली-भाँति जानता है। उसके कुछ कथन इस बात के प्रमाण हैं– "कल्याणी के मागध सैनिक और क्षुद्रक अपनी घात में रहें यवन को इधर आ जाने दो। सिंहरण, थोड़ी सी हिस्त्रिकाओं पर मुझे साहसी वीर चाहिए। यवनों की जल सेना पर आक्रमण करना होगा। विजय के विचार से नहीं, केवल उलझाने के लिए और उनकी सामग्री नष्ट करने के लिए वह सिंहरण को भी समझा देता है कि यवन सैनिक दूसरी नीति से युद्ध करते हैं। अतः उनसे युद्ध करने के लिए उन्हीं की नीति से युद्ध करना होगा।

यहाँ तक तो चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व का अच्छा पक्ष ही उभरा है किन्तु उसमें कुछ मानव सुलभ दुर्बलताएं भी हैं। लेखक ने शायद उसके चरित्र को सहज और स्वाभाविक बनाये रखने के लिए ही ऐसे प्रसंगों की योजना की है। चन्द्रगुप्त मनुष्य पहले है और सम्राट आद में। यौवन और सौन्दर्य की तरफ आकर्षित होना मानव का स्वभाव है चाहे वह साधारण मनुष्य हो या सम्राट। कल्याणी मालविका और कार्नेलिया के प्रति उसके मन में प्रेम के जो अँकुर लहराते हैं वे इसी बात के सूचक हैं। लेखक ने मालविका के समक्ष चन्द्रगुप्त से यह स्वीकार करवाया है कि उसके मन में सम्राट होने के उपरान्त भी एकाकीपन फैला हुआ है। वह युद्धकाल में भी मालविका के पास कुछ प्रेम भरे पल व्यतीत करने आता है।

इसी भाँति चन्द्रगुप्त में सत्ता का अहम् भी है। जब वह सम्राट बन जाता है तो कुछ समय के लिए जीवन और मरण के साथ देने वाले गुरू की मर्यादा भी भूल जाता है। आचार्य चाणक्य की कूटनीति को समझे बिना ही वह तिलमिलाने लगता है। चौथे अंक में उसके स्वागत की कुछ पंक्तियां देखिये "भीषण संघर्ष करके भी मैं कुछ नहीं हूं मेरी सत्ता एक कठपुतली सी है। तो फिर....मेरे पिता मेरी माता इनका तो सम्मान आवश्यक था। वे चले गये मैं देखता हूं कि नागरिक तो क्या मेरे आत्मीय भी आनंद मनाने से वंचित किये गये। यह परतन्त्रता कब तक चलेगी?"

चन्द्रगुप्त को जिस चाणक्य ने सड़क से उठाकर सम्राट की स्थिति तक पहुँचाया वह उसी चाणक्य को समझने में भूल करता है। जो चाणक्य हर पल चन्द्रगुप्त के नाम लिखता गया, हर कहीं उसी का यश गाता और जिसकी एक ही अदम्य इच्छा थी कि चन्द्रगुप्त को भारत का सम्राट बनाये। उसी पर चन्द्रगुप्त ने शक किया। भारत का सम्राट होने वाले चन्द्रगुप्त में इतनी समझ नही थी कि वह अपने आचार्य और संरक्षक चाणक्य के निर्णय के पीछे छिपी हुई भावना का अनुभव कर सके, यह जानकर हमें कुछ अच्छा नहीं लगता। गुरूदेव के चरणों की शपथ खाने वाला चन्द्रगुप्त ही बाद में उन्हें कह देता है।" अक्षुण्य अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं? केवल साम्राज्य का ही नहीं देखता हूं आप मेरे कुटुम्ब का भी नियंत्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं।" इतनी बड़ी बात उसने केवल इस भ्रम का शिकार होकर कह दी कि चाणक्य ने उसके माता पिता का अपमान किया है। युद्ध में विजय प्राप्त करके लौट रहे चन्द्रगुप्त का स्वागत करना चाहते थे उसके माता पिता किन्तु चाणक्य जानता था कि स्वागत की भीड़ में शत्रु चन्द्रगुप्त का नुकसान कर

सकते हैं और उसे चन्द्रगुप्त का जीवन बचाना था। इसलिए उसने चन्द्रगुप्त का नुकसान कर सकते हैं और उसे चन्द्रगुप्त का जीवन बचाना था। इसलिए उसने चन्द्रगुप्त के माता पिता की इच्छा को पूरा नहीं होने दिया और चन्द्रगुप्त अपने गुरू की उक्त आन्तिरक भावना को न समझ सका या कहें कि भावावेश में आकर उसने गुरू चाणक्य को भी गलत समझ लिया।

इन कमीयों के बावजूद भी चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व इस नाटक में प्रभावशाली हैं। सबसे सक्रिय पात्र है। उसमें बल, शक्ति, साहस, सूझबूझ, स्वाभिमान आदि का अद्‌भुत सामन्जस्य मिलता है।

## चाणक्य

डॉ॰ शान्तिस्वरूप गुप्त के शब्दों में– "चाणक्य एक ऐसे भारत का स्वपन देखता है जो छोटे–छोटे टुकड़ों में विभक्त न हो और अखण्ड सार्वभौम राज्य हो। यहीर नाटक का फल है, नाटक का समस्त कार्य व्यापार इसी फल की ओर उन्मुख है और चाणक्य भी इसके लिए सर्वाधिक प्रयत्नशील है। वही इसका बीज बोता है, उसे पल्लिवत करता है और फल प्राप्त होते ही निष्काम भाव से कर्मपथ से हट जाता है। अतः चाणक्य ही नाटक का नायक है।" डॉ॰ गुप्त का कथन कुछ अंशों तक उचित प्रतीत होता है। सत्यता तो यह है जैसा कि श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने लिखा है–

"चाणक्य तो मौर्य के साथ तपस्या में निरत होने के लिए कर्मक्षेत्र के रंगमंच को छोड़कर चला जाता है। अतएव, फल का उपभोक्ता वह हो नहीं सकता। जो नाटकीय फल का उपभोक्ता नहीं माना जा सकता, वह उस नाटक का नायक भी नही हो सकता।" अतः शास्त्रीय दृष्टि से चन्द्रगुप्त नाटक का नायक है तो व्यावहारिक दृष्टि से चाणक्य को नाटक का नायक माना जा सकता है क्योंकि सभी घटनाओं और स्थितियों में इसका योग है। चारित्र्य के वचिार से भी चाणक्य का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली रहा है।

चाणक्य श्रेष्ठ गुणों का भण्डार है। वह स्वाभिमानी, कर्मठ, योग्य गुरू, दृढ़ संकल्पी और निस्पृही ब्राह्मण है। प्रो॰ भूषण स्वामी का मत दर्शनीय है–चाणक्य एक ऐसा रूढ़ पात्र है जिसके ऊपर विघ्न–बाधाओं आदि का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है। वह एक ऐसा पत्थर है जिसके स्पर्श से लोग निखर तो सकते हैं किन्तु उस पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं छोड़ सकते। पूरे नाटक ही क्या, प्रसाद–साहित्य में वह अकेला पात्र है जो गगन सा गम्भिर, समुद्र सा विशाल, धरती सा क्षमाशील एवं शतशत अनल सा भयंकर है।" उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. **ब्राह्मण धर्म का प्रबल समर्थक** – चाणक्य ब्राह्मण होने के कारण ब्राह्मण धर्म का प्रबल समर्थक है। उसमें जातिगत स्वाभिमान है। वह निर्भिक, निस्पृह त्यागी और स्वतन्त्रचेता है। आम्भीक के कुचक्र सम्बन्धी आरोप का उत्तर देते हुए वह अपने स्वाभिमान, स्वतंत्रचेता और निर्भिकता का परिचय देता है– "राजकुमार, ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, वह स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है।" त्याग, क्षम, तप, और विद्या उसके प्रमुख गुण थे। वह भय अथवा लालच से कोई कार्य नहीं करता है। वह स्पष्ट करता है। वह स्पष्ट कहता है– "लोहे ओर सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। हमारी दी हुई विभूति से हमीं को अपमानित किया जाए, ऐसा नहीं हो सकता।" चन्द्रगुप्त को सेनापति बनने में जब पर्वतेश्वर विघ्न डालता है तब वह ब्राह्मण धर्म की दुहाई देकर स्पष्ट कहता है – "महाराज! धर्म के नियामक ब्राह्मण हैं, मुझे पात्र देकर उसका संस्कार करने का अधिकार है, ब्राह्मणत्व एक सार्वभौमिक शाश्वत बुद्धि वैभव है।" इस प्रकार नाटक में चाणक्य ने सर्वत्र ही ब्राह्मण धर्म की महत्ता प्रदर्शित की है।

2. **कर्मठ एवं दृढ़ प्रतिज्ञ** – चाणक्य दृढ़–प्रतिज्ञ और कर्मठ व्यक्ति है। नन्द कुल के विनाश के लिए वह प्रथम प्रतिज्ञा करता है– "यह शिखा नन्द कुल की काल–सर्पिणी है, वह तब तक बन्धन में न होगी, जब तक नन्द कुल निःशेष न होगा।" उसकी दूसरी प्रतिज्ञा थी– "दया न किसी से माँगूगाँ और अधिकर तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूँगा। चाणक्य दोनों प्रतिज्ञाएँ पूरी करके दिखाता है। अपने बुद्धि बल से वह चन्द्रगुप्त का सेनापति बनाता है तथा सिंहरण, अलका आदि विभिन्न पात्रों के सहयोग से अपनी योजनाएँ क्रियान्वित करता है। अन्ततः उसे सफलता मिलती ही है।

3. **कूटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी** – चाणक्य कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी है। वह सम्पूर्ण भारत को एक देखना चाहता है। देश का कल्याण ही उसका लक्ष्य है। इसके लिए हर सम्भव प्रयास करता है। श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा उसकी नीति पर

# 11-'चन्द्रगुप्त' नाटक का उद्देश्य

साहित्य सृजन एक गम्भीर प्रयास है और गम्भीर प्रयास निरूद्देश्य कैसे हो सकता है? पाश्चात्य हवा के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में भी किसी समय कलावादी विचारधारा ने जोर पकड़ा। किन्तु पाश्चात्य साहित्य के समान यहाँ भी आदर्श से प्रेरित होकर किसी श्रेष्ठ कृति का सृजन नहीं हो पाया। प्रसाद जी एक जागरूक साहित्यकार थे। उनके समक्ष साहित्य संस्कार के साथ-साथ पराधीन भारतीय जनता के मानसिक परिष्कार का उद्देश्य भी था। इस भावना से प्रेरित होकर प्रसाद जी ने अपन समग्र नाट्य–कृतियों में सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीयता की भावना को प्रश्रय दिया। किन्तु एक कुशल साहित्य शिल्पी होने के कारण उन्होंने इन दो प्रमुख उद्देश्यों का इस प्रकार प्रतिपादन नहीं किया कि वे आरोपित लगें बल्कि उन्होंने कला के आवरण में प्रस्तुत किया है।

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के तीन प्रमुख तत्व माने गए हैं वस्तु, नेता और रस। स्मरणीय है भारतीय आचार्यों ने नाट्य–रचना के प्रसंग में उद्देश्य को पृथक् मानकर उसकी चर्चा नहीं की है। उनकी दृष्टि में रस ही चरम उद्देश्य है और यही नाटक का लक्ष्य भी है। साधारणीकरण और रस–निष्पति को सम्पूर्ण प्रक्रिया केवल नाटक के प्रसंग में सटीक बैठती है। अतः स्वभावतः नाट्यशास्त्र में रस को नाटक के अन्य तत्वों की तुलना में विशेष महत्त्व मिला है।

इसके विपरीत पाश्चात्य आचार्यों ने रस के स्थान पर शील वैचिञ्य प्रदर्शन और उद्देश्य को नाट्य रचना का उद्देश्य माना है। प्रारंभ में तो वहाँ भी प्रसाद जी जिस समय नाटक सृजन कर रहे थे उस समय हिन्दी में केवल सुखान्त नाटकों का ही प्रचलन था। प्रसाद के भी अधिकांश नाटक सुखान्त ही हैं। किन्तु उनके कुछ नाटक पारम्परिक सुखान्तकी से भिन्न प्रकार के हैं। तात्पर्य यह है कि उनका अन्त सुःख–दुःख से भिन्न एक विशिष्ट स्थिति में होता है। ऐसे नाटकों को सुखान्त कहा जाये या दुखान्त, यह विवाद का विषय बना हुआ है। 'चन्द्रगुप्त' भी प्रसाद की एक ऐसी कृति है जिसके अन्त के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं।

चन्द्रगुप्त सुखान्त नाटक की श्रेणी में आता है या दुखान्त नाटक की श्रेणी में, इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें कई दृष्टियों से विचार करना होगा। सर्वप्रथम हम नाटक के अन्त को लें। 'चन्द्रगुप्त' अन्त में मौर्य साम्राज्य पर छाए हुए विपत्तियों के सारे बादल छट जाते हैं। नन्द–वंश का अन्त हो जाता है और उसके बाद सिकन्दर भी अपने आक्रमण में विफल होकर वापस लौट जाता है। सन्धि के नियमों को तो सिल्यूकस स्वीकार करता ही है, साथ ही दूरदर्शी चाणक्य उसकी पुत्री कार्नेलिया को भी चन्द्रगुप्त के लिए मांग लेते हैं, चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया एक दूसरे को प्रेम करते हैं और दृष्टि से नायक को नायिका की प्राप्ति होती है। मौर्यवंश का बच रहा एक मात्र शत्रु नन्द आमात्य राक्षस भी सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रति स्वामिभक्त बन जाता है तथा चाणक्य की आज्ञा से उसका मन्त्रित्म स्वीकार कर लेता है। उपर्युक्त सभी घटनाएँ सुख की द्योतक हैं। नाटक के अन्त की कुछ पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं।

चन्द्रगुप्त – "विजेता सिल्यूकस का मैं अभिनन्दन करता हूँ, स्वागत"।

सिल्युकस – "सम्राट चन्द्रगुप्त। आज मैं विजेता नहीं विजित से अधिक भी नहीं हूँ।"

× × ×

कार्नेलिया – "उस बुद्धिसागर, आर्य–साम्राज्य के महामन्त्री, चाणक्य को देखने की बड़ी अभिलाषा थी।"

चन्द्रगुप्त – "उन्होंने विरक्त होकर, शान्तिमय जीवन बिताने का निश्चय किया है।"

(साहसा चाणक्य का प्रवेश, अभ्युत्थान देखकर प्रणाम करते हैं।)

× × ×

चाणक्य – "ग्रीस की गौरवलक्ष्मी कार्नेलिया को मैं भारत की कन्या बनाना चाहता हूँ।"

× × ×

सिल्यूकस – (कार्नेलिया की ओर देखता है, वह सलज्ज सिर झुका लेती है।)

तब आओ बेटी, आओ चन्द्रगुप्त।

(दोनों सिल्यूकस के पास जाते हैं, सिल्यूकस उनका हाथ मिलाता है। फूलो की वर्षा की जय ध्वनि)

चाणक्य – (मौर्य का हाथ पकड़कर) चलो, अब हम लोग चलें।"

नाटक के अन्त की उपरि उद्धृत पंक्तियों पर ध्यान देने से दो बातें उभर कर आती हैं। प्रथम यह कि उक्त सारी घटनाएं सुख और आनन्दवर्धक हैं। जो नाटक के सुखान्त होने की बात सिद्ध करती हैं। दूसरे नाटककार द्वारा चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के पिता का रंगमंच से हटने की सूचना दिया जाना एक प्रकार से नाटककार द्वारा ही नाटक की सुखान्त का खण्डन प्रतीत होता है संपूर्ण नाटक के सुत्रधार के रूप में चाणक्य को प्रेक्षकों के मानस में प्रतिष्ठित कर एकाएक उन्हें वैराग्य ग्रहण करते हुए देख प्रेक्षकों को मानस व्यथित सा हो उठता है। उनकी भावना को एक प्रकार से ठेस लगती है। वस्तुतः सम्पूर्ण नाटक के कलेश्वर में चाणक्य का व्यक्तित्व जितना भास्वर और उदात रूप में प्रस्तुत हुआ है उसे देखते हुए उनका एकाएक सन्यास ग्रहण करना अस्वाभाविक न होने पर भी सामान्य जन मानस के लिए दुःख का कारण बनता है।

वस्तुतः प्रसाद भारतीय जीवन दृष्टि के प्रबल समर्थक साहित्यकार हैं। भारतीय जीवन पद्धति की यही विशेषता है कि वह त्याग में ही गौरव का अनुभव करती है। नाटक के आरम्भ में चाणक्य के व्यक्तित्व का बढ़ता हुआ प्रभाव पाठकों को सुखद प्रतीत होता है। क्योंकि चाणक्य के उस प्रभावशाली व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जिसके नियन्त्रण में देश अपने भीतर और बाहर के शत्रुओं से मुक्ति पा सकें। किन्तु जब भीतर और बाहर शत्रुओं का शमन हो जाता है और नाटक के नायक अर्थात् चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के विकास का समय आता है उस समय भी चाणक्य का पहले वाला नियन्त्रण स्वरूप स्वयं चन्द्रगुप्त को भी पसन्द नहीं आया है और शायद प्रेक्षक भी चाणक्य के इस रूप को और अधिक समय तक पसन्द न कर सकता। वस्तुतः नाटक पढ़ते समय इस स्थल पर आकार पाठक का मानस एक प्रकार से क्षुब्ध हो उठता है और उसे चाणक्य के महत् उद्देश्य में भी सन्देह होने लगता है। जैसे अत्यधिक लोकप्रिय राजनेता भी जब अति महत्त्वाकांक्षी होकर कार्यरत रहते हैं तो उनके महान् उद्देश्य के बावजूद भी उनके क्रिया कलापों पर सन्देह होने लगता है, वही स्थिति नाटक के अन्त में चाणक्य की हो उठी है। नाटककार भारतीय जीवन पद्धति की श्रेष्ठता से पूर्णतः आश्वस्त है अतः उन्होंने चाणक्य से भी उसी आदर्श का पालन करवाया है। वस्तुतः चाणक्य प्रेक्षकों को अत्यन्त प्रिय है अतः उनका सन्यास ग्रहण उनकी भावना को आघात अवश्य पहुँचाता है किन्तु उन्हें चाण्क्य के इस त्याग मंडित व्यक्तित्व के प्रति और अधिक श्रद्धा हो जाती है। नाटककार चाणक्य के इसी मिश्रित व्यक्तित्व की स्थापना करना चाहते थे।

आलोचकों में 'चन्द्रगुप्त' नाटक के सुखान्त या दुःखान्त होने के विवाद का कारण चाणक्य और चन्द्रगुप्त के पिता सन्यास ग्रहण है। किन्तु इस घटना के कारण यदि आलोच्य कृति को सुखान्त नहीं भी माना जाये तो दुःखान्त तो माना ही नहीं जा सकता क्योंकि तब तो वह भारतीय नाट्यादर्श के विरुद्ध होता। वस्तुतः नाटक की अन्तिम घटना के कारण दुःख के स्थान पर शान्ति पूर्ण प्रसन्नता ही बढ़ती है अतः चन्द्रगुप्त नाटक को प्रसादान्त कहना समग्रतः उपयुक्त है। प्रसाद का अर्थ है शान्तिपूर्ण प्रसन्नता जिसकी प्राप्ति दर्शक एवं पाठकों को होती है।

# कहानियाँ

1. **उसने कहा था** -चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

(क) लहना सिंह

(ख) सूबेदारनी

(ग) सूबेदार हजारा सिंह

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

2. **कफन** -प्रेमचन्द

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

(क) घीसू

(ख) माधव

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

3. **आकाशदीप** -जयशंकर प्रसाद

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

(क) चम्पा

(ख) बुद्धगुप्त

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

4. **पत्नी** -जैनेन्द्र

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

(क) कालिन्दी

(ख) सुनन्दा

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

**-उषा प्रियंवदा**

**5. वापसी**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

**-निर्मल वर्मा**

**6. परिंदे**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

(क) लतिका

(ख) डॉ० मुकर्जी

(ग) मि० ह्यूबर्ट

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

**-कमलेश्वर**

**7. बयान**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. नायिका का चरित्र–चित्रण

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

# उसने कहा था

## (पं० चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी')

### तात्त्विक विवेचन

'उसने कहा था' पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित हिन्दी की सर्वाधिक चर्चित कहानियों में से एक है। यह कहानी 'सरस्वती' नामक पत्रिका में सन् 1915 में छपी थी। गुलेरी जी ने इससे पूर्व 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' नामक दो और कहानियाँ भी लिखीं, किन्तु उनकी अमरता का कारण 'उसने कहा था' ही है। इस कहानी ने उन्हें श्रेष्ठ कहानीकारों की अग्रिम पंक्ति में बिठा दिया। यह कहानी हिन्दी कहानी परंपरा में मील का पत्थर मानी जाती है। इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रथम महायुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई इस कहानी में एक सैनिक लहनासिंह के प्रेम से प्रेरित कर्त्तव्य, त्याग और बलिदान की मार्मिक कथा प्रस्तुत की गई है। इस कहानी में वह सर्वांगीण तत्त्व भरे हैं जो युगों–युगान्तरों तक अमर रहेंगे। इसमें सहज मानवीय तत्त्वों का पूर्ण विकास तो है ही सही, उसकी कलात्मकता ने तो उसे चार चाँद ही लगा दिए हैं। विनोद प्रियता, वाक्पटुता, कथावस्तु का स्वाभाविक विकास, कथोपकथाओं की सजीवता, वातावरण की सबल सृष्टि, चरित्रों का अद्भुत चित्रण ये कुछ ऐसी अन्य विशेषताएँ हैं, जो इसे अलग ही प्रतिष्ठित करती हैं। इसमें कहानी कला की सभी विशेषताएँ सन्निहित हो गई हैं।

**1. कथानक (कथावस्तु) :-**

'उसने कहा था' कहानी का कथानक अत्यंत सुन्दर, स्वाभाविक और सुगठित है। कथावस्तु में रोचकता और कौतूहल उत्पन्न करने की विशेष क्षमता है। कहानी का शीर्षक पाठक के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न कर देता है। यह इतना आकर्षक है कि पाठक इसको देखते ही कहानी पढ़ने के लिए लालायित हो उठते हैं। उनके मन में प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं–किसने कहा था? किससे कहा था ? क्या कहा था ? आदि। उनकी जिज्ञासा कहानी के अंत में ही शान्त होती है। इस कहानी का प्रारंभ अमृतसर के बाजार में एक चौक की दुकान से होता है। एक लड़का अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया है और दूसरी ओर से एक लड़की रसोई के लिए बड़ियाँ लेने आई हैं दुकानदार को किसी अन्य ग्राहक से उलझा हुआ देख ये दोनों आपस में सामान्य परिचयात्मक बातें करने लगते हैं। सामान्य परिचय के बाद दुकान से सौदा लेकर वे दोनों साथ–साथ चलते हैं। चलते–चलते रास्ते में लड़का उस लड़की से मुसकुराकर पूछता है–'तेरी कुड़माई हो गई ?' इस पर लड़की स्वाभाविक लज्जा से आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर भाग जाती है। इसी प्रकार उन दोनों की मुलाकात अक्सर इधर–उधर दुकानों पर हो जाती है और लड़का अक्सर अपना उपरोक्त प्रश्न दुहरा देता है। लड़की भी 'धत्' कहकर भाग जाती है। एक दिन पुन वही प्रश्न पूछे जाने पर लड़की लड़के को आशा के विपरीत उत्तर देती है–'हाँ हो गई' और प्रमाण में अपना रेशम से कढा हुआ सालू बताकर भाग जाती है। लड़का लहनासिंह के दिल को इस बात से गहरी ठेस लगती है और वह उस दिन व्याकुल सा राह में आने वालों को अन्यमनस्कता में गिराता ढेलता नशे की सी हालत में अपने घर पहुँचता है। कहानी का पहला दृश्य यहीं समाप्त हो जाता है। कहानी पाँच दृश्यों में विभाजित है। अगले दृश्यों में युद्ध का चित्रण है।

पहले दृश्य में लड़की और लड़के का परिचय और उनके बीच पनपे प्रेम को दिखाकर दूसरे दृश्य में कथानक एकदम लड़ाई के मोर्चे पर पहुँच जाता है। नं० 77 सिक्ख राइफल्स के जवान अंग्रेजों की ओर से फ्रांस में जर्मनी के विरुद्ध मार्चों पर डटे हैं। सूबेदार हजारासिंह की कमान में मोर्चे पर डटे जमादार लहनासिंह तथा अन्य जवान कड़ाके की ठंड होने पर भी उत्साह से भरे हैं तथा पारस्परिक मजाक आदि में व्यस्त हैं। तभी वजीरासिंह लहनासिंह से बीमार बोधासिंह का हालचाल पूछता है और उसकी देखभाल में कहीं खुद लहनासिंह न मांदा पड़ जाए। इस पर लहनासिंह बुलेल की खड्ड के किनारे, भाई कीरतसिंह की गोदी पर सिर होने और अपने हाथ से लगाए आम के पेड़ की छाया के नीचे मरने की बात कहता है। तब वजीरासिंह कहता है कि क्या मरने–मारने की बात लगाई है और सैनिकों में ताजगी भरने के लिए गीत गाता है। दूसरा दृश्य यहीं समाप्त हो जाता है।

तीसरे दृश्य में लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ अपने सैनिक कर्त्तव्य का पालन करते हुए बीमार बोधासिंह को अपने सारे गर्म कपड़े पहनाकर भी देखभाल करता है; तभी एक जर्मन जासूस उन्हें धोखा देने के लिए सिक्ख सैनिकों के लफ्टन साहब का रूप धारण करके आता है और खंदक में दस आदमी छोड़ने की कहकर सूबेदार हजारासिंह को शेष साथियों के

साथ दूसरी खाई की ओर भेज देता है। लहनासिंह लपटन के कपटी रूप को पहचानकर दियासिलाई लाने के बहाने जाकर सोए हुए वजीरासिंह को जगा देता है। तीसरा दृश्य यहीं समाप्त हो जाता है।

चौथे दृश्य में लहनासिंह वजीरासिंह को सारा षडयंत्र समझाकर सूबेदार को वापस बुलाने भेज देता है और लौटने पर कपटी लपटन को तीन गोले रखते देख कुहनी पर बंदूक मारता है। लपटन पिस्तौल की गोली दाग देता है जो लहनासिंह की जाँघ में लगती है, पर लहना अपनी बंदूक से लपटन का सफाया कर देता है। उसके बाद जर्मन सैनिकों से जमकर युद्ध होता है, पीछे से सूबेदार व साथी सैनिक जर्मनों को घेर लेते हैं। दो तरफे आक्रमण से जर्मन समाप्त हो जाते हैं परन्तु लहना को गंभीर घाव हो जाते हैं जिसे वह मिट्टी से पूर लेता है और घाव पर साफा बाँध लेता है। घायलों को ले जाने वाली गाड़ी में लहना सिंह सूबेदार और उसके पुत्र बोधासिंह को जबरदस्ती गाड़ी पर चढा देता है और सूबेदार हजारासिंह से कहता है–"सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।" सूबेदार लहना का हाथ पकड़कर कृतज्ञ होते हैं–"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?" गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया और वजीरासिंह से बोला–"वजीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे, तर हो रहा है। चौथा दृश्य यहीं समाप्त हो जाता है।

पाँचवे दृश्य में लहनासिंह लड़ाई के घावों के कारण मरणासन्न है। इस अवस्था में उसके स्मृति पटल पर अतीत की एक–एक घटनाओं के दृश्य उभर आते हैं। उसे बचपन की घटना लड़की से परिचय और उसकी सगाई होने की बात सुनकर क्रोधित होने की याद आती है। इस घटना के पच्चीस वर्ष बाद की स्मृतियों में लहनासिंह डूबा हुआ है कि वह नं० 77 राइफल्स में जमादार हो गया है और छुट्टी पर घर गया है। अफसर की बुलावे की चिट्ठी आने पर सूबेदार हजारा सिंह की चिट्ठी मिली कि हमारे घर होते हुए जाना। मैं और बोधासिंह साथ चलेंगे। जब चलने लगे सूबेदारनी ने पूछा–मुझे पहचाना ? लहना के मना करने पर सगाई वाली बात याद दिलाकर सुप्त प्रेम को जाग्रत कर दिया और मार्मिक स्वर में कहा कि जिस तरह दही वाले की दुकान के आगे ताँगे से बचाया था और आप घोड़ों की लातों में चले गये थे। ऐसे ही इन सूबेदारजी तथा बोधासिंह को बचाना। अतीत की इन्हीं स्मृतियों में खोये हुए लहनासिंह का सिर वजीरासिंह अपनी गोद में रखे हुए हैं। लहनासिंह बीच–बीच में बड़बड़ाता है–'वजीरा, पानी पिला–उसने कहा था।' थोड़ी देर बाद अपने भाई कीरतसिंह व अपने लगाए आम के पेड़ को मूर्च्छा में याद कर बड़बड़ाते हुए अपने प्राण त्याग देता है।

इस प्रकार कथानक संघटन बड़े ही कलात्मक ढंग से सुगठित है। आदि, मध्य और अंत को बड़ी सुन्दरता से एक–दूसरे से जोड़ा गया है। इसमें आदि मध्य से बिल्कुल अलग दिखाई देता है, पाठक को कथासूत्र ही हाथ नहीं लगता परन्तु अंत में कहानी का सम्पूर्ण आकर्षण उद्दीप्त हो उठता है और पाठकों की जिज्ञासा शांत हो जाती है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है–"कहानी दृश्यों में विभाजित है। इसका पहला दृश्य लड़की और लड़के के पहले परिचय का चित्र है जो कहानी से कटकर सृजन–प्रक्रिया का अंग न रहकर कहानीकार के स्मृति–पटल पर अंकित रहता है। अगले दृश्यों में युद्ध का चित्रण है। पाठक पहले दृश्य को भूल जाता है; लेकिन 25 साल के बाद लहनासिंह के स्मृति चित्रों के माध्यम से यह दृश्य गहरे रूप में कहानी से फिर जुड़ जाता है। इस तरह यह 'बेकार' अंश अंत में कहानी का अंग बन जाता है। इस तरह कहानी के विभिन्न अंश एक शृंखला में बंध जाते हैं, घटना, उद्देश्य, चरित्र, वातावरण आदि सिमटकर पाठक अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं।"

**2. पात्र एवं चरित्र-चित्रण :-**

प्रस्तुत कहानी में यों तो अनेक पात्र हैं किन्तु प्रमुख पात्र लहनासिंह ही है। उसका चरित्र कहानीकार ने बड़ी सफलता से चित्रित किया है। लहनासिंह कर्त्तव्य पर बलिदान होने वाला निस्वार्थी युवक है। उसमें देश प्रेम की भावना कूट–कूट कर भरी हुई है। उसका त्याग और बलिदान आदर्श रूप में उपस्थित होता है। कहानी में उसके सम्पूर्ण जीवन की झांकी उपस्थित हुई है। उसका परिचय पाठकों को एक चंचल बालक के रूप में होता है। लड़की से 'तेरी कुड़माई हो गई ?' का प्रश्न पूछना और उत्तर में 'धत्', और 'हाँ' सुनकर चंचलता में भीड़ से टकराता हुआ घर को जाना उसके चरित्र का मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसके पश्चात् लहनासिंह जमादार के रूप में फ्रांस के मोर्चे पर दिखाई देता है। वह अत्यंत दृढ़ता से अपने सैनिक कर्त्तव्य की रक्षा करता हुआ दिखाई देता है। वह अपने को संकट में डालकर खंदक की रक्षा में तत्पर होता है। लहना को प्रेम से कर्त्तव्य अधिक प्रिय है। जिस पंजाबी लड़की की कुड़माई (सगाई) होने की सुनकर वह कभी विचलित हो उठा था, वही उसको अपने पति और पुत्र की रक्षा का भार सौंपती है। वह गुरुता से अपने इस कर्त्तव्य का पालन करता है। उसकी वीरता ओर

कुशलता से ही शत्रुओं के प्रयत्न विफल होते हैं तथा बोधा की भी रक्षा होती है। इस प्रकार इस कहानी में लहनासिंह के रूप में नवयुवकों को प्रेरणा देने वाले एक आदर्शपूर्ण पात्र की योजना की है। शेष पात्रों में सूबेदार हजारासिंह एक सीधे-साधे सैनिक हैं। वह बिना सोचे समझे अपने बड़े अधिकारियों की आज्ञा का पालन करना जानते हैं। जर्मनी लपटन अत्यंत चालाक तथा धूर्त है। वजीरा सिंह आदि अन्य सैनिक कर्त्तव्यनिष्ठ हैं। पात्र योजना और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह एक सफल कहानी है।

**3. कथोपकथन (संवाद) :-**

कहानी में कथोपकथन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्‌घाटित करने के साथ-साथ कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाते हैं। परिस्थिति एवं पात्रों को जोड़ने के लिए और आंतरिक भावों एवं मनोवृत्तियों के उद्‌घाटन के लिए कथोपकथन (संवाद-तत्व) की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। 'उसने कहा था' कहानी के कथोपकथन मनोवैज्ञानिक, सजीव और परिस्थिति के अनुकूल है। अमृतसर के बाजार में लड़का और लड़की की बातचीत में कथोपकथन की सभी विशेषताएँ समन्वित हो गई हैं :-

'तेरे घर कहाँ है ?'

'मगरे में – और तेरे ?'

'माँझे में – यहाँ कहाँ रहती है ?'

अतर सिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ। उनका घर गुरु बाजार में है।'

कथोपकथनों की भाषा स्वाभाविक और परिस्थिति के अनुकूल है। पंजाबी वातावरण होने के कारण पंजाबी भाषा के शब्द भी यत्र-तत्र आ गये हैं। कहीं-कहीं पर कथोपकथन पूर्ण रूप से नाटकीयता लिये हुए हैं। निम्न उदाहरण में देखिए -

कौन – वजीरासिंह।

हाँ – क्यों लहना क्या कयामत आ गई – जरा तो आँख लगने दी होती।

होश मे आओ – कयामत आई है और लपटन की वर्दी पहनकर आई है।

क्या ?

इस प्रकार कहानी के संवाद रोचक गतिशील, प्रभावशाली तथा भावाभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ हैं।

**4. वातावरण (देश-काल) :-**

कहानी का प्रारम्भ वातावरण का चित्र उपस्थित कर देता है। अमृतसर के बाजार में बंबूकार्ट का सजीव वर्णन है। इसी प्रकार की शब्दावली को हम नित्य-प्रति शहरों में इक्के-ताँगे वालों के मुख से सुनते हैं। कहानीकार पंजाबी वातावरण सफलता के साथ उपस्थित करके उसके बीच में पंजाबी लड़का और लड़की को मिलाता है। इसी प्रकार फ्रांस की युद्धभूमि का सजीव चित्रण, शीत की ठिठुरन, मेंम की चर्चा आदि के सफल चित्रण के कारण कहानी का कथानक यथार्थ-सा लगने लगता है। कहानी में वातावरण का निम्न चित्र लहनासिंह की मृत्यु की ओर संकेत देते हुए परिस्थिति को कितना बिम्बग्राही बना देता है-"लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ क्षयी नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी, जैसी बाणभट्ट की भाषा में दन्तवीणोपदेशाचार्य कहलाती है।"

**5. भाषा-शैली :-**

भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढंग शैली है। प्रस्तुत कहानी की भाषा मँजी हुई परिष्कृत है। उसमें माधुर्य, प्रसाद और ओज तीनों गुणों के साथ-साथ सरलता, स्वाभाविकता और प्रवाहमयता मिलती है। कहानी में आँचलिक भाषा का प्रयोग सुन्दर और मुहावरेदार है। स्थानीय भाषा वातावरण का गतिमय चित्र पाठक के सामने प्रस्तुत कर देती है। भाषा में पंजाबीपन का आधिक्य कथानक को सजीव और गति प्रदान करने में बहुत ही सहायक हुआ है। जबान के कोड़े, कान पक गए, मीठी छुरी, आँखे चढ़ाना, दूर की सोचना आदि आम प्रचलित मुहावरों का उचित प्रयोग कहानी की भाषा को समर्थ व भावाभिव्यंजक बनाता है। खालसाजी, हटो बाछा, जीऊण्ण जोगिए, उमरांवालिए, कुड़माई, होराँ आदि

शब्दों के प्रयोग से आंचलिक और स्थानीय रंग उपस्थित हो गया है।

कहानी की शैली में विशिष्टता और वक्रता है किन्तु कथानक की सरसता, रोचकता तथा रोमांचकारी विवरण उसकी वक्रता या दुरूहता को खटकने नहीं देते। शैली और शिल्प विधान की दृष्टि से यह अद्‌भुत है। कहानी का आरम्भ और मध्य, अंत द्वारा बहुत ही कलात्मकता से जुड़े हैं। कथानक का बीच में से टूटना और एक अद्‌भुत सृजन से जुड़कर इतना सुगठित और सम्बद्ध हो जाना इस कहानी की उत्कृष्ट शैली और शिल्प विधान का उदाहरण है।

**6. उद्देश्य :-**

कर्त्तव्यपरायणता के साथ प्रेम की निर्मल तथा पावन अनुभूति की रक्षा करना ही प्रस्तुत कहानी का मुख्य उद्देश्य हैं, जिसमें कहानीकार को पूर्णतया सफलता मिली है। साथ ही जीवन की दुरूहता, राजभक्ति, वचनपालन, दूसरे के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर देना और उसका किंचित भी विज्ञापन न करना आदि का चित्रण भी कहानी में सुन्दरता से किया गया है।

'उसने कहा था' कहानी की सभी समीक्षकों ने प्रशंसा की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं–"इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ संपुप्ति है। घटना इसकी ऐसी है, जैसी बराबर हुआ करती है, पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है--केवल झाँक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्जता, वेदना की वीभत्स विङ्कृत्ति नहीं है। सुरुचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।" डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने इस कहानी की विशिष्टता प्रतिपादित करते हुए इसे अमर कहानी कहा है–"इसमें किशोरावस्था के प्रेमांकुर का विकास, त्याग और बलिदान से ओत--प्रोत पवित्र भावना के रूप में किया गया है। कहानी का अंत गंभीर एवं शोकपूर्ण होते हुए भी उसमें हास्य और व्यंग्य का समन्वय इस ढंग से किया गया है कि उसमें मूल स्थायी भाव को कोई ठेस नहीं पहुँचती। विभिन्न दृश्यों के चित्रण में सजीवता, घटनाओं के आयोजन में स्वाभाविकता एवं शैली की रोचकता सभी विशेषताएँ एक से एक बढ़कर हैं। कहानी की प्रथम पंक्ति ही पाठक के हृदय को पकड़कर बैठ जाती है और जब तक पूरी कहानी नहीं पढ़ लेता, उसे छोड़ती नहीं तथा जिसने एक बार कहानी को पढ़ लिया वह 'उसने कहा था' वाक्य को कदाचित जीवन–भर भूल नहीं पाता। क्या भाव, क्या विचार, क्या शिल्प और क्या शैली–सभी की दृष्टि से यह कहानी एक अमर कहानी है।"

### प्रष्टव्य

1. कहानी कला की दृष्टि से 'उसने कहा था' कहानी की सनीक्षा कीजिये।
2. 'उसने कहा था' नामक कहानी की विशेषताएँ लिखिये।
3. 'उसने कहा था' कहानी की समालोचना के स्तर पर परखते हुए हिन्दी कहानी साहित्य में उसका मूल्यांकन कीजिये।

## II. कहानी-सार

हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने केवल तीन कहानियां ही साहित्य--संसार को प्रदान की हैं, परन्तु यदि केवल वे 'उसने कहा था' ही लिखते तब भी उनका नाम साहित्य में अमर होता। यह हिन्दी की पहली सर्वांगपूर्ण, यथार्थवादी कहानी है जो कला की प्रत्येक कसौटी पर खरी उतरती है। प्रेम, शौर्य और त्याग जैसे महान आदर्शों की आधारभित्ति पर खड़ी यह कहानी लहनासिंह के चरित्र द्वारा भारतीय किसान की जीवटता, साहस, बुद्धिमानी और कर्त्तव्यपरायणता को दर्शाती है। कहानी का सारांश इस प्रकार से है–अमृतसर के चौक बाजार में एक बारह वर्षीय सिख बालक तथा आठ वर्षीय सिख बालिका मिलती है। प्रारम्भिक परिचय हो जाने पर पता चलता है कि दोनों ही अपने मामा के यहां आए हुए हैं। बालक अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया है और बालिका रसोई के लिए बड़ियां। लड़का अपने चंचल व चुलबुलेपन के कारण लड़की से पूछता है कि क्या तेरी कुड़माई हो गई ? इस पर बालिका आँखें चढ़ाकर धत् कहकर भाग जाती है और लड़का मुंह देखता रह जाता है। इस प्रकार हर दूसरे दिन वे दोनों किसी सब्जी वाले की दुकान पर, किसी दूध वाले के यहाँ मिल जाते और लड़का वही प्रश्न दोहराता और लड़की धत् कहकर भाग जाती है। लेकिन एक दिन लड़के ने

वही चिर–परिचित प्रश्न पूछा और लड़की ने कहा –"हाँ हो गई है।" देखते नहीं रेशम का यह कढ़ा हुआ सालू। लड़की सकुचाकर भाग जाती है और लड़के पर मानो वज्रपात हो जाता है तथा वह भयंकर तोड़–फोड़ करता हुआ घर पहुंचता है। रास्ते में एक लड़के को मोरी में धकेल देता है, एक छाबडी वाले की दिन–भर की कमाई को बिखरवा देता है और कुत्ते का पत्थर मारता है, गोभी वाले के ठेले में दूध उड़ेल देता है और किसी वैष्णवी से टकराकर अंधा होने का उपाधि प्राप्त करता है। इस प्रकार कहानी का पहला भाग नाटकीय ढंग से समाप्त होता है। उस बारह वर्षीय बालक का नाम लहनासिंह तथा बालिका का नाम सूबैदारनी है। इस घटना को घटे पच्चीस वर्ष हो गये हैं और कहानी का नायक लहनासिंह सेना में जमादार के पद पर नियुक्त हो गया है। इस समय वह गांव के किसी मुकद्दमे की पैरवी करने के लिए सात दिन की छुट्टी लेकर आया हुआ है तभी उसे रेजीमैंट के अफसर की चिट्ठी मिलती है कि तुरन्त चले आओ, फौज को लाम पर जाना है। उसी समय उस सूबेदार हजारासिंह की भी चिट्ठी मिलती है कि हमें भी लाम पर जाना है, अतः जाते वक्त इधर से ही चलेंगे। इसीलिए हमारे पास आ जाना। सूबेदार का घर रास्तें में पड़ता था और सूबेदार की लहनासिंह के साथ आत्मीयता था। जब तीनों चलने लगे तो सूबेदार ने लहनासिंह को कहा कि सूबेदारनी तुम्हें जानती है, इसीलिए बुला रही हैं, जा मिलकर आ। लहना आश्चर्यचकित हो गया, क्योंकि वह तो सेना के क्वार्टरों में कभी रही नहीं। अतः जान–पहचान कैसे हो गई ? लेकिन लहनासिंह अन्दर मिलने के लिए जाता है तो सूबेदारनी 'कुड़माई वाला' प्रसंग दोहराकर उसकी स्मृतियों को पुनः जागृत कर देती है। वह निवेदन करती है कि जिस प्रकार उसने एक बार घोड़े की लातों से उसके प्राण बचाए थे ठीक इसी प्रकार से मेरे पुत्र और पति के प्राण बचाना। वह उसके समक्ष अपना आंचल पसार कर भीख मांगती है। हजारासिंह उसका पुत्र बोधासिंह तथा लहनासिंह युद्ध स्थल पर पहुंच जाते हैं और वहां जाते ही बोधासिंह बीमार पड़ जाता है लेकिन लहनासिंह उसकी प्राणपण से देखभाल करता है। अपनी सुख–सुविधाओं का परित्याग करके अपनी गर्म जर्सी उसे पहनाता है, अपने तख्तों पर उसे सुलाता है तथा उसका पहरा भी स्वयं देता है। सूबेदार हजारासिंह बोधासिंह की देखभाल के बारे में लहनासिंह को कहता है–"रात–भर तुम दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा देते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौते हैं और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" जब बोधासिंह को सर्दी के कारण ज्यादा कंपकंपी छूटने लगती है तो वह उसे झूठ बोलकर अपनी गर्म जर्सी पहनाता है–"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।" स्वय खाकी कोट और जीन का कुर्ता पहनकर पहरा देता है और अपने गर्म वस्त्र बोधासिंह को पहना देता है। तभी एक जर्मन लपटन जासूस बनकर आता है और कुछ सैनिकों को छोड़कर शेष को दूसरे स्थान पर जाकर जर्मन खंदक पर आक्रमण करने का आदेश देता है। आदेश की पालना हेतु हजारासिंह सैनिकों को लेकर चला जाता है। वहां लहनासिंह और बीमार बोधासिंह के अलावा और सैनिक बाकी रह गये थे। लहनासिंह की कुशाग्र बुद्धि ने भाँप लिया कि वह जासूस है। उसने थोड़ी देर बाद सिगरेट सुलगाया तो लहनासिंह ने आग की रोशनी में उसे पहचान लिया तथा वह दियासिलाई के बहाने खन्दक में चला जाता है और कश्मीरासिंह को हजारासिंह के पास भेज देता है। तभी लहनासिंह देखता है कि लपटन साहब तीन गोले खंदक की दीवारों में लगा देता है और उन्हें जलाने वाला ही होता है कि लहनासिंह उसकी कुहनी पर बन्दूक का बट मारकर घायल कर देता है और उसकी जेबों की तलाशी लेकर उसके आवश्यक कागजात निकाल लेता है। तभी लपटन साहब को होश आता है और वह एक्टिंग करके कि जैसे उसे ठण्ड लग रही है, जेबों में हाथ डालकर लहनासिंह पर फायर करता है। गोली लहनासिंह की बांह में लगती है, लेकिन लहनासिंह दो फायर करके उसकी कपाल क्रिया कर देता है। तभी सत्तर जर्मनों की एक टुकड़ी खाई में घुस पड़ती है तथा लहनासिंह और उसके बहादुर साथी पूरी शूरवीरता के साथ मुकाबला करते हैं। तभी हजारासिंह और उसके सैनिक साथी भी वहाँ पहुँच जाते हैं और इस प्रकार से जर्मन सैनिक दो पाटों के बीच में फंस जाते है। आगे से लहनासिंह और उसके साथी आक्रमण कर रहे हैं तथा पीछे से सूबेदार हजारासिंह और उसके बहादुर सैनिक संगीनें पिरो रहे। ये बहादुर सिख सैनिक जल्दी ही दुश्मनों को यमलोक भेज देते हैं। इसी आक्रमण में एक गोली लहनासिंह की पसली में आकर लगती है तथा वह घाव को खदक की गीली मिट्टी से पूर देता है और साफा कसकर कमरबन्ध की तरह लपेट लेता है। किसी को भी यह पता नहीं चलता कि लहनासिंह को भारी घाव लगा है। युद्ध स्थल पर भी वह अपने प्राणों की चिन्ता न करके सूबेदारनी के बेटे बोधासिंह को बचाता है। यद्यपि इस कोशिश में वह स्वयं घायल हो जाता है। अपनी घातक घायल अवस्था के बारे में किसी को नहीं बताता और शत्रु पक्ष की पराजय के बाद घायल सूबेदार हजारासिंह और उसके बीमार पुत्र बोधासिंह को इलाज हेतु गाड़ी में भिजवा देता है–स्वयं नहीं जाता तथा चलते हुए कहता है कि सुनिए तो, सूबरेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो उससे कह देना कि उसने जो कहा था, वह मैंने पूरा कर दिया है।

सूबेदार पूछता है कि उसने क्या कहा था ? कि तभी गाड़ी चल दी। गाड़ी के जाते ही लहनासिंह वजीरासिंह से पानी मांगता है और अपना कमरबंध खोलने को कहता है। कमरबंध खून से सना हुआ था। मृत्यु के कुछ समय पूर्व उसकी (व्यक्ति) की स्मृति अत्यन्त तीव्र और साफ हो जाती है। लहनासिंह को भी अपने जीवन की सारी घटनाएँ चलचित्र की भाँति घूमने लगती है। लहनासिंह को भी अपने जीवन की सारी घटनाएं याद हो उठती हैं। वह कभी सूबेदारनी के शैशवावस्था के प्रसंगों को स्मरण करता है तो कभी उसके कहे गए शब्दों को याद करता है। कभी वह कामना करता है कि "मैं तो बुलैल की खड्ड के किनारे मरूंगा और भाई कीरतसिंह की गोद में मेरा सिर होगा और हाथ के लगाए हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।" लहनासिंह के मुख से अन्तिम वाक्य निकला--"उसने कहा था"। कुछ दिन बाद अखबारों में घायलों की एक सूची छपी--जिसमें फ्रांस और बेल्जियम--68 वीं सूची मैदान में घावों से मरा नं० 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

इस प्रकार लहनासिंह और सूबेदारनी के हृदय में बचपन की छोटी--सी मुलाकात से हुए परिचय के कारण जो अतीन्द्रिय प्रेम की उत्पत्ति हुई, उसी कारण लहनासिंह ने अपने प्राणों को होम करके सूबेदारनी के पुत्र और पति की रक्षा करता है, क्योंकि उसने कहा था।

## III. चरित्र-चित्रण

### (क) लहनासिंह

1915 ई० में प्रकाशित पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित 'उसने कहा था' यद्यपि हिन्दी की प्रारम्भिक कहानी है, लेकिन ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से बेजोड़ है। डॉक्टर चितरंजन मिश्र ने 'उसने कहा था' के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा था--"इस कहानी में प्रसाद का रोमांटिक आदर्श अपनी पूरी रंगीनी में उपस्थित है और यह भी एक ऐतिहासिक सच है कि प्रसाद की महत्त्वपूर्ण रोमांटिक कहानियां 'उसने कहा था' के बाद की है। लहनासिंह के आत्मार्पण की करुण कथा और पवित्र प्रेम के लिए किए गए निःस्वार्थ बलिदान की यह कहानी अपने सहज रसोद्रेक के कारण हिन्दी कहानी साहित्य का 'माइल स्टोन' बन सकी। 'उसने कहा था' के साथ हिन्दी कहानी ने अपने विकास की नयी मंजिलें शुरु की हैं।" **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** भी 'उसने कहा था' को सर्वश्रेष्ठ कहानी स्वीकारते हैं--"उसमें यथार्थवाद के बीच सुरुचि की चरम् मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम् उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ सम्पुटित हुआ है। इसकी घटनाएं ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।" प्रस्तुत कहानी के सभी पात्र जीवन्त, आकर्षक और सजीव हैं। लहनासिंह इस कहानी का नायक है तथा सूबेदारनी, सूबेदार हजारासिंह और उसका बेटा बोधासिंह आदि प्रमुख पात्र है और वजीरासिंह, लपटन साहब आदि गौण पात्र है। लहनासिंह के अद्भुत शौर्य, साहस और त्याग का मार्मिक चित्रांकन प्रस्तुत कहानी में हुआ है। वचन का धनी लहनासिंह सूबेदारनी के पुत्र बोधासिंह और पति हजारासिंह के प्राणों को बचाने हेतु आत्मोत्सर्ग कर डालता है। उसकी त्यागवृत्ति वहाँ भी दृष्टिगोचर होती है, जहां वह अपने सुखों का परित्याग करके, भीषण कड़कड़ाती सर्दी में अपनी जरसी बोधासिंह को पहना देता है और स्वयं खाकी कोट और जीन का कुर्ता पहनकर पहरे पर खड़ा होता है। उसकी चारित्रिक विशेषताएं इस प्रकार से हैं--

1. ***नायक*** -- गुलेरी द्वारा रचित 'उसने कहा था' के नायकत्व के पद पर अधिष्ठित है--वचन का धनी, शौर्य और वीरता की जीवन्त प्रतिमा--लहनासिंह। वह कहानी का केन्द्रीय चरित्र भी है तथा सम्पूर्ण कथावस्तु का घटनाचक्र भी उसी के चारों ओर चक्कर काटता है। वह कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है तथा सारी घटनाओं का ताना--बाना भी उसी के चारों ओर बुना हुआ है। अमृतसर के चौक बाजार में उसी का परिचय बालिका से होता है तथा वही लड़की से पूछता है 'तेरी कुड़माई हो गई है' वही लड़की को घोड़े की लातों से बचाता है और कुड़माई हो जाने पर उसी के मानसिक क्षोभ, व्यथा और आक्रोश को अभिव्यक्ति मिली है। कहानी की सभी घटनाएं प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में लहनासिंह से ही सम्बन्धित हैं। कहानी का फलभोक्ता भी वही है और सूबेदारनी के पुत्र बोधासिंह की बीमारी की अवस्था में पूरी देखभाल करता है तथा अपनी जरसी असत्य का आश्रय लेकर उसे पहनाता है और स्वयं भीषण कड़कड़ाती सर्दी में खाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरा देता है। उसका पहरा स्वयं देता है और स्वयं कीचड़ में पड़े रहकर उसे सूखे लकड़ी के तख्तों पर सुलाता है। रात--भर दोनों कम्बल उसे उढ़ाता है और स्वयं सिगड़ी के सहारे रात बिताता है। इसी प्रकार युद्ध स्थल पर भी सूबेदारनी के पुत्र बोधासिंह एवं पति हजारासिंह के प्राण बचाता है तथा स्वयं आत्मोत्सर्ग कर डालता है। कहानी के अन्य पात्र--सूबेदार हजारासिंह, सूबेदारनी, बोधासिंह, वजीरा, कीरतसिंह आदि सभी लहनासिंह के चरित्र को प्रकाशित व महिमामण्डित करते हैं। अतः लहनासिंह ही निर्विवाद रूप से कहानी का नायक सिद्ध होता है।

**2. साहसी व्यक्तित्व का स्वामी** – लहनासिंह प्रस्तुत कहानी में साहसी व्यक्तित्व के स्वामी के रूप में चित्रित हुआ है। असीम साहस के कारण ही वह अपने प्राणों को संकट में डालकर बालिका के प्राणों की रक्षा करता है। सूबेदारनी कहती है–"तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना, यह मेरी भिक्षा है।" इसी प्रकार युद्ध स्थल पर भी उसका साहस देखते ही बनता है, वह युद्ध करने के लिए लालायित है। लहनासिंह के ये निम्न वचन उसके साहसी व्यक्तित्व को ही उजागर करते हैं–"बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो।" इसी प्रकार युद्ध स्थल पर भी उसका साहस मुखरित हो उठा है। सत्तर जर्मन सैनिकों के साथ युद्ध में भी वह अत्यन्त साहस और शूरवीरता के साथ लड़ता है तथा वजीरासिंह के यह कहने पर कि तुम [illegible] ही हो, वह अपने साहस और शूरवीरता का प्रदर्शन करते हुए कहता है–"आठ नहीं दस लाख। एक–एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है।" इस प्रकार वह अपने प्राणों को जोखिम में डालकर बालिका, बोधासिंह व हजारासिंह को बचाता है। अतः स्पष्ट है कि लहनासिंह साहसी व्यक्तित्व का स्वामी है।

**3. आदर्श प्रेमी** – लहनासिंह को प्रस्तुत कहानी में आदर्श प्रेमी की कोटि में रखा जा सकता है। हर रोज [illegible] चौक बाजार में लड़की से मिलने पर और अपने शरारती स्वभाव के कारण पूछने पर–तेरी कुड़माई हो गई है, उसके [illegible] से स्नेह सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं और इसी मोहवश वह अपने प्राणों को संकट में डालकर बालिका को घोड़ों की [illegible] से बचाकर तख्त पर खड़ा कर देता है। लड़की से यह सुनकर कि 'कुड़माई हो गई है' उस पर मानो वज्रपात हो [illegible] वह रास्ते में एक लड़के को मोरी में धकेलता है, छाबड़ी वाले की दिन–भर की कमाई को बिखरा देता है और [illegible] तोड़–फोड़ करता हुआ घर पहुंचता है। शायद इस खबर से वह आहत हो उठता है, क्योंकि उसका लड़की [illegible] आत्मीयता–लगाव है। पच्चीस वर्ष बाद जब वह सूबेदार हजारासिंह के घर पहुंचता है तो सूबेदारनी अपने बाल–मित्र [illegible] पहचान लेती है। अपने मोह–प्रेम या स्नेह के बल पर वह उससे अपने पति सूबेदार हजारासिंह व पुत्र बोधासिंह [illegible] की भिक्षा आंचल पसारकर मांगती है जिसे वह आत्मोत्सर्ग करके भी पूरा करता है। कहानीकार स्पष्ट लिखता है [illegible] पर लेट गया। भला आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख [illegible] जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया।" सूबेदार ने चढ़ते–चढ़ते लहना का हाथ [illegible] कहा–"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तू ही क[illegible] क्या कहा था।" लेकिन लहनासिंह का बालिका–सूबेदारनी के प्रति प्रेम अत्यन्त सात्विक, स्वस्थ, उज्ज्वल और अ[illegible] सूक्ष्म, अशरीरी प्रेम के कारण ही लहनासिंह को आदर्श प्रेमी कहा जाता है। उसमें कहीं भी वासना की दुर्गन्ध नहीं है, न [illegible] है और न दैहिक प्रेम है।

**आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने इसी उदात्त–अलौकिक और अशरीरी प्रेम की प्रशंसा करते हुए लिखा है–[illegible] ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर इसके भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय रूप झांक रहा है। केवल झांक रहा है, [illegible] के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स विवृत्ति नहीं [illegible] स्पष्ट है कि लहनासिंह का प्रेम आदर्श, दिव्य, अशरीरी, अलौकिक है। इसी कारण उसे आदर्श प्रेम कहा जा सक[illegible]

**4. कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त प्रतिमा** – लहनासिंह प्रस्तुत कहानी में कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त प्रतिमा के रूप में [illegible] हुआ है। जब जासूस लपटन साहब बनकर उनकी खंदक में आ जाता है तो वह अपनी कुशाग्र बुद्धि के बल पर [illegible] चतुरता से भांप लेता है कि वह लपटन साहब नहीं, बल्कि जर्मन जासूस है। वह जासूस को स्पष्ट कहता है–"[illegible] हो, पर मांझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आंखें चाहिये। इसी [illegible] वह अपनी त्वरित कुशाग्र बुद्धि के बल पर प्रश्नोत्तर द्वारा उसकी वास्तविकता को भांपने का प्रयास करता है तथा [illegible] देता है–"होश में आओ। कयामत आयी है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आयी है।"

क्या ?

लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार [illegible] मुंह नहीं देखा। मैंने देखा है, और बातें की हैं। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट [illegible] है।" इसी प्रकार से वह गांव में आए तुरकी मौलवी को भी अपनी तीव्र–कुशाग्र बुद्धि से जान लेता है कि वह जर्मन [illegible]

जो गांववासियों को सरकार के विरुद्ध भड़काता है। इसीलिए सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर, उसकी तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।" उसकी कुशाग्र बुद्धि के कारण ही तिरसठ जर्मन सैनिक या तो आहत होते हैं या मारे जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि लहनासिंह प्रस्तुत कहानी में कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त प्रतिमा के रूप में चित्रित हुआ है।

**5. धीर-वीर-निर्भीकमना** – लहनासिंह 'उसने कहा था' कहानी में 'धीर–वीर–निर्भीकमना' नवयुवक के रूप में चित्रित हुआ है। वीर सिपाही होने के कारण वह संकट की घड़ी में न तो साहस छोड़ता है और न मानसिक संतुलन। युद्ध के मोर्चे पर वह एक वीर नायक के रूप में दृष्टिगोचर होता है। खंदक में बैठे–बैठे वह उकता गया है और शत्रु पर आक्रमण करने में ही वह भलाई समझता है। वह स्पष्ट घोषणा करता है–"मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो।" वह कहता है कि "यदि एक धावा हो जाए तो गरमी आ जाए।" अपनी वीरता का प्रमाण देते हुए वह सत्तर सैनिकों के साथ बहादुरी से लड़ता है। वजीरासिंह के कहने पर वह अपनी वीरता का परिचय देते हुए कहता है–"आठ नहीं एक–एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है।" इसी प्रकार वह जासूस साहब को भी कपाल क्रिया कर देता है। वह सेना में नायक जमादार के पद पर आसीन है और अंग्रेजों की ओर से फ्रांस की युद्ध भूमि पर लड़ने के लिए जाता है। युद्ध क्षेत्र में वह स्पष्ट स्वीकारता है कि बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही।" कहानीकार ने लिखा है–"इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिखों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले को रोका। दूसरे को रोका। पर यहां थे आठ (लहनासिंह ताक–ताककर मार रहा था–वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर।" यह उसकी वीरता का पुख्ता प्रमाण है कि वह घायल हो जाने पर–जांघ में लगी गोली लगी थी, फिर भी खन्दक पर आक्रमण होने पर निडरता के साथ लड़ता है।

**6. कर्त्तव्यनिष्ठ** – लहनासिंह कर्त्तव्यनिष्ठ वीर सैनिक है। वचन का धनी लहनासिंह सूबेदारनी को दिए गए वचन की पालना में अपने प्राणों की आहुति देने में भी नहीं चूकता। सूबेदारनी के बीमार पुत्र की प्राणपन से देखभाल करता है तथा भीषण कड़कड़ाती सर्दी में अपनी जर्सी उसे पहनाता है और स्वयं खाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरा देता है। इतना ही नहीं, सूबेदार हजारासिंह भी लहनासिंह की कर्त्तव्यनिष्ठा व उसके बीमार पुत्र बोधासिंह की देखभाल के बारे में कहता है–"रात भर तुम दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" इसी प्रकार से जब बीमारों को लेने के लिए गाड़ी आती है तो वह स्वयं न जाकर बोधासिंह व सूबेदार साहब को सूबेदारनी की कसम देकर भेज देता है–"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है तो इस गाड़ी में चले जाओ।" इसी प्रकार सूबेदार साहब जाते–जाते लहना का हाथ पकड़कर कहते हैं–"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं । लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे । अपनी सूबेदारनी से तू ही कह देना। उसने क्या कहा था।" इस प्रकार वह प्राणों की बाजी लगाकर अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करता है।

**7. सिपाही या जमादार के पद पर आसीन** – 'उसने कहा था' कहानी का नायक लहनासिंह सेना में जमादार के मामूली पद पर आसीन है, लेकिन यहां पर भी किसानी जीवन के मधुर स्वप्न देखता है। वह सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्में की पैरवी करने के लिए आया हुआ है। कहानीकार यह तो स्पष्ट नहीं करता कि वह विवाहित है या अविवाहित, परन्तु उसका भी भतीजा है कीरतसिंह जिसकी गोदी पर सिर रखकर वह मरना चाहता है–"मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूंगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और हाथ के लगाए हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।" उसे सरकार से न तो जमीन, जायदाद की उम्मीद है और न खिताब की, बल्कि वह तो अंग्रेजी सरकार की वफादारी हेतु युद्ध में शामिल हुआ है। खंदक में पड़े–पड़े भी उसकी कृषक मानसिकता ही प्रकट होती है। लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा–"अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब–भर में नहीं मिलेगा।"

"हां, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घूमा जमीन यहां मांग लूगा और फलों के बूटे लगाऊंगा।"

## (ख) सूबेदारनी

श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' में नायिका के पद पर आसीन है, क्योंकि वह कहानी में प्रारम्भ से लेकर अंत तक विद्यमान रहती है और लगभग सभी घटनाओं का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में उससे

सम्बन्ध है। लहनासिंह के बाद उसका चरित्र कहानी में सबसे महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वही लहनासिंह के चरित्र को प्रकाशित करने में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कहानी में उसका पदार्पण दो बार होता है--पहली बार कहानी के प्रारम्भ में और दूसरी बार पच्चीस वर्ष बाद, जब वह सूबेदार हजारासिंह की पत्नी और बोधासिंह की माँ के रूप में कर्त्तव्य का पालन कर रही है। प्रारम्भ में वह आठ वर्षीय बालिका के रूप में अमृतसर के चौक बाजार में रसोई के लिए बड़िया लेने के लिए आयी है। जहाँ बारह वर्षीय बालक लहनासिंह अपने शरारती और चुलबुले स्वभाव के कारण बालिका से पूछता है कि तेरे कुड़माई हो गई ? लड़की आँखे चढ़ाकर धत् कहकर भाग जाती है। लेकिन दूसरे--तीसरे दिन किसी सब्जी वाले के यहां या दूध वाले के यहां उसकी लहनासिंह से भेंट हो जाती है। दो--तीन बार वही प्रश्न पूछने पर वह धत् कहती है, लेकिन एक दिन वह लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली--हां हो गई। देखते नहीं रेशम से कढ़ा हुआ यह सालू। यह कहकर लड़की शर्माकर भाग जाती है। इस प्रकार वह निर्भीक होकर आत्मविश्वास और गंभीरता के साथ उत्तर देती है। 'कुड़माई' होते ही बालिका में परिपक्वता, गम्भीरता और आत्मविश्वास का आविर्भाव हो जाता है। उसे यह बतानें में कि उसकी 'कुड़माई' हो गई है न लाज, न संकोच--यही उसके व्यक्तित्व का उज्ज्वल पक्ष है।

इतना ही नहीं, सूबेदारनी कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त व साकार प्रतिमा है, क्योंकि वह पच्चीस वर्ष पहले के अपने बाल--मित्र लहनासिंह को पहचान लेती है, यद्यपि कहानी का नायक लहनासिंह उसे पहचान नहीं पाता, लेकिन वह स्पष्ट कहती है--"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया।" उसे अपने बाल मित्र लहनासिंह पर अगाध विश्वास है कि जिस प्रकार उसने अमृतसर के चौक बाजार में अपने प्राणों को संकट में डालकर मुझे घोड़ों की लातों में जाने से बचाया था और दुकान के सामने तख्ते पर खड़ा कर दिया था। उसी प्रकार वह युद्ध स्थल पर भी उसके पति और पुत्र बोधासिंह की रक्षा करेगा। वह अपने बाल मित्र लहनासिंह की मधुर स्मृतियों को पच्चीस वर्ष तक अपने हृदय में संजोकर रखती है और उन्हें भुला नहीं पाती है। अपने असीम विश्वास और प्रेम--सम्बन्धों के बल पर वह लहनासिंह से स्पष्ट कहती है--"एक काम कहती हूं मेरे तो भाग फूट गए सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, पर सरकार ने हम तीमियों की घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं सूबेदार जी के साथ चली जाती। एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ है। उसके पीछे चार और हुए पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी--"अब दोनों जाते हैं मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़ों की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है ! तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ ।" लहनासिंह के प्रति उसके हृदय में रची--पची अपनत्व या स्नेह की भावना उसके हृदय में पच्चीस वर्ष तक बरकरार रहती है तथा सूबेदारनी के व्यक्तित्व को एक नया निखार देती है। इस दृष्टि से सूबेदारनी परम्परागत भारतीय नारी से भिन्न दिखाई देती है।

सूबेदारनी जहां पच्चीस वर्ष तक लहनासिंह की स्मृतियों को संजोकर रखती है वहां वह अपने पति और पुत्र के प्रति भी पूर्ण रूप से समर्पित है। पति और पुत्र के प्रति कर्त्तव्य व दायित्व को भी वह अनन्य निष्ठा और आत्मीयता से निभाती है। वह अपने पति सूबेदार हजारासिंह और पुत्र बोधासिंह की रक्षा हेतु लहनासिंह के समक्ष आंचल पसारती है कि जिस प्रकार तुमने मेरी रक्षा की थी, उसी प्रकार इन दोनों की रक्षा करना। यह मेरी भिक्षा है। उसके चार पुत्र और हुए थे लेकिन सभी असामयिक काल--कवलित हो गये। इसलिए बोधासिंह उसका अकेला कुल--दीपक है। अतः उसके हृदय में अपने पति और पुत्र के प्रति भी प्रेम, आत्मीयता और कर्त्तव्य की भावना विद्यमान है। वह वास्तव में उन दोनों की हित--चिन्तिका और हित--साधिका है तथा दोनों की सुरक्षा के लिए अत्यधिक व्याकुल--व्यथित एवं चिन्तित है। इस प्रकार वह घर--परिवार के प्रति दायित्वबोध से युक्त है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सूबेदारनी की जितनी आत्मीयता सूबेदार और अपने पुत्र बोधासिंह के प्रति है, उतनी ही उन मधुर स्मृतियों के प्रति भी है। वह उन मधुर स्मृतियों को जीवन की अमूल्य धरोहर मानती है। लहनासिंह के प्रति उसके लगाव को अभिव्यक्त करती है। सूबेदारनी का चरित्र प्रस्तुत कहानी में इसलिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है कि वह नायक लहनासिंह के चरित्र के विभिन्न पक्षों को उद्‌घाटित करने में समर्थ, सक्षम है।

## (ग) सूबेदार हजारासिंह

सूबेदार हजारासिंह गुलेरी द्वारा रचित 'उसने कहा था' का एक प्रमुख पात्र है तथा नायक के चरित्र को प्रदीप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। लहनासिंह तो एक मामूली किसान है, परन्तु सूबेदार हजारासिंह मामूली किसान नहीं है, बल्कि उसको सरकार की ओर से जमीन--जायदाद व खिताब मिल चुका है। लायलपुर में सूबेदार साहब की जमीन--जायदाद है। वह लहनासिंह के प्रति आत्मीयता व स्नेह--भावना रखता है तथा उस पर विश्वास भी करता है। इसीलिए वह लहनासिंह

को चिट्ठी लिखकर अपने पास बुलाता है। कहानीकार लिखता है–"सूबेदार का घर रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था।" इस प्रकार सूबेदार की लहनासिंह के प्रति गहरी आत्मीयता व अगाध विश्वास है। बोधासिंह के बीमार पड़ जाने पर वह उसकी देखभाल का भी दायित्व लहनासिंह को ही सौंपता है जिसे वह पूरी निष्ठा व लगन से निभाता है। भीषण कड़कड़ाती सर्दी में अपने गर्म वस्त्र उसे पहनाता है और स्वयं खाकी कोट और जीन में पहरा देता है। कहानीकार लहनासिंह की सेवा–भावना को इंगित करते हुए लिखता है–"बोधासिंह खाली बिस्किटों के तीन टीनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खई के मुंह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर।" इसी प्रकार सूबेदार हजारासिंह को लहनासिंह पर अगाधा विश्वास है कि वह उसके पुत्र बोधासिंह की उचित देखभाल करेगा। इसीलिए सूबेदार साहब लहनासिंह को कहते हैं–"जैसा मैं जानता न होऊँ। रात–भर तुम अपने दोनो कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो।" उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो, कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वाले को मुरब्बे नहीं मिला करते। सूबेदार हजारासिंह खंदक में पड़े–पड़े उकताए हुए लहनासिंह को स्पष्ट कहता है–"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा।" सूबेदार हजारासिंह घूम–घूमकर बड़ी कुशलता और तत्परता से सभी को दिशा–निर्देश देता है और खंदक में चक्कर लगाकर निरीक्षण करता.है–"उदमी, उठ, सिगड़ी में कोयले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियां लेकर खाई का पानी बाहर फैंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाका के दरवाजे का पहरा बदल दो।" सूबेदार हजारासिंह का लाम पर जाने का उद्देश्य सरकार के प्रति अपनी वफादारी प्रकट करना है, जबकि लहनासिंह देश–प्रेम की भावना से युक्त होकर या आजीविका हेतु सेना में भर्ती हुआ है!

सूबेदार हजारासिंह लहनासिंह के सुख–दुःख की भी चिन्ता करता है, इसीलिए वह लहनासिंह को समझाते हुए कहता है–"कही तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" इसी प्रकार लहनासिंह के घायल हो जाने पर उसकी जांघ में पट्टी बंधवाता है तथा उसे छोड़कर वह जाना नहीं चाहता, लेकिन लहनासिंह उसे बोधासिंह और सूबेदारनी की कसम दिलाता है–"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है तो इस गाड़ी में चले जाओ।" सूबेदार हजारासिंह लहनासिंह के प्रति अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त करता है–सूबेदार ने चढ़ते–चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा–"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे।" कहानीकार भी सूबेदार हजारासिंह की आत्मीयता व स्नेह भावना को अनेक स्थलों पर प्रकट करता है।

सूबेदार हजारासिंह के व्यक्तित्व का एक दूसरा पक्ष भी है कि वह लहनासिंह के बलिदान को यथोचित सम्मान नहीं दिलवाता। सूबेदार इस तथ्य से भली–भाँति परिचित है कि लहनासिंह के असीम साहस और कुशाग्र बुद्धि के कारण जर्मन सेना के षड्यन्त्र से उनका बचाव हुआ है और उसे उसके साहस और चातुर्य की बात बड़े अधिकारियों तक पहुंचानी चाहिए थी, लेकिन उसको भरपूर सम्मान नहीं दिलवाया। अतः सूबेदार हजारासिंह उक्त तथ्य अधिकारियों के नोटिस में लाता तो उसका बलिदान, आत्मोत्सर्ग व्यर्थ न जाता और उसके बलिदान को यथोचित सम्मान मिलता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वह (सूबेदार हजारासिंह) 'उसने कहा था' कहानी में एक महत्त्वपूर्ण पात्र है तथा कुशल सेना अधिकारी है, परन्तु लहनासिंह के आत्मोत्सर्ग को यथोचित सम्मान दिलवाने में असमर्थ, असक्षम है।

## IV. उद्देश्य

श्रेष्ठ कहानीकार पंडित चन्द्रधर 'गुलेरी' द्वारा रचित 'उसने कहा था' में कहानीकार नर–नारी के अनुपम, पावन सम्बन्धों का चित्रांकन करता हुआ प्रेम और कर्त्तव्य के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले लहनासिंह के चरित्र को महिमा–मण्डित करता है। लहनासिंह और सूबेदारनी के स्वर्गीय, दिव्य, उदात्त, अतीन्द्रिय प्रेम की प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं–"इसकी घटना ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर इसके भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय रूप झांक रहा है–केवल झांक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्जता, प्रगल्भता, वेदना की वैमनस्य निवृत्ति नहीं है।" 'उसने कहा था' कहानी के प्रतिपाद्य निम्नलिखित हैं –

(क) लहनासिंह के चरित्र को महिमा–मण्डित करना।

(ख) स्त्री–पुरुष (सूबेदारनी–लहनासिंह) के बीच पनपे संबंधों को उजागर करना।

(ग) दिव्य, अलौकिक प्रेम का चित्रण।

(घ) युद्ध का सजीव चित्रण।

1. **लहनासिंह के चरित्र को महिमा-मण्डित करना** – 'उसने कहा था' कहानी द्वारा कहानीकार लहनासिंह के आत्मोत्सर्ग को महिमा–मण्डित करना चाहता है। लहनासिंह ने प्रेम और कर्त्तव्य के लिए सूबेदार हजारासिंह और उसके पुत्र के प्राण बचाने हेतु अपने प्राण न्योछावर कर दिये थे। लहनासिंह और सूबेदारनी पच्चीस वर्ष पहले अमृतसर के चौक बाजार में मिलते हैं। वहां एक बाल धोने के लिए दही और दूसरा रसोई के लिए बड़िया लेने के लिए आया हुआ था। चंचल व हंसमुख लहनासिंह लड़की का परिचय लेता है और अगली मुलाकात पर उससे पूछता है–'तेरी कुड़माई हो गई है ? लड़की धत् कह कर भाग जाती है और लगभग महीने–भर यही हाल रहता हैं अन्ततः एक दिन लड़के ने वही प्रश्न दोहराया और लड़की ने अप्रत्याशित उत्तर दिया, हां हो गई। देखते नहीं, रेशम से यह कढ़ा सालू। लड़के पर तो मानो वज्रपात हो जाता है वह तोड़–फोड़ करता हुआ निराश–व्यथित होकर घर पहुंचता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लड़के–लड़की का आपस में एक अनजाना मोह पनप जाता है। पच्चीस साल बाद वही लड़का जो अब सेना में जमादार के पद पर आसीन है, उसी लड़की से मिलता है, जो अब उसके अधिकारी सूबेदार हजारासिंह की पत्नी है। वह लहनासिंह से आंचल पसार कर अपने पति और पुत्र के प्राणों की भिक्षा मांगती है तथा स्पष्ट करती है कि जिस प्रकार उसने मेरे प्राण बचाए थे–घोडों की लातों में जाने से पहले मुझे बचाया था और स्वयं लातों में चले गये थे–ठीक उसी प्रकार उनके प्राण बचाना। लहनासिंह उसके पुत्र बोधासिंह जो युद्ध स्थल पर जाकर बीमार पड़ जाता है, की पूरी देखभाल करता है। भीषण कडकडाती सर्दी मे झूठ बोलकर अपने गर्म कपड़े उसको पहनाता है, उसका पहरा देता है और स्वयं कीचड़ में पड़कर उसको सूखे लकड़ी के तख्तों पर सुलाता है सूबेदार हजारासिंह स्पष्ट कहता है–"जैसे मैं जानता न होऊं। रात–भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते। स्वयं घायल हो जाने पर भी, घायलों हेतु आई गाडी में सूबेदारनी की कसम दिलवाकर सूबेदार और बोधासिंह को भिजवा देता है। कहानीकार लिखता है–"बोधासिंह गाड़ी पर लेट गया ? भला आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरा को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया है।" गाड़ियां चल पड़ी थी। सूबेदार ने चलते–चलते लहना का हाथ पकड़ कर कहा–तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तुम ही कह देना। उसने क्या कहा था ?

इस प्रकार कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी में लहनासिंह के अद्भुत शौर्य, साहस और त्याग का चित्रांकन करते हुए उसके प्राणोत्सर्ग को महिमा–मण्डित करना चाहता है।

2. **स्त्री-पुरुष के बीच में पनपे एक नये तरह के मानवीय सम्बन्ध** – कहानीकार गुलेरी जी प्रस्तुत कहानी में स्त्री–पुरुष (सूबेदारनी–लहनासिंह) के बीच में पनपे एक नये तरह के मानवीय सम्बन्धों का चित्रांकन करते हैं। बालक लहनासिंह और बालिका सूबेदारनी बारह वर्ष व आठ वर्ष के हैं तथा हर रोज अमृतसर के चौक बाजार में मिलते हैं। उनमें मधुर संबंध या मोह पनपता है तथा उन सामाजिक सम्बन्धों पर, प्रतिफलित होने से पूर्व तुषारापात हो जाता है। लेकिन उन मधुर सम्बन्धों की स्मृतियां कसक उन दोनों के हृदय में शाश्वत रूप से विद्यमान रहती हैं। लहनासिंह की बाद में सेना में जमादार के पद पर नियुक्ति हो जाती है और सूबेदारनी सूबेदार हजारासिंह की पत्नी बन जाती है, लेकिन वे मधुर स्मृतिया अमिट रूप से उसके हृदय में वर्तमान रहती हैं। उन सम्बन्धों के कारण वह लहनासिंह पर अगाध विश्वास करते हुए अपने पति और पुत्र की रक्षा करने की याचना करती है, जिसे लहनासिंह आत्मोत्सर्ग करके निर्वाह करता है। ये मधुर स्मृतिया उन दोनों के जीवन की अनमोल धरोहर बन जाती है। इस प्रकार सूबेदारनी का जितना प्रेम–लगाव अपने पुत्र और पति के प्रति है, उतना ही लगाव और प्रेम लहनासिंह की मधुर स्मृतियों के प्रति है। लहनासिंह और सूबेदारनी के इस सम्बन्ध का कोई नाम नही दिया जा सकता, क्योंकि यदि वह लहनासिंह की प्रेमिका होती तो उसके अपने पति के साथ सम्बन्ध मधुर न होते, लेकिन उसके पति व पुत्र के साथ सम्बन्ध भी अत्यन्त मधुर व आत्मीयतापूर्ण हैं। लहनासिंह के प्रति उसका अगाध विश्वास निश्चय ही एक नये तरह के मानवीय सम्बन्ध की ओर इशारा करते हैं। गुलेरी जी ने इन्हीं नये–अनुपम मानवीय सम्बन्धों की व्याख्या प्रस्तुत कहानी में प्रस्तुत की है। इन्हीं सम्बन्धों को बरकरार रखने के लिए लहनासिंह आत्मोत्सर्ग करके उसके पति और पुत्र की रक्षा करता है। अतः लेखक का प्रमुख प्रतिपाद्य स्त्री–पुरुष के बीच में विकसित हुए इन नये सम्बन्धों को उजागर करना है

**3. दिव्य-अलौकिक प्रेम का चित्रण** – कहानीकार गुलेरी ने 'उसने कहा था' कहानी में लहनासिंह–सूबेदारनी के दिव्य–अलौकिक प्रेम का चित्रण किया है तथा स्पष्ट किया है कि उन दोनों का यह अशरीरी प्रेम अत्यन्त सात्विक और अतीन्द्रिय है तथा उसमें कहीं भी वासना की दुर्गन्ध नहीं है। एक–दूसरे के प्रति असीम–अगाध विश्वास उस दिव्य और अलौकिक प्रेम की आधारभित्ति है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने इस अलौकिक प्रेम की प्रशंसा करते हुए लिखा है–"इसकी घटना ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर उसके भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय रूप झांक रहा है। केवल झांक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी–भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स निवृत्ति नहीं है।" वास्तव में 'उसने कहा था' कहानी के इस दिव्य प्रेम ने प्रसाद की रोमानी प्रेम कहानियों का पथ प्रशस्त किया है।

**4. युद्ध का सजीव चित्रण** – गुलेरी द्वारा रचित कहानी में कहानीकार ने प्रथम विश्व–युद्ध का सजीव चित्रण किया है। 'उसने कहा था' कहानी 1915 ई० में लिखी गई थी और कहानी का अधिकांश हिस्सा फ्रांस के युद्ध मैदान से सम्बन्धित है। युद्ध के मोर्चे का चित्रण कहानीकार ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से किया है–

अचानक आवाज आयी–"वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा।" और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो पाटों के बीच में आ गए। पीछे से हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने से लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरु कर दिया। युद्ध के मोर्चे पर सिपाहियों की ऊब, उकताहट और एक रसता तथा उनकी बातचीत, उनकी मनःस्थिति, भविष्य की उनकी योजनाएं सभी कुछ कहानी में अभिव्यक्त हुआ है। अतः स्पष्ट है कि 'उसने कहा था' कहानी में युद्ध का सजीव चित्रण हुआ है।

अतः स्पष्ट है कि कहानीकार ने 'उसने कहा था' कहानी में लहनासिंह के त्याग, शौर्य और आत्मोत्सर्ग को उजागर करता हुआ उसके चरित्र को महिमा मण्डित करता है। डॉक्टर चितरंजन मिश्र का कहना है–"लहनासिंह के आत्मार्पन की करुण कथा और पवित्र प्रेम के लिए किए गए निःस्वार्थ बलिदान की यह कहानी अपने सहज रसोद्रेक के कारण हिन्दी साहित्य का 'माइल स्टोन' बन सकी। 'उसने कहा था' के साथ हिन्दी कहानी ने अपने विकास की नयी मंजिलें शुरु की हैं।" वास्तव में यदि 'उसने कहा था' को प्रसाद की कहानियों का दिग्दर्शक या पथ–प्रदर्शक कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित यह कहानी एक नये तरह के मानवीय सम्बन्धों को परत–दर–परत खोलती है जो कि अतीन्द्रिय, सूक्ष्म व अलौकिक है। प्रेम, शौर्य या त्याग जैसे महान आदर्शों पर आधारित यह कहानी लहनासिंह के चरित्र द्वारा भारतीय किसान की जीवटता, साहस, बुद्धिमानी और कर्त्तव्यपरायणता को भी दर्शाती है।

## व्याख्या

***1. "चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए, फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित उनकी पहली कलात्मक कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है। यह हिन्दी की पहली सर्वांगपूर्ण यथार्थवादी कहानी है जो कला की कसौटी पर खरी उतरती है तथा यथार्थ की सघनता के गुजरते उच्च आदर्श को रूपायित करने में समर्थ हुई है। इस कहानी का कथ्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। कहानी का नायक लहनासिंह और उसके साथी सैनिक इंग्लैंड की ओर से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध–स्थल पर मोर्चे पर लड़ रहे हैं। मोर्चे पर लड़ाई की इंतजार करते–करते उकतासा, उब गए हैं और वे चाहते हैं कि जल्दी से लड़ाई शुरु हो ताकि नीरसता, एकरसता समाप्त हो। दिन–रात भयंकर कड़कड़ाती सर्दी में खंदकों में बैठे–बैठे भयंकर सर्दी के कारण उनकी हड्डियां जम गई हैं। इसी निष्क्रियता, ऊब और उकताहट में लहनासिंह ये पंक्तियां कहता है–

**व्याख्या** –लहनासिंह स्पष्ट करता है कि पिछले चार दिन से हमने पलक नहीं झपकी, क्योंकि खंदक में हमें जागरूक रहना पड़ता है, दूसरा भयंकर कड़कड़ाती सर्दी के कारण वे एक पल भी खंदक में सो नहीं पाये। इसलिए चार दिन उन्होंने पलकों में बैठे–बैठे काट दिए हैं, लेकिन ऐसे निष्क्रिय पड़े रहने का कोई लाभ नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार बिना दौड़ने से घोड़ा बिगड़ जाता है, अर्थात् उसकी दौड़ने की आदत छूट जाती है और फिर वह ठीक गति से दौड़ नहीं पाता। उसके शरीर के अंग आराम करने से शिथिल हो जाते हैं, फिर दौड़ने में कठिनाई होती है। ठीक इसी प्रकार लड़ाई के बिना भी सैनिक बिगड़ जाते हैं, क्योंकि बिना अभ्यास के एवं निष्क्रिय शिथिल रहने से उनकी अस्त्र–शस्त्र चलाने की आदत छूट जाती है और फिर

# 11-'चन्द्रगुप्त' नाटक का उद्देश्य

साहित्य सृजन एक गम्भीर प्रयास है और गम्भीर प्रयास निरूद्देश्य कैसे हो सकता है? पाश्चात्य हवा के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में भी किसी समय कलावादी विचारधारा ने जोर पकड़ा। किन्तु पाश्चात्य साहित्य के समान यहाँ भी आदर्श से प्रेरित होकर किसी श्रेष्ठ कृति का सृजन नहीं हो पाया। प्रसाद जी एक जागरूक साहित्यकार थे। उनके समक्ष साहित्य सस्कार के साथ-साथ पराधीन भारतीय जनता के मानसिक परिष्कार का उद्देश्य भी था। इस भावना से प्रेरित होकर प्रसाद जी ने अपन समग्र नाट्य-कृतियों में सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीयता की भावना को प्रश्रय दिया। किन्तु एक कुशल साहित्य शिल्पी होने के कारण उन्होंने इन दो प्रमुख उद्देश्यों का इस प्रकार प्रतिपादन नहीं किया कि वे आरोपित लगें बल्कि उन्होंने कला के आवरण में प्रस्तुत किया है।

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के तीन प्रमुख तत्व माने गए हैं वस्तु, नेता और रस। स्मरणीय है भारतीय आचार्यों ने नाट्य-रचना के प्रसंग में उद्देश्य को पृथक् मानकर उसकी चर्चा नहीं की है। उनकी दृष्टि में रस ही चरम उद्देश्य है और यही नाटक का लक्ष्य भी है। साधारणीकरण और रस-निष्पति को सम्पूर्ण प्रक्रिया केवल नाटक के प्रसंग में सटीक बैठती है। अतः स्वभावतः नाट्यशास्त्र में रस को नाटक के अन्य तत्वों की तुलना में विशेष महत्त्व मिला है।

इसके विपरीत पाश्चात्य आचार्यों ने रस के स्थान पर शील वैचित्र्य प्रदर्शन और उद्देश्य को नाट्य रचना का उद्देश्य माना है। प्रारंभ में तो वहाँ भी प्रसाद जी जिस समय नाटक सृजन कर रहे थे उस समय हिन्दी में केवल सुखान्त नाटकों का ही प्रचलन था। प्रसाद के भी अधिकांश नाटक सुखान्त ही हैं। किन्तु उनके कुछ नाटक पारम्परिक सुखान्तकी से भिन्न प्रकार के हैं। तात्पर्य यह है कि उनका अन्त सुःख-दुःख से भिन्न एक विशिष्ट स्थिति में होता है। ऐसे नाटकों को सुखान्त कहा जाये या दुखान्त, यह विवाद का विषय बना हुआ है। 'चन्द्रगुप्त' भी प्रसाद की एक ऐसी कृति है जिसके अन्त के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं।

चन्द्रगुप्त सुखान्त नाटक की श्रेणी में आता है या दुखान्त नाटक की श्रेणी में, इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें कई दृष्टियों से विचार करना होगा। सर्वप्रथम हम नाटक के अन्त को लें। 'चन्द्रगुप्त' अन्त में मौर्य साम्राज्य पर छाए हुए विपत्तियों के सारे बादल छट जाते हैं। नन्द-वंश का अन्त हो जाता है और उसके बाद सिकन्दर भी अपने आक्रमण में विफल होकर वापस लौट जाता है। सन्धि के नियमों को तो सिल्यूकस स्वीकार करता ही है, साथ ही दूरदर्शी चाणक्य उसकी पुत्री कार्नेलिया का भी चन्द्रगुप्त के लिए मांग लेते हैं, चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया एक दूसरे को प्रेम करते हैं और दृष्टि से नायक को नायिका की प्राप्ति होती है। मौर्यवंश का बच रहा एक मात्र शत्रु नन्द आमात्य राक्षस भी सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रति स्वामिभक्त बन जाता है तथा चाणक्य की आज्ञा से उसका मन्त्रित्व स्वीकार कर लेता है। उपर्युक्त सभी घटनाएँ सुख की द्योतक हैं। नाटक के अन्त की कुछ पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं।

चन्द्रगुप्त -- "विजेता सिल्यूकस का मैं अभिनन्दन करता हूँ, स्वागत"।

सिल्युकस – "सम्राट चन्द्रगुप्त। आज मैं विजेता नहीं विजित से अधिक भी नहीं हूँ।"

× × ×

*कार्नेलिया* – "उस बुद्धिसागर, आर्य--साम्राज्य के महामन्त्री, चाणक्य को देखने की बड़ी अभिलाषा थी।"

चन्द्रगुप्त – "उन्होंने विरक्त होकर, शान्तिमय जीवन बिताने का निश्चय किया है।"

(साहसा चाणक्य का प्रवेश, अभ्युत्थान देखकर प्रणाम करते हैं।)

× × ×

चाणक्य – "ग्रीस की गौरवलक्ष्मी कार्नेलिया को मैं भारत की कन्या बनाना चाहता हूँ।"

× × ×

सिल्यूकस – (कार्नेलिया की ओर देखता है, वह सलज्ज सिर झुका लेती है।)

तब आओ बेटी, आओ चन्द्रगुप्त।

(दोनों सिल्यूकस के पास जाते हैं, सिल्यूकस उनका हाथ मिलाता है। फूलो की वर्षा की जय ध्वनि)

चाणक्य – (मौर्य का हाथ पकड़कर) चलो, अब हम लोग चलें।"

नाटक के अन्त की उपरि उद्धृत पंक्तियों पर ध्यान देने से दो बातें उभर कर आती हैं। प्रथम यह कि उक्त सारी घटनाएं सुख और आनन्दवर्धक हैं। जो नाटक के सुखान्त होने की बात सिद्ध करती हैं। दूसरे नाटककार द्वारा चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के पिता का रंगमंच से हटने की सूचना दिया जाना एक प्रकार से नाटककार द्वारा ही नाटक की सुखान्त का खण्डन प्रतीत होता है संपूर्ण नाटक के सुत्रधार के रूप में चाणक्य को प्रेक्षकों के मानस में प्रतिष्ठित कर एकाएक उन्हें वैराग्य ग्रहण करते हुए देख प्रेक्षकों को मानस व्यथित सा हो उठता है। उनकी भावना को एक प्रकार से ठेस लगती है। वस्तुतः सम्पूर्ण नाटक के कलेश्वर में चाणक्य का व्यक्तित्व जितना भास्वर और उदात रूप में प्रस्तुत हुआ है उसे देखते हुए उनका एकाएक सन्यास ग्रहण करना अस्वाभाविक न होने पर भी सामान्य जन मानस के लिए दुःख का कारण बनता है।

वस्तुतः प्रसाद भारतीय जीवन दृष्टि के प्रबल समर्थक साहित्यकार हैं। भारतीय जीवन पद्धति की यही विशेषता है कि वह त्याग में ही गौरव का अनुभव करती है। नाटक के आरम्भ में चाणक्य के व्यक्तित्व का बढ़ता हुआ प्रभाव पाठकों को सुखद प्रतीत होता है। क्योंकि चाणक्य के उस प्रभावशाली व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जिसके नियन्त्रण में देश अपने भीतर और बाहर के शत्रुओं से मुक्ति पा सकें। किन्तु जब भीतर और बाहर शत्रुओं का शमन हो जाता है और नाटक के नायक अर्थात् चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के विकास का समय आता है उस समय भी चाणक्य का पहले वाला नियन्त्रण स्वरूप स्वयं चन्द्रगुप्त को भी पसन्द नहीं आया है और शायद प्रेक्षक भी चाणक्य के इस रूप को और अधिक समय तक पसन्द न कर सकता। वस्तुतः नाटक पढ़ते समय इस स्थल पर आकार पाठक का मानस एक प्रकार से क्षुब्ध हो उठता है और उसे चाणक्य के महत् उद्देश्य में भी सन्देह होने लगता है। जैसे अत्यधिक लोकप्रिय राजनेता भी जब अति महत्त्वाकांक्षी होकर कार्यरत रहते हैं तो उनके महान् उद्देश्य के बावजूद भी उनके क्रिया कलापों पर सन्देह होने लगता है, वही स्थिति नाटक के अन्त में चाणक्य की हो उठी है। नाटककार भारतीय जीवन पद्धति की श्रेष्ठता से पूर्णतः आश्वस्त है अतः उन्होंने चाणक्य से भी उसी आदर्श का पालन करवाया है। वस्तुतः चाणक्य प्रेक्षकों को अत्यन्त प्रिय है अतः उनका सन्यास ग्रहण उनकी भावना को आघात अवश्य पहुँचाता है किन्तु उन्हें चाण्क्य के इस त्याग मंडित व्यक्तित्व के प्रति और अधिक श्रद्धा हो जाती है। नाटककार चाणक्य के इसी मिश्रित व्यक्तित्व की स्थापना करना चाहते थे।

आलोचकों में 'चन्द्रगुप्त' नाटक के सुखान्त या दुःखान्त होने के विवाद का कारण चाणक्य और चन्द्रगुप्त के पिता सन्यास ग्रहण है। किन्तु इस घटना के कारण यदि आलोच्य कृति को सुखान्त नहीं भी माना जाये तो दुःखान्त तो माना ही नहीं जा सकता क्योंकि तब तो वह भारतीय नाट्यादर्श के विरुद्ध होता। वस्तुतः नाटक की अन्तिम घटना के कारण दुःख के स्थान पर शान्ति पूर्ण प्रसन्नता ही बढ़ती है अतः चन्द्रगुप्त नाटक को प्रसादान्त कहना समग्रतः उपयुक्त है। प्रसाद का अर्थ है शान्तिपूर्ण प्रसन्नता जिसकी प्राप्ति दर्शक एवं पाठकों को होती है।

# कहानियाँ

1. **उसने कहा था** -चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

(क) लहना सिंह

(ख) सूबेदारनी

(ग) सूबेदार हजारा सिंह

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

2. **कफन** -प्रेमचन्द

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

(क) घीसू

(ख) माधव

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

3. **आकाशदीप** -जयशंकर प्रसाद

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

(क) चम्पा

(ख) बुद्धगुप्त

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

4. **पत्नी** -जैनेन्द्र

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

(क) कालिन्दी

(ख) सुनन्दा

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

5. **वापसी** **-उषा प्रियंवदा**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

6. **परिंदे** **-निर्मल वर्मा**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. चरित्र–चित्रण

(क) लतिका

(ख) डॉ० मुकर्जी

(ग) मि० ह्यूबर्ट

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

7. **बयान** **-कमलेश्वर**

**आलोचना**

I. तात्त्विक विवेचन

II. कहानी–सार

III. नायिका का चरित्र–चित्रण

IV. उद्देश्य

**व्याख्या**

# उसने कहा था

## (पं० चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी')

### तात्त्विक विवेचन

'उसने कहा था' पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित हिन्दी की सर्वाधिक चर्चित कहानियों में से एक है। यह कहानी 'सरस्वती' नामक पत्रिका में सन् 1915 में छपी थी। गुलेरी जी ने इससे पूर्व 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' नामक दो और कहानियाँ भी लिखीं, किन्तु उनकी अमरता का कारण 'उसने कहा था' ही है। इस कहानी ने उन्हें श्रेष्ठ कहानीकारों की अग्रिम पंक्ति में बिठा दिया। यह कहानी हिन्दी कहानी परंपरा में मील का पत्थर मानी जाती है। इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रथम महायुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई इस कहानी में एक सैनिक लहनासिंह के प्रेम से प्रेरित कर्त्तव्य, त्याग और बलिदान की मार्मिक कथा प्रस्तुत की गई है। इस कहानी में वह सर्वांगीण तत्त्व भरे हैं जो युगों–युगान्तरों तक अमर रहेंगे। इसमें सहज मानवीय तत्त्वों का पूर्ण विकास तो है ही सही, उसकी कलात्मकता ने तो उसे चार चाँद ही लगा दिए हैं। विनोद प्रियता, वाक्पटुता, कथावस्तु का स्वाभाविक विकास, कथोपकथाओं की सजीवता, वातावरण की सबल सृष्टि, चरित्रों का अद्भुत चित्रण ये कुछ ऐसी अन्य विशेषताएँ हैं, जो इसे अलग ही प्रतिष्ठित करती हैं। इसमें कहानी कला की सभी विशेषताएँ सन्निहित हो गई हैं।

**1. कथानक (कथावस्तु) :-**

'उसने कहा था' कहानी का कथानक अत्यंत सुन्दर, स्वाभाविक और सुगठित है। कथावस्तु में रोचकता और कौतूहल उत्पन्न करने की विशेष क्षमता है। कहानी का शीर्षक पाठक के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न कर देता है। यह इतना आकर्षक है कि पाठक इसको देखते ही कहानी पढ़ने के लिए लालायित हो उठते हैं। उनके मन में प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं–किसने कहा था? किससे कहा था ? क्या कहा था ? आदि। उनकी जिज्ञासा कहानी के अंत में ही शान्त होती है। इस कहानी का प्रारंभ अमृतसर के बाजार में एक चौक की दुकान से होता है। एक लड़का अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया है और दूसरी ओर से एक लड़की रसोई के लिए बड़ियाँ लेने आई हैं दुकानदार को किसी अन्य ग्राहक से उलझा हुआ देख ये दोनों आपस में सामान्य परिचयात्मक बातें करने लगते हैं। सामान्य परिचय के बाद दुकान से सौदा लेकर वे दोनों साथ–साथ चलते हैं। चलते–चलते रास्ते में लड़का उस लड़की से मुसकुराकर पूछता है–'तेरी कुड़माई हो गई ?' इस पर लड़की स्वाभाविक लज्जा से आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर भाग जाती है। इसी प्रकार उन दोनों की मुलाकात अक्सर इधर–उधर दुकानों पर हो जाती है और लड़का अक्सर अपना उपरोक्त प्रश्न दुहरा देता है। लड़की भी 'धत्' कहकर भाग जाती है। एक दिन पुन वही प्रश्न पूछे जाने पर लड़की लड़के को आशा के विपरीत उत्तर देती है–'हाँ हो गई' और प्रमाण में अपना रेशम से कढा हुआ सालू बताकर भाग जाती है। लड़का लहनासिंह के दिल को इस बात से गहरी ठेस लगती है और वह उस दिन व्याकुल सा राह में आने वालों को अन्यमनस्कता में गिराता ढेलता नशे की सी हालत में अपने घर पहुँचता है। कहानी का पहला दृश्य यहीं समाप्त हो जाता है। कहानी पाँच दृश्यों में विभाजित है। अगले दृश्यों में युद्ध का चित्रण है।

पहले दृश्य में लड़की और लड़के का परिचय और उनके बीच पनपे प्रेम को दिखाकर दूसरे दृश्य में कथानक एकदम लड़ाई के मोर्चे पर पहुँच जाता है। नं० 77 सिक्ख राइफल्स के जवान अंग्रेजों की ओर से फ्रांस में जर्मनी के विरुद्ध मार्चा पर डटे हैं। सूबेदार हजारासिंह की कमान में मोर्चे पर डटे जमादार लहनासिंह तथा अन्य जवान कड़ाके की ठंड होने पर भी उत्साह से भरे हैं तथा पारस्परिक मजाक आदि में व्यस्त हैं। तभी वजीरासिंह लहनासिंह से बीमार बोधासिंह का हालचाल पूछता है और उसकी देखभाल में कहीं खुद लहनासिंह न मांदा पड़ जाए। इस पर लहनासिंह बुलेल की खड्ड के किनारे, भाई कीरतसिंह की गोदी पर सिर होने और अपने हाथ से लगाए आम के पेड़ की छाया के नीचे मरने की बात कहता है। तब वजीरासिंह कहता है कि क्या मरने–मारने की बात लगाई है और सैनिकों में ताजगी भरने के लिए गीत गाता है। दूसरा दृश्य यहीं समाप्त हो जाता है।

तीसरे दृश्य में लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ अपने सैनिक कर्त्तव्य का पालन करते हुए बीमार बोधासिंह को अपने सारे गर्म कपड़े पहनाकर भी देखभाल करता है; तभी एक जर्मन जासूस उन्हें धोखा देने के लिए सिक्ख सैनिकों के लपटन साहब का रूप धारण करके आता है और खंदक में दस आदमी छोड़ने की कहकर सूबेदार हजारासिंह को शेष साथियों के

साथ दूसरी खाई की ओर भेज देता है। लहनासिंह लपटन के कपटी रूप को पहचानकर दियासिलाई लाने के बहाने जाकर सोए हुए वजीरासिंह को जगा देता है। तीसरा दृश्य यहीं समाप्त हो जाता है।

चौथे दृश्य में लहनासिंह वजीरासिंह को सारा षडयंत्र समझाकर सूबेदार को वापस बुलाने भेज देता है और लौटने पर कपटी लपटन को तीन गोले रखते देख कुहनी पर बंदूक मारता है। लपटन पिस्तौल की गोली दाग देता है जो लहनासिंह की जाँघ में लगती है, पर लहना अपनी बंदूक से लपटन का सफाया कर देता है। उसके बाद जर्मन सैनिकों से जमकर युद्ध होता है, पीछे से सूबेदार व साथी सैनिक जर्मनों को घेर लेते हैं। दो तरफे आक्रमण से जर्मन समाप्त हो जाते हैं परन्तु लहना को गंभीर घाव हो जाते हैं जिसे वह मिट्टी से पूर लेता है और घाव पर साफा बाँध लेता है। घायलों को ले जाने वाली गाड़ी में लहना सिंह सूबेदार और उसके पुत्र बोधासिंह को जबरदस्ती गाड़ी पर चढ़ा देता है और सूबेदार हजारासिंह से कहता है–"सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।" सूबेदार लहना का हाथ पकड़कर कृतज्ञ होते हैं–"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?" गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया और वजीरासिंह से बोला–"वजीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे, तर हो रहा है। चौथा दृश्य यहीं समाप्त हो जाता है।

पाँचवे दृश्य में लहनासिंह लड़ाई के घावों के कारण मरणासन्न है। इस अवस्था में उसके स्मृति पटल पर अतीत की एक–एक घटनाओं के दृश्य उभर आते हैं। उसे बचपन की घटना लड़की से परिचय और उसकी सगाई होने की बात सुनकर क्रोधित होने की याद आती है। इस घटना के पच्चीस वर्ष बाद की स्मृतियों में लहनासिंह डूबा हुआ है कि वह नं० 77 राइफल्स में जमादार हो गया है और छुट्टी पर घर गया है। अफसर की बुलावे की चिट्ठी आने पर सूबेदार हजारा सिंह की चिट्ठी मिली कि हमारे घर होते हुए जाना। मैं और बोधासिंह साथ चलेंगे। जब चलने लगे सूबेदारनी ने पूछा–मुझे पहचाना ? लहना के मना करने पर सगाई वाली बात याद दिलाकर सुप्त प्रेम को जाग्रत कर दिया और मार्मिक स्वर में कहा कि जिस तरह दही वाले की दुकान के आगे ताँगे से बचाया था और आप घोड़ों की लातों में चले गये थे। ऐसे ही इन सूबेदारजी तथा बोधासिंह को बचाना। अतीत की इन्हीं स्मृतियों में खोये हुए लहनासिंह का सिर वजीरासिंह अपनी गोद में रखे हुए हैं। लहनासिंह बीच–बीच में बड़बड़ाता है–'वजीरा, पानी पिला–उसने कहा था।' थोड़ी देर बाद अपने भाई कीरतसिंह व अपने लगाए आम के पेड़ को मूर्च्छा में याद कर बड़बड़ाते हुए अपने प्राण त्याग देता है।

इस प्रकार कथानक संघटन बड़े ही कलात्मक ढंग से सुगठित है। आदि, मध्य और अंत को बड़ी सुन्दरता से एक–दूसरे से जोड़ा गया है। इसमें आदि मध्य से बिल्कुल अलग दिखाई देता है, पाठक को कथासूत्र ही हाथ नहीं लगता परन्तु अंत में कहानी का सम्पूर्ण आकर्षण उद्दीप्त हो उठता है और पाठकों की जिज्ञासा शांत हो जाती है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है–"कहानी दृश्यों में विभाजित है। इसका पहला दृश्य लड़की और लड़के के पहले परिचय का चित्र है जो कहानी से कटकर सृजन–प्रक्रिया का अंग न रहकर कहानीकार के स्मृति–पटल पर अंकित रहता है। अगले दृश्यों में युद्ध का चित्रण है। पाठक पहले दृश्य को भूल जाता है; लेकिन 25 साल के बाद लहनासिंह के स्मृति चित्रों के माध्यम से यह दृश्य गहरे रूप में कहानी से फिर जुड़ जाता है। इस तरह यह 'बेकार' अंश अंत में कहानी का अंग बन जाता है। इस तरह कहानी के विभिन्न अंश एक शृंखला में बंध जाते हैं, घटना, उद्देश्य, चरित्र, वातावरण आदि सिमटकर पाठक अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं।"

**2. पात्र एवं चरित्र-चित्रण :-**

प्रस्तुत कहानी में यों तो अनेक पात्र हैं किन्तु प्रमुख पात्र लहनासिंह ही है। उसका चरित्र कहानीकार ने बड़ी सफलता से चित्रित किया है। लहनासिंह कर्त्तव्य पर बलिदान होने वाला निस्वार्थी युवक है। उसमें देश प्रेम की भावना कूट–कूट कर भरी हुई है। उसका त्याग और बलिदान आदर्श रूप में उपस्थित होता है। कहानी में उसके सम्पूर्ण जीवन की झांकी उपस्थित हुई है। उसका परिचय पाठकों को एक चंचल बालक के रूप में होता है। लड़की से 'तेरी कुड़माई हो गई ?' का प्रश्न पूछना और उत्तर में 'धत्', और 'हाँ' सुनकर चंचलता में भीड़ से टकराता हुआ घर को जाना उसके चरित्र का मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसके पश्चात् लहनासिंह जमादार के रूप में फ्रांस के मोर्चे पर दिखाई देता है। वह अत्यंत दृढ़ता से अपने सैनिक कर्त्तव्य की रक्षा करता हुआ दिखाई देता है। वह अपने को संकट में डालकर खंदक की रक्षा में तत्पर होता है। लहना को प्रेम से कर्त्तव्य अधिक प्रिय है। जिस पंजाबी लड़की की कुड़माई (सगाई) होने की सुनकर वह कभी विचलित हो उठा था, वही उसको अपने पति और पुत्र की रक्षा का भार सौंपती है। वह गुरुता से अपने इस कर्त्तव्य का पालन करता है। उसकी वीरता ओर

कुशलता से ही शत्रुओं के प्रयत्न विफल होते हैं तथा बोधा की भी रक्षा होती है। इस प्रकार इस कहानी में लहनासिंह के रूप में नवयुवकों को प्रेरणा देने वाले एक आदर्शपूर्ण पात्र की योजना की है। शेष पात्रों में सूबेदार हजारासिंह एक सीधे–साधे सैनिक हैं। वह बिना सोचे समझे अपने बड़े अधिकारियों की आज्ञा का पालन करना जानते हैं। जर्मनी लपटन अत्यंत चालाक तथा धूर्त है। वजीरा सिंह आदि अन्य सैनिक कर्त्तव्यनिष्ठ हैं। पात्र योजना और चरित्र–चित्रण की दृष्टि से यह एक सफल कहानी है।

**3. कथोपकथन (संवाद) :-**

कहानी में कथोपकथन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करने के साथ–साथ कथा–प्रवाह को आगे बढ़ाते हैं। परिस्थिति एवं पात्रों को जोड़ने के लिए और आंतरिक भावों एवं मनोवृत्तियों के उद्घाटन के लिए कथोपकथन (संवाद–तत्व) की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। 'उसने कहा था' कहानी के कथोपकथन मनोवैज्ञानिक, सजीव और परिस्थिति के अनुकूल है। अमृतसर के बाजार में लड़का और लड़की की बातचीत में कथोपकथन की सभी विशेषताएँ समन्वित हो गई हैं :–

'तेरे घर कहाँ है ?'

'मगरे में – और तेरे ?'

'माँझे में – यहाँ कहाँ रहती है ?'

अतर सिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ। उनका घर गुरु बाजार में है।'

कथोपकथनों की भाषा स्वाभाविक और परिस्थिति के अनुकूल है। पंजाबी वातावरण होने के कारण पंजाबी भाषा के शब्द भी यत्र–तत्र आ गये हैं। कहीं–कहीं पर कथोपकथन पूर्ण रूप से नाटकीयता लिये हुए हैं। निम्न उदाहरण में देखिए :–

कौन – वजीरासिंह।

हाँ – क्यों लहना क्या कयामत आ गई – जरा तो आँख लगने दी होती।

होश मे आओ – कयामत आई है और लपटन की वर्दी पहनकर आई है।

क्या ?

इस प्रकार कहानी के संवाद रोचक गतिशील, प्रभावशाली तथा भावाभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ हैं।

**4. वातावरण (देश-काल) :-**

कहानी का प्रारम्भ वातावरण का चित्र उपस्थित कर देता है। अमृतसर के बाजार में बंबूकार्ट का सजीव वर्णन है। इसी प्रकार की शब्दावली को हम नित्य–प्रति शहरों में इक्के–ताँगे वालों के मुख से सुनते हैं। कहानीकार पंजाबी वातावरण सफलता के साथ उपस्थित करके उसके बीच में पंजाबी लड़का और लड़की को मिलाता है। इसी प्रकार फ्रांस की युद्धभूमि का सजीव चित्रण, शीत की ठिठुरन, मेंम की चर्चा आदि के सफल चित्रण के कारण कहानी का कथानक यथार्थ–सा लगने लगता है। कहानी में वातावरण का निम्न चित्र लहनासिंह की मृत्यु की ओर संकेत देते हुए परिस्थिति को कितना बिम्बग्राही बना देता है–"लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ क्षयी नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी, जैसी बाणभट्ट की भाषा में दन्तवीणोपदेशाचार्य कहलाती है।"

**5. भाषा-शैली :-**

भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढंग शैली है। प्रस्तुत कहानी की भाषा मंजी हुई परिष्कृत है। उसमें माधुर्य, प्रसाद और ओज तीनों गुणों के साथ–साथ सरलता, स्वाभाविकता और प्रवाहमयता मिलती है। कहानी में आँचलिक भाषा का प्रयोग सुन्दर और मुहावरेदार है। स्थानीय भाषा वातावरण का गतिमय चित्र पाठक के सामने प्रस्तुत कर देती है। भाषा में पंजाबीपन का आधिक्य कथानक को सजीव और गति प्रदान करने में बहुत ही सहायक हुआ है। जबान के कोड़े, कान पक गए, मीठी छुरी, आँखे चढ़ाना, दूर की सोचना आदि आम प्रचलित मुहावरों का उचित प्रयोग कहानी की भाषा को समर्थ व भावाभिव्यंजक बनाता है। खालसाजी, हटो बाछा, जीऊण्ण जोगिए, उमरांवालिए, कुड़माई, होराँ आदि

शब्दों के प्रयोग से आंचलिक और स्थानीय रंग उपस्थित हो गया है।

कहानी की शैली में विशिष्टता और वक्रता है किन्तु कथानक की सरसता, रोचकता तथा रोमांचकारी विवरण उसकी वक्रता या दुरूहता को खटकने नहीं देते। शैली और शिल्प विधान की दृष्टि से यह अद्‌भुत है। कहानी का आरम्भ और मध्य, अंत द्वारा बहुत ही कलात्मकता से जुड़े हैं। कथानक का बीच में से टूटना और एक अद्‌भुत सृजन से जुड़कर इतना सुगठित और सम्बद्ध हो जाना इस कहानी की उत्कृष्ट शैली और शिल्प विधान का उदाहरण है।

**6. उद्देश्य :-**

कर्त्तव्यपरायणता के साथ प्रेम की निर्मल तथा पावन अनुभूति की रक्षा करना ही प्रस्तुत कहानी का मुख्य उद्देश्य हैं, जिसमें कहानीकार को पूर्णतया सफलता मिली है। साथ ही जीवन की दुरूहता, राजभक्ति, वचनपालन, दूसरे के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर देना और उसका किंचित भी विज्ञापन न करना आदि का चित्रण भी कहानी में सुन्दरता से किया गया है।

'उसने कहा था' कहानी की सभी समीक्षकों ने प्रशंसा की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं–"इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ संपुप्ति है। घटना इसकी ऐसी है, जैसी बराबर हुआ करती है, पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है–केवल झाँक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्जता, वेदना की वीभत्स विड्डत्ति नहीं है। सुरुचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।" डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने इस कहानी की विशिष्टता प्रतिपादित करते हुए इसे अमर कहानी कहा है–"इसमें किशोरावस्था के प्रेमांकुर का विकास, त्याग और बलिदान से ओत–प्रोत पवित्र भावना के रूप में किया गया है। कहानी का अंत गंभीर एवं शोकपूर्ण होते हुए भी उसमें हास्य और व्यंग्य का समन्वय इस ढंग से किया गया है कि उसमें मूल स्थायी भाव को कोई ठेस नहीं पहुँचती। विभिन्न दृश्यों के चित्रण में सजीवता, घटनाओं के आयोजन में स्वाभाविकता एवं शैली की रोचकता सभी विशेषताएँ एक से एक बढ़कर हैं। कहानी की प्रथम पंक्ति ही पाठक के हृदय को पकड़कर बैठ जाती है और जब तक पूरी कहानी नहीं पढ़ लेता, उसे छोड़ती नहीं तथा जिसने एक बार कहानी को पढ़ लिया वह 'उसने कहा था' वाक्य को कदाचित जीवन–भर भूल नहीं पाता। क्या भाव, क्या विचार, क्या शिल्प और क्या शैली–सभी की दृष्टि से यह कहानी एक अमर कहानी है।"

## प्रष्टव्य

1. कहानी कला की दृष्टि से 'उसने कहा था' कहानी की समीक्षा कीजिये।
2. 'उसने कहा था' नामक कहानी की विशेषताएँ लिखिये।
3. 'उसने कहा था' कहानी की समालोचना के स्तर पर परखते हुए हिन्दी कहानी साहित्य में उसका मूल्यांकन कीजिये।

# II. कहानी-सार

हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने केवल तीन कहानियां ही साहित्य–संसार को प्रदान की हैं, परन्तु यदि केवल वे 'उसने कहा था' ही लिखते तब भी उनका नाम साहित्य में अमर होता। यह हिन्दी की पहली सर्वांगपूर्ण, यथार्थवादी कहानी है जो कला की प्रत्येक कसौटी पर खरी उतरती है। प्रेम, शौर्य और त्याग जैसे महान आदर्शों की आधारभित्ति पर खड़ी यह कहानी लहनासिंह के चरित्र द्वारा भारतीय किसान की जीवटता, साहस, बुद्धिमानी और कर्त्तव्यपरायणता को दर्शाती है। कहानी का सारांश इस प्रकार से है–अमृतसर के चौक बाजार में एक बारह वर्षीय सिख बालक तथा आठ वर्षीय सिख बालिका मिलती है। प्रारम्भिक परिचय हो जाने पर पता चलता है कि दोनों ही अपने मामा के यहां आए हुए हैं। बालक अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया है और बालिका रसोई के लिए बड़ियां। लड़का अपने चंचल व चुलबुलेपन के कारण लड़की से पूछता है कि क्या तेरी कुड़माई हो गई ? इस पर बालिका आँखें चढ़ाकर धत् कहकर भाग जाती है और लड़का मुंह देखता रह जाता है। इस प्रकार हर दूसरे दिन वे दोनों किसी सब्जी वाले की दुकान पर, किसी दूध वाले के यहाँ मिल जाते और लड़का वही प्रश्न दोहराता और लड़की धत् कहकर भाग जाती है। लेकिन एक दिन लड़के ने

वही चिर–परिचित प्रश्न पूछा और लड़की ने कहा –"हाँ हो गई है।" देखते नहीं रेशम का यह कढ़ा हुआ सालू। लड़की सकुचाकर भाग जाती है और लड़के पर मानो वज्रपात हो जाता है तथा वह भयकर तोड़–फोड़ करता हुआ घर पहुंचता है। रास्ते में एक लड़के को मोरी में धकेल देता है, एक छाबड़ी वाले की दिन–भर की कमाई को बिखरवा देता है और कुत्ते को पत्थर मारता है, गोभी वाले के ठेले में दूध उड़ेल देता है और किसी वैष्णवी से टकराकर अंधा होने की उपाधि प्राप्त करता है। इस प्रकार कहानी का पहला भाग नाटकीय ढंग से समाप्त होता है। उस बारह वर्षीय बालक का नाम लहनासिंह तथा बालिका का नाम सूबेदारनी है। इस घटना को घटे पच्चीस वर्ष हो गये हैं और कहानी का नायक लहनासिंह सेना में जमादार के पद पर नियुक्त हो गया है। इस समय वह गांव के किसी मुकदमे की पैरवी करने के लिए सात दिन की छुट्टी लेकर आया हुआ है तभी उसे रेजीमैंट के अफसर की चिट्ठी मिलती है कि तुरन्त चले आओ, फौज को लाम पर जाना है। उसी समय उसे सूबेदार हजारासिंह की भी चिट्ठी मिलती है कि हमें भी लाम पर जाना है, अतः जाते वक्त इधर से ही चलेंगे। इसीलिये हमारे पास आ जाना। सूबेदार का घर रास्तें में पड़ता था और सूबेदार की लहनासिंह के साथ आत्मीयता था। जब तीनों चलने लगे तो सूबेदार ने लहनासिंह को कहा कि सूबेदारनी तुम्हें जानती है, इसीलिए बुला रही हैं, जा मिलकर आ। लहना आश्चर्यचकित हो गया, क्योंकि वह तो सेना के क्वार्टरों में कभी रही नहीं। अतः जान–पहचान कैसे हो गई ? लेकिन लहनासिंह अंदर मिलने के लिए जाता है तो सूबेदारनी 'कुड़माई वाला' प्रसंग दोहराकर उसकी स्मृतियों को पुनः जागृत कर देती है। वह निवेदन करती है कि जिस प्रकार उसने एक बार घोड़े की लातों से उसके प्राण बचाए थे ठीक इसी प्रकार से मेरे पुत्र और पति के प्राण बचाना। वह उसके समक्ष अपना आंचल पसार कर भीख मांगती है। हजारासिंह उसका पुत्र बोधासिंह तथा लहनासिंह युद्ध स्थल पर पहुंच जाते हैं और वहां जाते ही बोधासिंह बीमार पड़ जाता है लेकिन लहनासिंह उसकी प्राणपण से देखभाल करता है। अपनी सुख–सुविधाओं का परित्याग करके अपनी गर्म जर्सी उसे पहनाता है, अपने तख्तों पर उसे सुलाता है तथा उसका पहरा भी स्वयं देता है। सूबेदार हजारासिंह बोधासिंह की देखभाल के बारे में लहनासिंह को कहता है–"रात–भर तुम अपना कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा देते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौते हैं और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" जब बोधासिंह को सर्दी के कारण ज्यादा कुंपकंपी छूटने लगती है तो वह उससे झूठ बोलकर अपनी गर्म जर्सी पहनाता है–"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।" स्वय खाकी कोट और जीन का कुर्ता पहनकर पहरा देता है और अपने गर्म वस्त्र बोधासिंह को पहना देता है। तभी एक जर्मन लपटन जासूस बनकर आता है और कुछ सैनिकों को छोड़कर शेष को दूसरे स्थान पर जाकर जर्मन खंदक पर आक्रमण करने का आदेश देता है। आदेश की पालना हेतु हजारासिंह सैनिकों को लेकर चला जाता है। वहां लहनासिंह और बीमार बोधासिंह के अलावा आठ सैनिक बाकी रह गये थे। लहनासिंह की कुशाग्र बुद्धि ने भाँप लिया कि वह जासूस है। उसने थोड़ी देर बाद सिगरेट सुलगाया तो लहनासिंह ने आग की रोशनी में उसे पहचान लिया तथा वह दियासिलाई के बहाने खन्दक में चला जाता है और वजीरासिंह को हजारासिंह के पास भेज देता है। तभी लहनासिंह देखता है कि लपटन साहब तीन गोले खंदक की दीवारों मे लगा देता है और उन्हें जलाने वाला ही होता है कि लहनासिंह उसकी कुहनी पर बन्दूक का बट मारकर घायल कर देता है। उसकी जेबों की तलाशी लेकर उसके आवश्यक कागजात निकाल लेता है। तभी लपटन साहब को होश आता है और वह ऐसा अभिनय करके कि जैसे उसे ठण्ड लग रही है, जेबों में हाथ डालकर लहनासिंह पर फायर करता है। गोली लहनासिंह की जांघ मे लगती है, लेकिन लहनासिंह दो फायर करके उसकी कपाल क्रिया कर देता है। तभी सत्तर जर्मनों की एक टुकड़ी खाई मे घुस पड़ती है तथा लहनासिंह और उसके बहादुर साथी पूरी शूरवीरता के साथ मुकाबला करते हैं। तभी हजारासिंह और उसके सैनिक साथी भी वहाँ पहुँच जाते हैं और इस प्रकार से जर्मन सैनिक दो पाटों के बीच में फंस जाते है। आगे से लहनासिंह ओर उसके साथी आक्रमण कर रहे हैं तथा पीछे से सूबेदार हजारासिंह और उसके बहादुर सैनिक संगीनें पिरा रहे। ये बहादुर सिख सैनिक जल्दी ही दुश्मनों को यमलोक भेज देते हैं। इसी आक्रमण में एक गोली लहनासिंह की पसली मे आकर लगती है *तथा* वह घाव को खदक की गीली मिट्टी से पूर देता है और साफा कसकर कमरबन्ध की तरह लपेट लेता है। किसी को भी यह पता नहीं चलता कि लहनासिंह को भारी घाव लगा है। युद्ध स्थल पर भी वह अपने प्राणों की चिन्ता न करके सूबेदारनी के बेटे बोधासिंह को बचाता है। यद्यपि इस कोशिश में वह स्वयं घायल हो जाता है। अपनी घातक घायल अवस्था के बारे में किसी को नहीं बताता और शत्रु पक्ष की पराजय के बाद घायल सूबेदार हजारासिंह और उसके बीमार पुत्र बोधासिंह को इलाज हेतु गाड़ी में भिजवा देता है–स्वयं नहीं जाता तथा चलते हुए कहता है कि सुनिए तो, सूबरेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो उससे कह देना कि उसने जो कहा था, वह मैंने पूरा कर दिया है।

सूबेदार पूछता है कि उसने क्या कहा था ? कि तभी गाड़ी चल दी। गाड़ी के जाते ही लहनासिंह वजीरासिंह से पानी मांगता है और अपना कमरबंध खोलने को कहता है। कमरबंध खून से सना हुआ था। मृत्यु के कुछ समय पूर्व उसकी (व्यक्ति) की स्मृति अत्यन्त तीव्र और साफ हो जाती है। लहनासिंह को भी अपने जीवन की सारी घटनाएँ चलचित्र की भाँति घूमने लगती है। लहनासिंह को भी अपने जीवन की सारी घटनाएं याद हो उठती हैं। वह कभी सूबेदारनी के शैशवावस्था के प्रसंगों को स्मरण करता है तो कभी उसके कहे गए शब्दों को याद करता है। कभी वह कामना करता है कि "मैं तो बुलैल की खड्ड के किनारे मरूंगा और भाई कीरतसिंह की गोद में मेरा सिर होगा और हाथ के लगाए हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।" लहनासिंह के मुख से अन्तिम वाक्य निकला–"उसने कहा था"। कुछ दिन बाद अखबारों में घायलों की एक सूची छपी–जिसमें फ्रांस और बेल्जियम–68 वीं सूची मैदान में घावों से मरा नं० 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

इस प्रकार लहनासिंह और सूबेदारनी के हृदय में बचपन की छोटी–सी मुलाकात से हुए परिचय के कारण जो अतीन्द्रिय प्रेम की उत्पत्ति हुई, उसी कारण लहनासिंह ने अपने प्राणों को होम करके सूबेदारनी के पुत्र और पति की रक्षा करता है, क्योंकि उसने कहा था।

## III. चरित्र-चित्रण

### (क) लहनासिंह

1915 ई० में प्रकाशित पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी' द्वारा रचित 'उसने कहा था' यद्यपि हिन्दी की प्रारम्भिक कहानी है, लेकिन ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से बेजोड़ है। डॉक्टर चितरंजन मिश्र ने 'उसने कहा था' के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा था–"इस कहानी में प्रसाद का रोमांटिक आदर्श अपनी पूरी रंगीनी में उपस्थित है और यह भी एक ऐतिहासिक सच है कि प्रसाद की महत्त्वपूर्ण रोमांटिक कहानियां 'उसने कहा था' के बाद की है। लहनासिंह के आत्मार्पण की करुण कथा और पवित्र प्रेम के लिए किए गए निःस्वार्थ बलिदान की यह कहानी अपने सहज रसोद्रेक के कारण हिन्दी कहानी साहित्य का 'माइल स्टोन' बन सकी। 'उसने कहा था' के साथ हिन्दी कहानी ने अपने विकास की नयी मंजिलें शुरु की हैं।" **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** भी 'उसने कहा था' को सर्वश्रेष्ठ कहानी स्वीकारते हैं–"उसमें यथार्थवाद के बीच सुरुचि की चरम् मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम् उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ सम्पुटित हुआ है। इसकी घटनाएं ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।" प्रस्तुत कहानी के सभी पात्र जीवन्त, आकर्षक और सजीव हैं। लहनासिंह इस कहानी का नायक है तथा सूबेदारनी, सूबेदार हजारासिंह और उसका बेटा बोधासिंह आदि प्रमुख पात्र है और वजीरासिंह, लपटन साहब आदि गौण पात्र है। लहनासिंह के अद्‌भुत शौर्य, साहस और त्याग का मार्मिक चित्रांकन प्रस्तुत कहानी में हुआ है। वचन का धनी लहनासिंह सूबेदारनी के पुत्र बोधासिंह और पति हजारासिंह के प्राणों को बचाने हेतु आत्मोत्सर्ग कर डालता है। उसकी त्यागवृत्ति वहाँ भी दृष्टिगोचर होती है, जहां वह अपने सुखों का परित्याग करके, भीषण कड़कड़ाती सर्दी में अपनी जरसी बोधासिंह को पहना देता है और स्वयं खाकी कोट और जीन का कुर्ता पहनकर पहरे पर खड़ा होता है। उसकी चारित्रिक विशेषताएं इस प्रकार से हैं–

**1. नायक** – गुलेरी द्वारा रचित 'उसने कहा था' के नायकत्व के पद पर अधिष्ठित है–वचन का धनी, शौर्य और वीरता की जीवन्त प्रतिमा–लहनासिंह। वह कहानी का केन्द्रीय चरित्र भी है तथा सम्पूर्ण कथावस्तु का घटनाचक्र भी उसी के चारों ओर चक्कर काटता है। वह कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है तथा सारी घटनाओं का ताना–बाना भी उसी के चारों ओर बुना हुआ है। अमृतसर के चौक बाजार में उसी का परिचय बालिका से होता है तथा वही लड़की से पूछता है 'तेरी कुड़माई हो गई है' वही लड़की को घोड़े की लातों से बचाता है और कुड़माई हो जाने पर उसी के मानसिक क्षोभ, व्यथा और आक्रोश को अभिव्यक्ति मिली है। कहानी की सभी घटनाएं प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में लहनासिंह से ही सम्बन्धित हैं। कहानी का फलभोक्ता भी वही है और सूबेदारनी के पुत्र बोधासिंह की बीमारी की अवस्था में पूरी देखभाल करता है तथा अपनी जरसी असत्य का आश्रय लेकर उसे पहनाता है और स्वयं भीषण कड़कड़ाती सर्दी में खाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरा देता है। उसका पहरा स्वयं देता है और स्वयं कीचड़ में पड़े रहकर उसे सूखे लकड़ी के तख्तों पर सुलाता है। रात–भर दोनों कम्बल उसे उढ़ाता है और स्वयं सिगड़ी के सहारे रात बिताता है। इसी प्रकार युद्ध स्थल पर भी सूबेदारनी के पुत्र बोधासिंह एवं पति हजारासिंह के प्राण बचाता है तथा स्वयं आत्मोत्सर्ग कर डालता है। कहानी के अन्य पात्र–सूबेदार हजारासिंह, सूबेदारनी, बोधासिंह, वजीरा, कीरतसिंह आदि सभी लहनासिंह के चरित्र को प्रकाशित व महिमामण्डित करते हैं। अतः लहनासिंह ही निर्विवाद रूप से कहानी का नायक सिद्ध होता है।

**2. साहसी व्यक्तित्व का स्वामी** -- लहनासिंह प्रस्तुत कहानी में साहसी व्यक्तित्व के स्वामी के रूप में चित्रित हुआ है। असीम साहस के कारण ही वह अपने प्राणों को संकट में डालकर बालिका के प्राणों की रक्षा करता है। सूबेदारनी कहती है–"तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण [illegible] थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को [illegible]। यह मेरी भिक्षा है।" इसी प्रकार युद्ध स्थल पर भी उसका साहस देखते ही बनता है, वह युद्ध करने के लिए [illegible]। लहनासिंह के ये निम्न वचन उसके साहसी व्यक्तित्व को ही उजागर करते हैं–"बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना [illegible] सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो।" इसी प्रकार युद्ध स्थल पर भी उसका साहस मुखरित हो उठा है। सत्तर जर्मन [illegible] के साथ युद्ध में भी वह अत्यन्त साहस और शूरवीरता के साथ लड़ता है तथा वजीरासिंह के यह कहने पर कि तुम [illegible] हो, वह अपने साहस और शूरवीरता का प्रदर्शन करते हुए कहता है–"आठ नहीं दस लाख। एक–एक अकालिया सिख [illegible] लाख के बराबर होता है।" इस प्रकार वह अपने प्राणों को जोखिम में डालकर बालिका, बोधासिंह व हजारासिंह की [illegible] है। अतः स्पष्ट है कि लहनासिंह साहसी व्यक्तित्व का स्वामी है।

**3. आदर्श प्रेमी** – लहनासिंह को प्रस्तुत कहानी में आदर्श प्रेमी की कोटि में रखा जा सकता है। [illegible] चौक बाजार में लड़की से मिलने पर और अपने शरारती स्वभाव के कारण पूछने पर–तेरी कुड़माई हो गई है उसका [illegible] से स्नेह सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं और इसी मोहवश वह अपने प्राणों को संकट में डालकर बालिका को घोड़े की [illegible] बचाकर तख्त पर खड़ा कर देता है। लड़की से यह सुनकर कि 'कुड़माई हो गई है' उस पर [illegible] वह रास्ते में एक लड़के को मोरी में धकेलता है, छाबड़ी वाले की दिन–भर की कमाई को बिखरा देता [illegible] तोड़–फोड़ करता हुआ घर पहुंचता है। शायद इस खबर से वह आहत हो उठता है, क्योंकि उसका [illegible] आत्मीयता–लगाव है। पच्चीस वर्ष बाद जब वह सूबेदार हजारासिंह के घर पहुंचता है तो सूबेदारनी अपने [illegible] पहचान लेती है। अपने मोह–प्रेम या स्नेह के बल पर वह उससे अपने पति सूबेदार हजारासिंह व पुत्र बोधासिंह [illegible] की भिक्षा आंचल पसारकर मांगती है जिसे वह आत्मोत्सर्ग करके भी पूरा करता है। कहानीकार स्पष्ट लिखता [illegible] पर लेट गया। भला आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख [illegible] जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया।" सूबेदार ने चढ़ते–चढ़ते लहना [illegible] कहा–"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तू ही [illegible] क्या कहा था।" लेकिन लहनासिंह का बालिका–सूबेदारनी के प्रति प्रेम अत्यन्त सात्विक, स्वस्थ, उज्ज्वल और [illegible] सूक्ष्म, अशरीरी प्रेम के कारण ही लहनासिंह को आदर्श प्रेमी कहा जाता है। उसमें कहीं भी वासना की दुर्गन्ध नहीं है न [illegible] है और न दैहिक प्रेम है।

**आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने इसी उद्दात–अलौकिक और अशरीरी प्रेम की प्रशंसा करते हुए [illegible] ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर इसके भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय रूप झांक रहा है, केवल झांक रहा [illegible] के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स विवृति नहीं है। [illegible] स्पष्ट है कि लहनासिंह का प्रेम आदर्श, दिव्य, अशरीरी, अलौकिक है। इसी कारण उसे आदर्श प्रेम कहा [illegible]

**4. कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त प्रतिमा** – लहनासिंह प्रस्तुत कहानी में कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त प्रतिमा के रूप में [illegible] हुआ है। जब जासूस लपटन साहब बनकर उनकी खंदक में आ जाता है तो वह अपनी कुशाग्र बुद्धि के बल पर सूझ [illegible] चतुरता से भांप लेता है कि वह लपटन साहब नहीं, बल्कि जर्मन जासूस है। वह जासूस को स्पष्ट कहता है–"[illegible] हो, पर मांझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आंख चाहिये। [illegible] वह अपनी त्वरित कुशाग्र बुद्धि के बल पर प्रश्नोत्तर द्वारा उसकी वास्तविकता को भांपने का प्रयास करता है तथा [illegible] देता है–"होश में आओ! कयामत आयी है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आयी है।"

क्या ?

लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार [illegible] मुंह नहीं देखा। मैंने देखा है, और बातें की हैं। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट [illegible] है।" इसी प्रकार से वह गांव में आए तुरकी मौलवी को भी अपनी तीव्र–कुशाग्र बुद्धि से जान लेता है कि वह जर्मन जासूस है।

जो गांववासियों को सरकार के विरुद्ध भड़काता है। इसीलिए सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर, उसकी तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।" उसकी कुशाग्र बुद्धि के कारण ही तिरसठ जर्मन सैनिक या तो आहत होते हैं या मारे जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि लहनासिंह प्रस्तुत कहानी में कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त प्रतिमा के रूप में चित्रित हुआ है।

**5. धीर-वीर-निर्भीकमना** – लहनासिंह 'उसने कहा था' कहानी में 'धीर–वीर–निर्भीकमना' नवयुवक के रूप में चित्रित हुआ है। वीर सिपाही होने के कारण वह संकट की घड़ी में न तो साहस छोड़ता है और न मानसिक संतुलन। युद्ध के मोर्चे पर वह एक वीर नायक के रूप में दृष्टिगोचर होता है। खंदक में बैठे–बैठे वह उकता गया है और शत्रु पर आक्रमण करने में ही वह भलाई समझता है। वह स्पष्ट घोषणा करता है–"मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो।" वह कहता है कि "यदि एक धावा हो जाए तो गरमी आ जाए।" अपनी वीरता का प्रमाण देते हुए वह सत्तर सैनिकों के साथ बहादुरी से लड़ता है। वजीरासिंह के कहने पर वह अपनी वीरता का परिचय देते हुए कहता है–"आठ नहीं एक–एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है।" इसी प्रकार वह जासूस साहब को भी कपाल क्रिया कर देता है। वह सेना में नायक जमादार के पद पर आसीन है और अंग्रेजों की ओर से फ्रांस की युद्ध भूमि पर लड़ने के लिए जाता है। युद्ध क्षेत्र में वह स्पष्ट स्वीकारता है कि बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही।" कहानीकार ने लिखा है–"इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिखों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले को रोका। दूसरे को रोका। पर यहां थे आठ (लहनासिंह ताक–ताककर मार रहा था–वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर।" यह उसकी वीरता का पुख्ता प्रमाण है कि वह घायल हो जाने पर–जांघ में लगी गोली लगी थी, फिर भी खन्दक पर आक्रमण होने पर निडरता के साथ लड़ता है।

**6. कर्त्तव्यनिष्ठ** – लहनासिंह कर्त्तव्यनिष्ठ वीर सैनिक है। वचन का धनी लहनासिंह सूबेदारनी को दिए गए वचन की पालना में अपने प्राणों की आहुति देने में भी नहीं चूकता। सूबेदारनी के बीमार पुत्र की प्राणपन से देखभाल करता है तथा भीषण कड़कड़ाती सर्दी में अपनी जर्सी उसे पहनाता है और स्वयं खाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरा देता है। इतना ही नहीं, सूबेदार हजारासिंह भी लहनासिंह की कर्त्तव्यनिष्ठा व उसके बीमार पुत्र बोधासिंह की देखभाल के बारे में कहता है–"रात भर तुम दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" इसी प्रकार से जब बीमारों को लेने के लिए गाड़ी आती है तो वह स्वयं न जाकर बोधासिंह व सूबेदार साहब को सूबेदारनी की कसम देकर भेज देता है–"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है तो इस गाड़ी में चले जाओ।" इसी प्रकार सूबेदार साहब जाते–जाते लहना का हाथ पकड़कर कहते हैं–"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं । लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे । अपनी सूबेदारनी से तू ही कह देना। उसने क्या कहा था।" इस प्रकार वह प्राणों की बाजी लगाकर अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करता है।

**7. सिपाही या जमादार के पद पर आसीन** – 'उसने कहा था' कहानी का नायक लहनासिंह सेना में जमादार के मामूली पद पर आसीन है, लेकिन यहां पर भी किसानी जीवन के मधुर स्वप्न देखता है। वह सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्में की पैरवी करने के लिए आया हुआ है। कहानीकार यह तो स्पष्ट नहीं करता कि वह विवाहित है या अविवाहित, परन्तु उसका भी भतीजा है कीरतसिंह जिसकी गोदी पर सिर रखकर वह मरना चाहता है–"मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूंगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और हाथ के लगाए हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।" उसे सरकार से न तो जमीन, जायदाद की उम्मीद है और न खिताब की, बल्कि वह तो अंग्रेजी सरकार की वफादारी हेतु युद्ध में शामिल हुआ है। खंदक में पड़े–पड़े भी उसकी कृषक मानसिकता ही प्रकट होती है। लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा–"अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब–भर में नहीं मिलेगा।"

"हां, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घूमा जमीन यहां मांग लूगा और फलों के बूटे लगाऊंगा।"

## (ख) सूबेदारनी

श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' में नायिका के पद पर आसीन है, क्योंकि वह कहानी में प्रारम्भ से लेकर अंत तक विद्यमान रहती है और लगभग सभी घटनाओं का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में उससे

सम्बन्ध है। लहनासिंह के बाद उसका चरित्र कहानी में सबसे महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वही लहनासिंह के चरित्र को प्रकाशित करने में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कहानी में उसका पदार्पण दो बार होता है–पहली बार कहानी के प्रारम्भ में और दूसरी बार पच्चीस वर्ष बाद, जब वह सूबेदार हजारासिंह की पत्नी और बोधासिंह की माँ के रूप में कर्त्तव्य का पालन कर रही है। प्रारम्भ में वह आठ वर्षीय बालिका के रूप में अमृतसर के चौक बाजार में रसोई के लिए बड़िया लेने के लिए आयी है। जहाँ बारह वर्षीय बालक लहनासिंह अपने शरारती और चुलबुले स्वभाव के कारण बालिका से पूछता है कि तेरे कुड़माई हो गई ? लड़की आँखे चढ़ाकर धत् कहकर भाग जाती है। लेकिन दूसरे–तीसरे दिन किसी सब्जी वाले के यहां या दूध वाले के यहां उसकी लहनासिंह से भेंट हो जाती है। दो–तीन बार वही प्रश्न पूछने पर वह धत् कहती है, लेकिन एक दिन वह लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली–हां हो गई। देखते नहीं रेशम से कढ़ा हुआ यह सालू। यह कहकर लड़की शर्माकर भाग जाती है। इस प्रकार वह निर्भीक होकर आत्मविश्वास और गंभीरता के साथ उत्तर देती है। 'कुड़माई' होते ही बालिका में परिपक्वता, गम्भीरता और आत्मविश्वास का आविर्भाव हो जाता है। उसे यह बतानें में कि उसकी 'कुड़माई' हो गई है न लाज न संकोच–यही उसके व्यक्तित्व का उज्ज्वल पक्ष है।

इतना ही नहीं, सूबेदारनी कुशाग्र बुद्धि की जीवन्त व साकार प्रतिमा है, क्योंकि वह पच्चीस वर्ष पहले के अपने बाल–मित्र लहनासिंह को पहचान लेती है, यद्यपि कहानी का नायक लहनासिंह उसे पहचान नहीं पाता, लेकिन वह स्पष्ट कहती है–"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया।" उसे अपने बाल मित्र लहनासिंह पर अगाध विश्वास है कि जिस प्रकार उसने अमृतसर के चौक बाजार में अपने प्राणों को संकट में डालकर मुझे घोड़ों की लातों में जाने से बचाया था और दुकान के सामने तख्ते पर खड़ा कर दिया था। उसी प्रकार वह युद्ध स्थल पर भी उसके पति और पुत्र बोधासिंह की रक्षा करेगा। वह अपने बाल मित्र लहनासिंह की मधुर स्मृतियों को पच्चीस वर्ष तक अपने हृदय में संजोकर रखती है और उन्हें भुला नहीं पाती है अपने असीम विश्वास और प्रेम–सम्बन्धों के बल पर वह लहनासिंह से स्पष्ट कहती है–"एक काम कहती हू मेरे तो भाग फूट गए सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, पर सरकार ने हम तीमियों की घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं सूबेदार जी के साथ चली जाती। एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ है। उसके पीछे चार और हुए पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी–"अब दोनों जाते हैं मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़ों की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है ! तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूं।" लहनासिंह के प्रति उसके हृदय में रची–पची अपनत्व या स्नेह की भावना उसके हृदय में पच्चीस वर्ष तक बरकरार रहती है तथा सूबेदारनी के व्यक्तित्व को एक नया निखार देती है। इस दृष्टि से सूबेदारनी परम्परागत भारतीय नारी से भिन्न दिखाई देती है

सूबेदारनी जहां पच्चीस वर्ष तक लहनासिंह की स्मृतियों को संजोकर रखती है वहां वह अपने पति और पुत्र के प्रति भी पूर्ण रूप से समर्पित है। पति और पुत्र के प्रति कर्त्तव्य व दायित्व को भी वह अनन्य निष्ठा और आत्मीयता से निभाती है। वह अपने पति सूबेदार हजारासिंह और पुत्र बोधासिंह की रक्षा हेतु लहनासिंह के समक्ष आंचल पसारती है कि जिस प्रकार तुमने मेरी रक्षा की थी, उसी प्रकार इन दोनों की रक्षा करना। यह मेरी भिक्षा है। उसके चार पुत्र और हुए थे, लेकिन सभी असामयिक काल–कवलित हो गये। इसलिए बोधासिंह उसका अकेला कुल–दीपक है। अतः उसके हृदय में अपने पति और पुत्र के प्रति भी प्रेम, आत्मीयता और कर्त्तव्य की भावना विद्यमान है। वह वास्तव में उन दोनों की हित–चिन्तिका और हित–साधिका है तथा दोनों की सुरक्षा के लिए अत्यधिक व्याकुल–व्यथित एवं चिन्तित है। इस प्रकार वह घर–परिवार के प्रति दायित्वबोध से युक्त है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सूबेदारनी की जितनी आत्मीयता सूबेदार और अपने पुत्र बोधासिंह के प्रति है, उतनी ही उन मधुर स्मृतियों के प्रति भी है। वह उन मधुर स्मृतियों को जीवन की अमूल्य धरोहर मानती है। लहनासिंह के प्रति उसके लगाव को अभिव्यक्त करती है। सूबेदारनी का चरित्र प्रस्तुत कहानी में इसलिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है कि वह नायक लहनासिंह के चरित्र के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने में समर्थ, सक्षम है।

## (ग) सूबेदार हजारासिंह

सूबेदार हजारासिंह गुलेरी द्वारा रचित 'उसने कहा था' का एक प्रमुख पात्र है तथा नायक के चरित्र को प्रदीप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। लहनासिंह तो एक मामूली किसान है, परन्तु सूबेदार हजारासिंह मामूली किसान नहीं है, बल्कि उसको सरकार की ओर से जमीन–जायदाद व खिताब मिल चुका है। लायलपुर में सूबेदार साहब की जमीन–जायदाद है। वह लहनासिंह के प्रति आत्मीयता व स्नेह–भावना रखता है तथा उस पर विश्वास भी करता है। इसीलिए वह लहनासिंह

को चिट्ठी लिखकर अपने पास बुलाता है। कहानीकार लिखता है–"सूबेदार का घर रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था।" इस प्रकार सूबेदार की लहनासिंह के प्रति गहरी आत्मीयता व अगाध विश्वास है। बोधासिंह के बीमार पड़ जाने पर वह उसकी देखभाल का भी दायित्व लहनासिंह को ही सौंपता है जिसे वह पूरी निष्ठा व लगन से निभाता है। भीषण कड़कड़ाती सर्दी में अपने गर्म वस्त्र उसे पहनाता है और स्वयं खाकी कोट और जीन में पहरा देता है। कहानीकार लहनासिंह की सेवा–भावना को इंगित करते हुए लिखता है–"बोधासिंह खाली बिस्किटों के तीन टीनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खई के मुंह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर।" इसी प्रकार सूबेदार हजारासिंह को लहनासिंह पर अगाधा विश्वास है कि वह उसके पुत्र बोधासिंह की उचित देखभाल करेगा। इसीलिए सूबेदार साहब लहनासिंह को कहते हैं–"जैसा मैं जानता न होऊँ। रात–भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो।" उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो, कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वाले को मुरब्बे नहीं मिला करते। सूबेदार हजारासिंह खंदक में पड़े–पड़े उकताए हुए लहनासिंह को स्पष्ट कहता है–"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा।" सूबेदार हजारासिंह घूम–घूमकर बड़ी कुशलता और तत्परता से सभी को दिशा–निर्देश देता है और खंदक में चक्कर लगाकर निरीक्षण करता है–"उदमी, उठ, सिगड़ी में कोयले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियां लेकर खाई का पानी बाहर फैंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाका के दरवाजे का पहरा बदल दो।" सूबेदार हजारासिंह का लाम पर जाने का उद्देश्य सरकार के प्रति अपनी वफादारी प्रकट करना है, जबकि लहनासिंह देश–प्रेम की भावना से युक्त होकर या आजीविका हेतु सेना में भर्ती हुआ है।

सूबेदार हजारासिंह लहनासिंह के सुख–दुःख की भी चिन्ता करता है, इसीलिए वह लहनासिंह को समझाते हुए कहता है–"कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" इसी प्रकार लहनासिंह के घायल हो जाने पर उसकी जांघ में पट्टी बंधवाता है तथा उसे छोड़कर वह जाना नहीं चाहता, लेकिन लहनासिंह उसे बोधासिंह और सूबेदारनी की कसम दिलाता है–"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है तो इस गाड़ी में चले जाओ।" सूबेदार हजारासिंह लहनासिंह के प्रति अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त करता है–सूबेदार ने चढ़ते–चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा–"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे।" कहानीकार भी सूबेदार हजारासिंह की आत्मीयता व स्नेह भावना को अनेक स्थलों पर प्रकट करता है।

सूबेदार हजारासिंह के व्यक्तित्व का एक दूसरा पक्ष भी है कि वह लहनासिंह के बलिदान को यथोचित सम्मान नहीं दिलवाता। सूबेदार इस तथ्य से भली–भाँति परिचित है कि लहनासिंह के असीम साहस और कुशाग्र बुद्धि के कारण जर्मन सेना के षड्यन्त्र से उनका बचाव हुआ है और उसे उसके साहस और चातुर्य की बात बड़े अधिकारियों तक पहुंचानी चाहिए थी, लेकिन उसको भरपूर सम्मान नहीं दिलवाया। अतः सूबेदार हजारासिंह उक्त तथ्य अधिकारियों के नोटिस में लाता तो उसका बलिदान, आत्मोत्सर्ग व्यर्थ न जाता और उसके बलिदान को यथोचित सम्मान मिलता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वह (सूबेदार हजारासिंह) 'उसने कहा था' कहानी में एक महत्त्वपूर्ण पात्र है तथा कुशल सेना अधिकारी है, परन्तु लहनासिंह के आत्मोत्सर्ग को यथोचित सम्मान दिलवाने में असमर्थ, असक्षम है।

## IV. उद्देश्य

श्रेष्ठ कहानीकार पंडित चन्द्रधर 'गुलेरी' द्वारा रचित 'उसने कहा था' में कहानीकार नर–नारी के अनुपम, पावन सम्बन्धों का चित्रांकन करता हुआ प्रेम और कर्त्तव्य के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले लहनासिंह के चरित्र को महिमा–मण्डित करता है। लहनासिंह और सूबेदारनी के स्वर्गीय, दिव्य, उदात्त, अतीन्द्रिय प्रेम की प्रशंसा करते हुए **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** लिखते हैं–"इसकी घटना ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर इसके भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय रूप झांक रहा है–केवल झांक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्जता, प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स निवृत्ति नहीं है।" 'उसने कहा था' कहानी के प्रतिपाद्य निम्नलिखित हैं –

(क) लहनासिंह के चरित्र को महिमा–मण्डित करना।

(ख) स्त्री–पुरुष (सूबेदारनी–लहनासिंह) के बीच पनपे संबंधों को उजागर करना।

(ग) दिव्य, अलौकिक प्रेम का चित्रण।

(घ) युद्ध का सजीव चित्रण।

**1. लहनासिंह के चरित्र को महिमा-मण्डित करना** – 'उसने कहा था' कहानी द्वारा कहानीकार लहनासिंह के आत्मोत्सर्ग को महिमा–मण्डित करना चाहता है। लहनासिंह ने प्रेम और कर्त्तव्य के लिए सूबेदार हजारासिंह और उसके पुत्र के प्राण बचाने हेतु अपने प्राण न्योछावर कर दिये थे। लहनासिंह और सूबेदारनी पच्चीस वर्ष पहले अमृतसर के चौक बाजार में मिलते हैं। वहां एक बाल धोने के लिए दही और दूसरा रसोई के लिए बड़ियां लेने के लिए आया हुआ था। चंचल व शरारती लहनासिंह लड़की का परिचय लेता है और अगली मुलाकात पर उससे पूछता है–'तेरी कुड़माई हो गई है ? लड़की धत् कह कर भाग जाती है और लगभग महीने–भर यही हाल रहता हैं अन्ततः एक दिन लड़के ने वही प्रश्न दोहराया और लड़की ने अप्रत्याशित उत्तर दिया, हां हो गई। देखते नहीं, रेशम से यह कढ़ा सालू। लड़के पर तो मानो वज्रपात हो जाता है। वह तोड़–फोड़ करता हुआ निराश–व्यथित होकर घर पहुंचता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लड़के–लड़की का आपस में एक अनजाना मोह पनप जाता है। पच्चीस साल बाद वही लड़का जो अब सेना में जमादार के पद पर आसीन है, उसी लड़की से मिलता है, जो अब उसके अधिकारी सूबेदार हजारासिंह की पत्नी है। वह लहनासिंह से आंचल पसार कर अपने पति और पुत्र के प्राणों की भिक्षा मांगती है तथा स्पष्ट करती है कि जिस प्रकार उसने मेरे प्राण बचाए थे–घोड़ों की लातों में आने से पहले मुझे बचाया था और स्वयं लातों में चले गये थे–ठीक उसी प्रकार उनके प्राण बचाना। लहनासिंह उसके पुत्र बोधासिंह जो युद्ध स्थल पर जाकर बीमार पड़ जाता है, की पूरी देखभाल करता है। भीषण कड़कड़ाती सर्दी में झूठ बोलकर अपने गर्म कपड़े उसको पहनाता है, उसका पहरा देता है और स्वयं कीचड़ में पड़कर उसको सूखे लकड़ी के तख्तों पर सुलाता है। सूबेदार हजारासिंह स्पष्ट कहता है–"जैसे मैं जानता न होऊं। रात–भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।" स्वयं घायल हो जाने पर भी, घायलों हेतु आई गाडी में सूबेदारनी की कसम दिलवाकर सूबेदार और बोधासिंह को बिठा देता है। कहानीकार लिखता है–"बोधासिंह गाड़ी पर लेट गया ? भला आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया है।" गाड़ियां चल पड़ी थी। सूबेदार ने चलते–चलते लहना का हाथ पकड़ कर कहा–तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तुम ही कह देना। उसने क्या कहा था ?

इस प्रकार कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी में लहनासिंह के अद्भुत शौर्य, साहस और त्याग का चित्रांकन करते हुए उसके प्राणोत्सर्ग को महिमा–मण्डित करना चाहता है।

**2. स्त्री-पुरुष के बीच में पनपे एक नये तरह के मानवीय सम्बन्ध** – कहानीकार गुलेरी जी प्रस्तुत कहानी में स्त्री–पुरुष (सूबेदारनी–लहनासिंह) के बीच में पनपे एक नये तरह के मानवीय सम्बन्धों का चित्रांकन करता है। लहनासिंह और बालिका सूबेदारनी बारह वर्ष व आठ वर्ष के हैं तथा हर रोज अमृतसर के चौक बाजार में मिलने से उनमें मधुर संबंध या मोह पनपता है तथा उन सामाजिक सम्बन्धों पर, प्रतिफलित होने से पूर्व तुषारापात हो जाता है। लेकिन उन मधुर सम्बन्धों की स्मृतियां कसक उन दोनों के हृदय में शाश्वत रूप से विद्यमान रहती हैं। लहनासिंह की बाद में सेना में जमादार के पद पर नियुक्ति हो जाती है और सूबेदारनी सूबेदार हजारासिंह की पत्नी बन जाती है, लेकिन वे मधुर स्मृतियां अमिट रूप से उसके हृदय में वर्तमान रहती हैं। उन सम्बन्धों के कारण वह लहनासिंह पर अगाध विश्वास करते हुए अपने पति और पुत्र की रक्षा करने की याचना करती है, जिसे लहनासिंह आत्मोत्सर्ग करके निर्वाह करता है। ये मधुर स्मृतियां उन दोनों के जीवन की अनमोल धरोहर बन जाती है। इस प्रकार सूबेदारनी का जितना प्रेम–लगाव अपने पुत्र और पति के प्रति है, उतना ही लगाव और प्रेम लहनासिंह की मधुर स्मृतियों के प्रति है। लहनासिंह और सूबेदारनी के इस सम्बन्ध का कोई नाम नही दिया जा सकता क्योंकि यदि वह लहनासिंह की प्रेमिका होती तो उसके अपने पति के साथ सम्बन्ध मधुर न होते, लेकिन उसके पति व पुत्र के साथ सम्बन्ध भी अत्यन्त मधुर व आत्मीयतापूर्ण हैं। लहनासिंह के प्रति उसका अगाध विश्वास निश्चय ही एक नये तरह के मानवीय सम्बन्ध की ओर इशारा करते हैं। गुलेरी जी ने इन्हीं नये–अनुपम मानवीय सम्बन्धों की व्याख्या प्रस्तुत कहानी में प्रस्तुत की है। इन्हीं सम्बन्धों को बरकरार रखने के लिए लहनासिंह आत्मोत्सर्ग करके उसके पति और पुत्र की रक्षा करता है। अतः लेखक का प्रमुख प्रतिपाद्य स्त्री–पुरुष के बीच में विकसित हुए इन नये सम्बन्धों को उजागर करना है।

**3. दिव्य-अलौकिक प्रेम का चित्रण** – कहानीकार गुलेरी ने 'उसने कहा था' कहानी में लहनासिंह–सूबेदारनी के दिव्य–अलौकिक प्रेम का चित्रण किया है तथा स्पष्ट किया है कि उन दोनों का यह अशरीरी प्रेम अत्यन्त सात्विक और अतीन्द्रिय है तथा उसमें कहीं भी वासना की दुर्गन्ध नहीं है। एक–दूसरे के प्रति असीम–अगाध विश्वास उस दिव्य और अलौकिक प्रेम की आधारभित्ति है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने इस अलौकिक प्रेम की प्रशंसा करते हुए लिखा है–"इसकी घटना ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर उसके भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय रूप झांक रहा है। केवल झांक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी–भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रंगल्भता, वेदना की वीभत्स निवृत्ति नहीं है।" वास्तव में 'उसने कहा था' कहानी के इस दिव्य प्रेम ने प्रसाद की रोमानी प्रेम कहानियों का पथ प्रशस्त किया है।

**4. युद्ध का सजीव चित्रण** – गुलेरी द्वारा रचित कहानी में कहानीकार ने प्रथम विश्व–युद्ध का सजीव चित्रण किया है। 'उसने कहा था' कहानी 1915 ई० में लिखी गई थी और कहानी का अधिकांश हिस्सा फ्रांस के युद्ध मैदान से सम्बन्धित है। युद्ध के मोर्चे का चित्रण कहानीकार ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से किया है–

अचानक आवाज आयी–"वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा।" और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो पाटों के बीच में आ गए। पीछे से हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने से लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरु कर दिया। युद्ध के मोर्चे पर सिपाहियों की ऊब, उकताहट और एक रसता तथा उनकी बातचीत, उनकी मनःस्थिति, भविष्य की उनकी योजनाएं सभी कुछ कहानी में अभिव्यक्त हुआ है। अतः स्पष्ट है कि 'उसने कहा था' कहानी में युद्ध का सजीव चित्रण हुआ है।

अतः स्पष्ट है कि कहानीकार ने 'उसने कहा था' कहानी में लहनासिंह के त्याग, शौर्य और आत्मोत्सर्ग को उजागर करता हुआ उसके चरित्र को महिमा मण्डित करता है। डॉक्टर चितरंजन मिश्र का कहना है–"लहनासिंह के आत्मार्पन की करुण कथा और पवित्र प्रेम के लिए किए गए निःस्वार्थ बलिदान की यह कहानी अपने सहज रसोद्रेक के कारण हिन्दी साहित्य का 'माइल स्टोन' बन सकी। 'उसने कहा था' के साथ हिन्दी कहानी ने अपने विकास की नयी मंजिलें शुरु की हैं।" वास्तव में यदि 'उसने कहा था' को प्रसाद की कहानियों का दिग्दर्शक या पथ–प्रदर्शक कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित यह कहानी एक नये तरह के मानवीय सम्बन्धों को परत–दर–परत खोलती है जो कि अतीन्द्रिय, सूक्ष्म व अलौकिक है। प्रेम, शौर्य या त्याग जैसे महान आदर्शों पर आधारित यह कहानी लहनासिंह के चरित्र द्वारा भारतीय किसान की जीवटता, साहस, बुद्धिमानी और कर्त्तव्यपरायणता को भी दर्शाती है।

## व्याख्या

***1. "चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए, फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित उनकी पहली कलात्मक कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है। यह हिन्दी की पहली सर्वांगपूर्ण यथार्थवादी कहानी है जो कला की कसौटी पर खरी उतरती है तथा यथार्थ की सघनता के गुजरते उच्च आदर्श को रूपायित करने में समर्थ हुई है। इस कहानी का कथ्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। कहानी का नायक लहनासिंह और उसके साथी सैनिक इंग्लैंड की ओर से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध–स्थल पर मोर्चे पर लड़ रहे हैं। मोर्चे पर लड़ाई की इंतजार करते–करते उकतासा, उब गए हैं और वे चाहते हैं कि जल्दी से लड़ाई शुरु हो ताकि नीरसता, एकरसता समाप्त हो। दिन–रात भयंकर कड़कड़ाती सर्दी में खंदकों में बैठे–बैठे भयंकर सर्दी के कारण उनकी हड्डियां जम गई हैं। इसी निष्क्रियता, ऊब और उकताहट में लहनासिंह ये पंक्तियां कहता है–

**व्याख्या** –लहनासिंह स्पष्ट करता है कि पिछले चार दिन से हमने पलक नहीं झपकी, क्योंकि खंदक में हमें जागरूक रहना पड़ता है, दूसरा भयंकर कड़कड़ाती सर्दी के कारण वे एक पल भी खंदक में सो नहीं पाये। इसलिए चार दिन उन्होंने पलकों में बैठे–बैठे काट दिए हैं, लेकिन ऐसे निष्क्रिय पड़े रहने का कोई लाभ नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार बिना दौड़ने से घोड़ा बिगड़ जाता है, अर्थात् उसकी दौड़ने की आदत छूट जाती है और फिर वह ठीक गति से दौड़ नहीं पाता। उसके शरीर के अंग आराम करने से शिथिल हो जाते हैं, फिर दौड़ने में कठिनाई होती है। ठीक इसी प्रकार लड़ाई के बिना भी सैनिक बिगड़ जाते हैं, क्योंकि बिना अभ्यास के एवं निष्क्रिय शिथिल रहने से उनकी अस्त्र–शस्त्र चलाने की आदत छूट जाती है और फिर

वे अस्त्र–शस्त्र चला नहीं सकते। उनका जोश, उत्साह व शक्ति भी निष्क्रिय रहने से शनैः शनैः घटती जाती है। इसलिए यदि हमें लड़ाई का आदेश मिल जाए तो हमारी वीरता देखना। मैं अकेला ही सात जर्मन सैनिकों को वापिस मारकर लाटूंगा यदि ऐसा न कर सका तो मुझे दरबार साहब (स्वर्ण मन्दिर, अमृतसर) में मत्था टेकना नसीब न हो, अर्थात् मुझे दरबार साहब का आशीर्वाद न मिले।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल तथा सुबोध है। गुलेरी जी की भाषा पर पंजाबी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

2. लहनासिंह के मनोभाव को अभिव्यक्ति मिली है–नायक की वीरता व शौर्य–भावना प्रकट हुई है।

3. 'बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है, बिना लड़े सिपाही'–लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग हुआ है तथा सैनिकों के मनोभाव को प्रकट करने में सक्षम है।

4. लहनासिंह मूल रूप से एक किसान है, इसीलिए उसकी भाषा में देशज शब्द, मुहावरे और लोकोक्ति आदि प्रयोग हुए हैं।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

6. यथार्थ भावना का चित्रांकन हुआ है।

***2. "लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी, जैसे कि बाणभट्ट की भाषा 'है दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती है।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण श्रेष्ठ कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी न केवल गुलेरी जी की, बल्कि हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। जासूस लपटन सूबेदार साहब को अपने सैनिकों के साथ मील भर की दूरी पर पूरब के कोने वाली जर्मन खाई पर आक्रमण करने का आदेश देता है। सूबेदार हजारासिंह अपने सैनिकों को लेकर आदेश की पालना हेतु आक्रमण करने के लिए चला जाता है, लेकिन लहनासिंह उस नकली लपटन साहब को पहचान लेता है और उसकी कपाल क्रिया कर देता है। इसी बीच सत्तर जर्मन सैनिक उनकी खंदक पर आक्रमण कर देते हैं तथा युद्ध में पन्द्रह सिख सैनिक और तिरसठ जर्मन सैनिक मारे जाते हैं या कराह रहे होते हैं। लहनासिंह की पसली में भी गोली लग जाती है तथा वह घाव को गीली मिट्टी से भर लेता है। किसी को भी यह खबर नहीं है कि लहनासिंह को गोली लगी है। इसी प्रसंग में कहानीकार ने रात के दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है–

**व्याख्या** – जिस समय भारतीय और जर्मन सैनिकों के बीच लड़ाई चल रही थी, उस समय आकाश में चन्द्रमा निकल आया था तथा सर्वत्र ज्योत्सना छिटकी हुई थी, लेकिन कृष्णपक्ष की रात्रि थी और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कलाएं घटती रहती हैं। इसीलिए संस्कृत कवियों ने कलाओं के घटते रहने के कारण या सबसे पहले क्षय रोग हो जाने के कारण चन्द्रमा को 'क्षयी' कहा गया है। ऐसा कहा जाता है कि क्षय रोग सबसे पहले चन्द्रमा को हुआ था। इसीलिए चन्द्रमा को क्षयी कहा जाता है। मलयांचल पर्वत की शीतल और सुगन्धित वायु बह रही थी, अर्थात् ठण्डी तेज हवा चल रही थी, जिसके कारण सैनिकों के दांत अत्यधिक ठण्ड के कारण किटकिटाने लगे थे। संस्कृत कवि बाणभट्ट की भाषा में इसे (हवा को) 'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहा जाता है। अर्थात् दन्तवीणा का उपदेश देने वाला आचार्य। यह ठण्डी हवा दांतों के माध्यम से वीणा का उपदेश दे रही है।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल तथा स्वाभाविक है। प्रौढ़ परिमार्जित भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. 'क्षयी' और 'दंतवीणोपदेशाचार्य' गुलेरी जी के संस्कृत–साहित्य के गंभीर अध्ययन को उजागर करते हैं।

3. बाणभट्ट संस्कृत के महान रचनाकार थे, जिन्होंने 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' नामक रचनाओं की रचना की थी।

4. प्रकृति का मार्मिक व मनोमुग्धकारी चित्रण हुआ है।

5. दंतवीणा–एक प्रकार का वाद्ययंत्र है तथा इसका दूसरा अर्थ है–दंत की वीणा। यहां भयंकर शीत के कारण दांत बजने की ओर संकेत किया गया है।

6. भाव पक्षऔर कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

***3. "मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं। समय की धुन्ध उन पर से हट जाती है।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के महिमा–मंडित कहानीकार, स्वनामधन्य श्री चन्द्रधर शर्मा द्वारा रचित उनकी पहली सर्वांगपूर्ण व यथार्थवादी कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लहनासिंह के त्याग, प्रेम, कर्त्तव्य और आत्मोत्सर्ग का मार्मिक व सजीव चित्रण हुआ है। प्रस्तुत कहानी में पहली बार फ्लैशबैक पद्धति का प्रयोग हुआ है। लहनासिंह जर्मन सैनिक के साथ युद्ध में बुरी तरह से घायल हो जाता है। उसकी पसली और जांघ में गोली लगी हुई है तथा अब वह मृत्यु–शैय्या पर पड़ा हुआ है। उसकी स्मृति–पटल पर अतीत की अनेक घटनाएं आकर बार–बार उसकी स्मृति को कौंधती है। कभी उसे अपने भतीजे कीरतसिंह की याद आती है तो कभी कुड़माई वाली घटना स्मरण हो आती है।

**व्याख्या** – गुलेरी जी ने मनोवैज्ञानिक सत्य को उद्‌घाटित करते हुए स्पष्ट किया है कि जीवन के अन्तिम क्षणों में व्यक्ति की स्मृति बिल्कुल स्वच्छ व साफ हो जाती है अर्थात् जब व्यक्ति की मृत्यु नजदीक होती है तो जीवन–भर की सारी घटनाएं चलचित्र की भाँति आकर बार–बार स्मृति–पटल को कौंधती हैं। लहनासिंह युद्ध में भयंकर रूप से घायल हो गया है, उसकी पसली तथा जांघ में गोली लगी हुई है। वह जीवन की आखिरी सांसे गिन रहा है। इसीलिये लहनासिंह की स्मृति स्वच्छ और साफ हो गई है। उसे जीवन–भर की घटनाएं बार–बार स्मरण हो उठती हैं। कभी उसे पच्चीस वर्ष पूर्व की अमृतसर के चौक बाजार की कुड़माई वाली घटना स्मरण हो उठती है तो कभी पच्चीस वर्ष बाद की सूबेदारनी के घर की घटनाएं उसकी स्मृति–पटल पर उभरती है। जब सूबेदारनी अपने सम्बन्धों का वास्ता देकर आंचल पसारकर पुत्र एवं पति के प्राणों की भीख मांगती है। जीवन–भर भोगी हुई घटनाओं, दृश्यों के रंग इतने स्वच्छ, उज्ज्वल और स्पष्ट हो गए हैं कि समय की धुन्ध या कालिमा उन पर से हट गई है तथा विगत् जीवन उसके नेत्रों के समक्ष एकदम स्पष्ट, उज्ज्वल व स्वच्छ उभर आया है।

**विशेष** :- 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध हैं। संस्कृतमय शब्दावली प्रयुक्त हुई है।

2. लहनासिंह के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

3. मनोवैज्ञानिक सत्य को व्यक्त किया गया है कि मृत्यु के समय मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन का आकलन करता है और सारी अतीत की घटनाएं उसकी स्मृति–पटल को आकर बार–बार कौंधती हैं।

4. शिल्प की दृष्टि से यहां फ्लैशबैक पद्धति का प्रयोग हुआ है।

5. लहनासिंह की स्मृति में सूबेदारनी का आना, उसकी प्रगाढ़ता, आत्मीयता को उजागर करती है।

6. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

***4. "सूबेदारनी रोने लगी-'अब दोनो जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही की दुकान के आगे बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना है। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण श्रेष्ठ कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा रचित उनकी सर्वश्रेष्ठ, सर्वांगपूर्ण यथार्थवादी कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने लहनासिंह के अद्‌भुत शौर्य और त्याग जैसे महान् आदर्शों का चित्रांकन किया है। सूबेदारनी लहनासिंह से आंचल फैलाकर भीख मांगती है कि मेरी तो किस्मत ही फूट गई। यदि सरकार स्त्रियों की भी एक सेना बना देती तो मैं भी लड़ाई लड़ने के लिए चली जाती। बोधासिंह मेरा अकेला जीवित पुत्र है, उसके बाद चार पुत्र और हुए लेकिन सभी असामयिक काल–कवलित हो गए। अब मेरा पति सूबेदार हजारासिंह और पुत्र बोधासिंह युद्ध में जा रहे हैं, तुम इनकी रक्षा करना।

**व्याख्या** – सूबेदारनी लहनासिंह पर अगाध–असीम विश्वास करती है, इसीलिए वह रोते हुए कहती है कि मेरे पति सूबेदार हजारासिंह और बेटा बोधासिंह दोनों युद्ध लड़ने के लिए जा रहे हैं। मेरा तो भाग्य ही खोटा है, क्योंकि दोनों युद्धस्थल पर जा रहे हैं। पता नहीं, वे जीवित वापिस आयेंगे या नहीं। तभी अतीत की एक घटना को कुरेदती हुई सूबेदारनी कहती है कि तुम्हें स्मरण होगा कि एक बार अमृतसर के चौक बाजार में तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के सामने बिगड़ गया था और मैं भी वहां बड़ियां या दही लेने के लिए गई हुई थी। मैं घोड़े की लातों में चली गई थी, लेकिन तुमने मेरे को उठाकर दुकान के तख्त पर खड़ा कर दिया और स्वयं घोड़े की लातों में चले गए थे। अर्थात् तुमने अपने प्राणों को संकट में डालकर मेरे प्राणों की रक्षा की थी। वह आग्रहपूर्वक याचना करती है कि जिस प्रकार तुमने अपने प्राणों को संकट में डालकर मेरे प्राणों की रक्षा की थी, ठीक इसी प्रकार मेरे पति और पुत्र को भी बचाना। इनके प्राणों की भीख मैं तुमसे आंचल पसारकर मांगती हूँ।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल एवं सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. सूबेदारनी का लहनासिंह पर अगाध विश्वास है–इसी भाव की व्यंजना हुई है।

3. भावनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।

4. लहनासिंह की त्याग वृत्ति का चित्रांकन हुआ है।

5. सूबेदारनी की मनोभावनाओं का मार्मिक व सजीव चित्रण है।

6. भावपक्ष व कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

# कफ़न

(प्रेमचंद)

## तात्विक विवेचन

'कफ़न' सुप्रसिद्ध कथाकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी है जिसमें उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। यह कहानी प्रेमचंद के साहित्य में एक क्रांतिकारी घटना है, जहाँ पहुँचकर प्रेमचंद की आदर्शवादिता खण्डित हो जाती है और उनकी यथार्थवादिता चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। इस यथार्थवादी एवं कालजयी कहानी में कथाकार ने ग्राम्य जीवन में व्याप्त शोषण, विवशता व आर्थिक दरिद्रता से उत्पन्न आलस्यवृत्ति और निकम्मेपन का सजीव तथा यथार्थ चित्रण किया है। इस कहानी के द्वारा लेखक यह भी प्रतिपादित करना चाहता है कि पेट की भूख मनुष्य को किस सीमा तक गिरा सकती है। पेट की भूख मिटाने के लिए मनुष्य पशु से भी अधिक गर्हित आचरण करने में संकोच नहीं करता। 'कफ़न' कहानी के घीसू और माधव दोनों ही ऐसे पात्र हैं जिन्हें पेट की भूख ने पशु से भी अधिक क्षुद्र बना दिया है पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य तथा मनोवैज्ञानिक रहस्य की सटीक अभिव्यंजना ने कहानी को अत्यंत मार्मिक बना दिया है।

कहानी–कला के विभिन्न तत्वों की दृष्टि से 'कफ़न' कहानी की समीक्षा इस प्रकार है–

1. *कथावस्तु (कथानक)* -

कहानी की कथावस्तु इस प्रकार है – घीसू गाँव का सीधे–सादा एवं गरीब चमार था। उसका एक लड़का था जिसका नाम माधव था। अभी कुछ दिन पहले उसका विवाह हुआ था। उसकी स्त्री घर का सब काम–काज करती तथा पति एवं ससुर की भी देखभाल करती। एक दिन वह प्रसव वेदना से पीड़ित होकर घर की कोठरी में कराह रही थी, घीसू और माधव, पास के खेत से आलू चुराकर भून रहे थे। पिता पुत्र दोनों यही काम करते और परिश्रम से सदैव जी चुराते इसी बीच माधव की स्त्री प्रसव वेदना से मर गई। घीसू जमींदार के यहाँ गया और अपनी दुःख भरी कथा सुनाकर दो रुपये ले आया। कुछ पैसे इधर–उधर के चन्दे से एकत्रित हो गये। वे दोनों कफ़न खरीदने निकले। रास्ते में दोनों सोचते जा रहे थे कि यह जीवन भी कैसा व्यंग्य है जिसे जीवित अवस्था में पहनने को मोटे कपड़े तक न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न ओढ़ाया जाय। वे शराब के ठेके के सामने पहुँच चुके थे। दोनों एक क्षण एक–दूसरे की ओर देखकर और इशारे से सहमति पाकर दुकान में पहुँचे। दोनों ने जी भरकर शराब पी और खाना खाया। उसके पश्चात् नशे में नाचते–गाते, उछलते–कूदते रहे। शराब के नशे में वे घर पर रखी हुई लाश की चिन्ता भी भूल चुके थे।

कहानी की कथावसतु मनोवैज्ञानिक अनुभूति के धरातल पर आधारित है। कथावस्तु संक्षिपत एवं सुगठित है। कहानी का प्रारम्भ बुधिया को प्रसव–वेदना की कारुणिक समस्या से होता है। लेकिन यह समस्या और भी करुण उस समय होती है जब घीसू और माधव भुने हुए आलुओं के लोभवश बुधिया के पास तक नहीं जाते। कहानी का विकास घीसू और माधव के चरित्र चित्रण से होता हुआ बुधिया की मृत्यु तक होता है और कहानी का अन्त जीवन के एक व्यंग्य से होता है जब घीसू ओर माधव कफ़न के स्थान पर शराब खरीदते हैं–"तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुँचे। साहूजी एक बोतल हमें भी देना। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी। कूदे भी। गिरे भी। भटके भी। भाव भी बनाए। अभिनय भी किए और आखिर में नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।" इस प्रकार कहानी का अंत व्यंजनापूर्ण, कुतूहलपूर्ण तथा पाठक पर स्थायी प्रभाव डालने में समर्थ है।

2. पात्र एवं चरित्र-चित्रण

कहानी में पात्रों की संख्या अत्यल्प है। मुख्य पात्रों में घीसू और माधव हैं। इन दोनों के चरित्र को लेखक ने यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया है। इनकी गतिविधियों, क्रियाओं और वार्तालापों में नाटकीयता या बनावटीपन नहीं है। प्रस्तुत अवतरण द्वारा दोनों के चारित्रिक अन्तर को भली–भाँति समझा जा सकता है–"घीसू बोला–'कफ़न लाने से क्या मिलता ? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।' ...'लेकिन लोगों को क्या जवाब दोगे ? लोग पूछेंगे नहीं कफन कहाँ है ?' घीसू हँसा–'अबे कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढ़ा पर मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आयेगा लेकिन फिर वही रुपये देंगे।"

उपर्युक्त उदाहरण में घीसू और माधव के मन की समस्त कुंठाएँ अपने यथार्थ रूप में उभर आई हैं। पिता–पुत्र दोनों

ही स्वार्थी, लोभी, आलसी . . . परिश्रम से सदैव जी चुराते हैं। माधव की पत्नी बुधिया और नमींदार . . . मात्र नामोल्लेख है। कहानीकार ने इनकी . . . विशेषताओं को उभारने का प्रयत्न भी नहीं किया है . . . चरित्र घीसू और माधव की चारित्रिक विशेष. . . उभारने में सहायक हुआ है।

3. **कथोपकथन (संवाद) -**

'कफ़न' कहानी के कथोपकथन सजीव, संक्षिप्त, स्वाभाविक, . . .कूल एवं . . . कहानी के अधिकांश में कथोपकथन हैं। लेखक अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। घीसू और माधव के संवाद . . . विकसित करते जाते हैं। प्रेमचंद जी ने इन कथोपकथनों के माध्यम से पात्रों की चारित्रिक विशेषता . . . किया है। उदाहरण के लिए–"घीसू हँसा–अब कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढ़ा मिले नहीं। . . . विश्वास तो नहीं आयेगा। लेकिन वहीं देंगे रुपया।" उपर्युक्त उदाहरण घीसू की मनोवृत्ति पर प्रकाश . . .

इसी प्रकार भावानुकूल कथोपकथन का एक उदाहरण देखिए–"कैसा बुरा रिवाज . . . ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए। कफ़न लाश के साथ जल . . .

4. **वातावरण (देशकाल) -**

प्रस्तुत कहानी में भारतीय सर्वहारा वर्ग के निम्न श्रेणी के व्यक्तियों के जीवन . . . व्यक्तियों के जीवन का दयनीय–स्थिति और अभाव–ग्रस्तता का चित्रण करते हुए कहानी . . . झोंपड़ी के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं . . . बुधिया प्रसव–वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह रहकर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली . . . निकलती थी कि . . . कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई; सारा अंधकार में लय हो . . .

इसी प्रकार जब घीसू और माधव कफ़न के पैसों की शराब पीने जाते हैं, उस . . . वातावरण की झाँकी प्रस्तुत करते हुए लेखक कहता है–"ज्यों–ज्यों अँधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक . . . जाती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्हड़ लगाये देता था। वहाँ के वातावरण में सरूर था। हवा में नशा, कितने . . . चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच . . . कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं या न जीते हैं, न मरते हैं।" इस प्रकार कहानी का वातावरण सहज और स्वाभाविक है जिसमें किसी प्रकार का बनावटीपन दृष्टिगोचर नहीं होता।

5. **भाषा-शैली –**

कहानी की भाषा सरल, सजीव एवं व्यावहारिक है। वह जनसाधारण की भाषा है जिसमें कृत्रिमता, नाटकीयता एवं काव्यात्मकता के कहीं दर्शन नहीं होते। उदाहरण के लिए–"हाँ बेटा, बैकुण्ठ में जायेगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते–मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुण्ठ में जायेगी तो क्या ये मोटे–मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं; और अपने पाप को धोने के लिए गंगा नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।" अपने कथन की पुष्टि करने के लिए प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ–'फाके होना', 'मारे–मारे फिरना', 'नाम उजागर करना', 'घर में तो पैसा इस तरह गायब था जैसे चील के घोंसले में माँस' साथ ही अपनी भाषा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए लेखक ने सूक्ति वाक्यों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ–'अस्थिरता नशे की खासियत है।'

आलोच्य कहानी में लेखक ने व्यक्तित्व के अनुकूल मनोवैज्ञानिक, व्यंग्यात्मक और वर्णनात्मक आदि विविध शैलियों का प्रयोग किया है। व्यंग्यात्मक शैली का एक उदाहरण देखिए–"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।"

6. **उद्देश्य :-**

प्रेमचंद जी की कहानियाँ सोद्देश्य हैं जिनके पीछे एक निश्चित मन्तव्य होता है। वे कला को कला के लिए न मानकर जीवन के लिए, उसके कल्याण के लिए मानते हैं। मात्र मनोरंजन को वे साहित्य का उद्देश्य मानने के वे घोर विरोधी हैं।

आलोच्य कहानी के उद्देश्य में प्रेमचंद जी पूरी तरह सफल रहे हैं। यह कहानी मानव की कुंठा, मानव की पिपासा,

बंधन तोड़कर प्रकट हुई है जिसमें जीवन का नग्न यथार्थ अहसास कर उठा है। न जाने कब से दुःखी, क्षुधित, आशान्वित घीसू और माधव जब बुधिया के लिए कफन खरीदने जाते हैं तो न जाने किस प्रेरणा से अपनी समस्त मान्यताओं, मर्यादाओं और परम्पराओं को भूलकर आत्मा की यथार्थ भूमि पर खड़े हो जाते हैं। समाज की प्राचीन मान्यताओं का उपहास करते हैं–"कैसा बुरा रिवाज है जिसे जीते जी तन ढाँकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।"

इसके अतिरिक्त घीसू और माधव के माध्यम से प्रेमचंद जी ने मानों इस बात की घोषणा की है कि देश की वर्तमान अर्थव्यवस्था यहाँ की प्रगति के अनुकूल नहीं है। वह पतन के कगार पर खड़ी है। एक दिन वह अवश्य ढह जायेगी।

7. **शीर्षक** -

आलोच्य कहानी का शीर्षक संक्षिप्त, सटीक और व्यंग्यपूर्ण है। शीर्षक कहानी की आत्मा में बैठ सा गया है। कहानी के 'कफ़न' शीर्षक की सार्थकता माधव के इस कथन से सिद्ध होती है–"कैसा बुरा रिवाज है जिसे जीते जी तन ढाँकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए, कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है।"

इस प्रकार कहानीकार ने कहानी की मूल आत्मा को उभारकर उसे रोचक, कुतूहलपूर्ण और आकर्षक बना दिया है। सम्पूर्ण कहानी में एक व्यवस्था है, क्रम है जिसमें शिथिलता दृष्टिगोचर नहीं होती।

## प्रष्टव्य

1. 'कफ़न' कहानी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. सिद्ध करो कि 'कफ़न' कहानी प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानी है।
3. कहानी के तत्त्वों के आधार पर प्रेमचंद कृत 'कफ़न' कहानी की समीक्षा कीजिये।

# II. कहानी-सार

हिन्दी साहित्य के कल्पतरू व कलम के सिपाही तथा उपन्यास सम्राट व सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित 'कफन' कहानी में ग्रामीण रीति–रिवाज, रूढ़ियों और परम्पराओं का सफल चित्रण हुआ है तथा साथ ही गरीबी–दीनता से उत्पन्न हैवानियत का भी सुन्दर चित्रण किया है। 'कफन' कहानी का सारांश इस प्रकार है–

घीसू और माधव अलाव के सामने बैठे आलू खा रहे हैं और अन्दर माधव की पत्नी बुधिया प्रसव–वेदना से तड़प रही है। दोनों इस भय से अन्दर बुधिया को देखने के लिए नहीं जाते कि कहीं वह उसके हिस्से के आलू न खा जाए। सामान्यतः चमार आलसी और अकर्मण्य होते हैं और फिर घीसू और माधव तो उनमें भी सरनाम थे। वह इतना कामचोर था कि आधा घण्टा काम करता तो धण्टा–भर चिलम पीता। इसी प्रकार घीसू भी अकर्मण्य, कामचोर व आराम–तलब प्रवृत्ति का स्वामी था। यद्यपि गांव किसानों का था और काम करने वाले के लिए अनेकों धन्धे थे, लेकिन इन दोनों को कोई भी काम पर नहीं बुलाता था। वे दूसरों के खेतों से मटर–आलू उखाड़ लाते थे और रात को भूनकर खा लेते थे या किसी के खेत से दस–पांच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूस लेते। घीसू ने इसी आकाशवृत्ति से जीवन के साठ साल पूरे कर दिये और माधव भी पिता के कदमों पर ही चल रहा था। माधव का विवाह पिछले ही साल बुधिया से हुआ था। उसने आकर घर में एक व्यवस्था डाली थी तथा दूसरों के घरों में पिसाई करके या घास छीलकर वह दो–जून रोटी के आटे का जुगाड़ करती थी। तब से ये दोनों और भी अधिक आराम–तलब हो गये थे। काम पर जाते ही नहीं थें और साथ में अकड़ने भी लगे थे तथा निर्व्याज भाव से दुगुनी मजदूरी मांगते थे। वहीं बुधिया जो इन बेगैरतों का पेट भरती थी, आज प्रसव–वेदना से तड़प रही है, लेकिन ये दोनों न तो दाई की व्यवस्था करते हैं और न दवा–दारू की, बल्कि आलू खाने में तल्लीन हैं।

माधव तो इतना निर्मम एवं निष्ठुर है कि कहता है–मरना है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती ? आलू खाकर दोनों अलाव के पास अपनी–अपनी धोतियां लपेटकर अजगर की भाँति गेंडुली मारकर सो गए। अन्दर अभी भी बुधिया प्रसव–वेदना से कराह रही थी तथा उसकी मर्मान्तक आवाज हृदय–विदारक एवं दिल दहला देने वाली थी। सुबह उठे तो देखा कि बुधिया मर गई है और मुंह पर मक्खी भिनक रही हैं। माधव–घीसू दोनों ही छाती पीट–पीटकर रोने लगे, पड़ोसियों ने उन्हें समझाया, ढाढ़स

बंधवाई। तब उन्हें कफन–लकड़ी की चिन्ता हुई। घर से पैसा इस तरह गायब था कि जिस प्रकार चील के घोंसले से मास। वे जमींदार के पास गए, जमींदार वैसे दयालु था, परन्तु इनकी सूरत से उसे सख्त नफरत थी तथा कई बार इन्हें अपने हाथों से पीट चुका था। चोरी करने के अपराध में या समय पर हां भरकर काम पर न आने के कारण। इनके रोने–धोने को देखकर उसने दो रुपये इनकी ओर फैंक दिए, परन्तु सहानुभूति का एक शब्द भी न बोला। इस प्रकार उन्होंने गांव में जमींदार का ढिंढोरा पीटकर बनिए महाजनों से रुपए एकत्रित कर लिए। जब जमींदार साहब ने पैसे दिए तो भला कौन मना करता। किसी ने अनाज दिया, किसी ने लकड़ी और किसी ने रुपए। गांव के कुछ लोग तो जंगल में बांस काटने के लिए चले गए और घीसू–माधव, जिनके पास पाँच रुपए की राशि एकत्रित हो गई थी, शहर में कफन खरीदने के लिए चल पड़े। उन्होंने अनेक दुकानों पर रेशमी, सूती कफन देखे, परन्तु उनको कोई भी नहीं जंचा। यहां वे 'कफन' के औचित्य पर प्रश्न–चिह्न लगाते कि कोई हल्का सा खरीद लेते हैं, उठाते–उठाते रात हो जायेगी और कफन को भला कौन देखता है। फिर कफन को तो जल ही तो जाना है। लेखक यहां भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों पर कटाक्ष करता है कि जीते–जी जिसे तन ढकने को कपड़ा न मिले भला मरने के बाद उसे कफन चाहिये। तभी घीसू को ठाकुर की बारात याद आती है जिसमें उसने भरपेट पूरिया, सुवासित गोल–गोल कचोरियां खायी थीं। उसने समाज पर कटु कटाक्ष करते हुए कहा कि अब तो सब को किफायत सूझती है क्रिया–क्रम में किफायत, दान–दक्षिणा में किफायत, फिर भला गरीबों का धन लूट–लूटकर कहां रखोगे। यहां मुंशी जी के विचारों का संवाहक घीसू समाज की विषमता पर भी चिन्तन करता है कि किसानों को कठोर परिश्रम करने के बाद भी भर–पेट रोटी नहीं मिलती, परन्तु पूंजीपति कुछ न करके भी सभी प्रकार की सुख–सुविधाओं को भोगते हैं। इस प्रकार वे सायंकाल तक इधर–उधर घूमते रहे और उन्हें कोई भी कपड़ा पसन्द न आया। अन्त में किसी देवी प्रेरणा से वे एक मदिरालय में चले गये, थोड़ी देर खड़े रहकर सोचते रहे और अन्त में किसी गद्दी के पास घीसू ने कहा–साहू जी जरा एक बोतल हमें भी देना। इसके बाद चिखाना आया, तली हुई मछलियां आयीं। दोनों कुज्जियों में डालकर ताबड़तोड़ पीने लगे और सरूर मे आकर बुधिया को आशीर्वाद देने लगे। बुधिया को आशीर्वाद देते हुए घीसू ने कहा कि बेटा वह बैकुण्ठ जाएगी, क्योंकि उसी के कारण आज यह सुस्वाद भोजन और मदिरा मिली है तथा हमारी जीवन की अभिलाषा पूरी कर गई है। लेकिन माधव के मन में एक चिंता उपजी कि लोग पूछेंगे कि कफन क्यों नहीं लाये, क्योंकि पैसों की तो हमने शराब पी ली। घीसू बड़ी काईयां हँसी–हँसा और बोला–कह देंगे कि गांठ से खिसक गए और उनको ढूंढ़ने में ही इतनी देर लग गई। कफन बुधिया को अवश्य मिलेगा, हां इतना अवश्य है कि अब की बार वे पैसे हमें न देंगे, स्वयं खरीदकर लायेंगे। जब आधी बोतल शराब की समाप्त हो गई तो माधव सामने की दुकान से दो सेर गर्म पूरियां, चटनी, अचार और कलेजियां ले आया। दोनों ने भर–पेट खाया और बाकी बची हुई पूरियों की पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दी और जीवन में पहली बार देने के आनन्द और उल्लास का जीवन में अनुभव किया। इससे पूर्व कहानीकार ने मधुशाला के मादक वातावरण का भी चित्रण किया है, क्योंकि यहां आने के बाद व्यक्ति अपने सांसारिक कष्टों को भूल जाता था। खा–पीकर दोनों पर नशा हावी हो गया और बकने लगे। घीसू दार्शनिकों जैसी बातें करने लगा। कहीं वे बुधिया की दयालुता और सहृदयता का वर्णन कर रहे हैं और उसको बैकुण्ठवासिनी होने का आशीर्वाद दे रहे हैं। माधव नशे की हालत में बुधिया को याद करके रोने लगा, परन्तु घीसू ने कहा–ठीक है, मोह–माया के बन्धनों को काटकर चली गई। दोनों नशे में अलापने लगे–"बड़ी पुण्यात्मा थी, मरते–मरते भी कितने दिनों की कामना पूरी कर गई। निश्चय ही उसे स्वर्ग मिलेगा।" तथा वह स्पष्ट कहता है कि उसने जीवन भर किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं तथा वह न बैकुण्ठ में जाएगी तो क्या–क्या ये मोटे–मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते है और अपने पापों को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं। इस प्रकार वे दोनों स्वर्ग–नरक, वर्ग–विषमता आदि विभिन्न विषयों पर प्रेमचंद के दर्शन को वाणी देते रहे। पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थी और घर पर रात से मरी बुधिया का मृत शरीर पड़ा हुआ था। पर इन्हें इसकी कोई चिन्ता न थी, वे तो मस्ती के आलम में मदमस्त होकर गा रहे थे, मटक रहे थे और अभिनय करके अंत में वहीं गिर पड़े। उधर गांववासी कफन की बाट जोह रहे थे और ये दोनों बाप–बेटा नशे में मदमस्त होकर सड़क पर पड़े हुए थे।

## III. चरित्र-चित्रण

### (क) घीसू

उपन्यास सम्राट एवं सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'कफन' में घीसू एक महत्त्वपूर्ण पात्र है तथा कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है। कहानी की सभी घटनाओं के मूल में वह वर्तमान

रहता है और अन्य पात्र उसके चरित्र को प्रकाशित करते हैं। **डॉ० इन्द्रनाथ मदान** का कहना है–"वे पहले व्यक्ति थे, जो सामग्री के लिए गांवों की ओर गए और जिन्होंने सीधे–सादे ग्रामीणों के घटनाहीन जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाया। उन्होंने इस सीधे–सादे धरती–पुत्रों, क्लर्कों और बड़े–बड़े व्यापारियों के मामूली मुंशियों के मन की हलचल को व्यक्त किया। वे उनके संघर्षों, प्रलोभनों और कमजोरियों, उनकी आशाओं और आशंकाओं, उनकी सहज धार्मिकता और अंधविश्वासों से भली–भाँति परिचित थे। किसान का मन उनके लिए खुली हुई पुस्तक के समान था।" कहानीकार ने निम्न वर्ग के पात्र घीसू को लेकर उसके मन की कुप्रवृत्तियों का चित्रांकन किया है तथा साथ ही उसकी आराम–तलबी, अकर्मण्यता, निठल्लापन, निर्मम–निष्ठुर व कठोर व्यक्तित्व का स्वामी है। परिश्रम न करके दूसरों के खेत से आलू–मटर चुरा ले आते हैं और भून–भानकर खा लेते हैं या दस–पांच ऊख उखाड़ लाते हैं और जब गांव के सभी लोग सो जाते हैं तो रात को चूस लेते हैं।

**1. निर्मम-निष्ठुर व कठोर व्यक्ति** – घीसू निर्मम–निष्ठुर व कठोर व्यक्तित्व का स्वामी है, क्योंकि उसके पुत्र की पत्नी बुधिया प्रसव–वेदना से तड़प रही है तथा लेखक ने उसकी हृदय–विदारक पीड़ा का चित्रांकन इस प्रकार से किया है–"अन्दर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव–वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह–रहकर उसके मुंह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे।" वह बुधिया, जिसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी और इन दोनों बे–गैरतों का दोजख भरती थी, परिश्रम करके आज वही प्रसव–वेदना से तड़प–तड़पकर आखिरी सांसें गिन रही है, लेकिन घीसू न तो दवा–दारू की व्यवस्था करता है और न दाई, बल्कि उसे तो आलू खाने की चिन्ता है। यद्यपि वह माधव को देखने के लिए भेजता है, परन्तु वह नहीं जाता। अतः घीसू भी बुधिया की मृत्यु के लिए किसी न किसी रूप में जिम्मेवार है। यद्यपि वह कहानी में कहता है–"मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं।" इतना ही नहीं, उसकी निर्ममता–निष्ठुरता उस समय चरम सीमा को छू जाती है जब वह बुधिया के कफन के लिए एकत्रित किए गए चन्दों के पैसे से शराब पीता है, पूरियां खाता है, कलेजियां, चटनी और अचार खाता है। इसलिए स्पष्ट है कि कहानी में वह निर्मम, निष्ठुर व कठोर व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है।

**2. कामचोर** – घीसू 'कफन' कहानी में कामचोर व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है, क्योंकि वह एक दिन काम करता है तो तीन दिन आराम। इसलिए उसे कहीं भी मजदूरी नहीं मिलती थी। यदि घर में मुट्ठी भर अनाज मौजूद हो तो उसे काम करने की कसम थी। जब दो–चार दिन का फांका हो जाता तो वह पेड़ पर चढ़कर लकड़ियां तोड़ लाता और माधव उन्हें बाजार में बेच आता था। घीसू ने इसी वृत्ति से साठ साल पूरे कर दिये थे। बुधिया के आ जाने से घीसू और ज्यादा कामचोर व आराम–तलब हो गया था, बल्कि अकड़ने भी लगा था।

**3. चोरी की प्रवृत्ति** – घीसू में चोरी करने की प्रवृत्ति भी विद्यमान थी, जब गांव के सभी लोग सो जाते तो दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते थे और भून कर खा लेते थे या दस–पांच ऊंख उखाड़ लाते और रात को चूस लेते थें जमींदार भी इसे कई बार अपने हाथों से चोरी करने के अपराध में पीट चुका था और वादे पर काम पर न आने के लिए भी। वह घीसू से पूछता है–"क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है ? अब तू कहीं भी दिखाई नहीं देता। मालूम होता है, इस गांव में रहना नहीं चाहता।"

**4. विचारवान् व्यक्ति** –कहानीकार घीसू को विचारवान् व्यक्ति घोषित करता है–"घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान् था और किसानों के विचारशून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। हां, उसमें वह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसीलिए जहां उसकी मण्डली के और लोग सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गांव उंगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकी न होती थी कि अगर वह फटे–हाल है तो कम से कम उसे किसानों की सी जी–तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेवजह फायदे तो नहीं उठाते।" इस प्रकार स्पष्ट है कि घीसू प्रेमचन्द जी के विचारों के वाहक हैं तथा कहीं तो वह रूढ़ियों, परमपराओं की धज्जियां उड़ाता है तो कहीं वर्ग–वैषम्य पर आक्रोश प्रकट करता है। पूंजीपतियों के धन–संग्रह पर कटाक्ष करते हुए घीसू स्पष्ट कहता है–"अब तो सबको किफायत सूझती है। शादी–ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया–कर्म में मत खर्च करो। पूछो गरीबों का माल बटोर–बटोरकर कहां रखोगे ? बटोरने में तो कोई कमी नहीं है। हां खर्च में किफायत सूझती है।" इसी प्रकार वह रूढ़ रीति–रिवाजों पर भी कटु–कटाक्ष करता है। 'कफन' के अस्तित्व–उपादेयता पर प्रश्नचिह्न लगाता हुआ घीसू स्पष्ट कहता है–"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते–जी तन ढकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।"

इसी प्रकार घीसू कभी–कभी दार्शनिकों के समकक्ष अपनी विचारवान् भावना को प्रकट करते हुए कहता है– हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है तो क्या उसे पुन्न न होगा।" इसी प्रकार एक अन्यत्र स्थल पर भी घीसू मोह–माया की बात करता हुआ बुधिया को स्वर्ग की निवासिनी घोषित करता है–"हां बेटा, बैकुण्ठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते–मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह बैकुण्ठ में न जाएगी तो क्या ये मोटे–मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।" इसी प्रकार माधव के विलाप पर वह समझता है कि "क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया–जाल से मुक्त हो गई, जंजाल से छूट गई। बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्द माया–मोह के बंधन तोड़ दिए।" इस प्रकार वह कहानी में विचारवान् व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है।

**5. झूठा व्यक्ति** – घीसू 'कफन' कहानी में झूठा व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है। कहानी में कुछ स्थल एसे आ जहां वह सफेद झूठ का सहारा लेकर अपना काम निकालता है। यथा–बुधिया के मर जाने पर वह जमींदार के पास जाकर झूठ का सहारा लेते हुए कहता है–"सरकार। बड़ी विपत्ति में हूं। माधव की घरवाली रात को गुजर गई। रात–भर तड़पती रही सरकार। हम दोनों उसके सिराहने बैठे रहे। दवा–दारू जो कुछ हो सका सब कुछ किया, मगर वह हमें दगा दे गई। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा मालिक। तबाह हो गए। घर उजड़ गया। आपका गुलाम हूं, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगाएगा। हमारे हाथ में तो जो कुछ था, वह सब दवा–दारू में उठ गया। सरकार को दया होगी तो उसकी मिट्टी उठेगी।" न रात–भर उसकी देखभाल करते हैं और न दवा–दारू की व्यवस्था करते हैं फिर भी जमींदार के समक्ष सफेद झूठ बोलकर उनकी सहानुभूति अर्जित करके धन वसूलना चाहता है। इसी प्रकार वह जमींदार साहब के नाम पर ढिंढोरा पीटकर गांव के बनिये–महाजनों से भी बुधिया के क्रिया–कर्म हेतु रुपए एकत्रित करता है। अतः स्पष्ट है कि वह झूठा व्यक्ति है तथा कथनी–करनी में जमीन–आसमान का अन्तर है।

**6. संवेदनशून्य** – घीसू 'कफन' कहानी में एक संवेदनशून्य व्यक्ति के रूप में आया है। कहानी के प्रारम्भ में बुधिया अन्दर झोंपड़े में प्रसव–वेदना से तड़प रही है, लेकिन घीसू आलू खाने में लीन है और फिर धोती ओढ़ कर अजगर की तरह गेंडुली मारकर सो जाता है, जबकि बुधिया हृदय–विदारक चीखें मार रही है। न वह दवा–दारू की व्यवस्था करता है और न डॉक्टर की। इसी प्रकार वह बुधिया के क्रिया–कर्म हेतु एकत्रित किए गए पैसों की शराब पीता है, पूरियां खाता है, कलेजियां–अचार और चटनी का रसास्वादन करता है और घर पर लाश पड़ी हुई है। निम्न संवाद में भी उसकी चतुरता–संवेदन शून्यता और काइयां दृष्टि दृष्टिगोचर होती है–"जो वहां वह हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफन क्यों नहीं दिया तो क्या कहोगे ?

कहेंगे तुम्हारा सिर !

पूछेगी तो जरूर !

"तू कैसे जानता है कि उसे कफन न मिलेगा ? तू मुझे गधा समझता है। साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ। उसको कफन मिलेगा और बहुत अच्छा मिलेगा।"

माधव को विश्वास न आया। बोला–"कौन देगा ? रुपए तो तुमने चट कर दिए। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी मांग में सिंदूर तो मैंने डाला था।"

घीसू गर्म होकर बोला–"मैं कहता हूं, उसे कफन मिलेगा। तू मानता क्यों नहीं ?"

कौन देगा, बताते क्यों नहीं ?

वही लोग देंगे, जिन्होंने कि अबकी दिया। हां, अबकी रुपए हमारे हाथ न आयेंगे।

इसी प्रकार वहां शान से बैठे पूरियां–कलेजियों की दावत उड़ रही है और घर पर बुधिया का मृत देह 'कफन' की प्रतीक्षा में पड़ा हुआ है।

**7. नशेड़ी व्यक्ति** – 'कफन' कहानी में घीसू एक नशेड़ी व्यक्ति के रूप में आया है। वह नशे की हवस पूरी करने के लिए बुधिया के दाह–संस्कार कफन हेतु एकत्रित की गई धनराशि से शराब पीता है। कहानीकार ने इसका चित्रांकन इस प्रकार से किया है–"तब न जाने किस देवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुंचे और जैसे किसी पूर्व निश्चित योजना

के अन्दर चले गये। वहां जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे।" फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा–"साहू जी, एक बोतल हमें भी देना।"

इसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछलियां आयीं ओर दोनों बरामदे में बैठकर शांतिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियां ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गए।

इस प्रकार अन्त में पूरी बोतल शराब की पीकर वह नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि घीसू निठल्ला, आराम–तलब, अकर्मक व झूठा व्यक्ति हैं न उसे मान–मर्यादा की चिन्ता है और न जवाबदेही का खौफ ! पुत्र–वधु सारी रात प्रसव–वेदना से तड़पती रही, परन्तु उसने न तो उसके लिए दवा–दारू की व्यवस्था की और न डॉक्टर, अन्ततः सम्पर्क उपचार व्यवस्था के अभाव में वह चल बसी, लेकिन घीसू आलू की दावत उड़ाने में लीन है। वह नशेड़ी और झूठा व्यक्ति है तथा झूठ बोलकर बुधिया के दाह–संस्कार हेतु धनराशि एकत्रित करता है, परन्तु संवेदनशून्य व्यक्ति घीसू उस राशि की शराब पीता, तली हुई मछलियां खाता और घर पर मृत बुधिया की देह पड़ी हुई है।

## (ख) माधव

उपन्यास सम्राट, हिन्दी साहित्य के कल्पतरू व कलम के सिपाही तथा सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी उत्कर्ष काल की रचना व यथार्थवादी कहानी 'कफन' में माधव भी एक प्रमुख पात्र के रूप में चित्रित है, क्योंकि वह कहानी में बुधिया का पति और घीसू का बेटा है। वह कामचोर, आराम–तलब, निठल्ला और निष्ठुर व्यक्तित्व का स्वामी है। उसके व्यक्तित्व की निष्ठुरता तो उस समय प्रकट होती है जब उसकी पत्नी बुधिया प्रसव–वेदना से तड़प रही है और वह आलू खाने में तल्लीन है। न वह पत्नी के लिए दवा–दारू की व्यवस्था करता है और न डॉक्टर, बल्कि रह–रहकर उसके मुंह से हृदय–विदारक चीख निकलती थी और अन्ततः माधव अजगर की तरह गेंडुली मारकर सो जाता है। लेकिन उस समय तो उसकी निष्ठुरता–निर्ममता चरम सीमा को छू जाती है जब वह उसके मरने की कामना करता है। कहानीकार ने लिखा है–

घीसू ने कहा–"मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख तो आ।"

माधव चिढ़कर बोला–"मरना ही है, तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती ? देखकर क्या करूं ?"

"तू बड़ा बेदर्द है। वे साल–भर जिसके साथ सुख–चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई।"

तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ–पांव पटकना नहीं देखा जाता। इस प्रकार उक्त संवादों से उसकी निर्ममता–निष्ठुरता प्रकट होती है, क्योंकि वह कामना करता है कि उसकी पत्नी बुधिया जल्दी मर जाए ताकि वह आलू खाकर सुखपूर्वक सो सके। माधव का विवाह बुधिया के साथ पिछले वर्ष ही हुआ था और इसी नारी ने इस घर में एक व्यवस्था स्थापित की थी तथा दूसरों के घर परिश्रम करके माधव का पेट भरती थी। उसके आने से माधव और अधिक आराम–तलब हो गया था तथा अकड़ने भी लगा था। यदि कोई माधव को कार्य हेतु बुलाता था तो वह निर्व्याज भाव से दुगुनी मजदूरी मांगता।

माधव इतना कामचोर था कि आधा घण्टा काम करता तो घण्टे–भर चिलम पीता। लोग उसे कार्य पर तब बुलाते थे जब वह एक आदमी माधव से आधा कार्य करवाने में संतोष करना पड़ता। सन्तोष, धैर्य, संयम आदि उसके व्यक्तित्व के अंग थे और जीवन–भर न सम्पत्ति बटोरी और न सुख–सुविधाओं के साधनों का संग्रह किया। इसीलिए उसकी प्रकृति साधुओं से मेल खाती थी। कहानीकार ने उनकी प्रकृति के बारे में लिखा ह–"अगर दोनों साधु होते तो, उन्हें संतोष और धैर्य के लिए संयम और नियम की बिल्कुल जरूरत न होती। वह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका। घर में मिट्टी के दो–चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति न थी। फटे–चीथड़ों में अपनी नग्नता को ढाके हुए जिए जाते थे।" माधव भी दूसरों के खेतों से आलू–मटर चुरा लेते और रात को भून–भानकर अपने पेट की ज्वाला को शांत कर लेते या किसी के खेत से दस–पांच ऊंख उखाड़ लाते और रात को चूस लेते। इस प्रकार घीसू ने उस आकाशवृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत की भाँति अपने पिता के ही पद–चिह्नों पर चल रहा था।

माधव कहानी में प्रसव के समय उपलब्ध होने वाले सामान के अभाव के बारे में चिन्तन करता है–"मैं सोचता हूँ कोई बाल–बच्चा हुआ, तो क्या होगा ? सोंठ, गुड़, तेल कुछ भी तो नहीं है घर में।" इसी प्रकार घर में सम्पत्ति के नाम पर दो–चार टूटे–फूटे मिट्टी के बर्तन और चीथड़ों से किसी प्रकार अपनी नग्नता को ढाँपे फिरते थे।

कहानी में माधव भी एक चिन्तनशील व विचारवान् व्यक्ति की तरह दृष्टिगोचर होता है जहां वह रूढ़ियों, पाखण्डों,

ब्राह्मणों को दिए गए दान का खुलकर समर्थन करता है। कहानीकार लिखता है–माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानो देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो–"दुनिया का दस्तूर है, नहीं, लोग बेइमानों को हजारों रुपए क्यों देते हैं, कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं।" इसी प्रकार वह एक अन्यत्र स्थल पर भी कफन के पैसे खर्च कर देने से कफन न मिलने पर उपालम्भ देता हुआ कहता है–माधव को विश्वास न आया। बोला–"कौन देगा ? रुपए तो तुमने चट कर दिए। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी मांग में तो सिंदूर मैंने डाला था।" इस प्रकार वह एक और स्थान पर भी स्वर्ग और दुःख की भी बात करता है। माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा–"वह बैकुण्ठ में जाएगी दादा, बैकुण्ठ की रानी बनेगी।" तथा साथ ही नशे में माधव बड़बड़ाता है–"मगर दादा बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दुःख भोगा। कितना दुःख झेलकर मरी।" इस प्रकार वह नशे मे बुधिया का स्मरण करके रोने लगता है।

वास्तव में माधव कहानी में प्रमुख पात्र के रूप में चित्रित हुआ है और बुधिया तो कहानी में उसके चरित्र को प्रकाशित करने के लिए उपस्थित हुई है। बुधिया के निधन से ही माधव के चरित्र में निखार आता है। वह शोषित वर्ग का प्रतिनिधि है।

कफन हेतु एकत्रित की गई वह भी चन्दे की राशि से शराब पीता है, कलेजियां खाता है तथा अचार–चटनी और पूरियों से युक्त सुस्वादु भोजन करता है। वह भी अपने पिता की कठपुतली बनकर कफन खरीदने के लिए एक दुकान से दूसरी दुकान पर जाता है और अन्ततः कफन न खरीदकर उस धनराशि से शराब, मछलियां, कलेजियां, अचार–चटनी आदि खरीदकर जीवन में पहली बार सुस्वादु भोजन करने का गौरव प्राप्त करता है।

घीसू–माधव दोनों ही चन्दे की राशि से शराब–पान करना चाहते हैं और सुस्वादु भोजन करना चाहते हैं, लेकिन अपनी हृदयस्थ बात को एक–दूसरे के समक्ष प्रकट नहीं करते।

**डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान** का कहना है–"प्रेमचन्द जी ने माधव का चरित्र एक सफल चित्रकार की भाँति बड़ी कुशलतासे चित्रित किया है।" इसी प्रकार वे एक अन्यत्र स्थल पर लिखते हैं–"कफन नामक कहानी, जो विश्व की श्रेष्ठतम कहानियों में गिनी जा सकती है, ऐसे तीन आदमियों से सम्बन्ध रखती है। उनके जीवन की एक भावना के चित्रण और वर्णन कला की दृष्टि से अद्वितीय है। वे अपने वातावरण से नितान्त भिन्न है। घीसू एक व्यक्ति मात्र नहीं है, वह समाज से बहिष्कृतों का प्रतिनिधि है, जिसका पीड़ित जीवन उसे भाग्यवादी, कठोर और जीवन के दुःखों की ओर से उदासीन बना देता है। उसका लड़का माधव उसका सच्चा प्रतिरूप है। वे दोनों आलसी हैं। वे बाहर न जाने के लिए आलू और मटर चुराते हैं। वे हाथ से बहुत कम काम करते हैं। अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष का उनके लिए कोई मूल्य नहीं है। वे नैतिक दृष्टि से बिल्कुल गिर गए हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि माधव 'कफन' कहानी का महत्त्वपूर्ण पात्र है तथा अकर्मण्यता की भावना से आप्लावित, कामचोर, आराम–तलब, निठल्ला, चोर और झूठा व्यक्ति है। लेकिन कहानी में कहीं–कहीं उसका विचारक रूप भी उभरकर आता है। कफन के पैसों की शराब पीना, सुस्वादु भोजन करना उसके नैतिक पतन की चरम सीमा है। वास्तव मे बाप-बेटे माधव और घीसू में इतना अधिक साम्य है कि इनकी अपनी पहचान भी तिरोहित–सी हो गई है।

## IV. उद्देश्य

कलम के सिपाही वे सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुन्शी प्रेमचन्द जी ने अपनी यथार्थवादी कहानी 'कफन' में वर्ग–वैषम्य का उद्‌घाटन, सतत् शोषण से उत्पन्न अकर्मण्यता की भावना उत्पन्न होना, समाज में जोंक की तरह चिपटी हुई रूढियों पाखण्ड और बाह्याडम्बरों पर कटु कटाक्ष तथा एक विशेष जाति की अकर्मण्यता, निठल्लेपन, आराम–तलबी आदि का चित्रांकन किया है। **डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान** ने 'कफन' कहानी के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए लिखा है–"यह उनकी अमर कृति है। अकेली 'कफन' कहानी उन्हें श्रेष्ठतम लेखकों की श्रेणी में पहुंचा देती है। यह शक्तिशाली कहानी है, जो क्रूर व्यंग्य और सात्विक क्रोध से पूर्ण है। लेखक कहता है कि इस प्रसंग में कोई ऐसी अनहोनी बात नहीं थी, क्योंकि यह एक ऐसे समाज की बात है जहां अधिकांश व्यक्तियों का जीवन इन व्यक्तियों जैसा ही बीतता है, जहां धूर्त और बेईमान लोग गरीबी के श्रम पर मोटे होते रहते हैं।" **श्री रामप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी'** ने 'कफन' कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है–" 'कफन' का कथानक मानवीय दुर्घटनाओं के आधार पर उठाया गया है। उस अभावग्रस्त मानव की दुर्बलताओं का सजीव चित्रण ही नहीं, वातावरण में भी बाहरी वेदना मिलती है। यह कल्पना उभरती है कि मानव अमर है। इस दृष्टि से कहानी श्रेष्ठ लगती है। फिर भी पाठक के मन में एक प्रश्न उठता है कि क्या मानव इतना ओछा भी हो सकता है ? इसका समाधान वह अपने में ढूँढता–सा लगता

है। लेखक का यह पक्ष निर्बल हो गया है।" इसी प्रकार **डॉक्टर राजेन्द्र यादव** ने भी इसके प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए स्पष्ट लिखा है–" 'कफन' अपने गहन अर्थों में बुधिया के कफन की कहानी नहीं, मानवता और मृत नैतिक बोझ के कफन की कहानी है। यह उस हताशा की कहानी है, जो मनुष्य को संवेदना की आदिम स्तर पर ले जाती है और जहां पर अच्छे बुरे का लोप हो जाता है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि 'कफन' कहानी के निम्न उद्देश्य विद्वानों ने स्वीकारे हैं--

**1. वर्ग-विषमता का उद्‌घाटन** – मुन्शी प्रेमचन्द जी ने अपनी यथार्थवादी कहानी 'कफन' में वर्ग–विषमता का उद्‌घाटन किया है। एक ओर तो सभी सुख–सुविधाओं को भोगने वाले पूंजीपति और जमींदार है जिनके पास सभी सुख–सुविधाओं के समान है। कहानीकार ने ठाकुर की बारात वाला प्रसंग इसलिए प्रस्तुत किया है कि जिससे किसानों–साहूकारों या पूंजीपतियों और सर्वहारा वर्ग के बीच के अन्तर को अच्छी प्रकार से स्पष्ट किया जा सके। ठाकुर की बारात का प्रसंग उद्‌धृत करते हुए कहानीकार लिखता है। "वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना भरपेट नहीं मिला। लड़की वालों ने सबको भरपेट पूरियां खिलाई थीं सबको। छोटे–बड़े सब ने पूरियां खायी और असली घी की। चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई। अब क्या बताऊं कि उस भोजन में क्या स्वाद मिला। कोई रोक–टोक नहीं थी। जो चीज चाहो मांगों और जितना चाहो खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया कि किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसने वाले हैं कि पतल में गर्म–गर्म, गोल–गोल सुवासित कचौरियां डाल देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिए, पतल पर हाथ से रोके हुए हैं, मगर वह है कि दिए जाते हैं और जब मुंह धो लिया, तो पान इलायची भी मिली, मगर मुझे पान लेने की कहां सुध थी ? खड़ा न हुआ जाता था। चटपट जाकर अपने कम्बल पर लेट गया। ऐसा दिल–दरियाव था वह ठाकुर।" इस प्रकार समाज में एक ओर तो ऐसे भोज और दूसरी ओर घीसू–माधव वाले समाज में भूख, नग्नता और गरीबी है। **डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान** का कहना है–"घीसू एक व्यक्ति मात्र नही है; वह समाज से बहिष्कृतों का प्रतिनिधि है, जिसका पीड़ित जीवन उसे भाग्यवादी, कठोर और जीवन के दुःखों की ओर से उदासीन बना देता है।"

इस प्रकार इस सर्वहारा वर्ग को भरपेट रोटी नहीं मिलती, फांके करने पड़ते हैं, तथा वस्त्रों के नाम पर चिथड़ों से अपनी नग्नता को ढांपे रहते हैं। उनकी औरतों को प्रसव के समय भी दवा–दारू आदि नहीं मिल पाती और न डॉक्टर की व्यवस्था हो पाती है। बुधिया प्रसव–वेदना से तड़प रही है और घर में आवश्यक सामान भी उपलब्ध नहीं है–"मैं सोचता हूँ कोई बाल–बच्चा हो गया तो क्या होगा ? सोंठ, गुड़, तेल, कुछ भी तो नहीं घर में।" घीसू–माधव जिस सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसका चित्रण देखिए–"विचित्र जीवन था इनका। घर में मिट्‌टी के दो–चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे–चीथड़ों से अपनी नग्नताओं को ढांके हुए जिए जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त। कर्ज से लदे हुए। इस प्रकार किसानों–मजदूरों के समाज में अभाव, गरीबी तथा दीनता व्याप्त थी तथा उन्होंने जीवन में कभी पूरियां, मछलियां, कलेजियां, चटनी, अचार आदि का रसास्वादन नहीं किया है। सामाजिक विषमता का चित्रांकन करते हुए कहानीकार ने धनिक वर्ग, पूंजीपतियों के ऐश्वर्य–भोग और अभावमय जीवन को जीते, भूखमरी से ग्रस्त सर्वहारा वर्ग की आर्थिक दयनीय अवस्था के वैषम्य का उद्‌घाटन करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

**2. शोषण से उत्पन अकर्मण्यता की भावना** – कहानीकार प्रेमचन्द जी ने 'कफन' कहानी में शोषण से उत्पन्न अकर्मण्यता की भावना को भी उजागर किया है। पूंजीपति या जमींदार इन मजदूरों के बलात् अपने खेतों पर काम करवाते हैं। घीसू–माधव जी–तोड़ परिश्रम करते हुए किसानों को देखते हैं, लेकिन उनका जीवन भी बद्‌तर है। उन्हें महाजनों, जमींदारों से कर्ज लेना पड़ता है और एक बार कर्ज के चक्कर में पड़ा तो फिर सारा जीवन मुक्ति सम्भव नहीं है। घीसू–माधव बुधिया के मर जाने पर जमींदार के पास जाते हैं तो जमींदार के ये शब्द उसके शोषण का उद्‌घाटन करते हैं–"क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है ? अब तो तू कहीं दिखाई नहीं देता। मालूम होता है, इस गांव में रहना नहीं चाहता।' घीसू–माधव जिस समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं वे सोचते हैं कि किसान कठोर परिश्रमी है और उसे भरपेट रोटी व शरीर ढांपने के लिए वस्त्र मयस्सर नहीं। जबकि पूंजीपति कुछ नहीं करते और सभी सुख–सुविधाओं का सामान उपलब्ध है। इस प्रकार वे सोचते हैं कि यदि भूख ा ही मरना है तो वे परिश्रम करके अपनी हड्डियां भी क्यों काली करे ? जीवन के प्रति इसी दृष्टिकोण के कारण उनमें अकर्मण्यता की भावना प्रवेश कर जाती है और वे लापरवाह, पशु और हृदयहीन बन जाते हैं। कहानीकार ने भी लिखा है–"जिस समाज में रात–दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों को दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे। वहां इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। अतः सतत् शोषण की प्रवृत्ति ने उनमें अकर्मण्यता की भावना को उत्पन्न कर दिया।

**3. रूढ़ियों-पाखण्डों और बाह्याडम्बरों का चित्रण** – मुन्शी प्रेमचन्द जी ने 'कफन' कहानी में ग्रामीण परिवेश [illegible] रूढ़ रीति–रिवाज, पाखण्डों और बाह्याडम्बरों का मार्मिक और सजीव चित्रण किया है। कितनी घोर विडम्बना है कि जिसे जीते–जी तन ढकने के लिए जीवन–भर चीथड़े भी नसीब न हुए उसको मरने पर नया कफन देना वास्तव में उसका [illegible] करना है। कहानीकार का कहना है–"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते–जी तन ढांकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।" इसी प्रकार मुन्शी जी ने एक अन्यत्र स्थल पर भी स्वर्ग के अधिकारी सर्वहारा वर्ग को घोषित [illegible] हैं, क्योंकि वे किसी की आत्मा को आहत नहीं करते, जबकि ये पूंजीपति लोग गरीबों का शोषण करते हैं, उन्हें [illegible] लूटते हैं और उनका हक दबाकर रखते हैं। कहानीकार ने लिखा है–"हाँ बेटा बैकुण्ठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं [illegible] को दबाया नहीं। मरते–मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह बैकुण्ठ में न जाएगी तो क्या [illegible] लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में [illegible] हैं।"

इसी प्रकार 'कफन' कहानी में ओझा वाले प्रसंग में अन्धविश्वासों का चित्रण हुआ है, क्योंकि घीसू को विश्वास है कि बुधिया पर चुडैल का चक्कर है, किन्तु ओझा को देने के लिए उनके पास एक रुपया भी नहीं है। इस प्रकार 'कफन' कहानी में प्रेमचन्द जी ने रूढ़ रीति–रिवाजों, पाखण्डों या बाह्याडम्बरों पर कटु कटाक्ष करते हुए उनकी धज्जियां उड़ाई हैं।

**4. पात्रों की निर्ममता-निठल्लेपन आदि का चित्रण करना** – कहानीकार मुन्शी प्रेमचन्द जी ने घीसू और माधव की निर्ममता, निष्ठुरता, निठल्लेपन का भी चित्रण किया है कि वे बुधिया के दाह–संस्कार हेतु एकत्रित किए गए धन से शराब–पान करते हैं, पूरियां, तली हुई मछलियां, चिखौना, अचार, चटनी आदि का रसास्वादन करते हैं और बुधिया की मृत देह झोपड़े में पड़ी हुई और गांव वाले प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं कि कब वे कफन लेकर आएं और कब उसका दाह–संस्कार हो जबकि वे शराब पीकर सड़क पर मदहोश होकर पड़े हुए हैं।

इसी प्रकार कहानीकार उनकी संवेदनशून्यता, निठल्लेपन और कामचोर की प्रवृत्ति को भी उजागर करता है। उनके निठल्लेपन व आराम–तलबी का चित्रण करते हुए कहानीकार लिखता है–"घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम। माधव इतना कामचोर था कि आधा घण्टा काम करता तो घंटे भर चिलम पीता।" इसी प्रकार माधव की [illegible] निष्ठुरता व हृदयहीनता का चित्रण करते हुए लिखता है–"माधव चिढ़कर बोला–'मरना' ही है तो मर क्यों नहीं जाती [illegible] क्या करूँ।"

इसी प्रकार एक अन्यत्र स्थल पर लेखक ने धनिकों की संग्रह वृत्ति पर कटाक्ष करते हुए लिखा है–"अब कौन [illegible] खिलाएगा ? वह जमाना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूझती है। शादी–ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया–कर्म में मत खर्च करो। पूछो गरीबों का माल बटोर–बटोरकर कहां रखोगे। बटोरने में तो कमी नहीं है। हां ! खर्च में किफायत सूझती है। इसी प्रकार कहानीकार मधुशाला के मदमस्त व दुःख निवारक वातावरण का भी चित्रांकन करता है–"वहां के वातावरण में सुरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहां आकर चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहां की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएं यहां खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए वे यहां भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं। या न जीते हैं न मरते हैं।" लेखक मधुशाला को कष्टों व सांसारिक दुःखों से मुक्ति दिलाने वाला एक महत्त्वपूर्ण साधन स्वीकारता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कहानीकार ने 'कफन' में वर्ग–विषमता का उद्घाटन किया है तथा साथ ही सतत शोषण से उत्पन्न सर्वहारा वर्ग की अकर्मण्यता का भी चित्रण किया है और साथ ही ग्रामीण समाज में व्याप्त रूढ़ियों, पाखण्डों व बाह्याडम्बरों पर भी कटु कटाक्ष किए हैं।

## व्याख्या

***1. "अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिए संयम और नियम की बिल्कुल जरूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका। घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढांके हुए जिए जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त। कर्ज से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मगर कोई भी गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिल्कुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ-न-कुछ कर्ज देते थे।"***

**प्रसंग** –प्रस्तुत अवतरण उपन्यास सम्राट एवं हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी

यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने वर्ग–विषमता का उद्‌घाटन किया है तथा पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रकट किया है। लेखक ने घीसू और माधव की अकर्मण्यता, आराम–तलबी और निठल्लेपन का चित्रांकन करते हुए उनकी संवेदनशून्यता और जड़ता पर भी करारा व्यंग्य किया है। कहानीकार ने उनको दयनीय अवस्था और स्वभाव का चित्रांकन करते हुए लिखा है–

**व्याख्या** - जिस प्रकार से समाज में साधु बनने के लिए व्यक्ति को संतोष, धैर्य, सहनशीलता और संयम की आवश्यकता पड़ती है, ठीक यही गुण घीसू और माधव में विद्यमान थे। अगर वे दोनों साधु होते तो उन्हें सन्तोष, धैर्य, सहनशीलता, नियम और संयम की बिल्कुल भी आवश्यकता न पडती, क्योंकि ये गुण तो उनके व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण तत्त्व थे। वास्तव में ये गुण तो उनके स्वभाव का अंग बन चुके थे। उनका जीवन भी विचित्र और अनोखा था, क्योंकि उन्होंने जीवन में कभी भी धन–सम्पत्ति और सुख–सुविधाओं के उपकरणों का कभी भी संग्रह नहीं किया था। धन–सम्पत्ति के नाम पर उनके घर में मिट्‌टी के दो–चार टूटे–फूटे बर्तन थे। फटे पुराने चीथड़ों से वे अपने शरीर की नग्नता को ढके रहते थे, अर्थात् उनके पास पहनने के लिए अच्छे कपड़े नहीं थे। उन्हें संसार की कोई चिन्ता नहीं थी, वे गांव में अनेक लोगों के कर्जदार थे, परन्तु कर्ज की अदायगी की उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। गांव के अनेक लोग उनका अपमान करते, गालियां देते, पिटाई करते, लेकिन वे मान–अपमान की भावना से युक्त थे। उन्हें पिटाई या गालियों का कोई गम न था। उनकी शक्ल–सूरत इतनी दयनीय थी कि कर्ज की वसूली की उम्मीद न रहने पर भी उनकी दीन–हीन दशा को देखकर लोग पसीज जाते थे ओर उन्हें कुछ–न–कुछ कर्जा अवश्य दे देते थे।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव तथा सरल है। मुन्शी प्रेमचन्द जी ने चलती–फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. प्रस्तुत अवतरण में वर्णनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।
3. प्रस्तुत अवतरण में साधु के गुणों की सुन्दर अभिव्यक्ति है।
4. घीसू और माधव की दयनीय अवस्था का चित्रांकन किया गया है।
5. सामाजिक स्थिति को यहां सांकेतिक शैली में अभिव्यक्त किया गया है।
6. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अति उत्तम है।
7. भाव, भाषा और शैली का त्रिवेणी संगम हुआ है।

***2. "आलू-मटर की फसल में, दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भूनकर खा लेते, या दस-पाँच ऊंख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाशवृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे, जो कि किसी के खेत से खोद लाए थे।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण हिन्दी साहित्य के कल्पतरू, कलम के सिपाही एवं सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी वर्ग–विषमता का उद्‌घाटन करने वाली महत्त्वपूर्ण यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक सतत् शोषण से उत्पन्न अकर्मण्यता की भावना का उद्‌घाटन किया है तथा साथ ही घीसू और माधव के निठल्लेपन, आराम–तलबी, संवेदनशून्यता और जड़ता का चित्रांकन किया है। घीसू ने इसी आकाशवृत्ति से साठ दिन काट दिये थे और उसका पुत्र उससे भी आगे निकल गया था। प्रस्तुत अवतरण में लेखक उनकी चोरी की आदत का चित्रांकन करते हुए लिखता है–

**व्याख्या** – घीसू और माधव दोनों ही कामचोर, निकम्मे, निठल्ले और आराम–तलब थे। वे किसी के यहां भी काम करने के लिए जब जाते थे, जब दूसरे मजदूर एक तिहाई काम पूरा कर चुके होते थे। घीसू एक दिन काम करता था तो तीन दिन आराम करता और माधव इतना कामचोर था कि आधा घंटा काम करता था तो घण्टा–भर चिलम पीता। घर में मुट्‌ठी–भर अनाज होता तो उन्हें काम करने की कसम थी, इसीलिए गांव का कोई भी आदमी काम पर नहीं बुलाता। जब दो–चार दिन का फांका हो जाता तो घीसू पेड़ से लकड़ियां तोड़ लाता तो माधव उन्हें बाजार में बेच आता। जब उन्हें दोजख की आग बहुत अधिक सताती तो वे रात को दूसरों के खेतों से आलू या मटर उखाड़ लाते और रात को भून–भानकर खा जाते या दस–पाँच ऊंख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाशवृत्ति से साठ साल काट दिये थे। उसने कभी भी मन लगाकर काम नहीं किया था और उसका बेटा माधव भी उसी के पद्–चिह्नों पर चैल रहा था, बल्कि अपने पिता का नाम और अधिक

रोशन कर रहा था। इस वक्त वे दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भूनकर खा रहे थे जो किसी के खेत से चोरी से खोद लाये थे।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव तथा सरल है। प्रेमचन्द जी ने चलती–फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. घीसू और माधव के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

3. घीसू और माधव की आराम–तलबी निठल्लापन तथा चोरी की प्रवृत्ति का चित्रांकन किया गया है।

4. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की दृटि से अति उत्तम है।

***5. "जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान् था जो किसानों के विचार-शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण उपन्यास सम्राट एवं सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी उत्कृष्ट काल की यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने सतत् शोषण से उत्पन्न अकर्मण्यता व वर्ग–वैषम्य का उद्‌घाटन किया है तथा साथ ही एक विशेष जाति की अकर्मण्यता, आराम–तलबी व निठल्लेपन का भी चित्रण किया है। लेखक पूंजीवादी व्यवस्था की धज्जियां उड़ाता है तथा स्पष्ट करता है कि इसी व्यवस्था के कारण ही किसानों, मजदूरों का शोषण होता है जिससे समाज में अकर्मण्यता, निठल्लेपन और कामचोर की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। लेखक किसानों की दयनीय अवस्था का चित्रांकन करते हुए कहता है–

**व्याख्या** – जिस भारतीय समाज में किसानों की हालत भी अत्यन्त दयनीय व बदतर थी, क्योंकि पूंजीपति उनका शोषण करते हैं। दिन–रात कठोर परिश्रम करने के बाद भी वे खाली पेट सोने के लिए विवश हैं, अर्थात् वे परिश्रम करने के बाद भी भूखे हैं, परन्तु उनकी हालत तो बिना हड्डियां काली किए किसानों जैसी ही है। उन्हें कम–से–कम काम तो नहीं करना पड़ता और शारीरिक शक्ति का हास नहीं होता। किसानों के मुकाबले में पूंजीपति या जमींदार लोग ज्यादा सम्पन्न थें, क्योंकि वे उनका शोषण करते थे और उनकी दुर्बलताओं का बेजा फायदा उठाते थे। ऐसे समाज में जहां कर्मठ–परिश्रमी व्यक्तियों की हालत दयनीय थी तथा उन्हें भरपेट रोटी नहीं मिलती थी और पूंजीपति कार्य न करते हुए भी सभी प्रकार की सुख–सुविधाओं को भोगते हुए सम्पन्न और धन–धान्य से परिपूर्ण हैं। ऐसे समाज में इस प्रकार की धारणा का उत्पन्न होना सहज, स्वाभाविक था, क्योंकि परिश्रम करने के बाद भी खाली पेट तो इससे तो यह अच्छा है कि परिश्रम ही न किया जाए। अतः घीसू किसानों से ज्यादा चतुर, विचारवान् व्यक्ति था और इसीलिए वह किसानों के विचारशून्य समूह में न बैठकर बैठकबाजों की घृणित मण्डली का सदस्य बन गया था, क्योंकि वे लोग अकर्मण्य, आराम–तलब और निठल्ले थे तथा सारा दिन बैठकर वार्तालाप में लिप्त रहते थे। धूर्त लोग पंडित–पुरोहित, पूंजीपति किसानों की कमजोरी का लाभ उठाकर सुख–सुविधा भरा जीवनयापन करते थे।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव तथा सरल है। प्रेमचन्द जी ने चलती–फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

3. पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति कटु कटाक्ष किया गया है।

4. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

5. घीसू के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

***4. "दोनों एक-दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज की दुकान पर गए, कभी उसकी दुकान पर, तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गई। तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुंचे और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गए।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण सर्वश्रेष्ठ कहानीकार स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध यथार्थवादी

कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने सतत् शोषण से उत्पन्न किसानों एवं मजदूरों में अकर्मण्यता की भावना को उजागर किया है तथा साथ ही एक विशेष जाति की अकर्मण्यता, आराम तलबी और निठल्लेपन का भी चित्रण किया है। कहानीकार ने वर्ग–विषमता का उद्‌घाटन करते हुए पूंजीवादी व्यवस्था पर कटु कटाक्ष किए हैं। घीसू और माधव गांव से पैसे एकत्रित करके बुधिया के लिए कफन लाने के लिए शहर जाते हैं, परन्तु वहां जाकर उनके मन में खोट आ गया और उन्होंने इस पैसे से शराब पीने व सुस्वादु भोजन करने का मन बना लिया। वे दोनों कफन के औचित्य पर विचार प्रकट करते हैं तथा रूढ़ रीति–रिवाजों पर कटु कटाक्ष करते हैं। घीसू स्पष्ट कहता है कि यदि ये पांच रुपए पहले मिल जाते तो कुछ दवा–दारू कर लेते। कहानीकार लिखता है–

**व्याख्या** – घीसू और माधव दोनों कफन न खरीदकर दवा–दारू करने का मन बना चुके थे। इसलिए वे समय गंवाने के लिए बाजार में इधर–उधर घूमते रहें। कभी इस बजार की दुकान पर कफन का कपड़ा देखते तो कभी उस दुकान पर। उन्होंने बाजार में तरह–तरह के रेशमी और सूती कपड़े देखे, लेकिन कोई भी कपड़ा कफन हेतु पसन्द नहीं आया। वास्तव में कपड़ा देखना तो एक बहाना था और समय गंवाने का एक माध्यम था, क्योंकि वे दोनों सायंकाल होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी सायंकाल हो गई और वे दोनों पता नहीं किस अज्ञात दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने जा पहुंचे और जैसे किसी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार वे दोनों मधुशाला में भीतर चले गये। वहां कुछ देर तक दुविधा की स्थिति में खड़े रहे कि शराब की बोतल खरीदें या नहीं। कफन के लिए एकत्रित किए गए पैसे से शराब पीए या नहीं। फिर घीसू ने गद्‌दी के सामने जाकर कहा कि साह जी ! जरा एक बोतल हमें भी दे देना इस प्रकार उन्होंने कफन हेतु एकत्रित किए गए धनराशि से शराब पी, तली हुई मछलियां खाईं और कलेजियां, अचार, चटनी आदि का रसास्वादन किया।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव तथा सरल है। प्रेमचन्द जी ने चलती–फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. घीसू–माधव की मनःस्थिति का चित्रांकन हुआ है।

3. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

4. विवेचनात्मक शैली प्रयोग की गई है।

5. घीसू–माधव के चरित्र–चित्रण पर प्रकाश डालते हुए उनकी संवेदनशून्यता, निर्जीवता व जड़ता का चित्रण हुआ है।

6. घीसू–माधव के नशेड़ी होने का पुख्ता प्रमाण मिलता है।

***5. "दोनों इस वक्त शान से बैठे पूरियाँ खा रहे थे, जैसें जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ था, न बदनामी की फिक्र। इन भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण उपन्यास सम्राट तथा कलम के सिपाही, सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने वर्ग–विषमता का उद्‌घाटन करते हुए पूंजीवादी व्यवस्था पर कटु कटाक्ष किए हैं तथा घीसू और माधव को अकर्मण्यता, आराम–तलबी, संवेदनशून्यता और निठल्लेपन का चित्रण किया है। गांव से चन्दा एकत्रित करके घीसू–माधव शहर में बुधिया के लिए कफन खरीदने जाते हैं, परन्तु उनके मन में खोट आ गया है। पहले वे सस्ता–सा कफन खरीदने का मन बनाते हैं, परन्तु तभी वे इस विचार को भी ठुकरा देते हैं। वे दोनों मधुशाला के सामने जाकर खड़े हो जाते हैं और फिर एक बोतल शराब की खरीदते हैं तथा चिखौना मंगवाते हैं। शराब पीते हुए घीसू स्पष्ट करता है कि कफन खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह तो जल जाता है और बाकी धनराशि से सुस्वाद भोजन करने का मन बनाते हैं। कहानीकार उन दोनों के भोजन करने के दृश्य का वर्णन करते हैं–

**व्याख्या** –जब आदेश किया गया सारा सामान आ गया तो वे भोजन पर टूट पड़े, क्योंकि वे कई दिनों के भूखे थे और उन्होंने जीवन में कभी भी ऐसा भोजन नहीं किया था। घीसू ने दो सेर पूड़ियां मंगवाई, चटनी, अचार कलेजियां आदि भी मंगवाई गईं। माधव लपककर यह सारा सामान ले आया था और दोनों बाप–बेटा उस समय पूरी शान व अकड़ के साथ भोजन कर रहे थे। जिस प्रकार से जंगल में शेर अपने शिकार पर भूखा होकर टूट पड़ता है और अकड़ व शान के साथ अपने शिकार को जल्दी–जल्दी खाने में लीन होता है, ठीक इसी प्रकार घीसू और माधव पूरियों पर टूट पड़े थे और ऐसा सुस्वादु भोजन जीवन में पहली बार किया था, इसीलिए झूठी शान और अकड़ भी आ गई थी, क्योंकि उनके सामने पूरियां, कलेजियां,

अचार, चटनी और पूरी शराब की बोतल रखी हुई थी। अतः उनमें शान–अकड़ का आना सहज और स्वाभाविक था। वे इस प्रकार से प्रदर्शन कर रहे थे कि मानो कोई रईस हो और हर रोज ऐसा ही भोजन करते हों, क्योंकि उन्होंने बुधिया के कफन हेतु एकत्रित की गई धनराशि से शराब पी भी थी और सुस्वाद भोजन किया था। अतः उन्होंने अनैतिक कार्य किया था और गांव वाले पूछेंगे कि कफन कहां है तो क्या जवाब देंगे ? लेकिन उन्हें न तो जवाबदेही की चिन्ता या डर था और न बदनामी की फ़िक्र थी। बदनामी की तो वे चरम सीमा पर वे पहुंच चुके थे। चोरी वे करते थे और बदनामी का उन्हें कोई डर न था, क्योंकि इन भावनाओं को तो उन्होंने बहुत पहले जीत लिया था।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सहज तथा सरल है। प्रेमचन्द जी ने चलती–फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. घीसू और माधव के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

3. घीसू–माधव की संवेदना शून्य, निर्जीवता व बेहयापन का चित्रांकन किया गया है।

4. विवेचनात्मक शैली प्रयोग हुई है।

5. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

6. ***"वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं या न जीते हैं, न मरते हैं।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण उपन्यास सम्राट व सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। 'कफन' उत्कर्ष काल की रचना है तथा वर्ग–विषमता का उद्‌घाटन करने में सक्षम है। लेखक ने प्रस्तुत कहानी में घीसू और माधव की अकर्मण्यता, निष्ठुरता, निठल्लेपन व आराम–तलबी का चित्रण किया है। प्रस्तुत अवतरण में मुन्शी प्रेमचन्द जी ने मधुशाला के मदहोश वातावरण का सजीव चित्रण किया है। घीसू और माधव ताबड़तोड़ कुज्जियां पीते हैं और शराब के नशे में मदहोश होकर वहीं गिर जाते हैं। सभी दुनियादारी के गम यहां आकर उनके कट गए हैं। लेखक ने मधुशाला और उसके परिवेश का चित्रण इस प्रकार से किया है–

**व्याख्या** –मधुशाला के वातावरण में चारों तरफ मस्ती का आलम था, सर्वत्र मदहोशी छायी हुई थी और यहाँ, कि दुनिया में न सांसारिक कष्ट व व्यथा थे और न कोई चिन्ता–फिक्र। यहां की हवा में भी एक प्रकार की मादकता, मस्ती व मदहोशी थी। कितने ही लोग तो यहां आकर ही मदहोश हो जाते थे अर्थात् वातावरण इतना मादक था कि लोग उस परिवेश में आते ही मदहोश हो जाते थे और कुछ एक चुल्लू में ही मदमस्त हो जाते थे। यही सब घीसू और माधव के साथ हुआ। मधुशाला में आते ही व्यक्ति बाहरी राज–द्वैष से मुक्त होकर मदहोश हो जाता है। घीसू और माधव यहां आते ही बुधिया की मौत की घटना को भुलाकर मदहोश हो जाते हैं। शराब से ज्यादा यहां आने वालों पर यहां का वातावरण–परिवेश व वायु प्रभाव करती थी। जीवन की दुःख और बाधाएं व्यक्ति को यहां खींच ले आते थे, अर्थात् व्यक्ति अपने गमों को हल्का करने के लिए, सांसारिक बाधाओं व कष्टों को भुलाने के लिए मधुशाला में आते हैं। यहां पर आने के बाद व्यक्ति कुछ देर के लिए यह भूल जाता है कि वह जीवित है या मृत या वे मानने लगते हैं कि न मृत है न जीवित बल्कि सम स्थिति में विद्यमान है।

**विशेष** – 1. प्रस्तुत अवतरण की भाषा सजीव तथा सरल है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. मधुशाला के वातावरण का सजीव व मार्मिक चित्रण हुआ है।

3. विवेचनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रेमचन्द जी ने सुरा की महत्ता को स्पष्ट किया है।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

6. शब्दों में कलात्मकता का पुट अवलोकनीय है।

7. ***"घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला-"हां बेटा, बैकुण्ठ में जाएगी किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह बैकुण्ठ में न जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धाने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण सर्वश्रेष्ठ कहानीकार व कलम के सिपाही, स्वनामधन्य मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'कफन' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी प्रेमचन्द जी के उत्कर्ष काल की रचना है और इसमें उन्होंने वर्ग–विषमता का उद्‌घाटन करते हुए किसानों, मजदूरों की दयनीय अवस्था पर प्रकाश डाला है तथा साथ ही रूढ़ियों, पाखण्डों पर भी कटु कटाक्ष किया है। माधव और घीसू शराब पीकर तथा सुस्वादु भोजन करके बुधिया को आशीर्वाद देते हैं कि उसके कारण ही यह भोजन मिला है तथा भिखारी को बाकी बचा हुआ भोजन देकर उसे भी आशीर्वाद देने के लिए कहते हैं। माधव आसमान की ओर देखकर कहता है कि वह स्वर्ग में जाएगी। घीसू स्पष्ट करता है–

**व्याख्या** –घीसू यह सुनकर कि वह स्वर्ग में जाएगी खड़ा हो गया, और अत्यधिक प्रसन्नचित्त होकर बोला कि हां बेटा! वह अवश्य ही स्वर्ग में जाएगी, क्योंकि उसने जीवर–भर किसी की आत्मा को आहत नहीं किया, किसी का शोषण नहीं किया और किसी का हिस्सा नहीं दबाया। वह जीवन–भर दीन–दलितों के प्रति समर्पित रही और मुझ (घीसू और माधव) जैसे निकम्मे, आराम–तलबों को रोटी खिलाती थी। वह हमारी और एक महत्त्वपूर्ण इच्छा पूरी कर गई कि जाते–जाते हमें सुस्वादिष्ट, सुस्वादु भोजन करा गई और शराब पिला गई, क्योंकि उसके कफन हेतु एकत्रित किए गए पैसे से भोजन कर लिया और शराब पी ली। इसलिए वह अवश्य ही स्वर्ग में जाएगी और यदि बुधिया न जाएगी तो क्या ये मोटे–मोटे पूंजीपति लोग जायेंगे जो गरीबों का शोषण करते हैं, उनकी आत्मा को आहत करते हैं। जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और पाप करने के बाद गंगा नदी में डूबकी लगाकर अपने पापों को धाने का प्रयास करते हैं। वे पूंजीपति लोग अपने दुष्कर्मों का परिहार करने के लिए मन्दिरों में जल चढ़ाते है। वे वास्तव में भगवान के बन्दों पर अत्याचार करते हैं और भगवान को खुश करने के लिए जल चढ़ाते हैं, अर्चना करते हैं।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल तथा सुबोध है। प्रेमचन्द जी ने चलती–फिरती मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

2. विवेचनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।
3. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।
4. प्रेमचन्द जी ने रूढ़ियों, पाखण्डों व बाह्याडम्बरों पर कटु कटाक्ष किया है।
5. वर्ग–विषमता का उद्‌घाटन भी हुआ है।
6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

# आकाशदीप

## (जयशंकर प्रसाद)

### तात्त्विक विवेचन

'आकाशदीप' श्री जयशंकर प्रसाद की एक प्रतिनिधि कहानी है। भारतीय संस्कृति के परिवेश में आदर्श की भावभूमि पर निर्मित यह एक अनुभूतिपरक वातावरण प्रधान कहानी है जिसमें प्रेम और कर्त्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व दिखाकर कहानीकार ने प्रेम पर कर्त्तव्य की विजय को निश्चित किया है। इस कहानी की मूल संवेदना प्रेम और कर्त्तव्य से जुड़ी है। नारी के अत्यत भावुक हृदय का रेखांकन कहानीकार ने प्रस्तुत किया है। मानवीय भावनाओं का अद्‌भुत चरित्र–चित्रण इस कहानी मे सजाया गया है। इस कहानी में दुर्दान्त जलदस्यु बुद्धगुप्त के हृदय परिवर्तन और कथा नायिका चम्पा के प्रेम, घृणा, त्याग और लोक कल्याण की भावना मुखरित हुई है। कहानी के तत्वों के आधार पर यह एक सफल कहानी है। इसकी समीक्षा हम निम्नलिखित शीर्षकों में कर सकते हैं –

**1. कथावस्तु अथवा कथानक -**

आकाशदीप कहानी में केवल दो प्रमुख पात्रों के माध्यम से कथानक का विस्तार किया गया है। बुद्धगुप्त और चम्पा दोनों एक पोत से बंधी एक पोतवाहिनी पर बंदी हैं। वे अपने विवेक और कुशलता से मुक्त हो जाते हैं। वे एक निर्जन अनजान द्वीप पर रहने लगते हैं। वहाँ चम्पा और बुद्धगुप्त एक–दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। अन्ततः उनमें प्रेम पनपने लगता है। परन्तु चम्पा को अभी भी सन्देह है कि उसके बाप का हत्यारा बुद्धगुप्त ही है। वह उसके साथ विवाह करके अपनी रानी बनाकर अपने देश भारत लाना चाहता है। परन्तु चम्पा इस प्रस्ताव को ठुकरा देती है। वह वहीं रहकर अपने पिता की समाधि का अन्वेषण करना चाहती है तथा वहाँ रह रहे भोले–भाले निवासियों की सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझती है। वह अपने कर्त्तव्य के लिए प्रेम की बलि चढ़ा देती है।

आकाशदीप की कथावस्तु सुगठित एवं कौतूहलपूर्ण है। कहानी का प्रारम्भ चम्पा और बुद्धगुप्त के वार्तालाप से होता है। इस प्रकार संवादात्मक शैली में यह कथारम्भ अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। कहानी के विकास में चम्पा और बुद्धगुप्त की मुक्ति, बुद्धगुप्त का पोत का स्वामी होना तथा चम्पा द्वीप तक पहुँचना आदि सन्निविष्ट है। जिज्ञासा एवं संघर्ष कहानी का प्रमुख तत्त्व है। आकाशदीप कौतूहलपूर्ण कथा है। पाठक का मन 'आगे क्या हुआ' यह जानने के लिए बराबर उत्सुक रहता है। चम्पा और बुद्धगुप्त का जीवन–विवरण, क्या बुद्धगुप्त चम्पा के पिता का हत्यारा है, चम्पा के हृदय में प्रतिशोध की आग है, फिर भी वह बुद्धगुप्त से प्रेम करती है–इस प्रकार के स्थल कहानी में सरस, रोचक एवं कौतूहलपूर्ण हैं। कहानी बाह्य एवं आन्तरिक संघर्ष से भरी हुई है। कहानी में चरमसीमा वह स्थान होता है जहाँ पर कहानी का कथ्य स्पष्ट हो जाता है। चम्पा के मन का संघर्ष चित्रित करना कहानीकार का लक्ष्य है। बुद्धगुप्त से उसे प्रेम है फिर भी वह प्रतिशोध की आग दबा नहीं सकती। कहानी का अन्त भी रोचक है। बुद्धगुप्त की नावें भारत की ओर बढ़ती हैं। चम्पा द्वीपवासियों की कई वर्षों तक सेवा करती है। अन्त में वह वहीं जलसमाधि ले लेती है। कहानी का यह अन्त इतना करुणाक्रान्त है कि पाठक के मन को बहुत देर तक अपने साथ बाँधे रखता है।

**2. पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण-**

आकाशदीप कहानी में मुख्य पात्र चम्पा और बुद्धगुप्त दो ही हैं। इनके अलावा मणिभद्र का भी नाम आता है परन्तु उसके चरित्र का बखान इन दोनों मुख्य पात्रों के माध्यम से होता है। प्रस्तुत कहानी में चम्पा का द्वन्द्वात्मक चरित्र–चित्रण कथाकार ने सफलतापूर्वक किया है प्रेम और घृणा के द्वन्द्व में चम्पा की यथार्थ मनोवृत्ति की बार–बार झलक दिखाकर उसकी मनोगत भावना को स्पष्ट किया गया है। चम्पा का चरित्र–चित्रण अन्तर्मुखी अधिक है, वह आवेग से संचालित है। चम्पा अपने मानसिक जगत से संघर्ष करती रहती है और अन्त में उसकी कर्त्तव्य भावना कुलमर्यादा का गौरव उसके प्रेम पर विजयी हो जाता है। चम्पा जाह्नवी के तट पर स्थित चम्पा नगरी की क्षत्रिय बालिका है। उसके पिता श्रेष्ठि मणिभद्र के यहाँ प्रहरी थे। माता का देहान्त होने पर चम्पा अपने पिता के साथ ही मणि के पोत पर रहने लगी। जल–दस्युओं के आक्रमण में चम्पा के पिता की मृत्यु हो गई। मणिभद्र के घृणित प्रस्ताव को ठुकराने के कारण चम्पा बन्दी बना ली गयी। बुद्धगुप्त की सहायता से वह मुक्त हुई। चम्पा को सन्देह था कि बुद्धगुप्त ही उसके पिता का हत्यारा है, इसलिए वह बुद्धगुप्त की वीरता के कारण प्रेम

करती हुई भी उसका प्रेम निवेदन न करके दुःखी लोगों की सेवा के हेतु चम्पा द्वीप में रह जाती है।

दूसरा पात्र बुद्धगुप्त है जो ताम्रलिप्ति का क्षत्रिय, पर दुर्भाग्य के कारण जल–दस्यु बनकर जीवन बिताता है। बुद्धगुप्त वीर और साहसी है। कृपाण के द्वन्द्व युद्ध में नायक को पराजित करके उसने अपनी वीरता और साहस का परिचय दे दिया है। बुद्धगुप्त साहसजीवी होते हुए भी कोमल हृदय का स्वामी है। चम्पा से अपना प्रेम निवेदन ही नहीं, उसके पैर पकड़कर वह अपने सात्विक प्रेम का प्रमाण देता है। बुद्धगुप्त को अपनी मातृभूमि से प्रेम है। चम्पा के प्रेम में निराश होकर वह अपने देश भारत चला आता है।

अन्तर्द्वन्द्व इस कहानी के चरित्र–चित्रण का केन्द्र बिन्दु है। चम्पा और बुद्धगुप्त के हृदय के भीतर चलने वाले कोलाहल को कहानी के भीतर अच्छी तरह सुना जा सकता है। दोनों के हृदय अन्तर्द्वन्द्वों से उद्वेलित हैं, किन्तु एक गंभीरता का आवरण डाले रहते हैं, यद्यपि इस आवरण में वह उद्वेलन छिप नहीं पाता है।

**3. कथोपकथन (संवाद) –**

इस कहानी के संवाद बहुत ही सजीव आकर्षक और नाटकीय हैं। इन संवादों के कारण तो इसे नाटकीय कहानी कहना उचित ही नहीं लगता है। अन्य सभी गुणों के साथ इनमें कुतूहल और जिज्ञासा जागृत करने की क्षमता अधिक है। प्रारम्भ के नाटकीय संवादों ने तो एक मोहक वातावरण का निर्माण कर दिया है, जैसे–

"बन्दी ! "

"क्या है ? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डाल कर कोई शीत से मुक्त करता।"

"आँधी की संभावना है। यही अवसर है, आज मेरे बंधन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?"

"हाँ धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा ?"

"मिल जायेगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?"

"हाँ।"

कहानीकार ने संक्षिप्त संवादों के साथ–साथ दीर्घ संवादों की भी योजना की है, परन्तु स्वाभाविकता बाधित नहीं हुई है, जैसे–"विश्वास ? कदापि नहीं, बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास न कर सकी, उसी ने मुझे धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ ? मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ।" इस संवाद के माध्यम से चम्पा के मन के प्रेम और घृणा के अन्तर्द्वन्द्व को सुन्दर रूप में प्रकट किया है। इस प्रकार इस कहानी के संवाद पात्रों की मनोदशा को प्रकट करते हैं तथा कौतूहल का सृजन कर कथानक के विकास में योग देते हैं।

**4. वातावरण (देशकाल) –**

वातावरण के अन्तर्गत देशकाल और परिस्थिति आती है। इस कहानी में घटना और पात्रों से संबंधित परिस्थितियों का चित्रण सजीव रूप में किया गया है। सम्पूर्ण परिस्थितियों की योजना साभिप्राय और क्रमिक ढंग से की गई है। प्रकृति दृश्य का वर्णन करके घटनाओं को सजीव एवं यथार्थ बना दिया है। वातावरण के दृश्यविधान से न केवल चरित्र की मनःस्थिति पर प्रकाश डाला गया है अपितु उसके कार्य–व्यापार सजीव बन गये हैं। आकाशदीप कहानी में आँधी, समुद्री लहरें एवं तेज हवाएं इसी मनःस्थिति और कार्यव्यापार को प्रकट करते हैं। एक उदाहरण देखिए–तारक–खचित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अन्धकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों से विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढकने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकाल

कर फिर लुढ़कती हुई, बन्दी के समीप पहुँच गई। सहसा पोत से पथ–प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा–"आँधी" वातावरण के इस दृश्यविधान ने कहानी के मुख्य पात्र चम्पा और बुद्धगुप्त के बंधनमुक्त होने की छटपटाहट को अत्यंत सजीव बना दिया है। प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियों में बौद्धकाल से लेकर 1857 के सिपाही विद्रोह तक को अपनाया गया है। वस्तुतः प्रसाद भारतीय इतिहास के इन तीनों कालों को अपनी विषय–वस्तु से संबंध करते है–बौद्धकाल, मुस्लिमकाल और ब्रिटिशकाल। प्रस्तुत कहानी बौद्धकाल से सम्बन्धित है। इस कहानी के वातावरण में कहानी का प्रतिपाद्य सम्पूर्णतः ध्वनित हो गया है। वस्तुतः यह एक वातावरण प्रधान कहानी बन गई है।

**5. भाषा-शैली –**

प्रस्तुत कहानी की भाषा–शैली प्रौढ़ एवं काव्यात्मक है। उसमें सरसता एवं भावुकता है। इस कहानी की भाषा में संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग है। इस कारण कई स्थलों पर वह क्लिष्ट–सी लगती है। त्वरित, सम्भ्रम धवल, अपांग, असंयत, कुन्तल, तरल, संकुल, विसर्जन, परिरम्भ, शिविकारूढ़ आदि अनेक तत्सम शब्द कहानी में प्रयुक्त है। तत्सम शब्दों की प्रचुरता कहानी को शिष्ट भाषा का आयाम प्रदान करती चली गयी है। कहीं–कहीं इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग अस्वाभाविक–सा लगता है, परन्तु भावों की गति ने उसे अनुभव नहीं होने दिया है।

आकाशदीप की शैली आलंकारिक एवं काव्यमयी है। इसमें प्रसाद जी का कवि हृदय परिलक्षित होता है। इसके संवाद काव्य का–सा रस प्रदान करते हैं। यथा–"बुद्धगुप्त मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है। सब पवन शीतल है, सेवा के लिए।" प्रस्तुत कहानी की भाषा भावाभिव्यक्ति में अत्यंत सफल है। वह पात्र और समय के अनुकूल है। प्राचीन ऐतिहासिक घटना होने के कारण भाषा में संस्कृतनिष्ठता होना स्वाभाविक है। समग्र कथा की भाषा परिमार्जित है–वह कुशल रचना शिल्पी प्रसाद की अमर कहानियों में से है।

**6. उद्देश्य –**

प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य पुष्प में गंध की भाँति छिपा हुआ है। उद्देश्य को सीधे–सादे रूप से व्यक्त न कर विशिष्ट अनुभूति के रूप में व्यंजित किया गया है। भारतीय संस्कृति के परिवेश में एक स्वस्थ आदर्श की स्थापना करना ही इस कहानी का प्रधान उद्देश्य है। चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व की परिणति उसी स्वस्थ आदर्श को स्थापित करती है। चम्पा जलदस्यु बुद्धगुप्त से प्रेम करती थी, किन्तु उसे आशंका थी कि उसी ने उसके पिता की हत्या की है। जलदस्यु के स्पष्टीकरण पर भी उसकी शंका दूर न हो सकी। ज्यों ही पिता का स्मरण आता, उसका हृदय घृणा से भर जाता, अन्यथा वह उससे प्रेम करती थी। उसके हृदय में प्रेम और घृणा का घोर प्रतिद्वन्द्व चलता था–'मैं तुम्हें घृणा करती हूँ। फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ।' किन्तु उसे अपने हृदय पर भी विश्वास नहीं होता। जलदस्यु के पूछने पर कि 'तो आज से मैं विश्वास करूँ। क्षमा कर दिया गया।' वह कहती है–'विश्वास ? कदापि नहीं बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ।' जलदस्यु के स्पष्टीरण पर कि मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, वह कहती है–"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती। वह दिन कितना सुन्दर होता ? आह ! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान होते ?" उसके इसी अन्तर्द्वन्द्व के कारण उनका संयोग न हो सका। जलदस्यु बुद्धगुप्त के स्पष्टीकरण देने पर भी उसकी शंका का समाधान न हो सका। क्योंकि, वह यह तो जानती ही थी कि उसके पिता की मृत्यु का कारण बुद्धगुप्त ही है। वह स्वयं उसके पिता का घातक न हो, तो भी उसी के आक्रमण के समय चम्पा के पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल–समाधि ली थी। यदि वह आक्रमण नहीं करता तो उसके पिता की मृत्यु नहीं होती। इसी कारण वह विश्वास नहीं करती। वह बुद्धगुप्त से प्रेमालाप करती थी, किन्तु पिता का स्मरण आते ही उसका पितृ–प्रेम सजग हो जाता था और वह उससे घृणा करने लगती थी। उसके हृदय में प्रेम और घृणा का घोर अन्तर्द्वन्द्व चलता था वैयक्तिक प्रेम एवं पितृ–प्रेम की उसके मानस में टक्कर होती थी।

चम्पा ने बुद्धगुप्त को ठुकराकर पितृ–प्रेम को महत्त्व दिया, किन्तु चम्पा द्वीप में रहकर अपने प्रेम की गम्भीरता को ही और गम्भीर बना सकी, उसे घनीभूत साँचे में न ढालकर कुल–मर्यादा के संरक्षण में उदात्त रूप प्रदान किया। यही कहानी की मूल संवेदना है।

**7. शीर्षक –**

प्रस्तुत कहानी का शीर्षक आकर्षक एवं औत्सुक्यवर्द्धक है। शीर्षक से कहानी के केन्द्रीय विचार की झलक मिलती है। समुद्र–तट पर पोतों के मार्ग दर्शन के लिए पर्याप्त ऊंचाई पर द्वीप जलाकर रखने की प्रक्रिया 'आकाशदीप' है।

'मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती और प्रार्थना करती, 'भगवान ! मेरे पथभ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।'

यह कार्य समुद्र–तट वासियों के लिए अत्यंत पवित्र माना जाता है। चम्पा के हृदय में आकाशदीप के प्रति श्रद्धा, पूजा और पवित्रता की भावना है–"पहले विचार था कि कभी–कभी इस द्वीप स्तम्भ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी, किन्तु देखती हूँ, कि मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाशदीप।" वास्तव में वह आजीवन उस द्वीप स्तम्भ में आलोक जलाती ही रही। आकाशदीप का लक्षण जन–कल्याण है। कल्याण की भावना पवित्र है। अतः चम्पा की साधना जनकल्याण में आजीवन व्रती बनकर पूर्ण हुई। अतः इस कहानी का शीर्षक आकाशदीप संगत व सार्थक है।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार स्पष्ट है कि आकाशदीप कहानी में कहानी कला का सफलता–पूर्वक निर्वाह हुआ है। अतः इस दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ कहानी है।

## प्रष्टव्य

1. कहानी–कला के आधार पर 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिये।
2. 'आकाशदीप' कहानी की विशेषताएँ बताइये।
3. आकाशदीप कहानी की सम्यक् आलोचना करते हुए उसकी मूल संवेदना का उद्‌घाटन कीजिए।

# II. कहानी-सार

छायावाद के युग–प्रवर्तक व ऐतिहासिक नाटकों के सर्वश्रेष्ठ रचयिता तथा बहुचर्चित कहानीकार श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी चरित्र प्रधान कहानी 'आकाशदीप' में चंपा के अन्तर्द्वन्द्व को ही उजागर किया गया है तथा दूसरा इसका प्रमुख प्रतिपाद्य समाज–सेवा का महत्त्वपूर्ण सन्देश देना है। कहानी का सारांश इस प्रकार से है–"कहानी का प्रारम्भ बुद्धगुप्त नामक जलदस्यु द्वारा चम्पा को बन्धनमुक्त करने से है। दोनों ही मणिभद्र नामक व्यापारी के नाव पर बन्दी हैं तथा दोनों ही मुक्त होना चाहते हैं। चम्पा चतुरता से नायक का कृपाण निकाल ले आती है और बुद्धगुप्त पोत से सम्बद्ध रस्सियों को काट देता है और नाव के स्वामित्व को लेकर विवाद होता है। नायक बुद्धगुप्त को कहता है कि तुमको मुक्त किसने किया ? बुद्धगुप्त कृपाण दिखाकर कहता है–इसने। नायक कहता है कि मैं तुम्हें फिर बन्दी बनाऊंगा, इस पर बुद्धगुप्त कहता है–किसके लिए बन्दी बनाओगे ? मणिभद्र तो अतल जल में होगा। नायक इस नौका का स्वामी अब मैं हूं। तभी नायक अपनी कृपाण टटोलने लगा, लेकिन कृपाण के ऊपर चम्पा ने पहले ही अधिकार कर लिया था। तभी बुद्धगुप्त नायक को चुनौती देता है कि तुम द्वन्द्व–युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ और जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा। बुद्धगुप्त चतुरता से नायक की कटि में हाथ डालकर गिरा देता है और उसका विजयी कृपाण उसके हाथ में चमकने लगा। तभी नायक बुद्धगुप्त से अपने प्राणों की भिक्षा मांगता है। नायक अब स्वयं को बुद्धगुप्त का अनुचर स्वीकारता है तथा विश्वासघात न करने की प्रतिज्ञा करता है। चम्पा अपने कोमल करों और स्निग्ध दृष्टि से बुद्धगुप्त के घावों को वेदना–विहीन कर डालती है। तभी बुद्धगुप्त नायक से पूछता है कि हम लोग कहां होंगे ? नायक स्पष्ट करता है कि बाली द्वीप से बहुत दूर, सम्भवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना–जाना होता है। सिंहल के व्यापारियों की वहां पर प्रभुता एवं प्रमुखता है। अचानक नायक नाविकों को डांड लगाने की आज्ञा देता है, क्योंकि वहां पर एक जलमग्न शैल खण्ड है तथा सावधान न रहने से टकराने का भय है। चम्पा अपना परिचय देते हुए बुद्धगुप्त को बताती है कि वह चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका है तथा उसके पिता मणिभद्र काम के समुद्री व्यापारी के पास प्रहरी का काम करता था। माँ की मृत्यु के बाद मैं भी पिता के साथ नाव पर रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। लेकिन तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने सात जलदस्युओं को मारकर जल समाधि ले ली। एक मास से मैं अनाथ बालिका इस अनन्त नीले आकाश और अनन्त नीले जलनिधि के ऊपर निराश्रित हूं, असहाय हूं। मणिभद्र ने एक दिन मुझसे घृणित प्रस्ताव किया था तथा मैंने उसे गालियां सुनाई और उसी दिन से मैं बन्दी हूँ। बुद्धगुप्त भी अपना परिचय देता है कि मैं भी क्षत्रिय हूँ, परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर अपना समय काट रहा हूँ। तभी नायक ने सूचना दी कि हम लोग द्वीप के पास पहुंच गए हैं। किनारे से नाव टकराई और चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। तभी बुद्धगुप्त उस द्वीप का नाम चम्पा द्वीप रख देता है। पांच साल बाद चम्पा ऊचे स्थल पर बैठकर आकाशदीप जला रही थी और बड़े

प्रयास से उसने सन्दूकची में दीप रखकर अपनी कोमल उंगलियों से डोर खींची। उसकी कामना थी कि उसका आकाशदीप नक्षत्रों से मिल जाए, किन्तु ऐसा होना सर्वथा असम्भव था। उसने आशाभरी आँखें घुमा ली।

बुद्धगुप्त चम्पा के आकाशदीप जलाने का मजाक उड़ाया करता था, लेकिन चम्पा उन मधुर स्मृतियों में खो जाया करती थी, वह और बुद्धगुप्त दिन–भर कठोर परिश्रम करके, पालों में शरीर लपेटकर एक–दूसरे का मुंह देखते हुए सो जाया करते थे। तभी बुद्धगुप्त चम्पा को अपनी प्राणदात्री और सर्वस्व स्वीकारता है। लेकिन चम्पा बुद्धगुप्त को कठोर, निर्मम, अकरुण और निष्ठुर हृदय वाला व्यक्ति कहती है, यद्यपि उसने दस्यु वृत्ति छोड़ दी है। तुम भगवान के नाम पर मेरा मजाक उड़ाते हो तथा मेरे क्षीर निधिशायी अनन्त की प्रसन्नता के लिए क्या मैं दासियों के आकाशदीप जलवाऊं ? चम्पा स्मरण करती है कि जब वह छोटी थी तो मेरे पिताजी समुद्री जहाज पर नौकरी करते थे और मेरी माता प्रतिदिन उनके लिए आकाशदीप जलाया करती थी और प्रभु से प्रार्थना किया करती थी कि हे भगवान ! मेरे पथ–भ्रष्ट नाविक को अन्धकार में ठीक पथ पर ले जाना। जब बरसों बाद चम्पा के पिताजी लौटते तो वे कहते–साध्वी ! तेरी प्रार्थना से भगवान ने संकट की घड़ी में मेरी प्राण रक्षा की है। वह तभी अपने माता–पिता के प्रति श्रद्धा अभिव्यक्त करती है। मेरे वीर पिता की मृत्यु के कारण जलदस्यु ! हट जाओ ! सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। चम्पा और जया तभी समुद्र के किनारे आकर खड़ी हो गई और उसी समय एक नाव आ गई। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। वह समुद्र की अथह जल राशि को देखकर कहने लगी कि इतना जल ! इतनी शीतलता ! हृदय की प्यास न बुझी। इस प्रकार कहानी के इस स्थल पर चम्पा का अन्तर्द्वन्द्व अभिव्यक्त हुआ है। बुद्धगुप्त उसको अपने साथ बजरे पर बैठा लेता है तथा साथ ही स्पष्ट करता है कि इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं है। चम्पा बुद्धगुप्त को स्पष्ट कहती है कि अच्छा होता बुद्धगुप्त ! जल में बन्दी होने से तो अच्छा है कठोर दीवारों में बन्द होना। बुद्धगुप्त स्पष्ट करता है कि तुम मुझे आज्ञा देकर देखो, मैं तुम्हारे लिए नये द्वीप की सृष्टि कर सकता हूँ, तुम एक बार उसकी परीक्षा तो लेकर देखा। वह स्पष्ट कहता है कि चम्पा मैं अपना हृदय पिंड निकालकर समुद्र की गहराई में विसर्जन कर सकता हूँ, यदि तुम कहो तो। चम्पा कहती है कि आज मैं अपने प्रतिशोध के कृपाण को समुद्र की गहराई में डाल देती हूं, क्योंकि मेरे हृदय ने मुझे बार–बार धोखा दिया है। बुद्धगुप्त कहता है तो मैं विश्वास करूं कि तुमने मुझे माफ कर दिया। इस पर चम्पा स्पष्ट करती है–"विश्वास ! कदापि नहीं बुद्धगुप्त। जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुम्हें घृणा करती हूं फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हू। अन्धेर है जलदस्यु तुम्हें प्यार करती हूँ।" यह कहकर चम्पा रो पड़ी। पहाड़ की ऊँची चोटी पर नाविकों को सावधान करने के लिए एक सुदृढ़ दीप–स्तम्भ बनवाया गया था तथा आज उसी का महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्पष्ट कहता है कि वह उसके पिता का हत्यारा नहीं है और वह एक–दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरा था। बुद्धगुप्त चम्पा के पैर पकड़कर कहता है कि अब हम अपने देश भारत लौटना चाहते हैं और इन निरीह प्राणियों में यद्यपि हम देवी–देवता की तरह पूजित हैं, फिर भी पता नहीं किस श्रापवश अलग–अलग हैं। लेकिन चम्पा भारत में न जाकर वहीं रहकर उन निरीह प्राणियों की सेवा करना चाहती है। वह स्पष्ट कहती है कि तुम स्वदेश लौट जाओ, विभावों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों की सेवा में। चम्पा वहीं रहकर आजीवन आकाशदीप जलाती रहीं।

## III. चरित्र-चित्रण

### (क) चम्पा

**नायिका** :– आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवि व महिमामण्डित कहानीकार श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी ऐतिहासिक कल्पना पर आधारित कहानी 'आकाशदीप' में चम्पा नारिकया के पद पर अधिष्ठित है तथा कहानी की केन्द्रीय चरित्र भी है। वह कहानी में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहती है तथा बन्धनों से मुक्त होने से लेकर चम्पादीप पर दीप जलाने तक। कहानी की सभी घटनाओं के मूल में भी वही विद्यमान है और कहानी की फलभोक्त्री भी वही है, क्योंकि बुद्धगुप्त तो अन्त में अर्थार्जन करके भारतवर्ष लौट आता है, लेकिन वह दीन–दलितों, पीड़ितों–शोषितों और उपेक्षितों की सेवा के लिए चम्पा द्वीप पर रह जाती है। वह स्पष्ट कहती है–"प्रिय नायिका तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।" कहानी के अन्य सभी पात्र चम्पा के चरित्र को प्रकाशित करते हैं, इसलिए निर्विवाद रूप से चम्पा "आकाशदीप' कहानी की नायिका है।

**अनाथ** :– जहां तक चम्पा के पारिवारिक परिचय की बात है, कहानीकार ने इस प्रकार से प्रस्तुत किया है- "चम्पा

नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूं। पिता इसी मणिभद्र के यहां प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात वस्तुओं को मारकर जल समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे नील जलनिधि के ऊपर, एक भयावह अनंतता में निस्सहाय हूं–अनाथ हूं। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया तो मैंने उसे गालियां सुनाई। उस दिन से बन्दी बना दी गई।" इस प्रकार वह अनाथ बालिका अपने बहादुर पिता के साथ समुद्र पर ही जीवनयापन करती है।

**साहसी व्यक्तित्व** :– कहानी के प्रारम्भ में ही चम्पा और बुद्धगुप्त की वार्तालाप से चम्पा के व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण गुण प्रकट होता है कि वह साहसी व्यक्तित्व की स्वामिनी है। जब बन्दी युवक बुद्धगुप्त उससे पूछता है कि "शस्त्र मिलेगा?" तो वह अत्यन्त दृढ़ता के साथ स्वीकृति देती है। वह अपने प्राणों को संकट में डालकर लुढ़कती हुई नायक की कृपाण निकाल कर ले आती है। कहानीकार ने उसके इस कार्य को इस प्रकार से लिपिबद्ध किया है–"स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकालकर, फिर लुढ़कते हुए बन्दी के समीप पहुंच गई।" इसी प्रकार कहानी में एक और स्थल पर भी उसके साहसिक व्यक्तित्व का प्रमाण मिलता है। पिता की मृत्यु के बाद पोताध्यक्ष मणिभद्र उसके समय घृणित प्रस्ताव रखता है तो वह दृढ़ता के साथ इस प्रस्ताव को अस्वीकार करती है और उसे गालियां देती है। कहानीकार ने लिखा है–"मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियां सुनाई। उसी दिन से बन्दी बना दी गई।" वास्तव में साहस, वीरता, शौर्य आदि गुण उसको पैतृक विरासत में मिले हैं, क्योंकि उसके पिता ने भी सात दस्युओं को मारकर जल समाधि ली थी। यहां उसके व्यक्तित्व का एक और उज्ज्वल गुण प्रकट हुआ है कि वह चारित्रिक उदात्तता या दृढ़ता की स्वामिनी है। इसीलिए वह पोत में बन्दी बना ली जाती है। मणिभद्र के घृणित प्रस्ताव को अस्वीकारना उसके सच्चरित्र नारी होने का पुख्ता प्रमाण है। इसी प्रकार वह बुद्धगुप्त के साथ चम्पाद्वीप में रहती है, न तो उसके साथ विवाह करती है और न सुख–सुविधा भरा जीवन भोगने के लिए भारत जाना स्वीकारती है। वास्तव में उसने इच्छाओं, कामनाओं को वशीभूत कर लिया है।

चम्पा अनाथ बालिका है। माँ की मृत्यु हो जाने के बाद वह पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी, परन्तु पिता की मृत्यु के बाद उसका जीवन निराश्रित हो गया, लेकिन किंचित मात्र भी चिन्तितत नहीं होती। यद्यपि एक महीने की लम्बी कैद और पिता की मृत्यु ने गहने दुःख और उदासी में उसे डुबो दिया। उसकी अपनी माता–पिता के प्रति गहरी श्रद्धा है और अपनी माँ की स्मृति में ही आकाशदीप जलाती है।

'आकाशदीप' चरित्र प्रधान कहानी है और नायिका चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को ही कहानी का मुख्य विषय बनाया है। क्योंकि बुद्धगुप्त को वह अपने पिता का हत्यारा मानती है, लेकिन साथ ही उससे प्रेम भी करती है। इसीलिए वह पूरी कहानी में अन्तर्द्वन्द्व के झूले में झूलती रहती है। वह बुद्धगुप्त से प्रेम करती है तथा जब उसे यह स्मरण हो आता है कि वह उसके पिता का हत्यारा है तो, उसके मन में बुद्धगुप्त के प्रति घृणा का प्रबल आवेग फूट पड़ता है। एक ओर वह बुद्धगुप्त की प्रेमिका है, लेकिन उसकी हत्या करने के लिए अपने वस्त्रों में कृपाण छिपा कर रखती है। वह स्पष्ट कहती है–"जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी उसीने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूं। मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।" इसप्रकार एक ही व्यक्ति के प्रति उसके मन में घृणा भी है और प्रेम भी। प्रतिशोध लेने के लिए कृपाण रखती है, लेकिन हृदय के हाथों विवश होकर वह कृपाण को जल में फैंक देती है। इस प्रकार पूरी कहानी में उसके मन के अन्तर्द्वन्द्व और पीड़ा का चित्रांकन हुआ है। यहां तक कि कहानी के अन्त में वह बुद्धगुप्त के विवाह–प्रस्ताव को भी ठुकरा देती है और सुख–सुविधाओं से भरे जीवन का परित्याग करके चम्पाद्वीप में रहकर निरीह, भोले–भाले ग्रामीणों के दुःख को सहानुभूति और सेवा करती है। कहानी के अन्त में वह अपनी माँ की भाँति आजीवन दीपस्तम्भ में आलोक करती रही। माया–ममता और स्नेह–सेवा की देवी चम्पा अपना सारा जीवन उन दीन–दलितों और उपेक्षितों की सेवा में समर्पित कर देती है।

चम्पा बुद्धगुप्त के साथ चम्पाद्वीप पर रहती है और लम्बे समय तक साथ रहने के कारण व दस्युवृत्ति का परित्याग कर देने पर दोनों में धीरे–धीरे प्रेम का विकास हो गया। चम्पा बुद्धगुप्त से प्रेम करने लगी, लेकिन ज्यों ही उसे स्मरण आता कि वह उसके पिता का हत्यारा है तो घृणा, आक्रोश व क्रोध से उसका मन भर जाता है। चम्पा के प्रेमपाश मे आबद्ध हो जाने पर बुद्धगुप्त उस द्वीप का नाम चम्पाद्वीप रख देता है। कहानी के अन्त में वह बुद्धगुप्त से विवाह करने के लिए स्पष्ट इन्कार कर देती है। इतना ही नहीं, चम्पा प्रेम और घृणा के द्वन्द्व में फंसी होने के कारण जीवन के प्रति निरपेक्ष हो जाती है।

चम्पा राष्ट्र, देश या धर्म की संकीर्णताओं से मुक्त है तथा लोक–कल्याण की पावन भावना उसके हृदय में घर कर

गई है। उसके ये शब्द इसी तथ्य के परिचायक हैं–"बुद्धगुप्त ! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं है। सब मिलकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।" इस प्रकार वह देश–राष्ट्र की सीमाओं का अतिक्रमण कर दीन–दलितों की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर देती है।

'आकाशदीप' कहानी में चम्पा एक आस्तिक नारी के रूप में चित्रित हुई है। वह क्षीर निधिशायी अनन्त की प्रसन्नता हेतु प्रतिदिन आकाशदीप स्वयं अपने हाथों से जलाती है। बुद्धगुप्त जब उसके इस कार्य की खिल्ली उड़ाता है तो वह स्पष्ट कहती है–"तुम भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाशदीप पर व्यंग्य कर रहे हो।" इतना ही नहीं, वह आकाशदीप को अपनी माता की पुण्य स्मृति मानती है।

अन्धेरे में प्रहरी की कृपाण चुराने वाले प्रसंग में चम्पा की चतुरता और साहस दृष्टिगोचर होता है। कहानी में अन्यत्र स्थलों पर भी उसकी चतुरता–साहस अवलोकनीय है।

चम्पा बुद्धगुप्त के जीवन को बदलने वाली महान प्रेरक शक्ति है, क्योंकि उसी के संसर्ग में आने के बाद बुद्धगुप्त दस्युवृत्ति छोड़ देता है और हृदय की कठोरता का भी परित्याग कर देता है। अन्ततः स्पष्ट है कि पतन के कगार पर खड़े बुद्धगुप्त की चारित्रिक लक्ष्य का श्रेय चम्पा को ही प्रदान किया जा सकता है। इसीलिए डॉक्टर कृष्णदेव का कहना है–"वास्तविकता तो यह है कि चम्पा अपने आदर्श चरित्र द्वारा बुद्धगुप्त को सत्पथ दिखाती है।

वैसे कहानीकार ने कहानी में एक स्थल पर चम्पा के अनुपम सौन्दर्य और रूप–आकर्षण का भी चित्रण किया है। यथा–"चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थी। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांगों में बालक के सदृश विश्वास था। हत्या–व्यवसायी भी उसे देखकर कांप गया। चम्पा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुण बालिका, वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा उसे एक नई वस्तु का पता चला। वह थी कोमलता" कोमल व्यक्तित्व की स्वामिनी चम्पा का चरित्र पूरी कहानी में छाया हुआ है और उसके समक्ष बुद्धगुप्त का चरित्र भी निष्प्रभ हो जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चम्पा 'आकाशदीप' कहानी की नायिका है तथा साहस–चतुरता की प्रतिमूर्ति है और अपने व्यक्तित्व चरित्र द्वारा बुद्धगुप्त जलदस्यु को भी प्रेरणा प्रदान करके सत्पथ पर अग्रसर करती है। पूरी कहानी में वह अन्तर्द्वन्द्व के झूले में झूलती है, क्योंकि वह उसी से प्रकम करती है जो उसके पिता का हत्यारा है। पूरी कहानी ही उसके व्यक्तित्व के उस अर्न्तद्वन्द्व पर टिकी हुई है। दीन–दलितों और पीड़ितों की सेवा में वह अपना जीवन होम कर डालती है और आजीवन दीपस्तंम्भ जलाती रहती है तथा सुख–सुविधाओं से भरे जीवन का परित्याग कर डालती है।

## (ख) बुद्धगुप्त

सुप्रसिद्ध कहानीकार एवं नाटककार श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'आकाशदीप' कहानी में बुद्धगुप्त नायक के पद पर आसीन है। प्रस्तुत कहानी ऐतिहासिक कल्पना पर आधारित है जिसमें बुद्धगुप्त और चम्पा के सम्बन्धों और चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को उजागर किया गया है। बुद्धगुप्त 'आकाशदीप' कहानी का केन्द्रीय पात्र एवं नायक है तथा प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कहानी में विद्यमान रहता है। समस्त घटनाओं का तन्तु–जाल भी उसके चारों तरफ बना हुआ है। वह कहानी के प्रारम्भ–जहां वह पोत–नाव पर बन्दी है, से लेकर सामान से लदा जहाज लेकर भारत आया है, से अन्त तक विद्यमान रहता है। कहानी की प्रमुख घटनाएं भी प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में बुद्धगुप्त के साथ जुड़ी हुई हैं। यथा–"वही चम्पा को बन्धन मुक्त करवाता है, पोत की रस्सियां तुड़वाता है, चम्पा से प्रेम–व्यापार चलाता है और विवाह का प्रस्ताव रखता है तथा अन्त में सामान से लदा पोत लेकर भारत आ जाता है।" कहानी का फलभोक्ता भी वही सिद्ध होता है, क्योंकि कहानीकार का प्रमुख प्रतिवादय नायिका चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को उजागर करना है। वह बुद्धगुप्त से एक ओर तो प्रेम करती है, लेकिन दूसरी ओर उसको अपने पिता का हत्यारा मानकर उससे घृणा भी करती है तथा प्रतिशोध लेने के लिए कृपाण छिपाकर रखती है। अतः स्पष्ट है कि बुद्धगुप्त निर्विवाद रूप से कहानी का नायक सिद्ध होता है।

कहानी के प्रारम्भ में ही वह चतुर, साहसी व शूरवीर के रूप में दृष्टिगोचर होता है। वह अत्यन्त निपुणता और चतुरता के साथ पहले अपने बन्धन खोलता है और फिर चम्पा के बन्धनों को काटकर उसे मुक्त करता है। कहानीकार ने लिखा

है–"पहले बन्दी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा।" इसी प्रकार नायक के साथ उसका वार्तालाप उसके साहस–शौर्य का सूचक है–

नायक ने कहा–बुद्धगुप्त ! तुमको मुक्त किसने किया ?

कृपाण दिखाकर बुद्धगुप्त ने कहा–इसने।

नायक ने कहा–तो तुम्हें फिर बन्दी बनाऊंगा किसके लिए ? पोताध्यक्ष मणिभद्र आतुल जल में होगा–नायक ! अब इस नौका का स्वामी मैं हूं।

तुम ? जलदस्यु बुद्धगुप्त ? कदापि नहीं। चौंककर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था।

बुद्धगुप्त नायक को द्वन्द्व युद्ध के लिए चुनौती देता है कि जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा। कहानीकार ने बुद्धगुप्त की शारीरिक सुदृढ़ता का चित्रांकन करते हुए लिखा है–तो तुम द्वन्द्व युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ, जो विजयी होगा वहीस्वामी होगा। इतना कहकर बुद्धगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया। × × × भीषण घात–प्रतिघात आरम्भ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गत वाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दांतों से पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिए। चम्पा भय ओर विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गए, परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण–भिक्षा मांगने लगी। अतः स्पष्ट है कि बुद्धगुप्त शूरवीरता की सजीव प्रतिमूर्ति, साहसी व सुदृढ़ शरीर का स्वामी था।

बुद्धगुप्त चम्पा के समक्ष अपना परिचय देते हुए स्पष्ट कहता है कि वह ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय है और दुर्भाग्यवश जलदस्यु बनकर जीवनयापन करता है। वह समुद्र में आते–जाते समुद्री जहाजों को लूटा करता था, लेकिन कालान्तर में चम्पा के सम्पर्क में आने पर दस्युवृत्ति छोड़ देता है। वह धन–लिप्सा के वशीभूत होकर ही चम्पा के पिताजी वाले जलपोत पर आक्रमण करता है तथा हत्या करने में भी हिचकिचाता नहीं है। जब वह नायिका चम्पा के आकाशदीप जलाने का उपहास उड़ाता है तो वह उसकी निर्ममता, निष्ठुरता पर कटाक्ष करती हुई कहती है–"नहीं,. तुमने दस्युवृत्ति तो छोड़ दी, परन्तु हृदय वैसा ही अकरूप, संतृष्ण और ज्वलनशील है।" कहानी के प्रारम्भ में बुद्धगुप्त निर्मम–निष्ठुर व कठोर हृदय का स्वामी है तथा जिसके नाम से बाली, जावा तथा चम्पा का आकाश गूंजता था। पशु–बल और धन का उपासक बुद्धगुप्त हत्या का व्यवसायी है।

वास्तव में बुद्धगुप्त गतिशील पात्र है, क्योंकि चम्पा के मिलने से पूर्व जलदस्यु है। निर्मम, निष्ठुर और कठोर व्यक्तित्व का स्वामी है। धन का लोभी है तथा खतरों से खेलने में निपुण है और किसी की हत्या करने में भी उसे संकोच नहीं है। विपत्ति में भी वह घबराता नहीं है औरे धन–ऐश्वर्य पिपासु है, लेकिन चम्पा के सम्पर्क में आने पर उसके चरित्र में मूलभूत परिवर्तन होता है–जलदस्यु वृत्ति का परित्याग कर देता है। इससे उसको स्वभावगत क्रूरता–निष्ठुरता तिरोहित हो जाती है और एक नये बुद्धगुप्त का जन्म होता है।

बुद्धगुप्त एक समर्पित प्रेमी है तथा वह जिस नये द्वीप में पहुंचते हैं, उसका नामकरण 'चम्पाद्वीप' के रूप में करता है। कहानी में बुद्धगुप्त चम्पा के प्रति अपने अनन्य प्रेम, अनुरक्ति व आत्मीयता को अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त करता है। एक स्थल पर बुद्धगुप्त चम्पा के प्रति अपने अगाध प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए कहता है–"तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।" वह चम्पा के प्रेम को स्थायित्व प्रदान करने के लिए चम्पाद्वीप पर आकाश दीप–स्तम्भ बनवाता है तथा विवाह–प्रस्ताव हेतु उसके पैर भी पकड़ता है। वह स्पष्ट कहता है–"इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति में एक प्रकाश ग्रह बनाऊंगा, चम्पा ! यही उस पहाड़ी पर । संभव है कि मेरे जीवन कीं धुंधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाए।"

जलदस्यु निर्मम, निष्ठुर व कठोर व्यक्तित्व का स्वामी होने के कारण नास्तिक है। जब चम्पा क्षीर निधिशायी भगवान विष्णु की आराधनार्थ व अपनी माता का अनुसरण करतह हुई आकाश जलाती है तो बुद्धगुप्त उसकी खिल्ली उड़ाता है तथा कहता है--

बावली हो क्या ? यहां बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है ?

क्षीर निधिशायी अनन्त की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों के आकाश दीप जलवाऊं ?

हँसी आती है। तुम किसको द्वीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो ? उसको, जिसको तुमने भगवान मान लिया है? हाँ, वह भी कभी भटकते हैं, भूलते हैं नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते ?

इस पर चम्पा उसको लताड़ते हुए स्पष्ट कहती है–"नहीं–नहीं, तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी है, परन्तु हृदय वैसा ही अकरूप, संतृप्त और ज्वलनशील है। तुम भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाशदीप पर व्यंग्य कर रहे हो।" एक अन्यत्र स्थल पर भी वह ईश्वर–पाप और दया आदि का विरोध करते हुए स्पष्ट कहता है–"चम्पा ! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली।" इस प्रकार यहां बुद्धगुप्त की नास्तिकता, आस्तिकता को में परिवर्तित होती दृष्टिगोचर होती है। स्पष्ट है कि वह पाप–पुण्य के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, ईश्वर में उसकी आस्था नहीं है, परन्तु अपनी आराध्य देवी चम्पा के चरणें का सच्चा अनुरागी व उपासक है।

बुद्धगुप्त के व्यक्तित्व की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता है–राष्ट्रीय भावना। उसके हृदय में जननी जन्मभूमि भारत के प्रति गहरी श्रद्धा व आत्मीयता विद्यमान है। जीवन की अन्तिम सांस वह जननी जन्मभूमि की क्रोड़ में लेना चाहता है, इसीलिए वह चम्पा को भी अपनी मातृभूमि चलने के लिए प्रेरित करता है। वह स्पष्ट कहता है–"चम्पा ! हम लोग जन्मभूमि भारतवर्ष से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में द्वन्द्व और शूची के समान पूजित है। पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किए हैं। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश। वह महिमा की प्रतिमा। मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है परन्तु मैं क्यों नही जाता ? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूं। मेरा पत्थर–सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्त मणि की तरह द्रवित हुआ।" अतः स्पष्ट है कि राष्ट्रीय भावना बुद्धगुप्त के हृदय में कूट–कूटकर भरी हुई है।

बुद्धगुप्त के हृदय में धनार्जन व ऐश्वर्य, सुख–सुविधाओं को भोगने की अदम्य लालसा विद्यमान है। अर्थार्जन हेतु ही वह जलदस्यु बनता है और जलपोतों को लूट–लूटकर धन–संग्रह करता है। चम्पाद्वीप पर जाकर वह वाणिज्य के माध्यम से असीम धन–सम्पत्ति अर्जित करता है, परन्तु उसकी यह लालसा मिटती नहीं है। लेकिन चम्पा को धन, मोह–माया से विरक्ति है। उसे तो वे दिन श्रेयस्कर लगते हैं जब बुद्धगुप्त के पास एक नाव थी और स्पष्ट कहती है–"मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पुण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे। इस जल में अनगिनत बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी। बुद्धगुप्त उस निर्जन अनन्त में जब मांझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम–तुम परिश्रम से थककर पालों में शरीर लपेटकर एक-दूसरे का मुंह क्यों देखते थे ? वह नक्षत्रों की मधुर छाया। वह बुद्धगुप्त की अर्थ–लिप्सा, धन–पिपासा पर कटु व्यंग्य करते हुए कहती है कि प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि बुद्धगुप्त कहानी का नायक है, केन्द्रीय पात्र है, जलदस्यु है, हत्या का व्यवसायी है। साहस, शौर्य, चतुरता और राष्ट्रीय भावना आदि उसके व्यक्तित्व के प्रमुख अंग हैं। उसमें अर्थार्जन करने की अदम्य लालसा है।

## IV. उद्देश्य

आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवि व बहुचर्चित कहानीकार श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'आकाशदीप कहानी में दायिका चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति मिली है तथा साथ ही वैयक्तिक सुखों के स्थान पर समाज–सेवा को प्रमुखता प्रदान की गई है। कहानीकार अपनी अन्य रचनाओं की भाँति 'आकाशदीप' में भी राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति प्रदान करता है तथा साथ ही 'वसुधैव कुटुम्बकम' का भी सन्देश सम्प्रेषित करता है। प्रसाद जी भारतभूमि के प्रति गहरी श्रद्धा रखते हैं, अतः यही भावना उनकी इस कहानी में प्रकट हुई है। कहानी का नायक बुद्धगुप्त जननी जन्मभूमि भारत के प्रति श्रद्धा–आस्था प्रकट करते हुए कहता है–"स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश, वह महिमा की प्रतिमा।" **डॉक्टर लक्ष्मीनारायण लाल** ने नारी–पात्रों के अनुपम त्याग और बलिदान आदि का चित्रण करते हुए लिखा है–"इनके चरित्र–चित्रण में बलिदान, उत्सर्ग और करुणा की मुख्य भूमिकाएं बनी हैं–स्त्रियां सदैव अपने अप्रतिम रूप, आकर्षण और अनुपम व्यक्तित्व से कहानियों का संचालन करती हैं और अपने में घात–प्रतिघात, अन्तर्द्वन्द्व, विद्रोह और उत्सर्ग के तत्त्व छिपाए रहती है।" कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी के निम्न उद्देश्य निर्धारित किए हैं–

(क). चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण

(ख) वैयक्तिक सुखों के स्थान पर समाज–सेवा प्रमुख

(ग) राष्ट्रीय भावना–'वसुधैव कुटुम्बकम्'

**(क) चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण** :– जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'आकाशदीप' कहानी का प्रमुख प्रतिपाद्य उसकी नायिका चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करना है। वहपूरी कहानी में अन्तर्द्वन्द्व के झूलें में झूलती रहती है, क्योंकि वह ऐसे व्यक्ति से प्रेम करती है जो उसके पिता का हत्यारा है। बुद्धगुप्त जलदस्यु है और हत्या–व्यवसायी है तथा जब वह मणिभद्र के पोत पर आक्रमण करताहै तो चम्पा के पिता सात जलदस्युओं को मारकर जल–समाधि ले लेता है। बुद्धगुप्त और चम्पा दोनों को बन्दी बना लिया जाता है। बुद्धगुप्त चम्पा को मुक्त करवाता है और चम्पा उसे प्रेम करने लगती है, लेकिन साथ ही उससे घृणा भी करती है और प्रतिशोधार्थ कृपाण अपने वस्त्रों में छिपाकर रखती है। बुद्धगुप्त के परिवर्तित व्यवहार के सम्मुख वह नतमस्तक है–यही उसका अन्तर्द्वन्द्व है। एक ओर वह पिता की हत्या का बदला लेना चाहती है, दूसरी ओर वह बुद्धगुप्त से प्रेम को भी अस्वीकार नहीं कर पाती। यही है चम्पा के मन का द्वन्द्व और इसी द्वन्द्व को अभिव्यक्ति प्रदान करना कहानीकार का प्रमुख प्रतिपाद्य है। चम्पा ने अपने इसी अन्तर्द्वन्द्व को इस प्रकार व्यंजना प्रदान की है–"जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूं। मैं तुम्हें घृणा करती हूं, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूं। अंधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।" इस प्रकार स्पष्ट है कि चम्पा बुद्धगुप्त से घृणा करती है, परन्तु हृदय के समक्ष विवश है, क्योंकि वह उससे प्रेम करता है। वह स्पष्ट करती है कि मैं जिसको मारना चाहती हूँ, उसी के लिए मर–मिटने के लिए तत्पर हूं। इस प्रकार चम्पा के मन की पीड़ा और उसके अन्तर्द्वन्द्व की सच्ची छवि प्रस्तुत कहानी में प्रकट हुई है। **डॉक्टर रामदरश मिश्र** का कहना है–"प्रसाद जी 'आकाशदीप' कहानी के द्वारा एक ही व्यक्ति के प्रति दो विपरीत भावनाओं के सम्भव होने को व्यक्त करना चाहते हैं। हमारा मन किसी के प्रति हमेशा एक–सा नहीं रहता। एक ही समय एक ही व्यक्ति के प्रति एक ही साथ कई तरह की भावनाएं संभव हो सकती हैं। इस अर्थ में प्रसाद जी मानव–मन की जटिलताओं को जो मानवीय यथार्थ का एक अंश है, व्यक्त कर रहे हैं और इसीलिए यह महत्त्वपूर्ण भी है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक ओर नायिका बुद्धगुप्त से अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेना चाहती है और दूसरी ओर हृदय के हाथों विवश होकर उसके प्रेम को अस्वीकार नहीं कर पाती। यह द्वन्द्व है चम्पा के मन का और इसी द्वन्द्व को व्यक्त करना कहानी का प्रमुख उद्देश्य है।

**(ख) वैयक्तिक सुखों के स्थान पर समाज-सेवा** :– प्रसाद जी ने 'आकाशदीप में वैयक्तिक सुखों के स्थान पर समाज–सेवा को प्रमुखता प्रदान की है। कहानी की नायिका चम्पा सुख–सुविधाओं से भरे जीवन को तिलांजलि दे देती है, जलदस्यु बुद्धगुप्त के साथ विवाह के लिए भी स्पष्ट इन्कार कर देती है तथा दीन–दलितों, पीड़ित–शोषित और उपेक्षितों की सेवा में सारा जीवन समर्पित कर देती है। वास्तव में उसको ये संस्कार अपनी माता से मिले हैं जो समुद्र में भटके हुए नाविकों के लिए आकाशदीप जलाया करती थी, इसलिए चम्पा भी वैयक्तिक सुखभोगों का परित्याग करके समाज के दुःखी और उत्पीड़ित लोगों की सेवा में समर्पित कर देती है। चम्पा बुद्धगुप्त को सम्बोधित करती हुई कहती है–"प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।" स्नेह सेवा की आराध्य देवी चम्पा आजीवन उन निरीह और भोले–भाले प्राणियों की सेवा में लगा देती है। अतः स्पष्ट है कि चम्पा अपने वैयक्तिक सुखों को आहुति देकर समाज सेवा में आजीवन लीन हो जाती है।

**(ग) राष्ट्रीय भावना 'वसुधैव कुटुम्बकम्'** :– प्रसाद जी अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्रीय भावना को भी अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। 'आकाशदीप' नामक कहानी के माध्यम से भी वे राष्ट्रीय भावना का प्रचार–प्रसार करते हैं। कहानी का नायक बुद्धगुप्त अपनी जननी–जन्मभूमि भारत के प्रति समर्पित है, इसीलिए वह जीवन की आखिरी सांसें इसी पावन धरा पर लेना चाहता है। इसीलिए वह नायिका चम्पा से भारत (स्वदेश) चलने का आग्रह करता है–बुद्धगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिये। उच्छ्वासित शब्दों में वह कहने लगा–"चम्पा हम लोग जन्मभूमि–भारत से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में इन्द्र और शूची के समान पूजित हैं, पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किए है। स्मरण होता है–वह दार्शनिकों का देश ! वह महिमा का प्रतिमा। मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है, परन्तु मैं क्यों नहीं जाती ? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूं। मेरा पत्थर सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्त मणि की तरह द्रवित हुआ।" इस प्रकार नायक की स्वदेश (भारत) के प्रति गहरी श्रद्धा व आस्था 'आकाशदीप' कहानी में अभिव्यक्ति हुई है।

कहानी में कहानीकार राष्ट्र व देश की सीमाओं के क्षुद्र बन्धनों को अतिक्रमण कर 'वसुधैव कुटुम्बकम' का भी सन्देश सम्प्रेषित करता है। सम्पूर्ण धरा को अपनी मानने वाली चम्पा स्पष्ट घोषणा करती है–"बुद्धगुप्त मेरे लिए सब भूमि मिट्टी . सह बल तरल है, सब पवन शीतल है।" इसी भावना से अनुप्राणित होकर वह चम्पाद्वीप के निराश्रितों की सेवा–सहानुभूति में निरत हो जाती है।

इसी प्रकार प्रसाद जी की प्रमुख कहानी 'आकाशदीप' में अनेक आदर्शों, मूल्यों की भी अभिव्यक्ति हुई है। जलदस्यु बुद्धगुप्त अर्थ–पिपासु है, इसीलिए वह अर्थार्जन हेतु लूटपाट करता है और हत्या करने से भी तनिक नहीं हिचकिचाता है। इसीलिए चम्पा उसको स्पष्ट कहती है–"महानाविक ! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक नाव थी और चम्पा के उपकूल में पूण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे–इस जल में अगणित बार हम लोगों का नीतरी आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी। बुद्धगुप्त ! उस विजन अनन्त में जब मांझी सो जाते थ. दीपक बुझ जाते थे, हम–तुम परिश्रम थे थककर पालों में शरीर लपेटकर एक–दूसरे का मुंह क्यों देखते थे। वह नक्षत्रों की मधुर छाया।"

इसी प्रकार कहानी में मातृ–प्रेम, पितृ–प्रेम को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। चम्पा अपनी माता की मधुर स्मृति में उसी के समकक्ष आकाशदीप जलाती है और अपने पिता के प्रति भी गहरी श्रद्धा रखती है। वह बुद्धगुप्त को लताड़ती हुई अपने पिता के शौर्य का स्मरण कर उठती है–"मेरे पिता ! वीर पिता की मृत्यु की निष्ठुर कारण जलदस्यु ! हट जाओ।" इसी प्रकार सेवा–भावना, करुणा तथा आस्तिकता आदि भी मूल्यों की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कहानी में हुई है। **डॉक्टर सुषमा मल्होत्रा** का कहना है–"प्रसाद की दूसरी कहानियां वे हैं, जिनमें जीवन के यथार्थ चित्र चित्रित हुए हैं। मानव–चरित्रों को पहचानने और उनके उचित सन्दर्भों में प्रस्तुत करने की उनमें अद्‌भुत क्षमता थी। उन्होंने प्रेम का चित्रण विभिन्न प्ररिप्रेक्ष्य में किया है और नारी–पुरुष के मध्य संयम, मूल्य–मर्यादा, गौरव एवं आदर्श पर बल दिया है।"

कहानीकार ने जलदस्यु बुद्धगुप्त के हृदय में सात्विक वृत्तियों, करुणा, प्रेम की उत्पत्ति कर यह सन्देश देना चाहता है कि सात्विक वृत्तियां केवल उच्च वर्ग की ही बपौती नहीं है, बल्कि निम्न वर्ग के पात्रों में भी इनका विकास हो सकता है।

प्रसाद की कहानियों में प्रेम का दिव्य अशरीरी और अलौकिक रूप चित्रित हुआ है। 'आकाशदीप' में बुद्धगुप्त, चम्पा का प्रेम इसी कोटि का है। उसमें न वासना का भाव है, न अश्लीलता। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है–"प्रसाद की कहानियों में प्रेम का क्षेत्र विस्तृत है, बल्कि कहा जाए कि उसी का एकाधिकार है, फिर भी यह प्रेम न तो कहीं सस्ते ढंग से अभिव्यक्त होता है और न वासना चित्रों में परिणत होता है। उसकी भाव भूमि सदैव उदात्त बनी रहती है। प्रेम का यह औदात्य 'आकाशदीप' जैसी अभिजात सम्पन्न कहानियों में भी देखा जा सकता है कि समाज की पारम्परिक और रूढ़ नैतिक मान्यताओं तथा आदर्शों की उपेक्षा करने वाले मनुष्य का जीवन भी कर्मठता और दिव्यता के कारण प्रेरक हो जाता है।"

'आकाशदीप' कहानी में चम्पा द्वारा बुद्धगुप्त के चरित्र में परिवर्तन दिखाकर यह सन्देश सम्प्रेषित करना चाहता है कि नारी पुरुष को कर्त्तव्य का ज्ञान करा सकती है और उसमें सद्‌प्रवृत्तियों का विकास भी कर सकती है। **डॉक्टर सतीश कुमार** का कहना है–"उसका नारी–पात्र पुरुष को पतन की ओर ले जाने वाले नहीं हैं वरन् पुरुषों को अपने कर्त्तव्य–पथ का ज्ञान कराती है और उनमें जीवन फूंकने वाले हैं। उनके नारी–चरित्रों के विकास के बौद्ध–दर्शन का काफी प्रभाव पड़ा है। इसीलिए उनमें प्रेम, दया, क्षमा, करुणा आदि उत्सर्ग की भावना की प्रचुर मात्रा में मिलकर उन्हें आदर्श प्रतिमा बना डाला है।

सारांश यह है कि कहानीकार ने 'आकाशदीप' कहानी में चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति प्रदान की है, जो कि कथ्य का आधार है। इसके साथ ही वैयक्तिक सुखों को तिलांजलि देकर समाज सेवा का संदेश सम्प्रेषित करता है तथा साथ ही देश–प्रेम और विश्व–प्रेम की भी अभिव्यक्ति हुई है। अतः स्पष्ट है कि 'आकाशदीप' कहानी भारतीय संस्कृति के गौरव का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

## व्याख्या

*1. "इतना जल ! इतनी शीतलता ! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी ? नहीं, तो जैसे वेला से चोट खाकर सिन्धु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ ? या जलते हुए स्वर्ण-गोलक के सदृश अनन्त जल में डूबकर बुझ जाऊँ ? चम्पा का देखते-देखते पीड़ा और ज्वलन सक आरक्त बिम्ब धीरे-धीरे समुद्र में, चौथाई-आधा फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ निःश्वास लेकर चम्पा ने मुंह फेर लिया।'*

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण छायावाद के युग–प्रर्वतक, श्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी भावना प्रधान कहानी 'आकाशदीप' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त किया तथा साथ ही व्यक्तिगत सुखों से समाज–सेवा या दीन–दुखियों की सेवा करना या उनके घावों पर मरहम लगाने का श्रेष्ठ धर्म बताया है। चम्पा अपनी दासी जया के साथ समुद्र तट पर आ गई थी और समुद्र की लहरें तट से टकराकर बार–बार बिखर रही थी। प्राची का पार्थिव भी थक चला था और निष्प्रभ हो गया था। समुद्र भी विचारों के अथाह प्रवाह में खोया हुआ था। चम्पा एक छोटी–सी नौका में बैठकर समुद्र के उदास वातावरण में मिश्रित होना चाहती थी। कहानीकार ने उसका चित्रण करते हुए लिखा है–

**व्याख्या** – छोटी नाव पर जया के साथ बैठी चम्पा के हृदय में अनेक विचार उठने लगे। वह चिन्तन करने लगी कि कितनी अथाह जलराशि है। समुद्र की गहराई भी असीम, अनन्त और अपार है। समुद्र की इस अनन्त जलराशि में कितनी शीतलता है–इसके बारे में कौन जानता है ? लेकिन इसमें तरलता और आर्द्रता है, फिर भी व्यक्ति के हृदय की प्यास को तृप्त करने में सक्षम नहीं है। जब यहां मेरे साथ बुद्धगुप्त है तब भी यह नियति का खेल है कि हृदय की प्यास तृप्त नहीं होती। मेरी कामनाएं, लालसा या मनोरथ मेरे हृदय में भीतर ही भीतर अतृप्त रूप में घुट रही है। तो जिस प्रकार से समुद्र की लहरें किनारों से टकराकर भयंकर गर्जना करता है, ठीक इसी प्रकार से क्या मैं भी चीख–चिल्लाकर अपनी पीड़ा–वेदना को अभिव्यक्त करूं या फिर जलते हुए सुनहले गोले अर्थात् सूर्य के समान अपना निर्जीव–निष्प्राण–सा जड़ जीवन समाप्त कर दूं। जिस प्रकार से सायंकाल को स्वर्णिम सूर्य अनन्त जलराशि में विलीन होकर अपने अस्तित्व को समाप्त कर लेता है, ठीक इसी प्रकार से क्या मैं भी अपनी जड़–निष्प्राण जीवन को समुद्र की अथाह जलराशि में डुबा दूं। चिन्तन करते–करते चम्पा का मुख भी पीड़ा और जलने के साथ, अपनी असमर्थता पर खेद–पीड़ा प्रकट करते करते जैसे बिम्ब सूर्यास्त के साथ–साथ क्रमशः चौथी, आधा और पूरा अन्धकार में विलीन हो गया। फिर चम्पा ने दुःख भरा लम्बा सांस लेकर उधर से अपना मुंह घुमा लिया, अर्थात् विरक्ति व असमर्थता प्रकट करने के सिवाय वह कुछ भी कर सकने में असमर्थ थी।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल तथा सुबोध है। संस्कृतमय खड़ी बोली प्रयुक्त हुई है।

2. चम्पा की मनःस्थिति का सजीव और सार्थक चित्रण हुआ है।
3. तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई है।
4. प्रकृति का सुन्दर–मार्मिक चित्रण हुआ है।
5. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।
6. कबीर के निम्न शब्दों के साथ भावसाम्य दृष्टिगोचर होता है–

"पानी बिच मीन पयासी।"

***2. "विश्वास ? कदापि नहीं, बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकती, उसने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुमसे घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु तुम्हें....प्यार करती हूँ।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण छायावाद के युग–प्रवर्तक व श्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी भावना प्रधान कहानी 'आकाशदीप से अवतरित है। कहानीकार का प्रमुख ध्येय नायिका चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करना है। एक साथ बुद्धगुप्त और चम्पा समुद्र के किनारे पर भावावेश में आलिंगबद्ध हो जाते हैं जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का होता है। लेकिन तभी आलिंग से सहसा चैतन्य होकर चम्पा अपने वस्त्रों में छिपाए हुए कटार को निकाल कर जल में फैंक देती है। चम्पा स्पष्ट कहती है कि मेरे हृदय ने मुझे बार–बार धोखा दिया है। तभी बुद्धगुप्त कहता है कि अब मैं विश्वास करूं कि मुझे आपने क्षमा कर दिया है। इस पर चम्पा प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई कहती है–

**व्याख्या** –चम्पा बुद्धगुप्त से स्पष्ट कहती है कि मैं तुम्हें कैसे कहूं कि तुम मेरा विश्वास करो, क्योंकि मुझे अपने हृदय पर तो विश्वास ही नहीं है, फिर मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊं कि तुम मुझ पर विश्वास कर सकते हैं। बुद्धगुप्त ! मुझे अपने हृदय पर विश्वास नहीं है, क्योंकि उसने मुझे बार–बार धोखा दिया है। मेरे मन में तुम्हारे प्रति घृणा और प्रतिशोध की भावना विद्यमान थी, क्योंकि तुम मेरे वीर पिता के हत्यारे हो। भला कोई भी नवयुवती अपने पिता के हत्यारे से कैसे प्रेम कर समती

है। अतः मेरा अपने हृदय पर वश नहीं था, इसलिए वह तुम्हारी ओर आकर्षित होता गया, जबकि मैं तुमसे अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेना चाहती थी और इस हेतु अपने वस्त्रों में कृपाण छिपाकर रखती थी, लेकिन विवशता है कि मेरा अपना हृदय पर नियन्त्रण नहीं है और वह तुमसे प्रेम करने लगा। इसलिए मैं नहीं कह सकती कि तुम मुझ पर विश्वास करो। लेकिन इतना मैं अवश्य स्पष्ट करती हूँ कि मैं तुमसे घृणा करती हूँ, क्योंकि तुम मेरे पिता के हत्यारे हो, परन्तु यह मेरी विवशता ही है कि समय पड़ने पर मैं तुम्हारे लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर सकती हूँ। मैं अपने मन की इस अवस्था या द्वन्द्व को समझ नहीं पाती, क्योंकि जिसे मैं मारना चाहती हूँ, उसी पर मेरा हृदय मिटने के लिए प्राणोत्सर्ग करने के लिए तत्पर है। क्या यह अन्धेर नहीं है ? लेकिन यह मेरे मन की कैसी विवशता है कि जलदस्यु घृणा करते हुए भी मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। लेकिन जहां तक विश्वास का प्रश्न है, वह मैं तुम पर नहीं कर सकती।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल एवं सुबोध है। तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई है।

2. नायिका के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति मिली है।
3. चम्पा की दुविधापूर्ण स्थिति का चित्रण किया गया है।
4. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।
5. चम्पा के हृदय में घृणा और प्रेम का एक साथ होना आश्चर्यजनक है।
6. घृणा का सात्विकीकरण स्पष्ट किया गया है।

3. ***"चम्पा ! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता, पर मुझे अपने हृदय के दुर्बल अंग पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई है। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुस्कराने लगी। पशु और धन के उपासक के मन में किसी कांत कामना की हँसी खिलखिलाने लगी, पर मैं न हँस सका।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण छायावाद के युग–प्रवर्तक, श्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी भावना प्रधान कहानी 'आकाशदीप' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व को वाणी प्रदान करते हुए समाज–सेवा को व्यक्तिगत सुखों से सर्वोपरि घोषित किया है। एक दिन समुद्र तट पर चम्पा और बुद्धगुप्त आलिंगनबद्ध हो जाते हैं और सहसा चेतना लौटने पर चम्पा अपने वस्त्रों में छिपाए हुई कृपाण को समुद्र की अतल गहराई में फैंक देती है। बुद्धगुप्त कहता है कि वह (चम्पा) उस पर विश्वास करती है कि उसने उसे पिता की हत्या नहीं कि है, लेकिन चम्पा इन्कार करती हुई कहती है कि उसे अपने हृदय पर विश्वास नहीं है। बुद्धगुप्त चम्पा के पैर पकड़ लेता है कि हमें इस चम्पाद्वीप में पूरा सम्मान प्राप्त है, लेकिन अभी भी किसी अभिशापवश अलग–अलग है। इतना धन–धान्य व महत्त्व से युक्त होने पर भी मैं अत्यन्त दरिद्र हूं और मेरा पत्थर–सा कठोर हृदय तुम्हारा स्पर्श पाकर चन्द्रकान्त मणि की भाँति द्रवित हो गया था। बुद्धगुप्त स्पष्ट कहता है–

**व्याख्या** – चम्पा ! मैं नास्तिक हूं तथा परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता और न पाप–पुण्य को मानता हूँ। न मैं धर्म और दया को मानता हूँ। मैंने जीवन में कभी भी सात्विक प्रवृत्तियों को महत्त्व प्रदान नहीं किया और न पाप–करुणा आदि के अस्तित्व को स्वीकारा है। मैं तो हत्या का व्यवसायी, जलदस्यु रहा हूँ तथा मुझे धन के लिए किसी की भी हत्या करने में किंचित् मात्र भी संकोच नहीं रहा। न मैंने कभी किसी से ऊपर दया की और मेरा व्यक्तित्व जीवन–भर निर्मम, निष्ठुर व कठोर रहा है। इस प्रकार मैं न स्वर्ग–नरक, पाप–पुण्य, दया–करुणा आदि को मानता। लेकिन चम्पा तुम्हारे सम्पर्क मे आने के बाद मैं यह जान पाया हूँ कि मेरे जैसे कठोर–निष्ठुर व निर्मम व्यक्ति के हृदय में भी कोमल और कठोर भाव विद्यमान है मेरे हृदय में भी करुणा–कोमलता के भाव निहित हैं। तुम मेरे नीरस–कठोर और शून्य हृदय रूपी आकाश में न जाने कैसे भूली–भटकी हुई तारिका के समान उदित हो गई हो। तुम्हारे सानिध्य एवं सम्पर्क से मेरे निराशा–अवसाद से भरे जीवन में कोमल प्रकाश की किरणें फूट पड़ीं तथा मेरा जीवन भी तुम्हारे कारण सद्वृत्तियों की ओर अग्रसर हो गया है और मैंने जलदस्यु वृत्ति छोड़ दी है। मैं जिसके व्यक्तित्व में आसुरी व पशुत्व वृत्तियों का साम्राज्य था और जिसका जीवन पशुओं जैसा था तथा धन कमाने के लिए उचित–अनुचित साधनों का प्रयोग करता था। अर्थार्जन हेतु किसी की हत्या करना मेरे लिए एक सामान्य बात थी, लेकिन यह पशुत्व और आसुरी वृत्तियों से परिपूर्ण यह जीवन अचानक तुम्हारे कारण मानवता व सद्प्रवृत्तियों की

ओर अग्रसर हो गया है। मेरे हृदय में भी कोमलता, करुणा व प्रेम भावना तथा सौन्दर्य की उत्पत्ति हो गई, लेकिन दुर्भाग्यवश मैं प्रसन्नता भरी हँसी न हँस सका। सब कुछ प्राप्त होने पर भी मैं प्राप्त न कर सका।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव तथा सरल है। प्रसाद जी ने संस्कृतमय खड़ी बोली का प्रयोग किया है। तत्सम शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं।

2. सौन्दर्य, करुणा, प्रेम आदि सद्वृत्तियाँ आसुरी प्रवृत्तियों वाले व्यक्ति का भी हृदय–परिवर्तन कर सकती है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति हुई है।

3. बुद्धगुप्त के चरित्र में होने वाले परिवर्तन की ओर इशारा किया गया है।

4. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

5. अप्रत्यक्ष रूप में बुद्धगुप्त के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

6. चम्पा के सौन्दर्य–करुणा व प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है जिसके कारण हत्या का व्यवसायी, पशु–धन बल का उपासक बुद्धगुप्त के व्यक्तित्व में परिवर्तन होता है।

7. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***4. "बुद्धगुप्त ! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए शून्य है। प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो, इन निरीह, भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार, श्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण भावना प्रधान कहानी 'आकाशदीप' से अवतरित है। लेखक प्रस्तुत कहानी में देश–राष्ट्र की सीमाओं के बन्धनों को छिन्न–भिन्न करके 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सन्देश सम्प्रेषित करता है तथा साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि सुख–सुविधाओं से युक्त जीवनयापन करने की अपेक्षा दीन–दलित–पीड़ितों और शोषितों की सेवा करना सर्वश्रेष्ठ धर्म है। बुद्धगुप्त जलदस्यु है और उसने प्रारम्भ में लूट–पाट करके तथा चम्पाद्वीप पर व्यापार करके अथाह धनराशि एकत्रित कर ली है। वह चम्पा से विवाह करके धन–धान्य के साथ भारत लौटना चाहता है, लेकिन चम्पा उसके विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकृत करके वहीं रहकर भटके हुए नाविकों के लिए आकाशदीप जलायेंगे और दीन–दुःखियों की सहायतार्थ वहीं रहेगी।"

**व्याख्या** – चम्पा बुद्धगुप्त को सम्बोधित करती हुई स्पष्ट कहती है कि बुद्धगुप्त ! मेरे लिए तुम्हारा यह लूटपाट से तथा व्यापार से एकत्रित किया हुआ धन मिट्टी के समान तुच्छ एवं नगण्य है। हत्या के व्यवसायी जलदस्यु बुद्धगुप्त ! मेरे लिए तुम्हारा यह धन–धान्य व वैभव अस्पृहणीय एवं नितान्त तुच्छ है। मेरे लिए सभी स्थानों का पानी एक जैसा है तथा यहां चम्पाद्वीप और जननी–जन्मभूमि भारत के जल में कोई भिन्नता नहीं है। इसी प्रकार सभी जगह बहने वाली वायु भी शीतल और उसमें भी कोई भिन्नता नहीं है। इसी प्रकार सभी जगह बहने वाली वायु भी शीतल और उसमें भी कोई भेद नहीं है। मेरे हृदय में किसी भी प्रकार की कोई कामना विद्यमान नहीं है तथा न मुझे सुख–सुविधाओं से युक्त जीवन चाहिए तथा न हृदय में प्रेम की आकांक्षा विद्यमान है तथा न कामाग्नि प्रज्ज्वलित है। इसलिए मेरे हृदय में न कोई कामना, न लालसा और न इच्छा वर्तमान है। मेरे लिए संसार के सभी सुख व धन–धान्य शून्य से बढ़कर नहीं है। मेरा जीवन तो शून्य के समान नगण्य व अर्थहीन हो गया है। कोई इच्छा हृदय में बाकी नहीं है। इसलिए प्रिय नाविक ! तुम धन–धान्य से परिपूर्ण इन पोतों को लेकर भारत लौट जाओ और सुख–सुविधाओं तथा ऐश्वर्य युक्त जीवन भोगो, क्योंकि तुम सुखों के अनुरागी हो और ऐश्वर्य युक्त जीवन जीना चाहते हो। लेकिन मैं तो इसी चम्पाद्वीप में रहूंगी और यहां आकाश दीप जलाकर भटके हुए नाविकों का पथ आलोकित करूंगी और इन निरीह तथा भोले–भाले प्राणियों के दुःखों में सहानुभूति प्रकट करने के लिए, इनके घावों पर सहानुभूति रूपी मीठे वचनों की मरहम लगाने के लिए तथा इनकी सेवा करने के लिए मैं भारत न जाकर चम्पाद्वीप में ही रहूंगी। वह माया–ममता और स्नेह–सेवा की देवी चम्पा वहीं रहकर आजीवन द्वीप स्तम्भ में आलोक जलाती रही।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है तथा तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई है।

2. संस्कृतमय खड़ी बोली प्रयुक्त की गई है।
3. बुद्धगुप्त और चम्पा के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।
4. लेखक ने देश–राष्ट्र की सीमाओं का अतिक्रमण कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सन्देश सम्प्रेषित किया है।
5. चम्पा की लोकमंगल सेवा–भावना को अभिव्यक्ति मिली है।
6. 'शून्य' शब्द पर लेखक के बौद्ध–दर्शन की छवि दृष्टिगोचर होती है।
7. वैयक्तिक सुखों से श्रेष्ठतम लोक सेवा–कर्त्तव्य को बताया गया है।

# पत्नी

## (जैनेन्द्र कुमार)

### तात्त्विक विवेचन

'पत्नी' श्री जैनेन्द्र कुमार की बहुचर्चित कहानियों में से एक है। इस कहानी में एक मध्यवर्गीय परिवार में रह रहे पति–पत्नी के जीवन की विशेष स्थिति का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उद्‌घाटन किया है। इसमें मध्यम–श्रेणी की उस गृहस्थ नारी का यथार्थ चित्र अंकित है जो पति की उपेक्षा पाकर भी पति–सेवा को ही अपना परम कर्त्तव्य मानती है। कहानी कला के मान्यतापूर्ण तत्वों के आधार पर कहानी की समीक्षा निम्नलिखित है–

**1. कथावस्तु अथवा कथानक -**

प्रस्तुत कहानी की कथावस्तु मध्यमवर्गीय समाज से ली गई है। कहानी का कथानक बहुत संक्षिप्त, किन्तु सुगुम्फित है। मूल कथावस्तु इस प्रकार है– शहर के एक ओर एक तिरस्कृत मकान की दूसरी मंजिल में साधारण स्थिति के पति–पत्नी रहते थे। पत्नी का नाम सुनन्दा और पति का नाम कालिन्दीचरण था। कालिन्दीचरण देशभक्त नेता हैं। वे सवेरा होते ही घर से बाहर चले जाते हैं। सुनन्दा रात के एक बजे तक अँगीठी के सहारे बैठी हुई उनकी प्रतीक्षा करती है। वह खीजकर खाना बना लेती है। कालिन्दीचरण अपने तीन मित्रों के साथ घर लौटते हैं। वे सुनन्दा से अपने और अपने मित्रों के लिए खाना लाने को कहते हैं। वह अस्वस्थ है और इस समय चार आदमियों का खाना किस प्रकार तैयार करे। कुछ समय बाद सुनन्दा खाना ले आती है और चुपचाप रखकर चली जाती है। दूसरी बार आकर चार गिलास पानी रख कर चली जाती है। मित्र लोग पति–पत्नी के बीच के तनाव से परिचित हो जाते हैं। पत्नी की समझ में अपने पति की देशोद्धार सम्बन्धी बातें नहीं आतीं। वह सोचती है कि उसकी समझ में ऐसी बातें आयें भी किस प्रकार, क्योंकि वह कम पढ़ी–लिखी है। वह बहुत दुःखी होने लगती हैं।

कालिन्दीचरण यह कहकर अन्दर जाते हैं कि 'देखूँ कुछ और हो तो ले आऊँ।' कालिन्दीचरण गुस्सा होते हैं कि 'वह खाना क्यों ले गई ? उठाकर ले आये। हम में से किसी को भी खाना नहीं है।' सुनन्दा मौन रहती है। वह कुछ भी उत्तर नहीं देती। सुनन्दा भीतर ही भीतर घुट रही थी, धीमे स्वर में कहती है–"खाओगे नहीं ? एक तो बज गया है।" कालिन्दी उसके इस कथन से निरुत्तर हो जाते हैं। वे कुछ अचार लेकर मित्रों के पास आ जाते हैं।

सुनन्दा ने अपने लिए कुछ भी नहीं रखा था। सारा भोजन परोस दिया था। उसे अपनी भूख की परवाह नहीं थी। उसे इसी बात का सोच था कि उसके पति ने उससे यह एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी ? वह सारी बातों को भुलाकर बरतन माँजने मे लग गई। उधर मित्र–मण्डली किसी विषय पर जोर–जोर से बहस करने लगी। वह बरतन माँजना छोड़कर कमरे के बाहर दीवार से लगकर खड़ी हो गई। इतने में एक मित्र ने अचार माँगा। सुनन्दा ने चुपचाप अचार ले जाकर रख दिया। वह पुनः द्वार से सटकर खड़ी हो गई, जिससे वह जो मांगा जाय उसे तत्काल ले जाकर दे दे। कथावस्तु यही है। इसमें है सुनन्दा के रूप में भारतीय नारी के करुण जीवन की झाँकी, जिसको केन्द्र बनाकर कहानीकार ने कहानी का पट बुना है। सुनन्दा अपनी परिस्थिति पर खिन्न होती हुई भी कर्त्तव्य से विमुख नहीं होती थी।

कहानी के लिए कथावस्तु अत्यन्त अपर्याप्त है, किन्तु मनोवैज्ञानिकता होने से कहानी में सजीवता आ गई है। कहानी का प्रारम्भ आकर्षक है। प्रारम्भ का वातावरण पढ़कर हृदय में उत्कंठा जागृत हो जाती है। पाठक की जिज्ञासा अन्त तक बनी रहती है और कहानी की समाप्ति पर भी वह सुनन्दा को बैठक के द्वार पर खड़ा छोड़कर स्वयं समस्या सुलझाने में संलग्न हो जाता है। वह सोचता है कि इसके पश्चात सुनन्दा ने क्या किया होगा ? क्या उसके पति पर इस त्याग का प्रभाव पड़ा होगा या नहीं ? इस कहानी में प्रभाव की सघनता आद्यन्त विद्यमान रहती है।

**2. पात्र एवं चरित्र-निर्माण –**

प्रस्तुत कहानी में दो ही पात्र हैं–सुनन्दा और कालिन्दीचरण। दोनों के चरित्र की अलग–अलग विशेषताएं हैं। दोनों पात्रों में जीवन–संघर्ष है। सुनन्दा कहानी की मुख्य पात्र है। सुनन्दा का सारा संघर्ष बाह्य से अधिक आंतरिक है। अन्तर्जगत के भावात्मक संघर्ष में सुनन्दा का चरित्रांकन है जो ईमानदारी के साथ भारतीय परिवेश में मध्यवर्गीय परिवार में पत्नी के यथार्थ स्वरूप की अवतारणा करता है। कहानी में सुनन्दा का पति–परायणा पत्नी के रूप में चित्रण किया गया है। पति के देर से

आने व प्रेमपूर्वक बात न करने पर वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठती है; किन्तु शान्त ही रहती है। वह रात–दिन मशीन की तरह गृह कार्य में संलग्न रहती है; किन्तु उसका पति उससे बात भी नहीं पूछता, यह उसको असहनीय हो जाता है। इतने पर भी वह स्वयं भूखी रह जाती है तथा पति और उसके मित्रों को भोजन दे देती है। वह अपना कर्त्तव्य समझती हुई कहती है–"छि सुनन्दा तुझे ऐसी जरा–सी बात का अब तक ख्याल होता है। तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक दिन भूखा रहने का तुझ पुण्य मिला।" यह पति के प्रति असाधारण आदर्श, आदर और प्रेमभाव सुनन्दा के चरित्र में प्रकट होता है। इसके विपरीत उसके पति कालिन्दीचरण का चरित्र है। वह देशभक्ति के कार्यों में तो तत्पर है, किन्तु घर–परिवार की कोई चिंता नहीं, पत्नी की कोई परवाह नहीं। उसे अपने मित्रों को भोजन कराने की चिंता है, किन्तु पत्नी की भूख का कोई ध्यान नहीं। वह क्रांति और शांति पर तो अपने विचार प्रकट कर सकता है, किन्तु पत्नी के मनोभाव को नहीं समझ सकता। इस प्रकार दोनों पात्र एक विशिष्ट व्यक्तित्व लिए हुए हैं। पात्रों के चरित्रांकन में कहानीकार को अद्‌भुत सफलता मिली है।

**3. कथोपकथन (संवाद) –**

जैनेन्द्र मनोविश्लेषणात्मक शैली के कहानीकार हैं। 'पत्नी' कहानी में संवाद बहुत कम और छोटे हैं परन्तु मनोवैज्ञानिक के धरातल पर पुष्ट होने के कारण वे इतने अधिक नुकीले और प्रभावशाली हैं कि कहानी में संवाद की कमी अखरती नहीं। कहानी की संवाद योजना का उदाहरण देखिये–

"यह तुमने किसने कहा था कि खाना यहाँ ले आओ ?

मैंने क्या कहा था ?"

सुनन्दा कुछ न बोली।

"चलो, उठकर लाओ थाली। हमें किसी को यहाँ नहीं खाना है। हम होटल में जायेंगे।

सुनन्दा बोली नहीं। कालिन्दी भी कुछ देर गुमसुम खड़ा रहा। तरह–तरह की बातें उनके मन में और कंठ में आती थी।

उससे अपना अपमान मालूम हो रहा था, और अपमान असह्य था।

उसने कहा–"सुनती नहीं हो क्या कह रहा हूँ ? क्यों ?"

सुनन्दा ने मुँह फेर लिया।

"क्या मैं बकते रहने के लिए हूँ ? "

सुनन्दा भीतर ही भीतर घुट गई।

"मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था, तब खाना ले जाने की क्या जरूरत थी ?"

सुनन्दा ने मुड़कर और अपने को दबाकर धीमे से कहा–"खाओगे नहीं ? एक तो बज गया।"

यहाँ कथोपकथन का विश्लेषणात्मक रूप है। इस रूप में कहानीकार ने अपनी ओर से पात्रो के सम्बन्ध मे उनकी मुद्राओं और भाव–भंगिमाओं का उद्‌घाटन करने के लिए कथोपकथन की योजना की है। इस प्रकार सुनन्दा बहुत कम बोलतीहै, पर उसकी भाव–भंगिमाओं ने बहुत कुछ कह दिया है।

**4. वातावरण (देशकाल) –**

प्रस्तुत कहानी में वर्णनात्मक ढंग से एक गंभीर वातावरण का निर्माण स्वतः ही हो गया है। चौके में बैठी मुख्य पात्र सुनन्दा को ऐसे परिस्थिति परिवेश से प्रस्तुत किया गया है कि कहानी की संवेदना में गहराई का समावेश होता चलता है–

"शहर के एक ओर तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला। वहाँ चौके में एक स्त्री अँगीठी सामने लिए बैठी है। अँगीठी की आग राख हुई जारही है। वह जाने क्या सोच रही है।"

इस कहानी की वस्तु, कथ्य और चरित्र में देशकाल और वातावरण का योगदान केवल ऊपरी नहीं है, आंतरिक अधिक है। देशकाल और वातावरण केवल प्राकृतिक ही नहीं होता, वह सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक भी होता है। इन सबका संकेत 'पत्नी' कहानी में बड़ी कुशलता से हुआ है। मानव जीवन की समस्याएँ देशकाल और वातावरण में विकसित होने वाली विभिन्न ऐतिहासिक शक्तियों के कारण पैदा होती हैं। प्रस्तुत कहानी में सुनन्दा और उसके पति कालिन्दीचरण के जीवन म उभरने वाले तनाव आधुनिक युग की ही देन हैं। साम्राज्यवादी ताकतों से राष्ट्रवादी शक्तियों का संघर्ष आधुनिक इतिहास की

चीज है। भारतमाता को स्वतंत्र कराने को कटिबद्ध कालिन्दीचरण घर–परिवार व पत्नी की तरफ ध्यान नहीं दे पाता। सुनंदा की आंतरिक स्थिति से बनने वाले इस वातावरण का चित्र द्रष्टव्य है–"बैठे–बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही है। देखो, अब दो बजेंगे। उन्हें न खाने की फिक्र, न मेरी फिक्र, मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी ही बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया...। उसका मन कितना भी इधर–उधर डोले, पर अकेली जब होती है, तब भटक–भटक कर वह मन अन्त में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुँचता है। तब उस बच्चे की बड़ी–बड़ी बातें याद आती हैं। वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी–छोटी अंगुलियाँ और नन्हे–नन्हें ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं और सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है।"

**5. भाषा-शैली** –

'पत्नी' कहानी की भाषा में सादगीपूर्ण सौन्दर्य है। कहीं कृत्रिम चमत्कार या सजावट का प्रश्न नहीं, बड़े ही सहज शब्दों में गंभीर भावाभिव्यक्ति होती चलती है। शैली में उतना आकर्षण है कि वर्णन प्रधान इतिवृतात्मक भी सरस हो उठी है। यों उसमें प्रयत्नगत शिल्प–विधान कहीं नहीं दिखाई देता, किन्तु शैली का आकर्षण स्वयं ही आकर्षक बन गया है। कहानी में नारी के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति सरल, स्वाभाविक और प्रवाहमयी भाषा में है–"सुनन्दा कुछ नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। यह उससे क्षमा–प्रार्थी–से क्यों बात कर रहे हैं–हँसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना–वाना और वह चुप रही।" इस प्रकार 'पत्नी' कहानी की भाषा–शैली भावपूर्ण, चित्रात्मक एवं सशक्त है। यथोचित शब्द रचना तथा भावानुकूल शब्द चयन कहानी की भाषा–शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

**6. उद्देश्य** -

'पत्नी' कहानी एक सोद्देश्य रचना है तथा उसमें चिन्तन की गहराई के अतिरिक्त अनुभूति की व्यंजना एवं आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न रहा है। प्रस्तुत कहानी का मुख्य उद्देश्य भारतीय नारी के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर उसके पत्नीत्व की प्रतिष्ठा व गरिमा प्रदान करने का रहा है। इसके साथ ही नारी की घुटन व दयनीयतापूर्ण सजीव झाँकी दिखाकर यह संदेश भी दिया है कि पति को बाहर की ही नहीं, घर–परिवार की चिन्ता कर पत्नी के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। कहानी में सर्वत्र भारतीय नारी के पत्नीत्व का ही परिचय मिलता है, अतः इसका शीर्षक 'पत्नी' उचित ही है।

जैनेन्द्र कुमार की इस कहानी के गुण–दोषों का विवेचन–विश्लेषण करते हुए श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' ने लिखा है–" 'पत्नी' शीर्षक कहानी में भारतीय नारी के विद्रोह का सजीव–चित्रण मिलता है। पति की अनुदारता के प्रति उन्होंने भारतीय नारी का आदर्श और उज्ज्वल व्यक्तित्व भले ही उभारा हो, वे उसकी घुटन और पीड़ा का समाधान करने में असफल रहे हैं। कथानक न होने पर भी अपनी शैली के आकर्षण में वे एक साधारण घटना को प्राणवान बनाने में सफल हुए है; पर 'पत्नी' लेखक की 'प्रतीकमयी' नारी मात्र बन गई है, परिवार की एक फर्नीचर।" वस्तुतः देखा जाए तो इस कहानी में सुनन्दा के रूप में नारी अपनी दयनीय स्थिति से ऊबकर क्रांन्ति के लिए उतारू तो हो जाती है; किन्तु फिर आध्यात्मिक समर्पण की ओर झुककर समझौते के लिए प्रस्तुत होकर शान्ति का अनुभव करती है। कुल मिलाकर अपनी विशिष्टता लिए हुए यह एक सफल कहानी है।

## प्रश्टव्य

1. जैनेन्द्र जी ने 'पत्नी' कहानी में एक मध्यम श्रेणी की गृहस्थ नारी का यथार्थ चित्र अंकित किया है।
   --इस कथन की समीक्षा करते हुए 'पत्नी' कहानी के गुण–दोषों का विवेचन कीजिये।
2. कहानी की कसौटी के आधार पर 'पत्नी' कहानी की समीक्षा कीजिये।
3. कहानी कला के तत्त्वों के आधार पर 'पत्नी' कहानी की विशेषतायें लिखिये।

# II. कहानी-सार

मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में जैनेन्द्र का अत्यनत महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा उन्होंने मनोविश्लेषणात्मक कहानियों में

मानव–मन के सूक्ष्म भावों, अन्तर्द्वन्द्वों का अत्यन्त मार्मिक व सजीव चित्रण किया है। वे मनुष्य के अन्तर्जगत् का पूरी टोह लेकर आते हैं। व्यक्ति और उसका मन, मन के भीतर अचेतन, अचेतन के भीतर व्याप्त मानवीय भावों का अथाह सागर–यही सब जैनेन्द्र की कहानियों के अन्तःसूत्र होते हैं। कहानी का सारांश इस प्रकार से है–

कालिन्दीचरण और सुनन्दा पति–पत्नी के रूप में शहर के एक ओर तिरस्कृत मकान के दूसरे तल्ले में रहते हैं। वहाँ चौके में सुनन्दा अंगीठी के सामने बैठी है। अंगीठी की आग राख होती जा रही है। वह विचारों के उधेड़बुन में खोयी हुई है। उसकी आयु लगभग बीस–बाईस के आसपास होगी। देह से वह दुबली है, परन्तु सम्भ्रान्त व शिष्ट कुल की लगती है। एकाएक उसका ध्यान बुझती हुई अंगीठी की ओर गया और उसने उठकर उसमें कोयले डाले। अंगीठी में कोयले डालकर फिर से ऐसे बैठ गई कि मानो याद करना चाहती हो कि अब क्या करूं। पति सवेरे से ही बाहर गए हुए हैं और सुनन्दा उनकी प्रतीक्षा में बैठी है कि वे आए और वह उनके लिए खाना बनाए। लगभग एक बज गया है। तभी वह चिन्तन करती है कि आदमी को अपने शरीर का ध्यान तो करना ही चाहिए। वह बैठी–बैठी सोचती है कि कब तक बैठूं तथा मुझसे ओर नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आए और उसने खीझकर तवा अंगीठी पर रख दिया। आटे की थाली सामने खींचकर रोटी बेलने लगी। थोड़ी देर बाद उसने जीने पर पैरों की आवाज सुनी। उसके मुख पर तल्लीनता के भाव आए और तिरोहित हो गए तथा पुनः उसी काम में लग गई। कालिन्दीचरण और उसके साथ उनके तीन मित्र भी आए हैं। वे आपस में बहस में उलझे हुए थे। वास्तव में वे चारों व्यक्ति देशोद्धार के सम्बन्ध में कटिबद्ध थे। चर्चा उसी के बारे में चल रही थी और भारत माता को स्वतन्त्र कराने हेतु यह समय नीति–अनीति, हिंसा–अहिंसा का नही है, बल्कि चाहे किसी भी माध्यम से भारत माता की पराधीनता की बेड़ियों को उतार फैंको। मीठी बातों का परिणाम बहुत देख लिया है तथा इनसे कोई सुखद परिणाम निकलने वाला नहीं है। जिस प्रकार से बाघ के मुंह से सिर निकालने में मीठी बातों का कोई प्रभाव नहीं है, बल्कि सिर निकालने के लिए तो बाघ मारना ही होगा। हमें आतंक–हिंसा का सहारा लेना होगा तथा जो लोग आतंकवादियों को मूर्ख–अल्पज्ञ मानते हैं, वे वास्तव में मूर्ख हैं और राजनीति के क्षेत्र में बच्चे हैं। फिर कालिन्दीचरण को अचानक ध्यान आया कि न उसने खाना खाया है और न मित्रों से खाने के बारे में पूछा है सुनन्दा रोटी बना चुकी थी और माथे को उंगलियों पर टिकाकार अंगीठी के समाने बैठी है। वह अपने पति कालिन्दीचरण और उसके मित्रों की बातें सुन रही है। उसे इन लोगों के जोश का कारण समझ में नहीं आता। उत्साह भी उसके लिए अपरिचित है। वह वास्तव में अल्पज्ञ है, इसीलिए न वह भारत माता की स्वतन्त्रता को समझती है, न भारत माता और न स्वतन्त्रता। न उन लोगों की जोर–जोर से बोलने का कारण समझती है। वह चाहती है कि उसका पति उससे भी कुछ देश की बात करे। उसमें यद्यपि बुद्धि कम है, परन्तु धीरे–धीरे समझने लगेगी। वह जानती है कि सरकार उसके पति के इस तरह के कामों से बहुत नाराज है और फिर वह सरकार के स्वरूप पर प्रकाश डालती है कि हाकिम, फौज, पुलिस के सिपाही, मैजिस्ट्रेट, मुन्शी, चपरासी, थानेदार और वायसराय आदि से सरकार बनती है, परन्तु इनसे लड़ने में ही कालिन्दी अपना तन–तम बिसार बैठी है। फिर सोचती है कि ये इतना जोर से क्यों बोलते हैं। उसको यही बुरा लगता है। सीधे–सादे कपड़ों में खुफिया विभाग का एक आदमी हरदम उनके घर के बाहर रहता है। ये लोग इस बात को भुलाकर जोर से क्यों बोलते हैं। बैठे–बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही थी कि दो बज गए हैं। इन्हें न खाने की चिन्ता है और न मेरी फिक्र है। मेरी तो खैर कोई बात नहीं, परन्तु अपने शरीर का तो ध्यान रखना चाहिए। इसी लापरवाही के कारण वह बच्चा असामयिक काल–कवलित हो गया। उसका मन कितना ही इधर–उधर डोले, लेकिन जब वह अकेली होती है तो उसको उस बालक की मधुर स्मृतियां–अठखेलियां कचोटती हैं। उसको तभी बच्चे की प्यारी आँखें, छोटी–छोटी उंगलियां और नन्हें–नन्हें ओंठ याद आते हैं। सबसे ज्यादा उसका मरना उसके मन को व्यथित करता है। यद्यपि वह जानती है कि सबको मरना है, उसको मरना है और उसके पति को भी मरना है, परन्तु बालक को याद करके अत्यधिक व्याकुल–व्यथित हो उठती है। वह उठी कि बरतनों को माँज डाले तथा चौका साफ कर डाले कि तभी कालिन्दी अन्दर चौके में आए। सुनन्दा विचारों के अथाह–असीम प्रवाह में डूबती–उतरती चली जा रही थी। कालिन्दी के प्रवेश करने पर भी सुनन्दा कठोरतापूर्वक शून्य की ओर ही देखती रही। उसने पति की ओर नही देखा। कालिन्दी ने कहा–"खाने वाले हम चार हैं। खाना हो गया ?" सुनन्दा चून की थाली और चकला–बेलन और बटलोई आदि उठाकर चल दी तथा कुछ नहीं बोली। कालिन्दी ने फिर कहा सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं। खाना बन सके तो कहो, नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे। सुनन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में गुस्सा उठने लगा कि वह उससे क्षमा प्रार्थी की तरह बातें क्यों कर रहा है तथा कह क्यों नहीं देता कि कुछ और खाना बना दो, जैसे मैं कोई गैर हूँ। अच्छी बात है तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम करती रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना–वाना और वह चुप रही। तभी कालिन्दी ने जोर से आवाज दी–'सुनन्दा !' सुनन्दा के मन में आया कि वह हाथ में आयी बटलोई को जोर से फैंक दे।

किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे यह भी याद नहीं रहा कि अभी बैठे–बैठे वह पति की प्रीति और भलाई की बातें सोच रही थी। तभी कालिन्दी ने कहा–"क्यों ? बोल भी नहीं सकती ?" सुनन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया। कालिन्दी ने कहा कि खाना कोई भी नहीं खाएगा तथा यह कहकर पैर पटकता हुआ चला गया। कालिन्दी अपने दल में उदारवादी माने जाते थे तथा अधिकतर सदस्य अविवाहित थे, परन्तु कालिन्दी विवाहित थे और एक बच्चा भी खो चुके हैं। उनकी बात को दल में आदर–सम्मान प्राप्त है। वे दल में विवेक के प्रतिनिधि हैं। बहस इस बात पर थी कि आतंक को छोड़ना चाहिए, क्योंकि इससे विवेक कुण्ठित होता है और मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है तथा उसके भय से दबा रहता है। सुनन्दा के पास से लौटने के बाद कालिन्दी अपने मत पर दृढ़ नहीं रहा तथा उसने कहा कि बातें जरूरी भी हैं। आप लोगों को भूख नहीं लगी क्या ? उनकी तबियत खराब है, इससे यहां तो खाना बना नहीं। बताओ क्या किया जाए। कहीं होटल चलें । एक ने कहा कि बाजार से कुछ मंगा लेना चाहिए और दूसरे की राय थी कि होटल चलना चाहिए। इसी बीच सुनन्दा ने एक बड़ी थाली में खाना परोसकर लाकर रख दिया। फिर आकर चार गिलास पानी रख गई। तीनों मित्र चुप ही रहे तथा कालिन्दी को तो ऐसा लगा जैसे किसी ने काट लिया हो। मित्रों ने महसूस किया कि उनमें तनाव व्याप्त है। कालिन्दी ने झेंपकर कहा कि मेरा मतलब था कि खाना काफी नहीं है। फिर भीतर आकर सुनन्दा को डांटने लगा कि तुमसे किसने कहा था कि खाना वहां ले आओ। सुनन्दा कुछ न बोली–चलो उठा लाओ थाली। हमें किसी को यहां नहीं खाना है। सुनन्दा कुछ नहीं बोली तथा कालिन्दी भी चुपचाप खड़ा रहा। कालिन्दी ने फिर कहा क्या मैं बकते रहने के लिए हूँ ? सुनन्दा भीतर ही भीतर घुंट गई। मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था तब खाना लाने की क्या जरूरत थी ? सुनन्दा ने मुड़कर कहा कि खाओगे नहीं ? एक तो बज गया। कालिन्दी भी निशस्त्र हो गया, फिर उसने पूछा कि खाना और है। ? सुनन्दा ने धीमे से कहा–आचार लेते जाओ। सुनन्दा ने अपने लिए बचाकर नहीं रखा था। फिर उसने सोचा कि उन्होंने तो पूछा भी नहीं तुम क्या खाओगी ? क्या मैं यह सहन कर सकती थी कि उनके मित्र भूखे रहें और वह खाना खाये। तभी वह बरतन माँजने में लग गई। फिर वह कमरे के दरवाजे के पास खड़ी हो गई कि शायद किसी चीज की आवश्यकता पड़े। तभी कालिन्दी ने आचार और पानी लाने के लिए स्निग्ध वाणी से कहा, जिसे सुनन्दा ने पूरा कर दिया। फिर बाहर द्वार से लगकर खड़ी हो गई कि कालिन्दी कुछ मांगे तो जल्दी से ला दे।

## III. चरित्र-चित्रण

### कालिन्दी -

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कहानीकार श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी मनोविश्लेषणात्मक कहानी 'पत्नी' में भारतीय नारी के विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है तथा साथ ही चिरकाल से शोषित–प्रताड़ित नारी की घुटन, कुण्ठा और पीड़ा का भी चित्रण हुआ है। प्रस्तुत कहानी में कालिन्दी चरण नायक के पद पर आसीन है। वह कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है और सभी घटनाओं के मूल में है। कहानी के अन्य सभी पात्र सुनन्दा और उसके चरित्र को प्रकाशित करने में सक्षम हैं। कहानी का फलभोक्ता भी कालिन्दी ही सिद्ध होता है। अतः कहानी का नायक निर्विवाद रूप से कालिन्दी चरण ही सिद्ध होता है। घटनाओं का तन्तुजाल की उसी के चारों तरफ बुना हुआ है, यथा–वही अपने मित्रों के साथ नीति–अनीति, हिंसा–अहिंसा और भारत माता की स्वतंत्रता से सम्बन्धित संघर्ष में लीन होता है।

कालिन्दी चरण के हृदय में देश–प्रेम की भावना कूट–कूटकर भरी हुई है। वह देशोद्धार के सम्बन्ध में कटिबद्ध है। वह आतंकवादी मत का समर्थन करते हुए स्पष्ट कहता है–"भारत माता को स्वतंत्र करना होगा और नीति–अनीति, हिंसा–अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुंह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है। आतंक ! हां, आतंक ! हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा।" लोग हैं जो कहते हैं, आतंकवादी मूर्ख हैं, वे बच्चे हैं, हाँ, वे अच्चे और मूर्ख।" इसी प्रकार कालिन्दी चरण विकास–निस्पृह भाव से भारत माता को स्वतन्त्र कराने हेतु मन–प्राणों से कटिबद्ध है। वह अपनी निपृह भावना को कहानी में इस प्रकार से स्पष्ट करता है–"हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल–बच्चों का। हमें नहीं गरज धन–दौलत की। तब हम मरने के लए आज़ाद क्यों नहीं हैं ? जुल्म को मिटाने के लिए कुछ जुल्म होगा ही। उससे वे डरें जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं है।" कालिन्दी के मन–प्राणों में देश–प्रेम की धुन गहरे तक समायी हुई हैं। न उसे खाने की चिन्ता है, न आराम की और न पत्नी की चिन्ता, यहां तक कि उसका बेटा भी असामयिक काल–कवलित हो जाता है। सुनन्दा भी अपने पति की देश–सेवा के विषय में श्रद्धाभाव रखती है। उसने शारीरिक सुख–सुविधाओं का परित्याग करके, भारत माता को पराधीनता

की बेडियों से मुक्ति दिलाने हेतु मारा–मारा फिरता है। स्वतन्त्रता–संघर्ष के कारण ही वह अपने पुत्र की ओर ध्यान नहीं दे पाता तथा अपने दल को विवेक का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे उत्ताप पर अंकुश का कार्य करते हैं। वे आतंकवादी गतिविधियों का विरोध करते हुए स्पष्ट कहते हैं–"हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए। आतंक वे विवेक कुण्ठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित होता रहता है या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियां श्रेष्ठ नहीं हैं। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं।" इस प्रकार स्पष्ट है कि 'पत्नी' कहानी से कालिन्दी भारत माता का स्वतन्त्र कराने में अपना सब कुछ होम करने के लिए तत्पर है। क्रांतिकारी गतिविधियों में सह इतना अधिक लीन है कि उसके पारिवारिक जीवन में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं रह पाता है।

कालिन्दी चरण का अपनी पत्नी के प्रति व्यवहार अत्यन्त कठोर व निर्मम है। क्रांतिकारी गतिविधियों में अत्यधिक तल्लीन होने के कारण उसका पारिवारिक जीवन सुखद नहीं रह गया है। वह अपनी पत्नी को घोर उपेक्षित व तिरस्कृत करता है और वह कुण्ठा, पीड़ा व घुटन की एक निर्जीव प्रतिमूर्ति बन जाती है। पति–पत्नी के सम्बन्धों को उकेरता यह संवाद देखिये–

कालिन्दी ने कहा–सुनन्दा, खाने वाले हम चार हैं। खाना हो गया ?

सुनन्दा चून की थाली और चकला–बेलन, बल्लोई वगैरह खाली बर्तन उठाकर चल दी, कुछ भी बोली नहीं।

कालिन्दी ने कहा–"सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं, खाना बन सके तो कहो, नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे।

सुनन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। × × ×

कालिन्दी ने जोर जोर से कहा–'सुनन्दा'

सुनन्दा के जी में ऐसा हुआ कि हाथ की बल्लोई को खूब जोर से फैंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे–बैठे इन्हीं अपने पति के बारे में कैसी प्रीति की और भलाई की बात सोच रही थी। इस वक्त भीतर ही भीतर गुस्से में घुटकर रह गई थी।

क्यों ? बोल भी नहीं सकती।

सुनन्दा नहीं ही बोली।

तो अच्छी बात है। खाना कोई भी नहीं खाएगा। यह कहकर कालिन्दी तैश में पैर पटकते हुए लौटकर चले गए।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिन्दी–सुनन्दा के सम्बन्धों में मधुरता न होकर तिक्तता व तनाव है। वह आग के सामने बैठकर भोजन बनाने हेतु पति की प्रतीक्षा में रत है।

कालिन्दी की अपनी पत्नी सुनन्दा के प्रति व्यवहार उचित नहीं है, क्योंकि कालिन्दी ने आकर कहा कि– "आप लोगों को भूख नहीं लगी है क्या ? उनकी तबियत खराब है, इससे यहां तो खाना बना नहीं। बताओ, क्या किया जाए ? कहीं होटल चलें।" लेकिन तभी सुनन्दा एक बड़ी थाली में खाना परोसकर उनके बीच रख देती है, चार गिलास पानी के रख देती है। यह सब देखकर कालिन्दी को तो साँप सूंघ गया। कहानीकार ने लिखा है–"तीनों मित्र चुप ही रहे। उन्हें अनुभव हो रहा था कि पति–पत्नी के बीच स्थिति में कहीं कुछ तनाव पड़ा हुआ है।" अन्त में एक ने कहा–"कालिन्दी, तुम तो कहते थे कि खाना नहीं है।" दूसरे ने कहा–"बहुत काफी है। सब चल जाएगा।" तभी कालिन्दी अन्दर जाकर सुनन्दा को फटकारता है कि उसने मना करने के बावजूद अन्दर मित्रों के पास ले जाकर खाना क्यों रखा ? इस प्रकार पति–पत्नी के सम्बन्धों में कटुता व विषाक्तता व्याप्त है। वह पत्नी को डांटते हुए कहता है–"यह तुमसे किसने कहा था कि खाना यहां ले आओ ? मैंने क्या कहा था ?"

सुनन्दा कुछ न बोली।

"चलो, उठकर लाओ थाली। हमें किसी को यहाँ नहीं खाना है। हम होटल में जायेंगे। बार–बार कालिन्दी के बोलने पर भी जब सुनन्दा ने उसके प्रश्न का उत्तर नहीं देती तो यह उसका अपना अपमान लगता था। और अपमान असहनीय था। उसको अत्यन्त आवेश के साथ कहा–

"सुनती नहीं हो क्या कह रहा हूँ ? क्यों ?"

सुनन्दा ने मुँह फेर लिया।

"क्या मैं बकते रहने के लिए हूँ ?"

सुनन्दा भीतर ही भीतर घूंट गई।

"मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था, तब खाना ले जाने की क्या जरूरत थी ?"

सुनन्दा ने मुड़कर और अपने को दबाकर धीमे से कहा–खाओगे नहीं ? एक तो बज गया।

कालिन्दी 'पत्नी' कहानी में विनम्र, शान्त स्वभाव की सजीव प्रतिमा एवं अहिंसक वृत्ति वाला चित्रित किया है। उसका व्यवहार अपनी पत्नी के प्रति मधुर व आत्मीयतापूर्ण नहीं है जिसके कारण वह घुटी–घुटी सी रहती है। वह अपनी पत्नी सुनन्दा से खाना खाने के लिए भी नहीं पूछता और सारा खाना खा जाते है तथा उसको भूखा रहना पड़ता है। कहानी के प्रारम्भ में उसका व्यवहार पत्नी सुनन्दा के प्रति कठोर व निर्मम है, लेकिन कहानी के अन्त में मधुर वाणी बोलता है तथा विनम्र हो उठता है।

कालिन्दी चरण सामाजिक व्यक्ति है तथा इसीलिए अपने तीन मित्रों को लेकर अपने घर आता है और उनको खाना भी खिलाता है। घर पर खाने की व्यवस्था न होने के कारण वह उन्हें होटल ले जाना चाहता है कि तभी सुनन्दा खाना परोसकर वहीं रख गई। नायक अपनी पत्नी सुनन्दा से कभी भी देश के बारे में वार्तालाप नहीं करता, क्योंकि वह उसे अज्ञानी व अल्पज्ञ मानता है। सुनन्दा अपने पति की लापरवाही और उपेक्षा को इस प्रकार प्रकट करती है–"उन्हें न खानें की फिक्र, न मेरी फिक्र, मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी ही बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया।" अतः कालिन्दी चरण को तो केवल देश की स्वतंत्रता के बारे में ही चिन्ता है, उसी के लिए मारा–मारा फिरता है। उसे न खाने का फिक्र है न पत्नी का और न अपनी सुख–सुविधा का।

'पत्नी' कहानी के कालिन्दी एक सफल पिता और परिवार के मुखिया के रूप में दृष्टिगोचर नहीं होता है, क्योंकि उसी की बेपरवाही के कारण उसका एकमात्र पुत्र असामयिक काल–कवलित हो जाता है। उसके पुत्र का चित्रांकन सुनन्दा द्वारा इस प्रकार से किया गया है–"वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी–छोटी अंगुलियाँ और नन्हे–नन्हें ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं और सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है।" इस प्रकार यहां कालिन्दी का निर्मम–निष्ठुर पिता का रूप ही दृष्टिगोंचर होता है, क्योंकि उसी के कारण ही सुनन्दा की गोद सूनी हो गई है। मातृत्व खण्डित हो चला है। क्रांतिकारी पति कालिन्दी की उपेक्षा के कारण ही सुनन्दा को अपने प्राणों से भी प्यारे, सुन्दर पुत्र से हाथ धोने पड़े। इतना ही नहीं कालिन्दी के सिर पर हमेशा देशभक्ति का भूत सवार होने के कारण ही वह अपनी पत्नी सुनन्दा की निरन्तर उपेक्षा करता है और उसे घर की चारदीवारी तक सीमित कर देता है। कालिन्दी के कारण ही उसकी पत्नी का व्यक्तित्व बौना–सा हो गया है। इस प्रकार कालिन्दी की मानसिकता असंतुलित एकांगी और पूर्वाग्रहों से ग्रस्त की जा सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिन्दी 'पत्नी' कहानी का नायक है, देशभक्ति को धुन उसके प्राणों में गहरे तक समायी हुई है। घर–परिवार की ओर उसका ध्यान नहीं है, जिसके कारण उसका पुत्र असामयिक काल–कवलित हो जांता है।

## (ख) सुनन्दा

बहुमुखी प्रतिभा के कथाकार श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी 'पत्नी' कहानी में सुनन्दा नायिका के पद पर अधिष्ठित है। उसकी आयु बीस–बाईस के लगभग होगी तथा देह से कुछ दुबली है और सभ्य–शालीन है। उसको देखने से ऐसा लगता है वह "सम्भ्रान्त कुल की मालूम होती है।" वह पति के लिए खाना बनाने हेतु अंगीठी के पास बैठी हुई है तथा अंगीठी की आग राख हुई जा रही है, लेकिन उसके पति कालिन्दी चरण अभी भी बाहर से नहीं लौटे।

सुनन्दा कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहती है तथा सभी घटनाओं के मूल में है। वहीं नायक और उसके मित्रों के लिए खाना बनाती है और परोसकर अन्दर देकर आती है। तब वे खाना खाने लगते हैं तो वहीं कमरे के दरवाजे के बाहर दीवार से लगकर खड़ी हो जाती है। इस प्रकार वह सभी घटनाओं के मूल में वर्तमान है। कालिन्दी की पत्नी नायिका सुनन्दा फलभोक्त्री भी हैं। इस प्रकार कहानी 'पत्नी' की नायिका निर्विवाद रूप से वही सिद्ध होती है।

सुनन्दा पति द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत है तथा उसका मातृत्व व पतित्व दोनों ही खंडित हैं, क्योंकि पुत्र तो पति की बेपरवाही के कारण पहले ही असामयिक काल–कवलित हो जाता है और पति भी क्रांतिकारी गतिविधियों में संलिप्त रहता है। उसे न घर की फिक्र, न पत्नी की और न अपनी सुख–सुविधाओं की। वह तो हमेशा ही मन–प्राणों से इस भारत माता

की स्वतंत्रता की गतिविधियों में लिप्त रहता है। सुनन्दा की स्थिति तो घर में एक कैदिन की भाँति है। वह प्रातःकाल से ही अंगीठी जलाकर बैठी है कि कब कालिन्दी चरण आये और उसकी रोटी पकाए, लीकिन वह एक बजे आता है। सुनन्दा अपने पति की उपेक्षा–तिरस्कार का स्मरण कर अत्यन्त व्यथित एवं क्षुब्ध हो उठती है, क्योंकि उन्हीं के बेपरवाही के कारण उसका एकमात्र पुत्र असामयिक काल–क्रोड़ में समा जाता है। लेकिन वह कभी भी अपने पति से शिकायत न करती है, न उपालम्भ और न खीझ प्रकट करती है। वह कहानी के अपनी चिन्तन, अन्तर्द्वन्द्व की भावना को इस प्रकार से प्रकट करती है–"बैठे–बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही है। देखो, अब दो बजेंगे। उन्हें न खाने की फिक्र, न मेरी फिक्र, मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी ही बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया...। उसका मन कितना भी इधर–उधर डोले, पर अकेली जब होती है, तब भटक–भटक कर वह मन अन्त में उसी बच्चे के अभाव पर आ जाता था..तब वह विह्वल हो उठती थी और हठात् इधर–उधर की किसी काम की बात में अपने को उलझा लेना चाहती है। पर अकेले में, वह कुछ करे, रह–रहकर वही वह याद, वही वह मरने की बात उसके सामने ही रहती है और उसका चित्त बेबस हो जाता है।" इस प्रकार वह पति–उपेक्षिता, तिरस्कृता व मातृत्व–खंडिता नारी है। वह सारा दिन घर की चारदिवारी में बन्द रहती है। पति उसके प्रति उपेक्षा–तिरस्कार व अनदेखा भाव प्रदर्शित करता है, लेकिन वह फिर भी उसके प्रति पूरी श्रद्धा व आत्मीयता रखती है। कहानी के प्रारम्भ में वह सीधी तथा सरलता की प्रतिमूर्ति के रूप में दृष्टिगोचर होती है और पति की प्रताड़ना का चुपचाप गर्दन झुकाकर स्वीकार कर लेती है। लेकिन कहानी के अन्त में उसका अहम् भाव–उद्दीप्त हो उठता है, और वह भी घर में सम्मानजनक स्थान की आकांक्षी है। कहानीकार का कहना है–"कालिन्दी चरण ने जरा जोर से कहा–सुनन्दा। सुनन्दा के जीव में ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को खूब जोर से फैंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। किन्तु उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे–बैठे अपने पति के बारे में कैसी प्रीति की और भलाई की बात सोच रही थी। इस वक्त भीतर ही भीतर गुस्से में घूट कर रह गई।" उसे पति से इस बात का उपालम्भ है कि उन्होंने अधिकारपूर्वक खाना बनाने के लिए क्यों नहीं कहा ? सुपन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। यह उससे क्षमा–प्रार्थी से क्यों बात कर रहे हैं–"हँसकर क्यों नही कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना–वाना। और वह चुप रही।" इस प्रकार उसके हृदय में आत्म–स्वाभिमान की ज्वाला धधकती है और कहानी में अनेक स्थलों पर वह उद्दीप्त हो उठी है।

'पत्नी' कहानी में सुनन्दा अशिक्षित, अल्पज्ञ, सरलता की जीवन्त प्रतिमूर्ति और घरेलू किस्म की नारी के रूप में चित्रित हुई है। उसके पति कालिन्दी चरण और उसके मित्र कमरे में वार्तालाप में लीन है, उसके पति अपने मित्रों के साथ क्यों और क्या बातें कर रहे हैं। कहानीकार उसकी अल्पज्ञता का चित्रांकन करते हुए लिखता है–"उसे जोश का कारण समझ में नहीं आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है–स्पृहणीय और मनोरम और हरियाली। वह भारत माता की स्वतन्त्रता को समझना चाहती है, पर उसको न भारत माता समझ में आती है, न स्वतन्त्रता समझ में आती है। उसे इन लोगों की इन जोरों की बातचीत का मतलब भी समझ में नहीं आता। फिर भी उसमें उत्साह की बड़ी भूख है। ×× उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी ? सोचती हूँ, कम पढ़ी हूँ, तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है ? अब तो पढ़ने को मैं तैयार हूँ।" इस प्रकार स्पष्ट है कि वह सरलता–सादगी की प्रतिमूर्ति, अल्पज्ञ और अशिक्षित नारी है। उसे इन सबका जोर–शोर से बोलना भी अच्छा नहीं लगता।

सुनन्दा का एकमात्र पुत्र नायक कालिन्दी चरण की बेपरवाही के कारण असामयिक काल–कवलित हो जाता है। इस प्रकार एक ओर उसका मातृत्व खंडित हो चला है और दूसरी ओर वह पति–उपेक्षिता व तिरस्कृता है। इसीलिए बार–बार रह–रहकर उसके पुत्र की मधुर स्मृतियां उसे कचोटती हैं–"उसका मन कितना भी इधर–उधर डोले, पर अकेली जब होती है, तब भटक–भटककर वह मन अनत में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुंचता है। तब उसे बच्चे की बड़ी–बड़ी बातें याद आती हैं। वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी–छोटी अंगुलियाँ और नन्हे–नन्हें ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं और सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है।" बच्चें की मधुर स्मृतियां बार–बार उसे मथ डालती है तथा उसके मरने की बात उसके स्मृति–पटल पर शाश्वत रूप से विद्यमान रहती है और उसका चित्त बेबस हो जाता है। वह बार–बार पुत्र की स्मृतियों से विह्वल होकर अपनी आँखें पोंछती रहती है।

सुनन्दा पति कालिन्दी की उपेक्षा से खीझ उठती है और व्यथित हो जाती है। कालिन्दी के यह न पूछने पर कि तुम क्या खाओगी ? वह अत्यधिक व्याकुल व खिन्न हो उठती है। वह स्पष्ट स्वीकारती है–"उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम

क्या खाओगी ? क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊं और उनके मित्र भूखे रहें। पर पूछ लेते तो क्या था। इस पर उसका मन टूटता–सा है। मानो उसका जो तनिक–सा मन था, वह भी कुचल गया हो। पर वह रह–रहकर अपने को स्वयं अपमानित कर लेती हुई कहती है–"छि, सुनन्दा, तुझे ऐसी जरा–सी बात का अब तक ख्याल होता है। तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक दिन भूखा रहने का तुझे पुण्य मिला।" इसी प्रकार कालिन्दी अपनी भोली–भाली सरलता व सादगी की जीवन्त प्रतिमा सुनन्दा को अपनी सनकों का शिकार बनाता है और उसे पति–उपेक्षा, अनादर व तिरस्कार मिलता है।

यद्यपि वह अशिक्षित है, परन्तु विचारवान् भी है और कहानीकार लिखता है–"वह जानती है कि जिसे कहते हैं, वह सरकार उनके इस तरह के कामों से बहुत नाराज है। सरकार, सरकार है। उसके मन में कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि 'सरकार' क्या होती है ? पर यह जितने हाकिम लोग हैं, वे बड़े जबरदस्त होते हैं और उनके पास बड़ी–बड़ी ताकतें हैं। इतनी फौजें, पुलिस के सिपाही और मैजिस्ट्रेट और मुन्शी और चपरासी और थानेदार और वाइसराय, ये सब सरकार ही हैं। इन सबसे कैसे लड़ा जा सकता है ? हाकिम से लड़ना ठीक बात नहीं।" और सुनन्दा स्पष्ट कहती है कि कालिन्दी चरण सरकार से लड़ने में ही सब कुछ भुला बैठा है। इतना ही नहीं उसे उनके जोर से बोलने में भी आपत्ति है, क्योंकि खुफिया पुलिस का एक आदमी उनके घर के बाहर रहता है और वह इनकी सारी सुन–समझ लेता है। इसीलिए उनको जोर से नहीं बोलना चाहिए।

## IV. उद्देश्य

*श्रेष्ठ कहानीकार श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित 'पत्नी' कहानी में नारी के यथार्थ–विद्रोह के चित्र उकेरे हैं।* **श्री रमाप्रसाद 'पहाड़ी'** ने 'पत्नी' कहानी के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए लिखा है–" 'पत्नी' शीर्षक कहानी में भारतीय नारी के विद्रोह का सजीव चित्रण मिलता है। पति की अनुदारता क प्रति उन्होंने भारतीय नारी का आदर्श और उज्ज्वल व्यक्तित्व भले ही उभारा हो, वे उसकी घुटन और पीड़ा का समाधान करने में असफल रहे हैं। कथानक न होने पर भी अपनी शैली के आकर्षण में वे एक साधारण घटना को प्राणवान् बनाने में सफल हुए हैं, पर 'पत्नी' लेखक की 'प्रतीकमयी' नारी मात्र बन गई है, परिवार को एक फर्नीचर।" लेखक प्रस्तुत कहानी के माध्यम से एक महत्त्वपूर्ण ज्वलन्त संदेश भी देना चाहता है कि हिंसा–आतंकवाद आदि से समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। इसीलिए कालिन्दी चरण अपने मित्रों के समक्ष बहस में स्पष्ट घोषणा करता है–"हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए। आतंक से विवेक कुण्ठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है तथा उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियां श्रेष्ठ नहीं हैं। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है। उसे आतंकित करना नहीं।" इसी प्रकार कालिन्दी चरण जैनेन्द्र कें विचारों का संवाहक है तथा उसके प्राणों में देश–प्रेम की धुन बहुत गहरे तक समायी हुई है। इसीलिए वह हमेशा क्रांतिकारियों, गतिविधियों में संलिप्त रहता है तथा पत्नी कालिन्दी की ओर भी यथोचित ध्यान नहीं देता तथा वह स्वयं को उपेक्षिता–तिरस्कृता स्वीकारती है। चिरकाल से शोषित नारी के अकेलेपन को कहानीकार ने बड़ी कुशलता और धार्मिकता के साथ चित्रण किया है। भारतीय नारी किस प्रकार घर की चारदिवारी में कैद होकर अपने जीवन को तिल–तिल करके गलाती है–इसका सजीव और जीवन्त चित्रांकन है 'पत्नी' नामक कहानी में।

*कहानी के प्रारम्भ में ही सुनन्दा चौके में अंगीठी के समक्ष बैठी हुई है तथा अंगीठी की आग राख हुई जा रही है तथा* साथ ही उसका जीवन भी राख हुआ जा रहा है। लेखक ने मध्यवर्गीय नारी की वस्तु स्थिति का आकलन करते हुए, उसके जीवन जीने की परिस्थितियों का सजीव चित्रांकन करता है। सुनन्दा प्रातःकाल से जलती अंगीठी के समक्ष बैठकर तपस्या करती हुई पति की प्रतीक्षा में बैठी हुई है और बार–बार बुझती अंगीठी में कोयले डालती रहती है। वह अन्ततः बोर हो जाती है और स्पष्ट कहती है–"सोचने को तो यही है कि कोयले न बुझ जायें। वह जपने कब आयेंगे। एक बज गया है। कुछ हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए।...और सुनन्दा बैठी है। वह कुछ कर नहीं रही है। जब वह आयेंगे तब रोटी बना देगी। जाने कहां–कहां देर लगा देते हैं और कब तक बैठूं। मुझसे नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आए है और उसने झल्लाकर तवा अंगीठी पर रख दिया। नहीं, अब वह रोटी बना ही देती। इस प्रकार प्रातःकाल से ही प्रतीक्षा में बैठी सुनन्दा अब लेती है और रोटी बनाना प्रारम्भ कर देती है। वास्तव में यह अशिक्षित सुनन्दा घर की चारदिवारी में ही बन्द रहती है। वह माथे पर अंगुलियां टिकाकर बैठी–बैठी सूनी सी देख रही है तथा सुन रही है कि उसके पति कालिन्दी चरण अपने मित्रों के साथ क्या बातें कर रहे हैं। वह अल्पज्ञ–अशिक्षित है, अतः इसलिए उसे उनकी गहन–गंभीर बातें समझ में *नहीं आती। कहानीकार* लिखता है–"उसे जोश का कारण समझ में नहीं आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है–स्पृहणीय और मनोरम और हरियाली। वह भारत माता की स्वतंत्रता को समझना चाहती है, पर *उसको न भारत माता समझ* में आती है, न स्वतंत्रता समझ में आती।" यद्यपि वह अल्पज्ञ है, अशिक्षित है, परन्तु फिर भी उत्साह की उसमें बड़ी भूख है।

वह भी चाहती है कि उसका पति उससे देश की बातें करे। वह स्वीकारती है कि उसमें बुद्धि जरा कम है, परन्तु वह धीरे-धीरे समझने लगेगी। यदि वह अशिक्षित है तो उसमें उसका क्या कोई कसूर नहीं है। लेकिन सुनन्दा आदर्श भारतीय नारी है और उसका कार्य तो अपने पति के चरणों की सेवा करना है। इसीलिए वह स्पष्ट कहती है–"खैर, उसने सोचा है, उसका काम तो सेवा है। बस, यह मानकर उसने जैसे कुछ समझने की चाह छोड़ दी है। वह अनायास भाव से पति के साथ रहती है और कभी उसके राज के बीच में आने की नहीं सोचती।" इस प्रकार वह हमेशा अपने पति की चिन्ता में लीन रहती है कि उसे न तो अपने तन की फिक्र है और न मेरी फिक्र है। मेरी तो चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु अपने तन का ध्यान तो अवश्य रखना चाहिए। इसी लापरवाही के कारण ही उसका एकमात्र पुत्र असामयिक काल–कवलित हो जाता है। तभी वह अपने पुत्र की मधुर स्मृतियों में खो जाती है और असीम–अनन्त पीड़ा–विषाद से भर जाती है। उसकी मधुर स्मृतियां बार–बार आ–आकर उसके स्मृति–पटल को कौंधती है। यथा–"वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी–छोटी अंगुलियाँ और नन्हे–नन्हे ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं और सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है।" तभी विषाद–पीड़ा के सागर में डूबती–उतरती सुनन्दा से कालिन्दी आकर पूछता है कि खाने वाले चार हैं, खाना हो गया तो, उसका क्रोध–विद्रोह एकदम तीव्र हो उठता है, क्योंकि यह उससे क्षमा–प्रार्थी से क्यों बात कर रहे हैं–हँसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गेर हूं। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूं कि इनके ही काम में लगी रहूं। मैं कुछ नहीं जानती खाना–वाना। यहां सुनन्दा का स्वाभिमान जागृत हो उठता है और कालिन्दी के प्रश्नों के उत्तर न देकर अपना विरोध–विद्रोह दर्ज कराती है। वह अपने विद्रोह को इस प्रकार प्रकट करना चाहती है–"सुनन्दा के जी में ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को खूब जोर से फेंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे–बैठे इन्हें अपने पति के बारे में कैसी प्रति की और भलाई की बात सोच रही थी। इस वक्त भीतर ही भीतर गुस्से में घुटकर रह गई।" इस प्रकार अपना आक्रोश–विरोध प्रकट करने के लिए वह कालिन्दी चरण के प्रश्नों का उत्तर नहीं देती तथा मौन रह कर अपना आक्रोश प्रकट करती है। कालिन्दी सुनन्दा के पास से वापिस आने पर कहता है कि आतंक जरूरी भी है। लेकिन बाद में कालिन्दी खाना परोसकर अन्दर कमरे में रख आती है, जिससे कालिन्दी चरण अपना अपमान समझता है, क्योंकि उसने मित्र को कहा कि भोजन नहीं बना है। इस प्रकार सुनन्दा अपनी अन्तर्द्वन्द्व की भावना को भी कहानी में अनेक स्थलों पर उजागर करती है। इसका अन्तर्द्वन्द्व इस प्रकार से उजागर हुआ है–"सुनन्दा ने अपने लिए कुछ बचाकर नहीं रखा था। उसे यह सूझा न था कि उसे भी खाना है। अब कालिन्दी के लौटने से उसे मालूम हुआ कि उसे अपने लिए कुछ भी नहीं बचाकर रखा है। वह अपने से रुष्ट हुई। उसका मन कठोर हुआ। इसीलिए नहीं कि क्यों उसने खाना नहीं बचाया। इस पर तो उसमें स्वाभिमान का भाव जागता है। मन कठोर यों हुआ कि वह इस तरह की बात सोचती ही क्यों है ? छिः यह भी सोचने की बात है और उसमें कड़वाहट भी फैली। हठात् उसके मन को लगता ही है कि देखो उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी ? क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊं और उनके मित्र भूखे रहें। इस बात पर उसका मन टूटता–सा है। माना उसका जो तनिक–सा मन था, वह भी कुचल गया हो।" तभी वह बर्तन साफ करने लगती है, लेकिन तभी सोचती है कि बर्तन तो बाद में भी साफ किए जा सकते हैं, उन्हें किसी चीज की आवश्यकता हुई तो। तभी कालिन्दी अचार हेतु आवाज लगाते हैं और सुनन्दा तुरन्त लेकर आती हैं तभी कालिन्दी स्निग्ध वाणी में पानी की मांग करते हैं जिसे वह तुरन्त पूरा करती है। इस प्रकार पूरी कहानी में सुनन्दा के मन में भावों, अन्तर्द्वन्द्वों का सुन्दर–सजीव चित्रांकन हुआ है। कहीं उसका विरोध–विद्रोह प्रकट हुआ है तो कहीं उसकी आत्मीयता और स्नेह।

इसी प्रकार प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने देशप्रेम, राष्ट्रीय भावना का भी महत्त्वपूर्ण संदेश दिया है। उसका स्पष्ट कहना है कि भारत माता को स्वतंत्र कराना है तथा उसके लिए हिंसा–अहिंसा, नीति–अनीति को देखने की आवश्यकता नहीं है। साधन के लिए चिन्ता नहीं, साध्य की पूर्ति होनी चाहिए। इसीलिए कहानीकार संदेश सम्प्रेषित करता है–"भारत माता को स्वतंत्र करना होगा और नीति–अनीति, हिंसा–अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुंह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है।" लेखक स्पष्ट घोषणा करता है कि स्वतंत्रता–प्राप्ति हेतु प्राणों और बाल–बच्चों का मोह भी त्यागना होगा, न धन–लिप्सा और न बाल–बच्चों का प्रेम उन्हें उनके उद्देश्य–लक्ष्य से हटा नहीं सकता– "आतंक ! हां, आतंक ! हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा। लोग ही जो कहते हैं, आतंकवादी मूर्ख हैं, वे बच्चे हैं, हाँ, वे अच्चे और मूर्ख। उन्हें बुजुर्गों और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल–बच्चों का । हमें नहीं गरज धन–दौलत की। तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नहीं हैं। जुल्म को मिटाने के लिए सब कुछ जुल्म होगा ही। उससे वे डरे जो डरते हैं। डर हम ज़वानों के लिए नहीं है।

इस प्रकार कहानीकार ने राष्ट्रीय भावना को भी 'पत्नी' अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसके साथ ही कहानीकार क्रांतिकारियों की देश–प्रेम की धुन तथा उनके संतुलित और आवेशपूर्ण देशभक्ति की विडम्बना का भी चित्रांकन करता है और साथ ही दुष्परिणामों की ओर भी कहानीकार समुचित प्रकाश डालता है। कालिन्दी चरण के प्राणों में देशभक्ति की धुन बहुत गहरे समायी हुई है, इसीलिए वह परिवार–पत्नी और पुत्र की ओर ध्यान नहीं देता तथा उसकी बेपरवाही के कारण ही उसका पुत्र असामयिक काल–कवलित हो जाता है तथा सुनन्दा का मातृत्व खंडित हो जाता है। इस प्रकार सुनन्दा की पति उपेक्षिता व तिरस्कृता बनाने में तथा उसका मातृत्व खंडित करने में कालिन्दी का महत्वपूर्ण हाथ है। भले ही वह देशभक्त है, समाज–सेवक है, परन्तु एक असफल पिता व पति है। पारिवारिक दायित्वों व कर्त्तव्यों की पूर्ति करने में असफल रहता है। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** के ये शब्द सारांश रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़े हैं–"जैनेन्द्र की कहानियों में न तो घटना की प्रधानता रहती है, न ही उद्देश्य की वस्तुतः उनको इच्छा मानवी मन के सूक्ष्म रहस्यों के भेदन की है–जिसके लिए घटनाओं की योजना की जाती है। पर यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि घटनाओं एवं कथातत्व के अभाव के बावजूद पात्रों के स्वभाव, संस्कार और परिवेश के सूक्ष्म, जटिल और रहस्यपूर्ण सम्बन्धों को उजागर करते हुए जैनेन्द्र की कहानियां बोझिल नहीं होती, बल्कि उसमें सफाई और सहजता बिना किसी अनावश्यक विस्तार, बिना लेखकीय हस्तक्षेप, बिना उलझाव के दृष्टिगोचर होती है।"

## व्याख्या

***1. "भारत माता को स्वतंत्र कराना होगा और नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुँह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है। आतंक, हाँ आतंक ! हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा ? लोग हैं जो कहते हैं, आतंकवाद मूर्ख है, वे बच्चे हैं। हाँ, वे बच्चे हैं और मूर्ख। उन्हें बुजुर्गों और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल-बच्चों का। हमें नहीं गरज धन-दौलत की तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नहीं ? जुल्म मिटाने के लिए कुछ जुल्म होगा ही। उससे वे डरे जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक, कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने भारतीय नारी के विद्रोह का सजीव चित्रण किया है तथा साथ ही राष्ट्रीय भावना को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। सुनन्दा के पति कालिन्दी देशभक्त और समाज सेवक हैं। उनके साथ उनके तीन मित्र भी घर पर आते हैं और स्वतंत्रता प्राप्ति के विषय पर अपने–अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं–

**व्याख्या** – भारत माता को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कराने हेतु नीति–अनीति और हिंसी–अहिंसा देखने का यह समय नहीं है, क्योंकि हम लोगों के लिए साध्य महत्त्वपूर्ण है साधन नहीं। हमारे लिए स्वतंत्रता–प्राप्ति महत्त्वपूर्ण है। चाहे उसके लिए नीति का पालन किया गया हो या अनीति का, चाहे हिंसा का सहारा लिया गया हो या अहिंसा का। साध्य प्रमुख है, साधन नहीं। मीठी बातें अर्थात् अहिंसा का सहारा लेकर देख लिया है तथा उससे कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि मीठी बातों से बाघ के मुंह से सिर नहीं निकाला जा सकता है, सिर निकालने के लिए तो उस बाघ को मारना ही पड़ेगा। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु हिंसा का सहारा लेना ही पड़ेगा। आतंक से हमें कभी भी डरना नहीं चाहिये, बल्कि आतंकवाद का सहारा लेकर ही यहाँ से अंग्रेजी शासकों को भगाया जा सकता है। लोग जो यह कहते हैं कि आतंकवाद का सहारा लेना उचित नहीं है या आतंकवादियों की आलोचना करते हैं, वे मूर्ख हैं तथा अभी अपरिपक्व है, नादान है। उन्हें वास्तविकता का ज्ञान नहीं है। उनमें परिपक्वता और ज्ञान होना चाहिए तभी वे सही मत या विचारधारा प्रकट कर सकेंगे। हम में जीने की कामना नहीं है, क्योंकि पराधीन रहने से मरना भला है। हमें अपने बाल–बच्चों का भी मोह नहीं है जिससे हम अपनी गतिविधियों से हट जाएं। बाल–बच्चों का मोह या प्रेम अपने रास्ते से हटा सकता है। न हमें धन–दौलत की आवश्यकता है और हम धन–दौलत के लिए आतंकवादियों में सम्मिलित हुए हैं। जब हमें न बाल–बच्चों का मोह है, न जीवन की चाह है और न धन की कामना है तब हम मरने के लिए भी स्वतंत्र हैं। हम अपने प्राणों को न्यौछावर करने के लिए स्वतंत्र हैं। यदि हम अन्याय–जुल्म को मिटाना चाहते हैं तो उसके लिए जुल्म का सहारा लेना पड़ेगा तथा कुछ न कुछ तो जुल्म अवश्य होगा ही। जुल्म करने से वे डरे जो वास्तव में डरपोक हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं बना है तथा हम जुल्म को मिटाने के लिए हिंसा का सहारा लेने से भयभीत नहीं होते।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल तथा सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. उर्दू के शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

3. साध्य की महत्ता पर बल डाला गया है, साधन चाहे कुछ भी हो।

4. लेखक की राष्ट्रीय भावना प्रकट हुई है।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

***2. "उसे जोश का कारण नहीं समझ में आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है-स्पृहणीय, मनोरम और हरियाली। वह भारत माता की स्वतंत्रता को समझना चाहती है, पर उसको न भारत माता समझ में आती है, न स्वतंत्रता समझ में आती है। इसे उन लोगों की इन जोरों की बातचीत का मतलब ही समझ में नहीं आता। फिर भी उत्साह की उनमें बड़ी भूख है। जीवन की हौस उसकी बुझती-सी जा रही है, पर वह जीना चाहती है।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक, कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। 'पत्नी' कहानी में मध्यवर्गीय भारतीय नारी की पीड़ा–विषाद, कुण्ठा और घुटन का चित्रण हुआ है। सुनन्दा के पति कालिन्दी चरण देशभक्त व समाजसेवी हैं। अतः क्रांतिकारियों का तांता उनके घर में लगा रहता है जिसके कारण वे आपस में भारत माता–स्वतंत्रता, सरकार, लड़ाई आदि विषयों पर वार्तालाप करते हैं। सुनन्दा, अशिक्षित, अल्पज्ञ, सीधी–सादी व भोली–भाली नारी है। उसे इन गहन बातों का अर्थ समझ में नहीं आता, यद्यपि वह जिज्ञासु है और इनके अर्थों को जानना चाहती है। कहानीकार स्पष्ट लिखता है–

**व्याख्या** – देश–भक्त कालिन्दी चरण और उनके मित्र कई बार पूरे जोश के साथ वार्तालाप में लिप्त रहते हैं और कई बार जोर से बोलने लगते हैं, लेकिन सुनन्दा को उनके जोश का कारण समझ में नहीं आता। उत्साह नाम भाव तो सुनन्दा के लिए अपरिचित और अनजाना है तथा उनके जीवन में उत्साह कभी रहा ही नहीं। उत्साह, जोश आदि सभी बातें उसके लिए बहुत दूर की वस्तु है और जिस प्रकार से हरियाली चाहे दूर हो या पास व्यक्ति को सुन्दर–रुचिकर और अच्छी लगती है, ठीक इसी प्रकार से उसे ये सारी बातें अच्छी लगती है, परन्तु उसकी समझ से बाहर की वस्तु है। वास्तव में वह भारत माता की स्वतंत्रता को समझना, जानना चाहती है, क्योंकि वह जिज्ञासु है और फिर उसके पति एवं उसके मित्र प्रतिदिन इसी का वर्णन करते हैं। अतः उसे भी इसके बारे में जानना चाहिए। न उसे 'स्वतंत्रता' शब्द का अर्थ समझ में आता है, क्योंकि वह स्वयं भी पराधीन है। जब उसके पति कालिन्दी व उसके मित्र इन विषयों पर चर्चा करते हैं तो वह इन सबका अर्थ–प्रयोजन–महत्त्व व उद्देश्य समझ नहीं पाती। लेकिन इन सबका अर्थ जानने की जिज्ञासा उसके मन में बरकरार रहती है। लेकिन उसमें उत्साह भावना विद्यमान है। इन सभी बातों को जानने–समझने की जिज्ञासा व उत्साह उसके हृदय में यथावत् बना हुआ है। वह चाहती है कि उसका पति उसके पास बैठकर इन गंभीर बातों के अर्थों को समझाए, लेकिन वे समझा नहीं पाती और वह स्वयं समझ या जान नहीं पाती। उसके मन में किसी प्रकार की कोई इच्छा, कामना या हवस नहीं है और यदि कोई है तो वह स्वतः समाप्त होती जा रही है। लेकिन वह अभी भी जीवन चाहती है, यद्यपि उसका जीवन बदल रहा है। उसे चारदिवारी की कैद में बंद रहना पड़ता है, उसका शोषण होता है और पति–उपेक्षिता–तिरस्कृता तथा मातृत्व–खंडित महिला है।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सहज–सरल एवं सुबोध है। जैनेन्द्र जी ने आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त की है।

2. तत्सम शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं–स्पृहणीय, मनोरम, हौस आदि।

3. स्वतंत्रता पूर्व नारी की दयनीय स्थिति का चित्रांकन किया गया है।

4. विश्लेषण अत्यन्त सजीव, मार्मिक व प्रभावशाली बन पड़ा है।

5. सुनन्दा के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

6. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

***3. "वह जानती है कि जिसे कहते हैं, वह सरकार उनके इस तरह के कामों से बहुत नाराज है। सरकार, सरकार है। उसके मन में कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि 'सरकार' क्या होती है ? पर यह जितने हाकिम लोग हैं, वे बड़े जबरदस्त होते हैं और उनके पास बड़ी-बड़ी ताकतें हैं। फौजें, पुलिस के सिपाही और मैजिस्ट्रेट और मुन्शी***

***और चपरासी और थानेदार और वाइसराय, ये सब सरकार ही हैं। इन सबसे कैसे लड़ा जा सकता है ? हाकिम से लड़ना ठीक नही है, पर ये उसी से लड़ने में तन-मन बिसार बैठे हैं।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण बहुचर्चित मनोवैज्ञानिक, कहानीकार, स्वनामधन्य श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। 'पत्नी' में भारतीय नारी के विद्रोह का सजीव चित्रण मिलता है तथा साथ ही उसकी दयनीय अवस्था पर भी प्रकाश डाला गया है। कालिन्दी अपनी पत्नी सुनन्दा को पूरा महत्त्व प्रदान नहीं करते जिसके कारण वह स्वयं को उपेक्षित और तिरस्कृत महसूस करती है। वह अशिक्षित, अल्पज्ञ और अज्ञानी है जिसके कारण उसे सरकार, भारत माता, स्वतंत्रता जैसे महत्त्वपूर्ण और सामान्य–सी बातों का भी ज्ञान नहीं है। कहानीकार उसके बारे में लिखता है–

**व्याख्या** – सुनन्दा यद्यपि सरल, भोली–भाली और अशिक्षित, अल्पज्ञ नारी है तथापि वह सरकार के स्वरूप, महत्ता और उसके प्रयोजन को नहीं जानती, लेकिन इतना अवश्य जानती है कि जिसे सरकार कहते हैं, उनके पति के क्रांतिकारी कार्यों के कारण नाराज है। वह जानती है कि उसके पति देशभक्त हैं और पराधीनता की बेड़ियों को उतार फैंकने के लिए कटिबद्ध है तथा सरकार–विरोधी कार्यों में लिप्त रहते हैं। इसलिए सरकार उनके पति के कार्यों के कारण बहुत नाराज है और इसीलिए उनके घर के बाहर खुफिया विभाग का आदमी हर समय खड़ा रहता है। लेकिन सरकार तो सरकार है और सरकार के बारे में उसके मन में कोई स्पष्ट भावना या धारणा नहीं है कि सरकार का उद्देश्य क्या हे ? इसकी महत्ता व प्रयोजन क्या है ? तथा इसका कार्यक्षेत्र क्या है ? लेकिन इतना उसको पता था कि जितने ये बड़े–बड़े हाकिम लोग हैं, इनके पास असीम शक्तियां हैं और ये बड़े शक्तिशाली होते हैं तथा वे बड़े प्रभावशाली होते हैं और सरकार इन हाकिमों, फौज, पुलिस के सिपाही, मजिस्ट्रेट, मुन्शी और चपरासी से बनती है। ये थानेदार और वायसराय भी सरकार के प्रमुख अंग हैं। इनके पास अधिक और असीम शारीरिक–वैधानिक शक्तियां विद्यमान हैं। अतः इन सबसे भला कैसे लड़ा जा सकता है ? क्योंकि ये सब तो शक्तिशाली हैं, इनके पास भारी सत्ता और शक्ति है। इसीलिए इनसे लड़ना तो प्राणों को संकट में डालना है। स्वामी शक्तिशाली सरकार से लड़ना ठीक नहीं है, क्योंकि इनसे लड़ना और जीतना सर्वथा असम्भव कार्य है और फिर ये क्रान्तिकारी या कालिन्दी सरकार से लड़ने में ही अपना तन–मन भुला बैठे हैं। सरकार इनसे लड़ने में ही वे इतने जोश में आ जाते हैं और ऊंचे स्वर में बोलने लगते हैं। इसे लगता है कि सरकार से लड़ने में तो अपने प्राणों के प्रति मोह छोड़ना है।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। हिन्दी–उर्दू मिश्रित आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. सुनन्दा की उदासीनता–कुण्ठा, घुटन का भी सजीव चित्रण हुआ है।
3. सरकार की असीम, अनन्त शक्तियों का चित्रांकन हुआ है।
4. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।
5. सुनन्दा की चिन्ता अभिव्यक्त हुई है कि सरकार से लड़ने में कालिन्दी का अहित हो सकता है।
6. सुनन्दा का आदर्श पत्नीत्व भी अभिव्यक्त हुआ है।

***4. "वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी-छोटी अंगुलियाँ और नन्हे-नन्हें ओठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं और सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है। ओह ! यह मरना क्या है ! इस मरने की तरफ उससे देखा नहीं जाता। यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है-उसको मरना है, उसके पति को मरना है, पर उस तरफ भूल से छन-भर देखती है तो भय से डर जाती है। यह उससे सहा नहीं जाता। बच्चे की याद से मथ उठती है।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक, कहानीकार स्वनामधन्य श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने नारी की विद्रोह भावना व साथ ही उसकी दयनीय अवस्था को चित्रित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। कालिंन्दी देश–भक्त और समाज–सेवी है तथा देश–प्रेम उसके मन–प्राणों में बहुत गहरे तक समाया हुआ है। उसी की बेपरवाही के कारण उसका एकमात्र पुत्र असामयिक काल–कवलित हो जाता है। सुनन्दा अपने पति को क्रांतिकारी गतिविधियों के बारे में चिन्तन करती है कि वह अपना तन–मन भी बिसार बैठा है तथा साथ ही न खाने की फिक्र है और न सुख–सुविधा की। सुनन्दा अपने पुत्र की मधुर स्मृतियों में खोयी हुई है। कहानीकार लिखता है–

**व्याख्या** – सुनन्दा को स्मरण हो आता है कि उसका एकमात्र पुत्र उसके पति कालिन्दी की बेपरवाही के कारण असामयिक काल–कवलित हो जाता है। उसे स्मरण हो आता है कि अपने पुत्र की प्यारी–प्यारी, गोल–गोल, चंचल आँखें, उसी

छोटी–छोटी अंगुलियां और नन्हे–नन्हें कमल की पंखुड़ियों के सदृश ओंठ याद आते हैं। उसे उसकी बाल सुलभ–क्रीड़ाएं व अठखेलियां याद आती हैं और सबसे ज्यादा तो उसे उसका मरना याद आता है। बार–बार उस बालक की मृत्यु सुनन्दा के स्मृति–पटल को कौंधती है। वह उसे स्मरण कर अत्यधिक व्याकुल हो उठती है। अचानक वह उसकी मृत्यु का स्मरण कर अत्यधिक व्याकुल एवं व्यथित हो उठती है। उसका मरना भी कितना दुःखदायी, हृदय–विदारक था कि उसकी तरफ देखा भी नहीं जाता था। उसकी मृत्यु के दृश्य का स्मरण कर वह मर्माहत हो उठती है। यद्यपि उसको इस बात का भली–भाँति ज्ञान है कि इस संसार में जो शरीर धारण करके आया है, उसको अवश्य मरना है। वह भली–भाँति जानती है कि उसे भी मरना है, उसके पति को भी एक दिन यह नाशवान् शरीर छोड़ना है–संसार में सबको मरना है, परन्तु अपने एकमात्र पुत्र की मृत्यु की ओर भूल से भी देख लेती है तो वह भय से डर जाती है। उसकी स्मृति–पटल पर उभरी पुत्र की मृत्यु का हृदय–विदारक, मर्मान्तक दृश्य को देखने मात्र से ही वह भय से कांप उठती है। यह उससे देखा नहीं जाता और न ही उसमें उसे सहने की शक्ति है। बच्चे का स्मरण करके वह अत्यधिक व्याकुल और व्यथित हो उठती है तथा पीडा उसके तन–मन को मथ डालती है।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सहज तथा सरल है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

3. करुण–वात्सल्य रस की छटा एक साथ अवलोकनीय है।

4. कालिन्दी की बेपरवाही और सुनन्दा की पुत्र के प्रति आत्मीयता का चित्रण मिलता है।

5. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

6. छोटे–छोटे वाक्यों द्वारा गहन, प्रभावशाली प्रभाव का चित्रण हुआ है।

***5. "आतंक से विवेक कुण्ठित होता है। और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं हैं। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं। सरकार व्यक्ति के और राष्ट्र के विकास के ऊपर बैठकर उसे दबाना चाहती है। हम इसी विकास के अवरोध को हटाना चाहते हैं-इसी को मुक्त करना चाहते हैं। आतंक से यह काम नहीं होगा, जो शक्ति के मद में उन्मत्त है, असली काम तो उसका मद उतारने और उसमें कर्त्तव्य भावना का प्रकाश जगाने का है। हम स्वीकार करें कि मद उसका टक्कर खाकर चोट खाकर ही उतरेगा। यह चोट देने के लिए हमें अवश्य तैयार रहना चाहिए, पर वह नोचानोची उपयुक्त नहीं। इससे सत्ता का कुछ बिगड़ना तो नहीं, उल्टे उसे अपने औचित्य पर संतोष ही आता है।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक, कहानीकार श्री जैनेन्द्र द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में नायक कालिन्दी चरण के प्राणों में देशभक्ति की धुन बहुत गहरे तक समायी हुई है। कालिन्दी चरण और उसके देशभक्त मित्र इस विषय पर वार्ता कर रहे हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति में उन्हें उग्रता की अधिक सहायता लेनी चाहिए या नहीं। लेकिन कालिन्दी चरण का मत था कि हमें धीरे–धीरे आतंकवाद या हिंसक प्रवृत्तियों का परित्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार नायक के मित्र हिंसा के समर्थक और नायक कालिन्दी चरण अहिंसा के पक्षधर हैं। लेखक की धारणा है–

**व्याख्या** – जैनेन्द्र कमार की धारणा है कि आतंक से ज्ञान, विवेक या सोचने–समझने की शक्ति का ह्रास होता है और आतंक का सहारा लेने वाला व्यक्ति या तो हमेशा आवेश में या जोश में रहता है या फिर उसके भय से भयभीत रहता है–दोनों ही स्थितियां श्रेष्ठ, उचित नहीं हैं। सभी देशभक्तों का उद्देश्य है कि अंग्रेजी सरकार का विवेक जाग्रत हो, हम उसे आतंकित नहीं करना चाहते। हमें अंग्रेज़ी सरकार के विवेक को जाग्रत करके उसे उसके कर्त्तव्यों का स्मरण कराना चाहते है। अंग्रेजी सरकार दमन–चक्र चलाकर लोगों को जबरदस्ती दबाना चाहती है जो कि अनुचित है; जबकि हम देशभक्त उस विकास के ऊपर लगे अवरोध को हटाकर भारतवासियों का सम्यक् विकास करवाना चाहते हैं। हम भारतवासियों को पराधीनता से मुक्त करवाना चाहते हैं। कालिन्दी चरण की धारणा है कि यह कार्य आतंक से संभव नहीं होगा। जो व्यक्ति शक्ति के मद के कारण मदमस्त हो गए हैं, उनमें सत्ता का नशा छा गया है। असली कार्य है कि उनके ऊपर से सत्ता का नशा उतारना और सरकार में कर्तव्य भावना एवं विवेक उत्पन्न करना। हम स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी सरकार में कर्त्तव्य का मद किसी बड़ी चोट से ही उतर पायेगा और यह हमें चोट देने के लिए अवश्य तैयार रहना चाहिए, परन्तु सरकार को छोटी–मोटी कार्रवाई

करके तिक्त करना उचित नहीं, क्योकि उससे उसकी दमन कार्रवाई और अधिक बढ़ जाएगी। इससे सरकार का कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, बल्कि उल्टा वह अपनी दमनात्मक कार्रवाई को उचित ठहराने लगेगी।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है, संस्कृत के तत्सम शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

2. कालिन्दी चरण के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।
3. कालिन्दी चरण ने आतंक, आवेश को नकार कर विवेक और सूझ–बूझ का समर्थन किया है।
4. भावपक्ष ओर कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।
5. लेखक ने अहिंसा के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।
6. भाषा शैली विवेचनात्मक और मुहावरेदार है।

# वापसी

## (उषा प्रियंवदा)

### तात्त्विक विवेचन

'वापसी' उषा प्रियंवदा की ख्याति प्राप्त कहानी है। यह कहानी हिन्दू परिवारों के प्रचलित सम्बन्धों और मूल्यों के टूटने और नये मूल्यों को बनाने को तटस्थता के साथ चित्रित करती है। आज परिवार–संस्थान तेजी से टूट रहा है। पिता–पुत्र, माता–पुत्र, पिता–पुत्री, माता–पुत्री, पति–पत्नी, सास–बहू, ससुर–बहू, भाई–बहिन के सम्बन्धों और मूल्यों में तेजी से बदलाव आ रहा है। 'वापसी' इन्हीं पारिवारिक सम्बन्धों के टूटने और नये मूल्यों के बनने की कथा है। प्रस्तुत कहानी का तात्त्विक विवेचन इस प्रकार है–

**1. कथावस्तु (कथानक) -**

'वापसी' कहानी का प्रारम्भ अत्यधिक सुनियोजित है। कहानीकार ने गजाधर बाबे के परिवार का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। 'वापसी' कहानी के प्रारम्भ में गनेशी को गजाधर बाबू का बिस्तर बाँधते हुए प्रस्तुत किया है। गनेशी अपनी कृतज्ञता से दबा है। गजाधर बाबू ने कमरे में जमा सामान पर एक नजर दौड़ाई–दो वक्स, डोलची, बाल्टी–"यह डिब्बा कैसा है गनेशी ?" उन्होंने पूछा। इन प्रारम्भिक पंक्तियों से ही पाठकों को भासित होने लगता है कि गजाधर बाबू की मानसिक स्थिति कुण्ठित है। बहुत समय पूर्व की अपनी पत्नी की स्मृति पुनः ताजा हो जाती है। नौकरी पर न जाने कितने पुरुषों की मानसिक स्थिति शोचनीय नहीं होती है। गजाधर बाबू को अपने रेलवे क्वार्टर को छोड़ने में कितना दुःख होता है ? परन्तु बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह ऊपर उठकर विलीन हो जाता है। रिटायर होने के बाद वह बहुत खुश थे। इन वर्षों में अधिकांश समय अकेले रहकर काटा था। उन्हें अपनी पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद आ जाती हैं। एक ओर पाठक गजाधर बाबू की मनःस्थिति को जानने के लिए जहाँ उत्सुक हैं वहाँ उनकी पत्नी कि वियोग स्थिति को समझने की जिज्ञासा भी उसमें सजग हो उठती है। कहानी के प्रारम्भ की सफलता भी बस इसी बात में है कि वह पाठकों को जिज्ञासु बना दे।

गजाधर बाबू और गनेशी के लघु संवाद के अनन्तर इस कहानी की कथा का स्वाभाविक विकास होता है, लेकिन विकास बहुत ही मन्थर गति से होता है। अपनी रेलवे की सेवा से निवृत्त हो गजाधर बाबू घर लौटते हैं। गजाधर बाबू को गत जीवन का अपनी पत्नी के साथ साहचर्य याद हो आता है। उनकी पत्नी घर पर पति के वियोग में अपने बच्चों के साथ किस प्रकार जीवन–यापन करती है ? जब गजाधर बाबू घर रहते, उनकी पत्नी रोटियाँ सेंक–सेंककर स्नेहपूर्वक उनको खिलाती। नौकरी से निवृत्त होकर वह अपने घर आते हैं। अमर, उसकी बहू, बसन्ती और नरेन्द्र आदि की स्वतंत्रता में अनैच्छिक हस्तक्षेप ही इस कहानी का चरम विकास है। अमर और उसकी बहू पहले बेरोकटोक रहते थे। परन्तु गजाधर बाबू की उपस्थिति उनको असह्य हो गयी है। बसन्ती के स्वतंत्र भ्रमण और देर रात तम शीला के घर बड़े–बड़े लड़कों के साथ उठने–बैठने में गजाधर बाबू को हस्तक्षेप करना पड़ता। यही नहीं, गजाधर बाबू घर की आर्थिक व्यवस्था पर भी नियंत्रण करने लगे। इसलिए वे घर के नौकर तक को निकाल देते हैं। यही कहानी का चरम विकास माना जा सकता है। गजाधरबाबू अपने को घर में ठीक से व्यवस्थित नहीं कर पाते हैं इसलिए वे घर से जाने की सोचते हैं। सेठ रामजीलाल की चीनी मिल में उनको नौकरी नियुक्ति पत्र मिलता है। यहीं से इस कहानी का उपसंहार प्रारम्भ होता है। कहने को कहा जा सकता है कि 'वापसी' कहानी का उपसंहार अत्यन्त स्वाभाविक है। पाठकों को आभास होता है कि घर में गजाधर बाबू के लिए कोई स्थान नहीं है। उनका अस्तित्व तो धनोपार्जन मात्र के लिए है। अतः वह स्वयं वहाँ से जाने को उद्यत हैं।

गजाधर बाबू ने बिना किसी भूमिका के कहा, "मुझे सेठ रामजीलाल की चीनी मिल में नौकरी मिल गयी है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आयें वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने ही मना कर दिया था।" फिर उन्होंने धीमे स्वर में कहा, "मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूंगा। खैर परसों जाना है। तुम भी चलोगी ?"

बहू ने अमर से पूछा–"सिनेमा ले चलिए न ?" बसन्ती ने उछलकर कहा, "भइया, हमें भी।" गजाधर बाबू की पत्नी के शब्दों को देखो–"अरे नरेन्द्र बाबू जी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।" इस प्रकार कहानी

का अन्त अत्यन्त प्रभावकारी है।

**2. पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण -**

'वापसी' कहानी सामाजिक है। अतः कहानी के पात्र यथार्थ जीवन के परिवेश से सम्बद्ध हैं। वे वर्ग प्रतिनिधि भी हैं और स्वच्छन्द व्यक्ति भी। पात्र संख्या सीमित है। सब मिलाकर सात पात्र हैं–गजाधर बाबू, उनकी पत्नी, अमर और अमर की बहू, गनेशी, बसन्ती और नरेन्द्र। प्रमुख पात्र दो ही हैं–गजाधर बाबू और उनकी पत्नी जिनसे कहानी का कथा–सूत्र विशेष रूप से अनुस्यूत है। वृद्ध गजाधर बाबू कथानायक हैं जिनके माध्यम से कहानीकार ने वृद्ध पीढ़ी की निराशाजनक अनुपयोगी व्यक्तित्व का चित्रण किया है। इसके विपरीत बसन्ती, नरेन्द्र, अमर और उसकी बहु आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके द्वारा ही कहानीकार रूढ़ियों तथा प्राचीन परम्पराओं के विरोध को अभिव्यक्त कर सका है। कहानी के प्रमुख पात्रों की चरित्रगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

वृद्ध गजाधर बाबू–कहानी के प्रारम्भ में कहानीकार ने गजाधर बाबू की मनःस्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है–

"गजाधर बाबू चलने को तैयार बैठे थे। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने ही वर्ष बिताये थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे, भी जान पहिचान के लोग ले गये थे और जगह–जगह मिट्टी बिखरी हुई थी। पर पत्नी बाल–बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठकर विलीन हो गया।"

गजाधर बाबू सदैव से ही अकेले रहे थें। कभी भी कोई उनके साथ न रहा था। अतः वे चाहते थे कि वे लौटकर किसी प्रकार अपने परिवार में घुल–मिल जायें उनका व्यक्तित्व कुछ अस्थिरता लिये हुए है। गनेशी से गजाधर बाबू का परिसंवाद, उसके अनुदार, व्यवहार कुशल एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यक्तित्व का परिचायक है।

गजाधर बाबू अत्यधिक कष्ट सहिष्णु हैं। उनमें गनेशी के लिए कुछ उदारता है। अपने सम्पूर्ण जीवन का त्याग कर ही गजाधर बाबू अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देते हैं। इसके प्रतिरूप में कुछ भी लेने की इच्छा नहीं रखते। अपनी स्वयं की पत्नी के उपेक्षापूर्ण व्यवहार की उनको कोई चिन्ता नहीं है। यही नहीं बसन्ती, नरेन्द्र, अमर एवं उसकी बहू के तीखे वाक्यों की भी उनको कोई चिन्ता नहीं है। वे 35 वर्ष तक अकेले ही जीवन का भार ढोते रहे। इस दीर्घकाल में उनको किसी ने कोई सहयोग नहीं दिया।

गजाधर बाबू मात्र ही इस कहानी में वृद्ध पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस कहानी के अन्य पात्र आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही मूल कारण है कि गजाधर बाबू को कुछ समय उपरान्त ही सेठ रामजीलाल के चीनी मिल में नौकरी करनी पड़ी। यही नहीं, वे बसन्ती को इधर–उधर कहीं नहीं जाने देते। बसन्ती का युवा लड़कों के साथ सहचर्य उनको खलता है। वे सबको अपने नियंत्रण में रखना चाहते हैं। यहाँ तक कि उनकी पत्नी भी उनका साथ नहीं देती है। वह अपने बच्चों और बड़ी गृहस्थी को त्यागकर कहीं नहीं जाना चाहती। इतवार के दिन जब बच्चे अपने कमरे में खेलों में व्यस्त होते हैं तो गजाधर बाबू उन्हें देख–देख कर अत्यन्त हर्षित होते परन्तु उनकी उपस्थिति का अनुभव कर सब शान्त हो जाते।

नौकर को निकाल देने पर सबने गजाधर बाबू के प्रति अति रुष्ट–भाव अपना लिया। कोई गृह–कार्य करना ही नहीं चाहता था। यह अनुभव कर गजाधर बाबू ने पत्नी से पूछा, "बहू क्या किया करती है ?"

"पड़ी रहती है। बसन्ती को तो, फिर कहो कि कॉलिज जाना होता है।" उनकी पत्नी का उत्तर था।

गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसन्ती को आवाज दी। बसन्ती भाभी के कमरे से निकली तो गजाधर बाबू ने कहा, "बसन्ती आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी माँ बनायेगी।" गजाधर बाबू को अपनी पत्नी के प्रति अधिक चिन्ता है। वे स्वयं निराश, विवश, कायर किन्तु आक्रोश से ओत–प्रोत हैं। गजाधर बाबू में निराशा व्याप्त है। वे परिस्थितियों में ऐसे उलझे हुए हैं उनसे निकल नहीं सकते। उनकी हार्दिक आकांक्षा है कि घर उनके नियंत्रण में रहें। परन्तु ऐसा होता नहीं है। उनका अस्तित्व एवं स्वामित्व लगभग मृतप्रायः सा हो गया है। उसमें निर्भीकतापूर्ण व्यक्तित्व का अभाव है। यदि गजाधर बाबू में साहस होता तो वह परिस्थितियों का दृढ़ता से सामना करते। अपनी पत्नी का हर समय अत्यधिक व्यस्त रहना उन्हें खलता और वह प्यार से बसन्ती को समझाते हुए कहते–"तुम सुबह पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई है, उनमें अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी है, दोनों को मिल कर उनका काम में हाथ बँटाना चाहिये।"

गजाधर बाबू की पत्नी अपनी गृहस्थी में ही लगी रहती थी। उसकी इच्छा थी कि उनके लड़के–लड़कियाँ उच्च शिक्षा ग्रहण करें। इसी कारण वह शहर छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकती। इसके लिए वह बड़े से बड़ा बलिदान कर सकती है। जब जब गजाधर बाबू उसको अपने साथ चलने को कहते हैं--"खैर परसों जाना है। तुम भी चलोगी ?" पत्नी सकपकाकर कहती हैं, "मैं" ? मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा ? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की।" जब गजाधर बाबू उस पर घर की फिजूलखर्ची का आरोप लगाते हैं तो उसका उत्तर होता है–"सभी खर्च तो वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ ? यही जोड़–गाँठ करते–करते बूढ़ी हो गयी, न मन का पहना, न ओढ़ा।"

गजाधर बाबू की पत्नी के माध्यम से कहानीकार एक आदर्श नारी का चित्र प्रस्तुत कर सका है। अपार वेदनाओं को सहन करने की उसमें असीम क्षमता है। गजाधर बाबू कहते हैं--"तुम्हें किस बात की कमी है अमर की माँ --घर में बहू है, लड़के–बच्चे हैं, सिर्फ रुपये से आदमी अमीर नहीं होता।" उनकी पत्नी प्रत्युत्तर में कहती है–"हाँ बड़ा सुख है न बहू से ' आज रसोई करने गयी है, देखो क्या होता है ?"

गजाधर बाबू की पत्नी में गृहस्थी चलाने की असीम शक्ति निहित है। इतने बड़े शहर में वह भरी--पूरी गृहस्थी को लिए पड़ी है। वह नहीं चाहती कि गजाधर बाबू के साथ नौकरी पर जाये। अपनी संतान से अधिक मोह रखने के कारण वह अपने पति का भी विरोध करने लगती है। वह अपने लड़के नरेन्द्र एवं बसन्ती पर कोई अंकुश नहीं रखती।

अमर कम महत्व का पात्र है। वह युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वह गजाधर बाबू के नियंत्रण से मुक्त होना चाहता है। यही नहीं उसकी उपस्थिति में वह अपने मित्रों का भी उचित आतिथ्य नहीं कर पाता। अतः उसमें विद्रोही एवं असंतोष सा दिखाई देता है। यही नहीं वह अब अलग रहने की सोचता है। गजाधर बाबू ने बहुत धीरे से अपनी पत्नी से कहा, 'अमर से कहो जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं है।" जब उसे ज्ञात होता है कि बाबू जी ने नौकर छुड़ा दिया है तो अमर को बहुत घृणा होती है। वह अपनी घृणा इस प्रकार व्यक्त करता है–"बूढ़े आदमी हैं,' अमर भुनभुनाया, "चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हो।"

बसन्ती, अमर की बहू और नरेन्द्र तीनों ही युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। गजाधर बाबू का उनसे कोई मेल नहीं खाता।

**3 कथोपकथन (संवाद) --**

कथोपकथन कहानी का आवश्यक तत्त्व है। उषा प्रियंवदा संवाद विधान में अत्यन्त कुशल हैं। उषा जी के संवाद संक्षिप्त, सरल एवं सजीव हैं। सम्पूर्ण कहानी में गजाधर बाबू के नैराश्यपूर्ण जीवन एवं युवा पीढ़ी के विद्रोह से चिन्ताग्रस्त विचार का दिग्दर्शन उन्होंने अति कौशलता से कराया है। इस कहानी में गजाधर बाबू की करुण जीवन--गाथा एक आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत की गयी है। सभी संवाद उच्च संवाद–शिल्प से युक्त हैं। यथा–

"कभी–कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहियेगा।" गनेशी बिस्तर से रस्सी बाँधता हुआ बोला।

"कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना, गनेशी। इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।"

गनेशी ने अंगोछे के छोर से आँखें पोंछी, "अब आप लोग सहारा न देंगे, तो कौन देगा। आप वहाँ रहते तो शादी में कुछ हौसला रहता।"

गजाधर बाबू ने एक घूँट चाय पी,फिर कहा, "बेटी चाय तो फीकी है।"

"लाइए, चीनी और डाल दूँ," बसन्ती बोली।

"रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब आयेगी, तभी पी लूँगा।" निराश भाव से वह कहते हैं।

पत्नी ने आकर गजाधर बाबू को देखा और कहा, "अरे, आप अकेले बैठे हैं–ये सब कहाँ गये ?" गजाधर बाबू के मन में फाँस सी कसक उठी, "अपने अपने काम में लग गये हैं, आखिर बच्चे ही तो हैं।"

**4. वातावरण (देशकाल) –**

प्रस्तुत कहानी वर्तमान युग एवं प्राचीन युग का संजीव चित्र प्रस्तुत करती है। इसमें गजाधर बाबू वृद्ध पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते है। उनकी पत्नी, बसन्ती, अमर और अमर की बहू युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार इनके चित्र एवं संवादों के माध्यम से वर्तमान युग की परिस्थितियाँ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होती हैं। वर्तमान पीढ़ी में विद्रोह [illegible]

असन्तोष है। युवा पीढ़ी वृद्धों के नियंत्रण से मुक्त रहना चाहती है। यही नहीं, कहानीकार का लक्ष्य ही इस भावना का चित्रण करने का है। इस प्रकार 'वापसी' कहानी देशकाल एवं वातावरण को प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल है।

**5. भाषा-शैली –**

उषा प्रियंवदा का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उन्होंने प्रस्तुत कहानी में सरल, सुबोध एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। कहानी अधिकांशतः बोल–चाल की भाषा में लिखी गयी है। इसमें उर्दू एवं अंग्रेजी तक के प्रचलित शब्दों का उन्मुक्तता से प्रयोग हुआ है। लबालब, नाश्ता, जिम्मेदारी, शऊर, लिहाज, फीकी और खातिर आदि उर्दू के शब्द हैं। अंग्रेजी के अनेक प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है, यथा–रेलवे क्वार्टर, रिटायर, फिल्म, पैसेन्जर, लेट, कॉलेज, बक्स, सैट, कुशन आदि। इसके अतिरिक्त मनोविनोद स्निग्ध, कुण्ठित, अर्ध्य, स्तुति, आन्तरिक अभिव्यक्ति, लावण्यमयी, अपरिचिता, श्रीहीन और निमित्तमात्र आदि साहित्यिक महत्त्व के शब्दों का भी अधिक मात्रा में प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार कहानीकार की भाषा–शैली सर्वथा साहित्यिक सौष्ठव लिए हुए है। उसमें सरसता एवं उत्कृष्टता दोनों ही विद्यमान हैं।

'वापसी' कहानी की शैली सर्वथा वर्णनात्मक है। सभी कुछ कहानीकार के द्वारा वर्णित है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

इतने सब निश्चयों के बावजूद भी गजाधर बाबू एक दिन बीच में दखल दे बैठे। पत्नी स्वभाव अनुसार नौकर की शिकायत कर रही थी। "कितना भारी कामचोर है, बाजार की हर चीज में पैसा बनाता है। खाने बैठता है तो खाता ही चला जाता है।"

प्रारम्भ से अन्त तक कहानी में वर्णन की प्रधानता है। ऐसी शैली को ऐतिहासिक या इतिवृत्तात्मक शैली कहते हैं।

संक्षेप में 'वापसी कहानी उषा प्रियंवदा की कहानी शिल्प की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। कहानीकार के अन्तर में बैठा वर्ग–संघर्ष जीवन के यथार्थ परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। कहानी में परिसंवाद का अभाव तो है, किन्तु अन्य सभी तत्त्वों को पर्याप्त अवकाश मिला है। सभी तत्त्वों में वातावरण–चित्रण तथा उद्देश्य को अधिक उन्मेष मिला हैं कथावस्तु, शब्द–चित्र रचना के सहारे नीरस नहीं होने पायी है।

**6. उद्देश्य –**

उषा प्रियंवदा सामाजिक कहानीकार हैं। वे समाज की कुरुपताओं, दुर्बलताओं का सजीव चित्र प्रस्तुत करने में व्यस्त हैं। प्रस्तुत कहानी भी सामाजिक व्यवस्था एवं वृद्ध वर्ब के संघर्ष का मार्मिक चित्र उपस्थित करने में समर्थ सिद्ध हुई है। गजाधर बाबू एक असहाय वृद्ध हैं जो आर्थिक विषमता में ग्रस्त हैं। वे 35 वर्ष एकाकी जीवन व्यतीत करने के बाद घर आते हैं। इस कहानी का प्रमुख उद्देश्य युवा वर्ग में व्याप्त विद्रोह एवं असंतोष का वर्णन मात्र है। नरेन्द्र, बसन्ती और अमर विद्रोह–भाव रखने वाले और नियंत्रण–मुक्ति के प्रमुख साक्षी हैं। यह कहानी भारतीय परिवार की आर्थिक पृष्ठभूमि में विवशता को प्रस्तुत करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गजाधर बाबू मन मसोस कर सभी फिजूल खर्ची को सहन करते हैं। कहानीकार इस संदर्भ में उत्पन्न परिस्थितियों द्वारा सब कुछ स्पष्ट कर देता है। 'वापसी' कहानी भारतीय नारी की वस्तुस्थिति का चित्रण प्रस्तुत करती है। उसके जीवन में अच्छा पहनना ओढ़ना नहीं लिखा है। जोड़–गाँठ कर किसी प्रकार वह अपना जीवनयापन करती है। कहानीकार गजाधर बाबू द्वारा अनुभवी पीढ़ी का चित्रण कर युवा पीढ़ी पर बड़ी चोट करता है। यहां नरेन्द्र, बसन्ती तीनों ही परम्परागत रूढ़ियों का उल्लंघन करते हैं। यही नहीं, उनके द्वारा कहानीकार भावी पीढ़ी का स्वरूप भी प्रस्तुत कर सका है। गजाधर बाबू की पत्नी में कुछ धार्मिक प्रवृत्ति का भी चित्रण किया गया है। मनोरंजन और जन–कल्याण की प्रेरणा गौण रूप से कहानी के उद्देश्य हैं।

## प्रष्टव्य

1. कहानी–कला की दृष्टि से 'वापसी' कहानी का मूल्यांकन कीजिये।
2. 'वापसी' कहानी के गुण–दोषों का विवेचन कीजिये।
3. कहानी–कला के तत्त्वों के आधार पर 'वापसी' कहानी की आलोचनात्मक व्याख्या करते हुए स्पष्ट कीजिये कि यह कहानी पारिवारिक सम्बन्धों के टूटने और नये मूल्यों के बनने की कथा है।

# I. कहानी-सार

हिन्दी की महिला कहानीकारों में उषा प्रियंवदा शीर्षस्थ स्थान की अधिकारी है, क्योंकि उन्होंने अपनी कहानियों में आधुनिक मूल्यबोध, जीवन–मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों में रिक्तता व शून्यता तथा विशृंखलता व अकेलेपन की पीड़ा अभिव्यक्त की है। 'वापसी' उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है जिसमें सेवानिवृत्त व्यक्ति की मानसिकता का चित्रण हुआ है। गजाधरबाबू ने जीवन–भर कठोर परिश्रम करके, परिवार से दूर रहकर, छोटे–छोटे स्टेशनों पर नौकरी करके बालकों को सुख–सुविधाएं प्रदान करने के लिए शहर में अपना पक्का मकान बना लिया था। आज वे सेवानिवृत्त होकर अपने घर जा रहे हैं तथा सामान समेटने में लगे हुए हैं। उसने साथ ले जाने वाले सामान पर नजर डाल तो उसमें दो बक्स, एक डोलची और एक बाल्टी थी तथा एक डिब्बा था। डिब्बे के बारे में पूछने पर गणेशी ने बताया कि घरवाली ने कुछ बेसन के लड्डू आपके लिए बनाकर दिए हैं। घर जाने की खुशी में भी गजाधर बाबू के मन में एक विषाद–व्यथा और पीड़ा व्याप्त थी, क्योंकि एक परिचित–स्नेहमय और आदरमय संसार से उसका सम्बन्ध टूट रहा था। चलते–चलते उन्होंने गणेशी को हिदायत दी कि कोई आवश्यकता हो तो जरूर लिखना और इस अगहन तक बिटिया की शादी जरूर कर देना। पैंतीस साल तक नौकरी करके उन्होंने अपने पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति निष्ठापूर्वक की थी। अधिकतर वे स्टेशनों पर अकेले ही रहे थे तथा शहर में बच्चों को ऊंची शिक्षा दिलवाई, पक्का मकान बनवाया और अमर–कान्ति की शादियां भी कर दी थी। वे स्वभाव से बहुत स्नेहिल व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी थे। जब गजाधर बाबू के बाल–बच्चे उनके साथ रहते थे तो वे उनके साथ हँसते–खेलते, पत्नी के साथ हास्य–विनोद व चुहलबाजी करते। उन्हें बार–बार पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद आती कि किस प्रकार गर्मी में वह दो बजे तक आग सुलगा कर रखती और आने पर ही गर्म–गर्म रोटियां बनाकर देती थी। गजाधर बाबू उन छोटी–छोटी बातों को स्मरण करके उदास हो जाते थे, लेकिन इतने लम्बे अन्तराल के बाद आज वे फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने के लिए जा रहे हैं। गजाधर बाबू ने घर पहुंचकर टोपी उतारकर चारपाई पर रख दी और जूते उसके नीचे खिसका दिये। रविवार का दिन था तथा बाल–बच्चे अन्दर कमरे में बैठे नाश्ता कर रहे थे और उनके कहकहों की आवाजें बाहर आ रही थीं। हँसी–खुशी की आवाज को सुनकर उनके सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान आ गई। वे मुस्कराते हुए बिना खांसे या वातावरण निर्मित किए अन्दर चले गये। नरेन्द्र किसी नृत्य की नकल मटक–मटककर कर रहा था, बसन्ती हँस–हँस कर दोहरी हो रही थी और अमर की बहू भी वस्त्रों की सुध–बुध भुलाकर उन्मुक्त रूप से हँस रही थी। लेकिन बाबू जी के प्रवेश करते ही वे सब सकपका गए और चुप बैठ गए तथा फिर वहां से चुपचाप खिसक गए। गजाधर बाबू उनके मनोविनोद में हिस्सा लेना चाहते थे, परन्तु उनके आते ही वे सब वहां से खिसक लिए तथा वे वहां अकेले रह गए। इससे उनके मन में खिन्नता उपज आई और अकेलेपन कालतूपन का भाव उत्पन्न हो गया। तभी गजाधर बाबू की पत्नी पूजा–पाठ करके वहां आई और आते ही शिकायत करने लगी कि इस घर में धर्म–कर्म नहीं है तथा पूजा–पाठ से सीधे चौके में घुसना पड़ता है जहां जूठे बर्तनों का ढेर लगा हुआ है। वह स्पष्ट करती है कि वह सुबह से लेकर सायंकाल तक चूल्हे–चौके में लगी रहती है। गजाधर बाबू बेटी बसन्ती और अमर की बहू को आदेश देते हैं कि सुबह का खाना तुम्हारी भाभी और सायंकाल का बसंती बनाया करेगी। लेकिन दोनों ही अनमन भाव से खाना बनाती थी और अस्वादु भोजन बनाने पर नरेन्द्र और बसन्ती में वाद–विवाद होता है तथा नरेन्द्र के कहने पर कि तुमने खाना क्यों बनाया तो वह कहती है कि बाबूजी ने कहा था। नरेन्द्र व्यंग्यात्मक लहजे में कहता है कि बाबूजी को बैठे–बैठे यही सूझता है। इसी प्रकार अमर की बहू खाना बनाती है तो वह एक दिन में ही पन्द्रह दिन का राशन लगा देती है और रसोई खुली छोड़ देती है जिससे बिल्ली आकर दाल की पतीली गिरा देती है। इस प्रकार घर के सभी सदस्य गजाधर बाबू को अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं। बसन्त पड़ौस में शीला के घर जाती है जहां घर में बड़े–बड़े लड़के हैं। उसकी मां के कहने पर बाबूजी उसे बसन्ती के घर जाने से रोकते हैं जिससे बसन्ती मुंह लपेटकर पड़ जाती है, खाना नहीं खाती तथा न किसी से बोलती है और बाबूजी से भी रूठ जाती है। गजाधर बाबू को बहुत गुस्सा आता है कि वह छोटी–सी बात पर अपने पिताजी से रूठ जाती है। इसी प्रकार गजाधर बाबू सारा दिन घर में रहते हैं तथा उनकी चारपाई ड्राईंग रूम में कुर्सियां पीछे हटाकर अस्थायी रूप से लगायी जाती है। उन्हें समय पर प्रातराश नहीं मिलता है तथा चाय में चीनी कम डाली जाती है। उन्हें बार–बार गणेशी की मलाईदार–तीन चम्मच चीनी वाली चाय, पूरियां व जलेबियों का स्मरण आता है। वे उस कमरे में पड़े–पड़े अस्थायित्व का अनुभव करते हैं और उन्हें स्टेशन पर अपने खुले क्वार्टर की याद आती है। अमर की माँ उनको बताती है कि अमर अलग होना चाहता है, क्योंकि पहले उनके मित्र घर में आया करते थे और सारा दिन ड्राईंग रूम में बैठकर गप्पें लड़ाया करते थे, लेकिन अब ड्राईंग रूम में सारा दिन गजाधर बाबू पड़े रहते हैं, इसलिए वे आ नही सकते। गजाधर बाबू ने

अपने पत्नी को कहा–जल्दी करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार गजाधर बाबू की पत्नी ने नौकर की शिकायत की कि वह सामान में पैसा बनाता है तथा खाना भी अत्यधिक मात्रा में खाता है। बच्चों की माँ के कहने पर ही गजाधर बाबू नौकर को हटा देते हैं, जिससे सारे बाल–बच्चे, उनके इस कार्य का विरोध करते हैं। अमर इस कार्य की आलोचना करते हुए कहता है–"बूढ़े आदमी हैं, चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं।" इसी प्रकार बसन्ती भी स्पष्ट कहती है कि कालिज में भी जाओ और आकर झाड़ू–पोछा करो–यह मेरे से नहीं होगा। इस प्रकार पत्नी के शिकायती स्वभाव जिसमें स्नेह व आत्मीयता का लेशमात्र भी न था, के कारण गजाधर बाबू का मन व्यथित हो उठा। उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें रोमांचित कर डालती थी और अब पत्नी की बातों में स्नेह व आत्मीयता का अभाव था और शिकायती लहजा अधिक था। लेखिका ने गजाधर बाबू की पत्नी के प्रति भावों का चित्रांकन इस प्रकार से किया है–"यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था ? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचित है। गाढ़ी नींद में डूबी उसकी पत्नी का भारी–सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था, चेहरा श्रीहीन और सूखा था।" गजाधर बाबू को लगा कि उनके साथ धोखा हुआ है और बाद में उनकी चारपाई ड्राईंग रूप से निकालकर अन्दर की कोठरी में डाल दी जहां अचार, रजाइयों और कनस्तरों के ढेर लगे हुए थे तथा एक तरफ रस्सी के ऊपर मैले–कुचैले अव्यवस्थित वस्त्र पड़े हुए थे। उन्हें लगा कि घर में उनकी चारपाई के लिए कोई स्थान नहीं है। उन्हें बार–बार बड़ा खुला–सा क्वार्टर याद आता और वे मन मसोस कर रह जाते। लेखिका ने स्पष्ट लिखा है–"वह जीवन अब उन्हें एक खोयी हुई निधि–सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वे जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूंद भी न मिली।" इस प्रकार वे बाल–बच्चों व पत्नी की ओर से उपेक्षित, तिरस्कृत व असंतुष्ट थे। कितनी विडम्बना थी कि माँ अपनी संतान के प्रति समर्पित, परन्तु पति की उपेक्षा करती है। इस प्रकार गजाधर बाबू परिवार में अकेलेपन–फालतूपन व अजनबीपन के भाव से युक्त हो जाते हैं। वे अनुभव करते हैं कि वे तो केवल बच्चों व पत्नी के लिए धन कमाने की मशीन हैं और उनकी पत्नी भी चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि उसे भी पति के प्रति कोई आत्मीयता–लगाव व अपनापन नहीं है। इसलिए वे सोचते हैं कि वे इस परिवार के केन्द्रबिन्दु नहीं हैं। इसीलिए गजाधर बाबू इस अलगाववादी और अजनबी परिवेश से निकलनें हेतु सेठ रामजीलाल की चीनी मिल में नौकरी कर लेते है। वे पत्नी को भी ले जाना चाहते हैं, परन्तु वह इन्कार कर देती है। गजाधर बाबू के जाते ही घर के सभी सदस्य प्रसन्नचित्त हो जाते हैं, क्योंकि उनकी मनमानी व स्वतंत्रता लौट आई है। बसन्ती तथा अमर की बहू सिनेमा देखने की इच्छा व्यक्त करती हैं और माँ नरेन्द्र से कहकर उनकी चारपाई को बाहर निकलवाती है, क्योंकि उसमें पैर फैलाने की जगह नहीं है। इस प्रकार 'वापसी' कहानी में जीवन–मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों में रिक्तता, शून्यता व जड़ता, अकेलेपन व अजनबीपन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया गया है।

## II. चरित्र-चित्रण

### (क) गजाधर बाबू

सुप्रसिद्ध कहानी लेखिका सुश्री उषा प्रियंवदा का महिला कहानीकारों में अग्रगण्य स्थान है तथा उनकी कहानियों के कथ्य में पर्याप्त वैविध्य है और उसके आधुनिक जीवन–बोध के विविधमुखी आयाम हैं। 'वापसी' कहानी में लेखिका ने जहां एक ओर सभ्यता एवं संस्कृति के अनेक नये आयामों को उजागर किया है, वहां जीवन–मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों का बिखराव एवं अजनबीपन तथा अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। गजाधर बाबू इस कहानी के केन्द्रीय पात्र एवं नायक हैं तथा सभी घटनाओं के मूल में विद्यमान हैं। वे ही पैंतीस वर्ष दूर रहकर छोटे–छोटे स्टेशनों पर नौकरी करके जीवन–यापन करते हैं और बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने के लिए शहर में पक्का मकान बनवाते हैं। सेवानिवृत्ति के बाद उनके मन में यह कामना उभरती है कि बाकी जीवन अब परिवार के साथ सुखपूर्वक रहेंगे, लेकिन उनकी मधुर कामनाओं पर तुषारापात हो जाता है। जब परिवार के सदस्य उन्हें फालतू और अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं। न पत्नी की उनके प्रति आत्मीयता है और न बाल–बच्चों के वे श्रद्धा के पात्र हैं। इसीलिये वे अपने आपको परिवार में मिसफिट पाते हैं, उपेक्षित तिरस्कृत व फालतू महसूस करते हैं। अन्य सभी पात्र–उनकी पत्नी, नरेन्द्र, अमर तथा अमर की बहू और बसन्ती आदि सभी उनके चरित्र को प्रकाशित करने की क्षमता से युक्त हैं। गजाधर बाबू कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहते हैं। कहानी का प्रारम्भ ही गजाधर

बाबू से होता है कि वे अपना सामान समेट रहे हैं, क्योंकि उनको अपने परिवार के पास जाना है और अन्त में वे ही रिक्शा में बैठकर सेठ रामजीलाल की मिल में नौकरी करने के लिए चल देते हैं। अतः कहानी के फलभोक्ता भी वहीं हैं वे ही परिवार द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत हैं। इस प्रकार निर्विवाद रूप से गजाधर बाबू 'वापसी' कहानी के नायक सिद्ध होते हैं।

वैसे कहानीकार ने गजाधर बाबू के चरित्र–निर्माण में एक विशेष नाजुक–मिजाजी बरती है। वे लेखकीय टिप्पणियां प्रायः नहीं के बराबर करती हैं और पात्रों के प्रति भी कहीं भी अतिरिक्त सहानुभूति प्रदर्शित नहीं करती, बल्कि तटस्थता और निर्लिप्तता के साथ पात्र का चरित्र–चित्रण करती है। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है–"स्वयं कहानी में भी अपनी ओर से गजाधर बाबू के प्रति सहानुभूति जगाने का कोई भाव नहीं है। यदि ऐसा हो गया होता तो कहानी शिथिल हो जाती है और उसमें वह सघनता न होती जो इसकी प्रमुख उपलब्धि है।" वैसे लेखिका ने प्रस्तुत कहानी में केवल गजाधर बाबू के व्यक्तित्व को ही प्रमुखता से चित्रित किया है।

कहानीकार ने गजाधर बाबू के रूप में एक रिटायर्ड व्यक्ति की मानसिकता, मनोदशा पर प्रकाश डाला है। वे जीवन–भर छोटे–छोटे स्टेशनों पर नौकरी करते रहे और बालकों को उच्च शिक्षा प्राप्त करवाने के लिए तथा सभी प्रकार की सुख–सुविधाएं देने के लिए शहर में एक छोटा, पर पक्का मकान बनवा दिया। रिटायर होने पर उनके मन में परिवार के साथ सुखपूर्वक रहने की कामना जाग्रत होती है, परन्तु उनकी यह कामना धूल–धूसरित हो उठती है, जब उन्हें परिवार में फालतू व स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व माना जाता है। गृह–स्वामी के गुरुत्तर भार से युक्त गजाधर बाबू को रहने के लिए कमरा नहीं मिल पाता और उनकी चारपाई ड्राईंग रूम में कुर्सियां पीछे हटाकर लगा दी जाती है। नरेन्द्र बसन्ती द्वारा अस्वादु भोजन बनाने पर उसको झिझकते हुए कहता है कि–"तुमसे खाना बनाने को किसने कहा था ? बाबूजी ने । बाबूजी को बैठे–बैठे यही सूझता है।" इसी प्रकार पत्नी के कहने पर वे बसन्ती को शीला के घर जाने से रोक देती है। इस पर बसन्ती मुह लपेट पड़ी रहती है और खाना भी नहीं खाती तथा पिताजी (गजाधर बाबू) से रूठी हुई है। वे उसको शीला के घर जाने से रोकते हुए कहते हैं–कहां जा रही हो ? पड़ोस में, शीला के घर। बसन्ती ने कहा। कोई जरूरत नहीं, अन्दर जाकर पढो।

इसी पर पत्नी के कहने पर ही वे बसन्ती को शीला के घर जाने से रोकते हैं, क्योंकि –"बड़े–बड़े लड़के हैं इस घर में हर वक्त वहां घुसा रहना मुझे नहीं सुहाता। मना करूं तो सुनती नहीं।" लेकिन साथ ही जब बसन्ती को रोकते हैं तो पत्नी ही गजाधर बाबू को कहती है–"क्या कह दिया बसन्ती से ? शाम से मुंह लपेटे पड़ी है, खाना भी नहीं खाया।" इसी प्रकार पत्नी के ही कहने पर वे खाना बनाने का दायित्व भी पुत्री बसन्ती और उसकी भाभी के कन्धों पर डालते हैं। वे स्पष्ट आदेश देते हैं–"बसन्ती, आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएगी। इसी प्रकार वे पत्नी की शिकायत पर कि नौकर कामचोर है तथा बाजार की हर चीज में पैसा बनाता है, खाने बैठता है तो खाता ही चला जाता है, को हटा देते हैं। इस पर घर के सभी सदस्य अपनी–अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। नरेन्द्र माँ से कहता है–"तुम बाबूजी से कहती क्यों नहीं ? बैठे–बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझे कि मैं साइकिल पर गेहूं रख कर आटा पिसाने जाऊंगा तो मुझसे यह नहीं होगा।" बसन्ती भी नौकर के हटाने का विरोध करते हुए कहती है– "मैं कालेज भी जाऊं और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊं, यह मेरे बस की बात नहीं।" इसी प्रकार अमर भी कटाक्ष करते हुए कहता है–"बूढ़े आदमी हैं। चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं ?" इसी प्रकार गजाधर बाबू की पत्नी भी व्यंग्य करती हुई कहती है–"और कुछ नहीं सूझा, तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गयी तो पन्द्रह दिन का राशन पाच दिन में बनाकर रख दिया।" इसी प्रकार गजाधर बाबू का व्यवहार भी बालकों के प्रति स्नेहपूर्ण, आत्मीयता से युक्त नहीं है, बल्कि वे उन्हें एक डिक्टेटर की भाँति आदेश जारी करते हैं। इसी प्रकार घर के सदस्य उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं और इसीलिए अमर परिवार से अलग होना चाहता है, क्योंकि उनकी शिकायतें हैं–"गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने–जाने वाला हो तो कहीं बिठाने की जगह नहीं।" तथा गजाधर बाबू भी कभी–कभी अमर को मौके–बेमौके टोक दिया करते थे। इस प्रकार 'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू की स्थिति घर में फालतू, उपेक्षित, तिरस्कृत व्यक्ति की है। न तो पत्नी उनके प्रति आत्मीयता दिखाती है और न बालक श्रद्धा।

इतना अवश्य है कि गजाधर बाबू का व्यवहार भी बालकों के प्रति स्नेहिल न होकर रूखा ही है। वे कभी बसन्ती और उसकी भाभी को आदेश देते हैं तो कठोर लहजे में। वे एक डिक्टेटर व कठोर व्यक्ति की भांति आदेश देते हैं जिससे बालकों को उनमें पिता की छवि दृष्टिगोचर नहीं होती, बल्कि एक डिक्टेटर दिखाई देती है।

इसी प्रकार गृहस्वामी गजाधर बाबू, जो जीवन–भर कठोर परिश्रम करके बालकों को उच्च शिक्षा दिलवाने के लिए

शहर में एक पक्का मकान बनवाते हैं, परन्तु उसी घर में उनके लिए कोई स्थान नहीं है। सेवानिवृत्ति के बाद उनकी चारपाई ड्राईंग रूम में कुर्सियां पीछे हटाकर डाली जाती है और अन्ततः अम्मा की कोठरी में जहां चारों ओर अचार, रजाइयां और कनस्तर रखे हुए हैं। लेखिका का कहना है–"यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यही है तो यही पड़े रहेंगे। अगर कही और डाल दी तो वहां चले जायेंगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं तो अपने ही घर में परदेशी की तरह रहेंगे।"

गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षा भी। जब परिवार उनके साथ था तो ड्यूटी से लौटकर बच्चों के साथ हँसते–बोलते और पत्नी के साथ मनोविनोद किया करते थे। इसी प्रकार नौकर गणेशी के साथ भी उनका व्यवहार अत्यन्त आत्मीयपूर्ण था। इसलिए वे अन्दर हँस रहे बच्चों के पास बिना वातावरण निर्मित किए चले जाते हैं। उनकी हँसी–खुशी में सम्मिलित होने के लिए वे अन्दर गए तो नरेन्द्र किसी नृत्य की नकल कर रहा था और बसन्ती हँस–हँस कर दुहरा हो रही थी तथा अमर की बहू भी वस्त्रों से बेसुध होकर उन्मुक्त रूप से हँस रही थी। लेखिका ने लिखा है –गजाधर बाबू ने मुस्कराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा–"क्यों नरेन्द्र, क्या नकल हो रही थी ? कुछ नहीं बाबूजी। नरेन्द्र ने सिटपिटाकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा कि वे भी इस मनोविनोद में भाग लेते पर उनके आते ही जैसे सब कुंठित हो चुपहो गये। उससे उनके मन में थोड़ी–सी खिन्नता उपज आयी। बसन्ती को भी वे प्यार से समझाते हैं कि तुम सुबह पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई, उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची। तुम हो, तुम्हारी भाभी है, दोनों को मिलकर काम में हाथ बँटाना चाहिए।" पत्नी की उपेक्षा और उदासीनता से भी गजाधर बाबू अत्यन्त व्याकुल एवं व्यथित थे। जबकि उन्हें पूर्व की पत्नी की बातों का स्मरण आता है तो वे रोमांचित हो उठते हैं। पत्नी का वह रूप उन्हें अत्यन्त मोहक और आकर्षक लगता है जब उन्हें वह प्यार और आग्रह से भोजन कराती थी, लेकिन अब वह उनके समक्ष सिर्फ शिकायतें ही करती है। गजाधर बाबू चटाई पर सोयी हुई पत्नी को देखकर चिन्तन–मनन करते हैं–"यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था ? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई है और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचित है। गाढ़ी नींद में डूबी उसकी पत्नी का भारी–सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था, चेहरा श्रीहीन और रूखा था" इसी प्रकार गणेशी को कहे गये थे, शायद उनके अपने इस नौकर के प्रति आत्मीयता व स्नेह भावना को ही उजागर करते हैं–"कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना गणेशी। इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।"

गणेशी ने अंगोछे के छोर से आँखें पोंछी–"अब आप लोग सहारा न देंगे तो कौन देगा ? आप यहां रहते तो शादी में कुछ हौंसला रहता।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि गजाधर बाबू परम स्नेही व्यक्ति हैं और स्नेह के आकांक्षी हैं। वे पत्नी को स्पष्ट कहते हैं–"बहुत हल्के से उन्होंने कहा कि अब हाथ में पैसा कम रहेगा, कुछ खर्च कम होना चाहिए।" सभी खर्च तो वाजिब–वाजिब है, किसका पेट काटूँ ? यही जोड़–गांठ करते–करते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना, न ओढ़ा। अब नायक गजाधर बाबू सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है और आमदनी भी कम हो गई है, इसलिए वे परिवार के खर्चों में अधिक कटौती करते हैं। उनको हमेशा यह महसूस होता था कि उनके घर का खर्चा उनकी हैसियत से कहीं ज्यादा है तथा पत्नी की बात सुनकर भी उन्हें लगता है कि नौकर का खर्च बिल्कुल बेकार है। इसीलिए वे नौकर का हिसाब करके उसकी छुट्टी कर देते हैं, जिससे घर के सभी सदस्य उनसे नाराज हो जाते हैं, लेकिन वे इस मत के कट्टर पक्षधर हैं कि व्यक्ति को खर्च अपनी हैसियत के अनुसार ही करना चाहिए। इसी प्रकार कहानी 'वापसी' में गजाधर बाबू सहनशील और धैर्य की सजीव प्रतिमूर्ति के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। पुत्री बसन्ती रूठी हुई है, क्योंकि गजाधर बाबू ने उसको शीला के घर जाने से रोक दिया है। वह खाना नहीं खाती, मुंह लपेटे पड़ी है, पर न तो गजाधर बाबू उसे डांटते हैं और न क्रोध करते हैं। इसी प्रकार वे अपनी कोठरी में अंधेरे में लेटे घर के सभी सदस्यों की प्रतिक्रियाएं सुनते रहें, लेकिन न किसी को क्रोध करते हैं, न डांटते हैं, न डपटते हैं, परन्तु चुपचाप सहनशीलता और धैर्य के साथ अपरोक्ष रूप में सुनते रहे। कहानीकार का कहना है–"लेटे हुए वह घर के अन्दर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी–सी झड़प, बाल्टी पर खुले नल की आवाज, रसोई के बर्तनों की खटपट आदि...कुछ देर में अपनी कोठरी में आई और बिजली जलायी तो गजाधर बाबू को लेटे देखकर बड़ी सिटपिटायी। गजाधर बाबू की मुख–मुद्रा से वह उनके भावों का अनुमान न लगा सकी। वह चुप, आँखें बन्द किये लेटे रहे।"

गजाधर बाबू एक सफल पिता हैं तथा बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन निष्ठापूर्वक करते हैं। उनको उच्च शिक्षा

दिलवाने के लिए सभी सुख–सुविधाएं प्रदान करने के लिए शहर में एक पक्का मकान बनवाते हैं। कहानीकार ने लिखा है–"संसार की दृष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में एक पक्का मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अम्मा और लड़की कान्ति की शादियां कर दी थीं, दो बच्चे ऊंची कक्षाओं में पढ़ रहे थे।" इसी प्रकार सेवानिवृत्ति के बाद उन्हें बसन्ती के विवाह की चिन्ता सताती है तथा निश्चय कर लेते हैं कि बसन्ती की शादी जल्दी ही कर देनी है। अतः स्पष्ट है कि गजाधर बाबू एक सफल पिता हैं।

गजाधर बाबू समन्वयवादी व्यक्ति हैं। वे अचानक यह निश्चय कर लेते हैं कि अब घर की किसी बात में दखल नहीं देंगे तथा यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं है, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर उनकी चारपाई और कहीं डाल दी तो वे वहीं चले जायेंगे। नरेन्द्र पैसे मांगने के लिए आता है तो चुपचाप उसे रुपए देते हैं। बसन्ती काफी अंधेरा हो जाने के बाद भी पड़ौस में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। इसी प्रकार जब घर के सभी सदस्य उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं तो वे कहीं टकारते नहीं हैं, न किसी का विरोध करते, न किसी को क्रोध करते, बल्कि चुपचाप रामजी लाल के मिल में नौकरी करने के लिए चले जाते हैं। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है –"जीवन–भर परिवार को सुखी और व्यवस्थित करते रहने के लिए परिवार से दूर रहकर नौकरी करने वाला गजाधर बाबू रिटायर होने पर अपने परिवार के बीच, पत्नी–बच्चों के बीच शेष जीवन उल्लास के साथ बिताने और बेचैनी के साथ जब अपने सुखी–सम्पन्न घर में पहुंचते हैं तो अपने को मिसफिट पाते हैं।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि गजाधर बाबू का 'वापसी' कहानी में विह्वलतापूर्ण अकेलापन, प्रत्येक सेवानिवृत्त व्यक्ति का एवं आधुनिक जीवन का अकेलापन है। बच्चों को उनमें कहीं भी पिता की स्नेहपूर्ण छवि या हितचिन्तक या हितसाधक की दृष्टिगोचर नहीं होती। संयमी, धैर्यशाली व सहनशील की जीवन्त प्रतिमा गजाधर बाबू अन्ततः अपना रास्ता बदल लेते हैं और न किसी का विरोध करते हैं, न किसी से टकराते हैं और न आक्रोश प्रकट करते हैं। वे परम स्नेही और स्नेह के आकांक्षी व्यक्ति हैं।

## IV. उद्देश्य

महिला कहानीकारों में अग्रगण्य सुश्री उषा प्रियम्वदा की 'वापसी' कहानी में पारिवारिक सम्बन्धों में विशृंखलता, जीवन–मूल्यों का विघटन, अजनबीपन व अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है–"इसे केवल एक ही परिवार के विघटन की कथा नहीं मानना चाहिए। यह एक परिवार के माध्यम से आज के जीवन के अकेलेपन, पीढ़ियों के बीच उभरते तनाव और उसकी पीड़ा का संकेत है, जिसे संतुलन, तटस्थता और ईमानदारी से कहा गया है।" लेखिका ने वृद्ध एवं युवा वर्ग के संघर्ष को बड़ी सफलता से चित्रित किया है तथा साथ ही उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व स्वीकारा है। जीवन–मूल्यों का ह्रास तथा युवा वर्ग में व्याप्त विद्रोह–असन्तोष का चित्रण भी अत्यन्त मनोमुग्धकारी शैली में किया गया है। कहानी के शिल्प–विधान और कलात्मकता के बारे में श्री शरद देबड़ा का कहना है–"आपकी हर चीज नपी–तुली और खूब दक्षता से तराशी हुई होती है। आपके कथा के समस्त सूत्र आपके पात्र वातावरण के रंग में रंग हुए यहां तक कि बातचीत का हर शब्द सब कुछ अपनी जगह पर एकदम सटीक है।"

'वापसी' कहानी के निम्न प्रतिपाद्य हैं–

1. वृद्ध एवं युवा वर्ग का संघर्ष
2. सेवानिवृत्त व्यक्ति की मानसिकता व मनोदशा
3. जीवन–मूल्यों का विघटन
4. अजनबीपन व अकेलेपन की पीड़ा
5. रूढ़ियों पर कटु कटाक्ष

**1. वृद्ध एवं युवा वर्ग के संघर्ष का चित्रांकन** –सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित कहानी 'वापसी' में वृद्ध एवं युवा वर्ग के संघर्ष का मार्मिक चित्रांकन हुआ है। पूरी कहानी में दोनों पीढ़ियों के टकराहट की गूंज सर्वत्र स्पष्ट सुनाई देती है। गजाधर बाबू युवा वर्ग का सामीप्य चाहते हैं, जबकि युवा वर्ग उनसे बिदकते हैं। नायक गजाधर बाबू बिना खांसे कमरे में अन्दर

चले जाते हैं जहां नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे किसी नृत्य की नकल कर रहा है, बसन्ती हँस–हँसकर दुहरा हो रही है और अमर की बहू को अपने तन–बदन, आंचल या घूघट का होश न था और उन्मुक्त रूप से हँस रही थी, लेकिन वे सभी पात्र बसन्ती को छोड़कर वहां से चले जाते हैं। कहानी लेखिका ने लिखा है–"क्यों नरेन्द्र, क्या नकल हो रही थी ?" कुछ नहीं बाबूजी। नरेन्द्र ने सिटपिटाकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गए। उससे उनके मन में थोड़ी–सी खिन्नता उपज आयी। गजाधर बाबू बसन्ती और उसकी भाभी को खाना बनाने का आदेश देते हैं, परन्तु बसन्ती मुंह लटकाकर उत्तर देती है–"बाबूजी, पढ़ना भी तो होता है।" लेकिन खाना बनाती है तो वह विरोध स्वरूप अस्वादु भोजन बनाती है और नरेन्द्र के साथ उसका वाद–विवाद होता है। नरेन्द्र थाली सरकारकर उठ खड़ा हुआ और बोला–"मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता।"

बसन्ती तुनक कर बोली, "तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद करता है ?"

'तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था ?" नरेन्द्र चिल्लाया।

बाबूजी ने।

बाबूजी को बैठे–बैठे यही सूझता है।

पत्नी स्पष्ट चाहती है कि इतनी बड़ी लड़की हो गई है और खाना बनाने तक का शऊर नहीं आया। इसी प्रकार बसन्ती को गजाधर बाबू शीला के घर जाने से रोकते हैं तो वह विरोध स्वरूप खाना नहीं खाती, मुंह लपेटे पड़ी रहती है। इसी प्रकार अमर की बहू और अमर को उनसे बहुत ज्यादा शिकायतें हैं तथा विरोध स्वरूप वे अलग हो जाना चाहते हैं। उनका कहना है–"गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने–जाने वाला हो तो कहीं बिठाने की जगह नहीं। अमर को अब भी छोटा–सा समझते थे और मौके–बेमौके टोक देते थे। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब–तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थी।" इसी प्रकार नौकर हटाने वाले प्रसंग में भी विरोध की गूंज या टकराहट का स्वर स्पष्ट सुनाई देता है। अमर की बहू बोली–"बाबूजी ने नौकर छुड़ा दिया है।"

क्यों ?

कहते हैं–खर्च बहुत है।

वार्तालाप अत्यन्त साधारण था, परन्तु जिस टोन में अमर की बहू ने कहा–गजाधर बाबू को वह बात खटक गई। इसी प्रकार नरेन्द्र भी गजाधर बाबू की आलोचना करते हुए कहते हैं–"अम्मा, तुम बाबूजी से कहती क्यों नहीं ? बैठे–बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझे कि मैं साईकिल पर गेहूँ रख आटा पिसाने जाऊंगा तो मुझसे यह नहीं होगा।" इसी प्रकार बसन्ती भी बाबूजी के इस कार्य की आलोचना–विरोध करते हुए कहती है–"मैं कालिज भी जाऊँ और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊं, यह मेरे बस की बात नहीं है।" इसी प्रकार अमर भी उनके इस कार्य का विरोध करते हुए कहता है–बूढ़े आदमी हैं। चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं।" इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत कहानी में वृद्ध एवं युवा वर्ग की या दोनों पीढ़ियों के बीच टकराहट की गूंज सर्वत्र स्पष्ट सुनायी देती है।

**2. सेवानिवृत्त व्यक्ति की मानसिकता व मनोदशा** – 'वापसी' कहानी में सुश्री प्रियम्वदा ने सरकारी सेवा से निवृत्त होने वाले गजाधर बाबू की मानसिकता और मनोदशा का सजीव व मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने पैंतीस वर्ष तक बाल–बच्चों से दूर रहकर छोटे–छोटे स्टेशनों पर रहकर नौकरी की है। जीवन–भर परिवार से दूर रहकर बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने हेतु तथा उन्हें सुविधा दिलाने के लिए शहर में मकान बनवाते हैं और इसी आशा से सेवानिवृत्त होकर घर जा रहे हैं कि बाकी जीवन उनका उल्लासमय और सुखपूर्वक परिवार के साथ बितायेंगें। कहानीकार का कहना है–"गजाधर बाबू बहुत खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे।" बच्चों से हँसना–खेलना तथा पत्नी से मनोविनोद करना उन्हें बड़ा अच्छा लगता था। वे स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी थे। रविवार का दिन था तथा बच्चे अन्दर कमरे में इकट्ठे होकर नाश्ता कर रहे थे तथा मनोविनोद में लीन थे। गजाधर बाबू बिना खांसे अन्दर चले गए और बच्चे सकपकाकर वहां से खिसक गए तथा गजाधर बाबू अकेले वहां रह गए। कहानीकार लिखती हैं–"गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गए, उससे उनके मन में थोड़ी–सी खिन्नता उपज आयी।" पत्नी ने भी उनको अकेला बैठा देखकर कहा–"अरे ! आप अकले

बैठे हैं–वे सब कहाँ गए?" गजाधर बाबू के मन में फांस–सी कड़क उठी। अपने–अपने काम में लग गए हैं–आखिर बच्चे ही तो हैं। उन्हें समय पर नाश्ता नहीं मिलता और वे गणेशी को गरम–गरम पूरियां–जलेबी तथा पूरे ढाई चम्मच चीनी वाली गाढ़ी–मलाईदार चाय का स्मरण करते हैं। बच्चे उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं और घर के सभी सदस्य स्वार्थी हैं तथा अपने आप में लीन हैं। पत्नी भी बच्चों में ज्यादा लीन है और गजाधर बाबू के समक्ष शिकायत या खीझ ही प्रकट करती है। उसको घर में रहने के लिए समुचित स्थान नहीं मिल पाता। उनकी चारपाई ड्राईंग रूम की कुर्सियों को पीछे हटाकर अस्थायी रूप से व्यवस्था की जाती है। कहानीकार ने लिखा है–"घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबन्ध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली–सी चारपाई डाल दी गई थी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े–पड़े कभी–कभी अनायास ही इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती, उन रेलगाड़ियों की जो आती और थोड़ी देर रूककर किसी और लक्ष्य को ओर चली जाती।" इसी प्रकार घर के सदस्य न तो उनके प्रति आत्मीयता रखते हैं और न श्रद्धा रखते हैं। अमर भी उनकी टोका–टोकी से व्यथित हो जाता है और अलग हो जाना चाहते हैं। पत्नी भी उन्हे स्पष्ट कहती है–"ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गये हैं, हमारा जो कर्त्तव्य था, कर रहे हैं, पढ़ा रहे हैं। शादी कर देंगे।" इस प्रकार नौकर निकालने वाले प्रसंग में भी घर के सदस्य उनका विरोध करते हैं। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है–"जीवन–भर परिवार को सुखी और व्यवस्थित करते रहने के लिए परिवार से दूर रहकर नौकरी करने वाला गजाधर बाबू रिटायर होने पर अपने परिवार के बीच, पत्नी, बच्चों के बीच शेष जीवन उल्लास के साथ बिताने और बेचैनी के साथ जब अपने सुखी–सम्पन्न घर में पहुंचते हैं और अपने को 'मिसफिट' पाते हैं।" इस प्रकार गजाधर बाबू अपने घर में अजनबीपन महसूस करता है। वे स्वयं यह मानते हैं कि वे तो इस परिवार में पत्नी व बच्चों के लिए धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। परिवार में उन्हें अनचाही तथा अजनबी स्थिति का सामना करना पडता है और इस प्रकार भरे–पूरे परिवार में अलग–थलग पड जाते हैं। बालक भी उनकी टोका–टाकी से क्षुब्ध रहते हैं, पत्नी उनसे केवल अभावमय जीवन का रोना रोती है। इस प्रकार उन्हें अपना जीवन एक खोयी हुई निधि–सा लगता है। उन्हें लगता कि वे किस्मत द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूंद भी नहीं मिली।" इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में सेवानिवृत्त व्यक्ति गजाधर बाबू की मानसिकता–मनोदशा का मार्मिक चित्रण हुआ है।

**3. जीवन-मूल्यों का विघटन** – उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित 'वापसी' कहानी जीवन–मूल्यों का विघटन का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। गृहस्वामी गजाधर बाबू पिता के दायित्व कर्त्तव्य का निर्वाह भली–भाँति करता है। कान्ति व अमर की शादी करता है तथा बच्चों का उच्च शिक्षा दिलाने के लिए शहर में मकान बनवाता है और उन्हें सभी प्रकार की सुख–सुविधाएं प्रदान करता है, जबकि वह पैंतीस वर्ष की कठोर साधना करके दूर–दूर छोटे–छोटे स्टेशनों पर नौकरी करता है, लेकिन पुत्र–पुत्री सभी अपने पिता के कार्यों का विरोध करते हैं, यथा–नौकर हटाने वाले प्रसंग में। गृहस्वामी की चारपाई डालने के लिए घर में यथोचित स्थान नहीं है। बसन्ती व उसकी भाभी को खाना बनाने का आदेश देने पर अच्छा भोजन न बनाना व सामग्री अधिक खर्च करना आदि। पत्नी भी उनके प्रति आत्मीयता नहीं रखती, बल्कि उनके समक्ष अपने अभावमय जीवन का दुखड़ा रोती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पुत्र, पुत्री का पिता के प्रति कोई आत्मीयता, सम्मान व श्रद्धा नहीं है तथा पत्नी का भी पति के प्रति कोई लगाव व सम्मान नहीं है। जीवन–मूल्यो का विघटन स्पष्ट रूप से 'वापसी' कहानी में दृष्टिगोचर होता है तथा नैतिक आदर्शो तथा परम्परागत मान्यताओं के प्रति धराशाही होने का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

**4. अजनबीपन व अकेलेपन की पीड़ा** – प्रस्तुत कहानी में अजनबीपन एवं अकलेपन की पीड़ा भी अभिव्यक्त हुई है। गजाधर बाबू पूरी कहानी में अपने पुत्र–पुत्री व पत्नी के व्यवहार से अकलेपन–अजनबीपन के बोझ से सन्त्रस्त है। वह परिवार के सदस्यों से घुलना–मिलना चाहता है, परन्तु परिवार के सदस्य उसको देखते ही बिदकते हैं। उसके आदर्शों की अवहेलना करते हैं और नौकर हटाने वाले प्रसंग में नरेन्द्र, अमर और अमर की बहू तथा बसन्ती तथा पत्नी भी विरोध करती है। वह अपने आपको इस वातावरण में 'मिसफिट' पाता है और बच्चों के व्यवहार से व्यथित और क्षुब्ध होकर सेठ रामजी लाल की मिल में नौकरी करने के लिए चले जाते हैं। घर में सभी सदस्य उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं तथा सभी उनके उपेक्षा–तिरस्कार करते हैं। इसी से वे अकेलेपन व अजनबीपन की पीड़ा से सन्त्रस्त हो उठते हैं। वे भरे–पूरे परिवार में अपने आपको अकेला–असहाय महसूस करते हैं। अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह नहीं है तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई तो वहां चले जायेंगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए ही स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेशी की तरह रहेंगे

**5. रूढ़ियों पर कटु कटाक्ष** :– 'वापसी' कहानी में कहानी लेखिका ने रूढ़ियों–परम्पराओं पर कटु कटाक्ष किए हैं। पूजा–पाठ करती हुई गजाधर बाबू की पत्नी अपना ही रोना रोने लगती है–"इस घर में धरम–करम कुछ नहीं।" लेखिका नायक की पत्नी अशुद्ध उच्चारण का चित्रण करते हुए अर्ध्य देने के लिए जल के लोटे का वर्णन करते हुए उनकी अनुपयोगिता पर प्रकाश डालती है।

कहानीकार गजाधर बाबू की पत्नी के माध्यम से एक आदर्श नारी का चित्र प्रस्तुत करता है तथा उसमें अपार वेदनाओं को सहन करने की असीम शक्ति निहित है। यथा–"तुम्हें किस बात की कमी है, अमर की माँ घर में बहू है, लड़के–बच्चे हैं, सिर्फ रुपए से ही आदमी अमर नहीं होता।"

अतः स्पष्ट है कि 'वापसी' कहानी का प्रतिपाद्य वृद्ध व युवा वर्ग में टकराहट तथा सेवानिवृत्त व्यक्ति की मानसिकता व मनोदशा का चित्रण और जीवन–मूल्यों का विघटन का सुन्दर और सजीव चित्रण हुआ है।

निष्कर्ष रूप में **डॉक्टर नामवर सिंह** का कहना है–"गजाधर बाबू की वापसी पर किसी की आँखों में आंसू नहीं, एक विषाद की छाया है जो क्रमशः गहरी होती जाती है, केवल दया ही नहीं केवल सहानुभूति नहीं, बल्कि जीवन के प्रति गहरा पीड़ा–बोध। इस रिटायर्ड आदमी का अकेलापन जैसे अपरिहार्य अकेलापन से निकलना चाहते हुए वह फिर उसे अकेलेपन में वापिस जाने के लिए लाचार हो जाता है और क्या यह अकेलापन एक गजाधर बाबू का ही है ? क्या ऐसा नहीं लगता कि यह अकेलापन बहुत व्यापक है, ऐसा अकेलापना जो कहीं न कहीं आज सबके अन्दर मौजूद है।" इसी प्रकार **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** ने उसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–"'वापसी' कहानी में इसी पीड़ा जीवन–मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों की रिक्तता व बिखराव तथा अजनबीपन व अकेलेपन की पीड़ा का भाव–बोध के स्तर पर बड़े संयमित और तटस्थ कौशल से व्यक्त किया गया है।"

## व्याख्या

***1. "कवि प्रकृति न होने पर भी पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद आती रहती हैं। दोपहर में गर्मी होने पर भी, दो बजे तक आग जलाए रहती और उनके स्टेशन से वापस आने पर गर्म-गर्म रोटियाँ सेंकती-उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा-सा कुछ और थाली में परोस देती और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह थके-हारे बाहर से आते तो उनकी आहट पा वह रसोई के द्वार पर आ जाती और उनकी सलज्ज आँखें मुस्करा उठती। गजाधर बाबू को तब हर छोटी-सी बात भी याद आती और वह उदास हो उठते। अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था। जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।"***

**प्रसंग** –प्रस्तुत अवतरण महिला कहानीकारों में श्रेष्ठ, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में सेवानिवृत्त व्यक्ति की मानसिकता, जीवन–मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों में रिक्तता व शून्यता तथा विशृंखलता, अजनबीपन और अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। गजाधर बाबू परिवार से दूर रहकर, छोटे–छोटे स्टेशनों पर रहकर जीवनयापन करते हैं। बालकों के सम्यक् विकास हेतु वे पक्का मकान बनवाकर उन्हें शहर में रखते हैं। उनकी कामना थी कि वे सेवानिवृत्त होने के बाद परिवार एवं बच्चों के मध्य रहेंगे। गजाधर बाबू बीते दिनों का स्मरण करते हैं कि उनकी पत्नी उनका बड़ा ध्यान रखती थी और उनको खाना भी विशेष आग्रह के साथ कराती थी।

**व्याख्या** – गजाधर बाबू रेलवे में स्टेशन मास्टर के पद पर कार्यरत थे और उनकी प्रकृति भी कवियों जैसी नहीं थी। क्योंकि वे कवियों जैसे संवेदनशील नहीं थे, परन्तु उन्हें कवियों के समान पत्नी की मधुर और स्नेहपूर्ण आत्मीयता से युक्त बातों का स्मरण हो आता था। दोपहर में गर्मी के मौसम में भी वह चूल्हें के समक्ष बैठकर गजाधर बाबू की प्रतीक्षा किया करती थी और उनके स्टेशन से वापिस आने पर ही वह गरम–गरम रोटियां बनाती थी। इस प्रकार वह प्रतिकूल मौसम में आग के समक्ष बैठकर गृहिणी के दायित्व–कर्त्तव्य का निर्वाह भली–भाँति किया करती थी। उनके खाना खा चुकने के बाद भी उनकी पत्नी थाली में कुछ न कुछ परोस दिया करती और खाने के लिए मधुरता व आत्मीयता से खाने का आग्रह करती। जब वे ड्यूटी से थक–हार कर आते तो वह उनका स्वागत करने के लिए जरा–सी आहट पाते ही रसोई से निकलकर दरवाजे पर आ जाती और उनकी लज्जा युक्त आँखें आत्मीयता व स्नेहपूर्ण तरीके से मुस्करा उठती। इस प्रकार गजाधर बाबू को ऐसी छोटी बातों का स्मरण हो उठता था तो वे अत्याधिक व्याकुल हो उठते थे। अब फिर ऐसा अवसर आ गया था कि वे सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त होने जा रहे हैं और कितने वर्षों बाद फिर वह अवसर आया है कि अब वे फिर उसी आत्मीयतापूर्ण, स्नेहिल व

आदरपूर्ण वातावरण में रहने के लिए जा रहे हैं। अनेक वर्षों की कठोर साधना के पश्चात् अब वे बाल–बच्चों के स्नेहिल वातावरण में जीवनयापन करने जा रहे हैं।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल वह सहज है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. गजाधर बाबू की मानसिकता का चित्रण किया गया है। अतीत की स्मृतियाँ उन्हें अत्यन्त मनोरम व सुखद लगती हैं।

3. गजाधर बाबू के चरित्र को अभिव्यक्ति मिली है।

4. गजाधर बाबू के अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है।

5. परिवार के साथ सुखमय जीवन बिताने की कल्पना में गजाधर बाबू घर जाने की तैयारी में लीन हैं।

6. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

2. ***"थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्घ्य का लोटा लिए निकली और अशुद्ध स्तुति करते तुलसी में डाल दिया और उन्हें देखते ही बसन्ती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर को देखा और कहा–"अरे आप अकेले बैठे हैं। ये सब कहाँ गये ?" गजाधर बाबू ने मन में फाँस सी करके उठी, अपने-अपने काम में लग गए-आखिर बच्चे ही हैं।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण महिला कहानीकारों में अग्रगण्य, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने सेवानिवृत्त व्यक्ति के अजनबीपन, फालतूपन और अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है। लेखिका ने इस पीड़ा को बड़े संयमित और तटस्थ कौशल से स्पष्ट किया है। गजाधर बाबू सरकारी सेवा से रिटायर होकर इस कामना के साथ घर जाते हैं कि बाल–बच्चों के साथ बाकी जीवन स्नेह और आत्मीयता से जीवनयापन करेंगे, परन्तु उनकी कामनाएं धूल–धूसरित हो जाती हैं। जब घर के सदस्य उन्हें अपनी स्वतन्त्रता में बाधक मानते हैं। रविवार के दिन नरेन्द्र–बसन्ती तथा अमर की बहू नाश्ता कर रहे हैं और मनोविनोद में लीन हैं तभी गजाधर बाबू के प्रवेश करने से सभी इधर–उधर हो जाते हैं। वे व्याकुल–व्यथित होकर वहीं बैठ जाते हैं कि तभी उनकी पत्नी प्रवेश करती है।

**व्याख्या** – गजाधर बाबू बिना वातावरण निर्माण किए अभिनय या नृत्य करते नरेन्द्र, हँस–हँसकर दोहरी हो रही बसन्ती तथा वस्त्रों की सुध–बुध से अपरिचित अमर की बहू वाले कमरे में चले जाते, जिससे सभी वहां से चले जाते हैं। वे व्याकुल, व्यथित होकर वहीं बैठ जाते हैं तभी उनकी पत्नी हाथ में पवित्र जल का लोटा लेकर अन्दर से बाहर आती है और कुछ गलत उच्चारण करती हुई तुलसी के पौधे में अर्घ्य या शुद्ध जल डाल देती है। जब माताजी पूजा समापन करके बाहर चली तो उस कमरे में से जहाँ गजाधर बाबू बैठे हुये थे, बसन्ती भी अपने पिताजी को अकेला छोड़कर बाहर चली गई तभी गजाधर बाबू की पत्नी ने आकर देखा कि वे वहां अकेले बैठे हैं और कहा कि अरे आप यहां अकेले बैठे हुए हैं जबकि यहां बच्चे बैठे थे, वे सब कहाँ चले गए ? वास्तव में परिवार के सदस्य गजाधर बाबू को अपनी स्वतन्त्रता में बाधक तत्त्व स्वीकारते थे। यह सुनकर गजाधर बाबू के मन में एक प्रकार की कसक–पीड़ा व्याप्त हो गई और पत्नी के शब्द उसके हृदय में फांस की तरह चुभ गई। तभी वे संयमित होकर बोले कि अपने–अपने काम में लग गए होंगे और फिर आखिर बच्चे ही तो हैं। वे अपने बीच में गजाधर बाबू की उपस्थिति को रुचिकर नहीं स्वीकारते, क्योंकि फिर वे सहज रूप से अपने भावों की अभिव्यक्ति नहीं कर पाते।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। लेखिका ने आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त की है।

2. बच्चों की गजाधर बाबू के प्रति विरक्ति और गजाधर बाबू की आत्मीयता दृष्टिगोचर होती है।

3. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

4. शैली में व्यंग्यात्मकता का समावेश हुआ है।

5. अप्रत्यक्ष रूप में गजाधर बाबू के चरित्र को अभिव्यक्ति मिली है।

6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

*3. "घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थाई प्रबन्ध कर दिया जाता है। उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों की दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गई थी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े-पड़े कभी-कभी अनायास ही इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती उन रेलगाड़ियों की, जो आतीं और थोड़ी देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जातीं।"*

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध कहानी लेखिका सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित 'वापसी' से अवतरित है। लेखिका ने यथार्थवाद का आश्रय लेकर पारिवारिक जीवन–मूल्यों में विघटन, सम्बन्धों में आई रिक्तता, शून्यता तथा जड़ता आदि का बड़ी ही मनोमुग्धकारी चित्रण किया है। गजाधर बाबू पैंतीस वर्ष तक छोटे–छोटे स्टेशनों पर नौकरी करके जीवनयापन करते हैं और बालकों को समुचित सुविधा प्रदान करते हैं। सेवानिवृत्त होने के बाद इस कामना के साथ पहुंचते है कि बच्चो–परिवार के साथ रहकर सुखपूर्वक रहेंगे, परन्तु वे वहां अपने को मिसफिट पाते हैं। बाल–बच्चे उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं तथा गृहस्वामी जो पक्का मकान बनवाता है, परन्तु उसे रहने के लिए घर में स्थान नहीं मिलता। लेखिका ने गजाधर बाबू के तिरस्कृत–उपेक्षित जीवन का चित्रांकन इस प्रकार से किया है–

**व्याख्या** -- कितनी बड़ी भारी विडम्बना है कि गृहस्वामी गजाधर बाबू कठोर परिश्रम करके शहर में पक्का मकान बनवाते हैं, परन्तु उसको ही रहने के लिए मकान में ही स्थान नहीं मिलता। जिस प्रकार से किसी मेहमान के आ जाने पर उसके सोने के लिए अस्थायी व्यवस्था करते हैं, ठीक इसी प्रकार से गजाधर बाबू के लिए ड्राईंग रूम में कुर्सियां पीछे हटाकर उनकी चारपाई डाली जाती है। घर में ऐसा कोई कमरा नहीं है जहां गजाधर बाबू के लिए कोई स्थान हो। उनके लिए तो अस्थाई व्यवस्था कर दी गई थी। गजाधर बाबू उस ड्राईंग रूम में पड़े–पड़े अपनी अस्थायी व्यवस्था के बारे में चिन्तन करते। जिस प्रकार स्टेशन पर आने–जाने वाली गाड़ियों के लिए अस्थायी व्यवस्था की जाती है, उसी प्रकार गजाधर बाबू के लिए घर में अस्थायी इंतजाम किया जाता है। उन्हें यह अनुभूति होती है कि वे इस घर में एक मेहमान की भाँति है। उन्हें बड़ा कष्ट होता है कि गृहस्वामी जिसने यह पक्का मकान बनवाया है, उसको ही रहने के लिए जगह नहीं है। वे सोचते हैं कि जिस प्रकार स्टेशन पर गाड़ी के लिए अस्थायी व्यवस्था करके खड़ा कर देते हैं, क्योंकि उसको और कहीं जाना होता है।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल एवं सुबोध है। आम सहज की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. गृहस्वामी की स्थिति एक मेहमान की भांति है–उसकी इस स्थिति का चित्रण हुआ है।

3. गजाधर बाबू के चरित्र को अभिव्यक्ति मिली है।

4. जीवन के आध्यात्मिक तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि जगत तो आत्मा का अस्थायी आवास है, उसका स्थायी आवास तो प्रभु के श्रीचरणों में है।

5. पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग हुआ है।

*4. "यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की यादों में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था ? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचिता है। गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी शरीर बहुत बेडौल और कुरुप लग रहा था। चेहरा श्रीहीन और रुखा था।"*

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण हिन्दी की श्रेष्ठ लेखिका व प्रसिद्ध कहानीकार, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में पारिवारिक जीवन–मूल्यों का विघटन, सम्बन्धों में आयी रिक्तता, शून्यता व जड़ता तथा सेवानिवृत्त व्यक्ति का अकेलेपन–अजनबीपन को व्यक्त किया गया है। पैंतीस साल तक छोटे–छोंटे, गांव में रहकर गजाधर बाबू सेवानिवृत्त होकर घर इस कामना से आते हैं कि अब उनका जीवन बच्चों के साथ स्नेहिल व सुखद वातावरण में गुजरेगा, लेकिन उनकी लालसाओं पर तुषारापात हो जाता है, जब वे अपने आपको उस वातावरण में मिसफिट पाते हैं और परिवार के सदस्य भी उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं। उनकी पत्नी भी उन्हें अतीत वाली आत्मीयता प्रदान नहीं करती, बल्कि उनके समक्ष पारिवारिक जीवन के अभाव, कष्टों व दुःखों का दुःखड़ा रोना रोती रहती है। पत्नी बैठक में चटाई पर आकर सो जाती है, पत्नी को देखकर गजाधर बाबू चिन्तन करते हैं।

**व्याख्या** – गजाधर बाबू चिन्तन करते हैं कि यही वह पत्नी जो उनके समक्ष अभावमय जीवन का रोना रोती है, बच्चों

की शिकायतें बताती है और नौकर की अकर्मण्यता पर चिन्तन करती है। नायक गजाधर बाबू सोचते हैं कि क्या यही वह पत्नी है जिसके हाथों के कोमल स्पर्श हेतु, जिसकी मधुर मुस्कानों की स्मृति में उन्होंने घर से दूर रहकर इन मधुर स्मृतियों में पैंतीस साल छोटे--छोटे स्टेशनों पर काट दिये थे, क्योंकि गजाधर बाबू स्नेहिल व्यक्ति हैं और स्नेह के आकांक्षी हैं तथा पत्नी की मधुर स्मृतियों में उन्होंने अपना यौवन काट दिया तथा न कभी शिकायत की, न खीझ और न उपालम्भ। लेकिन जब गजाधर बाबू यहां आ गए तो पत्नी घर--परिवार में इतनी व्यस्त है कि वह नायक से आत्मीयतापूर्ण व्यवहार नहीं करती, केवल उनके समक्ष अभाव, शिकायत आदि ही प्रस्तुत करती है। उनको लगता है कि उसके स्वभाव में परिवर्तन आ गया है। वे सोचते हैं कि क्या यही वह पत्नी है जिसके हाथों के कोमल स्पर्श हेतु, जिसकी मधुर मुस्कानों की स्मृति में उन्होंने घर से दूर रहकर इन मधुर स्मृतियों में पैंतीस साल छोटे--छोटे स्टेशनों पर काट दिए थे, क्योंकि गजाधर बाबू स्नेहिल व्यक्ति हैं और स्नेह के आकांक्षी हैं तथा पत्नी की मधुर स्मृतियों में उन्होंने अपना यौवन काट दिया तथा न कभी शिकायत की, न खीझ और उपालम्भ। लेकिन जब गजाधर बाबू यहां आ गए तो पत्नी घर--परिवार में इतनी व्यस्त है कि वह नायक से आत्मीयतापूर्ण व्यवहार नहीं करती, केवल उनके समक्ष अभाव, शिकायत आदि ही प्रस्तुत करती है। उनको लगता है कि उसके स्वभाव में परिवर्तन आ गया है। वे सोचते हैं कि उनकी सुन्दर--आकर्षक व नवयुवा पत्नी कहीं भटक गई है, जीवन के भीषण संघर्षों में कहीं खो गई है और उसके स्थान पर यह जो नारी है--भद्दी, मोटी, भारी--भरकम बेडौल शरीर वाली--उसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। वह मेरे मन और प्राणों के लिए सर्वथा अपरिचित है तथा उसके मन प्राणों के साथ कोई जुड़ाव नहीं, आत्मीयता नहीं है। गाढ़ी निद्रा में लीन, गजाधर बाबू को अपनी पत्नी का भारी--भरकम शरीर बेडौल व भद्दा लगता है तथा चेहरा भी कान्तिहीन, निष्प्रभ और श्रीहीन--रुखा--सूखा--सा लगता है। जीवन के लम्बे अन्तराल में पति की इच्छाओं के अनुरूप कार्य करने और उनको सुख पहुंचाने तथा हृदय को प्रसन्न रखने की बात उसने भुला दी है। अब उनको अपनी पत्नी में पहली वाली स्नेह व आत्मीयतापूर्ण छवि दृष्टिगोचर नहीं होती। पत्नी के इस परिवर्तन पर गजाधर बाबू सोचने के लिए विवश हैं और उन्हें अपनी पत्नी विद्रुप लगने लगी।

**विशेष**– 1. भाषा सजीव, सहज तथा सरल है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. सेवानिवृत्त व्यक्ति की मानसिकता का सजीव चित्रण हुआ है।

3. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

4. तत्सम शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

5. गजाधर बाबू के चरित्र को अभिव्यक्ति मिली है।

6. यौवनावस्था में गजाधर बाबू की पत्नी के प्रति गहरी आत्मीयता एवं आसक्ति थी, लेकिन अब उसके स्वभाव में परिवर्तन आ गया है, इसलिए उन्हें विद्रुप प्रतीत होने लगी।

***5. "निश्चिंत जीवन, सुबह पैसेंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल-पहल, चिर-परिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट-खट जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह था। तूफान व डाक गाड़ी के इंजनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजी लाल के मिल के कुछ लोग कभी-कभी पास आ बैठते, वहीं उनका दायरा था, वहीं उनके साथी। वह जीवन भर उन्हें एक खोयी निधि-सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से एक बूँद भी न मिली।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध कहानी लेखिका, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में पारिवारिक जीवन--मूल्यों में विघटन, सम्बन्धों में आयी रिक्तता शून्यता व निर्जीवता आदि का चित्रण किया है। सेवानिवृत्त होने के बाद गजाधर बाबू इस कामना के साथ घर पहुंचते हैं कि अब वे बाकी जीवन परिवार के साथ आराम से बितायेंगे, लेकिन बाल--बच्चे उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व समझते हैं। घर में रहते हुए उनकी स्थिति एक मेहमान जैसी रहती है। उनको अपने पूर्व जीवन की मधुर स्मृतियां कुरेदती हैं। लेखिका ने गजाधर बाबू की मनोदशा का चित्रण इस प्रकार से किया है–

**व्याख्या** –स्टेशन पर रहते हुए उनके जीवन में निश्चिंतता थी और प्रातःकाल जब ट्रेन आती तो स्टेशन पर बड़ी चहल--पहल व गहमा--गहमी हो जाती थी और उसी ट्रेन से चिर--परिचित यात्री आते थे। आने--जाने वाले लोगों के साथ उनकी जान--पहचान हो गई थी। रेल के पहियों की चलने की खटखट उन्हें जीवन में गति के साथ संगीत का सुख देता थी। इस

प्रकार वे स्टेशन पर कार्य करते हुए अत्यधिक प्रसन्न थे। यद्यपि वे वहां अकेले रहते थे, लेकिन रात की नीरवता में तूफ़ान और डाक गाड़ी के इंजनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। यहां अकेले रहते हुए भी उनमें अकेलेपन का बोध नहीं हुआ। इंजनों की आवाज में भी आत्मीयता की अनुभूति होती थी। सेठ रामजीलाल के मिल में मजदूर काम किया करते थे वे भी उनके पास आया करते थे और उनसे भी उनके आत्मीय सम्बन्ध बन गए थे। वे मजदूर ही उनके साथी बन गए थे तथा स्टेशन इंजन तथा मिल के मजदूर आदि वहीं उनका दायरा था। यहां पर यहीं मजदूर ही उनके दुःख–सुख के साथी थे। अब गजाधर बाबू को अपना जीवन एक खोयी हुई–सी निधि के समान लगा, क्योंकि उन्हें ऐसा लगा कि उन्होंने जीवन भर दूर स्टेशनों पर रहकर कठोर परिश्रम किया है। वह सब व्यर्थ गया। क्योंकि परिवार से न तो अपनत्व मिला और न आत्मीयता तथा पारिवारिक सम्बन्धों में आकर्षण भी नहीं रह गया था। इस उपेक्षित जीवन से उन्हें गहरी वितृष्णा हो गई और उन्हें लगा कि उन्हें जीवन ने ठग लिया है। उन्होंने जीवन–भर कठोर परिश्रम करके, अभावमय जीवन जीकर बालकों को सुशिक्षित बनाया। उन्होंने जीवन से जो कुछ चाहा, उसका एक बूंद रस भी प्राप्त नहीं हुआ।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयोग हुई है।

2. गजाधर बाबू की पीड़ा, व्यथा का चित्रांकन हुआ है।

3. गजाधर बाबू के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

4. देशज शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं।

5. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

6. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

***6. "उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से माँग में सिन्दूर डालने की अधिकारिणी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली देने से सारे कर्त्तव्यों से छुट्टी पा जाती है। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि अब वही उनकी सम्पूर्ण दुनिया बन गई है। गजाधर बाबू उनके जीवन के केन्द्र नहीं बन सकते।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण श्रेष्ठ कहानीकार लेखिका, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने गजाधर बाबू की अकेलेपन–अजनबीपन व फालतू समझे जाने वाली पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। 'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू इस प्रकार से परिवार में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते जिस प्रकार सोफा–सेट आदि से सुसज्जित भव्य कमरे में चारपाई फिट नहीं बैठती तथा भद्दी लगती है। गजाधर बाबू को परिवार के सदस्य फालतू–तिरस्कृत व उपेक्षित स्वीकारते हैं। वे पैंतीस वर्ष तक छोटे–छोटे स्टेशनों पर रहकर शहर में पक्का मकान बनवाकर बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलवाते हैं। उनकी कामना है कि सेवानिवृत्त होने के बाद वे बाल–बच्चों के साथ उल्लासपूर्ण व सुखमय जीवनयापन करेंगे। लेकिन बच्चे उन्हें देखते ही सकपका जाते हैं और उन्हें अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व स्वीकारते हैं। उन्हें गजाधर बाबू में हित चिंतक या शुभचिंतक पिता की छवि के सिवाय डिक्टेटर की भूमिका दृष्टिगोचर होती है। गजाधर बाबू निर्णय करते हैं कि अब वे घर के मामलों में दखल नहीं देंगे। साथ ही पत्नी भी उन्हें सुझाव देती है कि आप बीच में न पड़ा करें। गजाधर बाबू यह सुनकर अत्यधिक व्याकुल व व्यथित हो उठते हैं।

**व्याख्या** – गजाधर बाबू पत्नी के इन वचनों को सुनकर कि आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं, हमारा जो कर्त्तव्य था, कर रहे हैं, पढ़ा रहे हैं। शादी कर देंगे। गजाधर बाबू ने अत्यधिक व्याकुल एवं व्यथित होकर पत्नी को देखा। उन्होंने सोचा था कि वे तो केवल पत्नी व बच्चों के लिए धन कमाने की एक मशीन हैं, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला एक माध्यम मात्र है। उनका कार्य केवल बाल–बच्चों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धन कमाना है। उनका कार्य बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना, शादी करना है। तभी वे सोचते हैं कि मेरे जीवित रहने से मेरी पत्नी अपनी मांग में सिन्दूर डालने की अधिकारी है, वह सधवा या सौभाग्यवती है। उसे समाज में सम्मान प्राप्त है। उसका कर्त्तव्य केवल यह है कि वह मेरे सामने दो वक्त भोजन की थाली रखकर अपने दायित्व से मुक्ति पा लेती है। इसके अतिरिक्त भी उसके कर्त्तव्य–दायित्व है। वह तो घर–परिवार में इतनी अधिक व्यस्त है कि उसे पति गजाधर बाबू की ओर ध्यान देने का समय नहीं है। वह घी और चीनी के डिब्बों में अर्थात् रसोईघर में इतनी रम जाती है कि मानो वहीं उसके लिए दुनिया हो। गजाधर बाबू उस परिवार के या उसकी पत्नी के केन्द्रबिन्दु नहीं हो सकते, अर्थात् अब तो परिवार या पत्नी को गजाधर बाबू के प्रति न आकर्षण है, न

आत्मीयता है। न तो बाल--बच्चों की आत्मीयता है गजाधर बाबू के प्रति और न पत्नी को। इसलिये वे एकाकीपन व अजनबीपन के भाव से युक्त हो गए। न पत्नी उन्हें प्रेम करती है और न बाल--बच्चे उनके प्रति सम्मान।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयोग की गई है।

2. गजाधर बाबू के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

3. बाल–बच्चों व पत्नी ने गजाधर बाबू को उपेक्षित व तिरस्कृत कर डाला है–इस तथ्य की अभिव्यक्ति हुई है।

4. कहानी का मूल प्रतिपाद्य--अकेलेपन–अजनबीपन व सेवानिवृत्त व्यक्ति की बाल--बच्चों व परिवार के साथ सामंजस्य की समस्या को स्पष्ट किया गया है।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***7. "गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गई। बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में लाई और कनस्तरों के पास रख दिया, फिर बाहर आकर कहा-अरे नरेन्द्र ! बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दो, उसमें चलने तक की जगह नहीं है।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण हिन्दी की महिला कहानीकारों में अग्रगण्य, स्वनामधन्य सुश्री उषा प्रियम्वदा द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध यथार्थवादी कहानी 'वापसी' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने पारिवारिक सम्बन्धों में बिखरते जीवन–मूल्यों में विघटन, अजनबीपन तथा अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। जीवन–भर परिवार को सुखी व व्यवस्थित करते रहने के लिए परिवार से दूर रहकर छोटे--छोटे स्टेशनों पर नौकरी करके उन्हें उच्च शिक्षा दिलवाता है तथा शहर में रखकर सभी सुख--सुविधाएं प्रदान करता है। सेवानिवृत्त होकर घर लौटता है तो उसकी इस कामना पर तुषारापात होता है कि बाकी जीवन बच्चों के साथ सुखपूर्वक काट लेगा। बच्चे उसको अपनी स्वतंत्रता में बाधक तत्त्व मानते हैं तथा उसको देखते ही बिदकते हैं। पत्नी हर समय उसके समक्ष अपने अभावमय जीवन के दुखड़े रोती है। बाल--बच्चों व पत्नी के व्यवहार से क्षुब्ध होकर वे रामजीलाल के मिल में नौकरी करने के लिए चले जाते हैं। बालक पूर्ववत् स्वतंत्रता की अनुभूति करते व सुख–शान्ति का अनुभव करते हैं।

**व्याख्या** – गजाधर बाबू के चले जाने के बाद घर के सभी सदस्य सुख की सास लेते हैं तथा पूर्ववत स्वच्छन्द हवा में सांस लेने लगते हैं। भीतर आते ही अमर की बहू से सिनेमा ले चलने की बात करते हैं और बसन्ती भी साथ चलने की बात कहती है। पत्नी का जो कार्य रसोईघर में अधूरा पड़ा था, उसको निपटाने के लिए रसोईघर में चली गई। ... में रसोईघर को ही अपना संसार मानती है। बाकी बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर भीतर अपने कमरे में ... ताकि बालक इनको खा सके। उसने उस मठरियों के कटोरदान को कनस्तरों के पास रख दिया। गजाधर बाबू के जाने पर घर के सभी सदस्य संकट से मुक्ति पाते हैं, क्योंकि वे सभी के साथ टोका--टोकी करते हैं तथा एक प्रकार ... उन्होंने सभी सदस्यों पर लगा रखा था। उनके होते हुए बसन्ती शीला के घर नहीं जा सकती, अमर और अमर ... मित्र घर में नहीं आ सकते। उनके जाते ही बच्चे अपनी फिर उसी मौज--मस्ती में लिप्त हो जाते हैं। पत्नी ... दुनिया में लीन हो जाती है। तभी पत्नी नरेन्द्र को सम्बोधित करके कहती है कि अपने बाबूजी की ... दो, क्योंकि वहां पैर फिराने की जगह भी नहीं है। जब तक गजाधर बाबू घर में थे, तो घर के सभी ... का प्रतिबन्ध--सा लगा हुआ था। इसलिए घर के सभी सदस्य उन अनावश्यक बन्धनों को उतार फैंकने के लिए ...

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सहज व सरल है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. घर के सभी सदस्यों के नायक गजाधर के साथ सम्बन्धों की रिक्तता, शून्यता व जड़ता का पता चलता है।

3. पारिवारिक विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं यथा पत्नी रसोईघर में व्यस्त है और बाल–बच्चे यथावत ... हैं।

4. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम है।

# परिन्दे

## (निर्मल वर्मा)

### तात्त्विक विवेचन

आधुनिकता–बोध की कहानियों का फलक अत्यन्त विस्तृत है और ऐसे रचनाकारों की दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। 'परिन्दे' कहानी में कहानीकार ने मिस लतिका के माध्यम से बिखरी हुई नारी का चित्रण किया है। हल्लाबोल सामाजिकता से दूर खड़े निर्मल जी की कहानियों के पात्र प्रेम, प्रकृति और सम्बन्ध, संयम और समयातीत के असंख्य, अदृश्य, आन्तरिक और सूक्ष्म यथार्थ के अनुभवों को सच्चा और सजीव अनुभव बताते हैं। कदाचित् इसीलिए उनकी कहानियों को एकान्तिक अनुभूतियों की या अन्तर्मुखी और व्यक्तिपरक कहानियों के रूप में देखने का भी आग्रह किया गया है। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है–"निर्मल वर्मा ने आधुनिकता और आधुनिक मनुष्य को, उसकी विसंगति और चुनौतियों को, सम्बन्धों की भावुकता के कारण मनुष्य को स्वतंत्रता एवं उसके अस्तित्व के समक्ष उपस्थित खतरों को अत्यन्त गहन ढंग से मुग्ध कर देने वाली काव्यभाषा में सजीव किया है। कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा ने कहानी में यथार्थ की इकहरी धारणा के वर्चस्व को खण्डित किया है और कहानियों में भी जीवन के दार्शनिक प्रश्नों को उठाने की कोशिश की। यह दार्शनिकता नितान्त आध्यात्मिकता से भिन्न रही है।" वैसे निर्मल वर्मा जी बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार हैं तथा उन्होंने अपनी कुशल लेखनी उपन्यास, निबन्ध और यात्रा–संस्मरण आदि पर चलाई है। उन्हांने अपनी कहानियों में बदलते हुए सामाजिक सम्बन्धों का, आधुनिकता और आधुनिक मनुष्य का, उसकी विसंगति और संत्रास का मार्मिक चित्रण किया है। बदलते हुए सामाजिक सम्बन्धों तथा अर्थहीन जीवन को स्थापित करने में लेखक ने भरपूर सफलता अर्जित की है। वैसे कहानीकार व्यक्ति के जीवन की समस्याओं का यथार्थपूर्ण चित्रांकन करता है तथा उसमें कल्पना के लिए कोई अवकाश नहीं रहता। मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन व स्त्री–पुरुष और अन्य सम्बन्धों का यथार्थपूर्ण चित्रण करना ही कहानी रचना का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

**1. कथानक (कथावस्तु) -**

'परिन्दे' कहानी में व्यक्तिवाद अधिक दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि इसमें पात्रों की स्वयं अनुभूतियों का अधिक वर्णन है। वर्मा जी की कहानियों में रोमांटिक प्रेम के तत्त्वों में अवसाद की गहरी छाया विद्यमान है। **डॉक्टर शिवकुमार शर्मा** ने निर्मल वर्मा की कहानियों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–"निर्मल वर्मा की कहानियों में सर्वथा एक नया मोड़ है। वे भारतीय परम्परा से कटकर पाश्चात्य परम्परा से जुड़ना चाहते हैं। वे भारत में रहकर भी अपनी कहानियों में विदेशी परिवेश की कल्पना करते हैं। इनकी कहानियों में अफ्रीका–सैग्रीगेशन (वियोजन–पृथकीकरण) तथा साम्यवादी साम्राज्यों द्वारा आयोजित कॉस्ट्रेशन कैम्पों (यंत्रणा–शिविरों) का उल्लेख तो मिल जाएगा, किन्तु हिन्दुस्तान की निपट गरीबी की चर्चा कहीं नहीं मिलेगी।" इस प्रकार वर्मा जी की कहानियों में कला, कला के लिए है, की अभिव्यक्ति हुई है और वातावरण की अभिव्यक्ति है, मनोविश्लेषण है तथा प्रेम का चित्रण है। 'परिन्दे' कहानी में कथावस्तु सपाट नहीं है, बल्कि जीवन के रेशों को इधर–उधर से जोड़कर प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास है। सम्पूर्ण कथा कहानी न हो कर वातावरण को प्रस्तुत करती है। पूरी कहानी में स्कूली वातावरण, विद्यालीय–छात्रावासीय जीवन की झलक दृष्टिगोचर होती है। लतिका उस विद्यालय के छात्रावास की अध्यक्षा है तथा मिस वुड उस विद्यालय के प्राचार्य के पद पर आसीन हैं। डॉक्टर मुखर्जी भी उस विद्यालय में अध्यापक के पद व डॉक्टर का दायित्व निभाते है। मिस ह्यूबर्ट भी विद्यालय के छात्रावास में रहते हैं और लतिका को प्रेम भरा पत्र लिखते हैं। इस प्रकार 'परिन्दे' कहानी में प्रेम और प्रकृति का सजीव चित्रण व चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों का आलस्य व अकर्मण्यता का मनोमुग्धकारी वर्णन हुआ है।

**डॉक्टर बच्चन सिंह** ने वर्मा जी की कहानियों की कथावस्तु पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–"निर्मल की कहानियों के टेक्स्ट को समझने के लिए 'टैक्सचर' का समझना आवश्यक हो जाता है। इसमें परम्परानुमोदित जटिल कथावस्तु (प्लाट) नहीं है। विचार या आयडिया को नया अनुक्रम देने का प्रयास नहीं है, आकर्षक, आरम्भ और चमत्कारपूर्ण समापन नहीं है। उनमें जीवन की आन्तरिक लय को बांधने की कोशिश की गई है, रूप का स्थान रूपायन (फार्मेशन) ने लिया है।" वर्मा जी आज के खण्डित जीवन से सबल मानवता का सूत्र बटोर, नई अनुभूति की पहचान, कुण्ठित सामाजिक और राजनैतिक जीवन की विषमताओं से घिरे हुए मानव को संघर्ष कर विजयी होने के छुटपुट प्रयास में भी लगे हैं। प्रकृति का तादात्म्य और इन्हीं

के माध्यम से पात्रों की मानसिक स्थितियों, अन्तर्मन की गतियों का साक्षात्कार वर्मा जी की कहानियों की प्रमुख विशेषताएं हैं। वैसे 'परिन्दे' कहानी प्रतीकात्मकता पर आधारित है और कथावस्तु में नाटकीयता का गुण सर्वत्र विद्यमान है। गुलेरी की ही भाँति कहानीकार ने पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है तथा इसी के माध्यम से कथानक अग्रसर हुआ है।

'परिन्दे' कहानी पर अस्तित्ववादी चेतना का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। इस दर्शन का प्रारम्भ मानव की विवशता–बेबसी व असहाय स्थिति से होता है और इसमें व्यक्ति किंकर्त्तव्यविमूढ़ की स्थिति में रहता है, दुविधा की स्थिति में रहता है। अस्तित्ववादी चेतना के अन्तर्गत क्षण का महत्त्व व उपादेयता सर्वाधिक है। निर्मल वर्मा ने अपने इस दर्शन को इस प्रकार वाणी प्रदान की है–"वह आँखें मूंदे सोच रही थी, उसी क्षण को जो भय और विस्मय के बीच में भिंचा था–दहका–सा, पागल क्षण।"

**2. चरित्र चित्रण -**

प्रस्तुत कहानी 'परिन्दे' के माध्यम से कहानीकार ने मनुष्य के चेतन मन और अवचेतन का द्वन्द्व भी दिखाया है। नायिका लतिका और कहानी का एक प्रमुख पात्र ह्यूबर्ट के कार्य–व्यापारों से यही तथ्य अभिव्यक्त होता है कि ह्यूबर्ट लतिका को प्रेम–पत्र लिखता है, लेकिन लतिका अपने पूर्व प्रेमी गिरीश नेगी की मधुर स्मृतियों में ही खोयी हुई है तथा उसके प्रेम–प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देती है, लेकिन ह्यूबर्ट के प्रति अचेतन स्तर पर संवेदना दिखाना उसे इसी द्वन्द्व को अभिव्यक्ति करता है। वह चेतन–अवचेतन के द्वन्द्व को रोकने में असमर्थ हो जाने पर ह्यूबर्ट के विषय में संवेदनशील हो उठती है–

'लतिका की अधमुंदी आँखें खुल गई। क्या ह्यूबर्ट साहब अपने कमरे में नहीं हैं ?'

ह्यूबर्ट इतनी रात कहां गए ? किन्तु लतिका की आँखें फिर झपक गईं। दिन–भर की थकान ने सब परेशानियां, प्रश्नों पर कुन्जी लगा दी, जैसे दिन–भर आँख–मिचौली खेलते हुए उसने अपने कमरे में 'दैया' को छू लिया था, अब वह सुरक्षित थी। कमरे की चहारदिवारी के भीतर उसे कोई नहीं पकड़ सकता। दिन के उजाले में वह गवाह थी, मुजरिम थी, हर चीज का उसे तगाजा था, अब इस अकेलेपन में कोई गिला नहीं, कोई उजाला नहीं, सब खींच–तान खत्म हो गई है, जो अपना है, वह बिल्कुल अपना–सा हो गया है, जो पराया है, उसका दुःख नहीं, अपनाने की फुर्सत नहीं।

इसी प्रकार कहानी में लतिका–ह्यूबर्ट का द्वन्द्व जूली–लतिका का द्वन्द्व भी चेतन–अचेतन के द्वन्द्व के अन्तर्गत आते हैं और वही द्वन्द्व कथावस्तु को अग्रसर करता है।

**3. संवाद -**

इसी प्रकार इस कहानी में कहानीकार ने पूर्व दीप्ति शैली का भी प्रयोग किया है जिससे कथानक मे स्पष्टता और रोचकता का भाव आ गया है। कहानी का सबसे रोचक एवं रसात्मक तथा मार्मिक प्रसंग है–लतिका और गिरीश नेगी का प्रेम–व्यापार। कहानीकार ने पूर्वदीप्ति शैली का आश्रय लेकर इस प्रसंग को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। लतिका अपने अतीत की मधुर स्मृतियों में खोयी हुई और गिरीश के साथ बिताये उन मधुर क्षणों को हृदय में संजोकर रखती है। गिरीश–लतिका के प्रेम–व्यापार का यह वार्तालाप पूर्वदीप्ति शैली की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है।

"तुम्हें आर्मी में किसने चुन लिया, मेजर बन गए हो, लेकिन लड़कियों से भी गए–बीते हो, जरा–जरा सी बात पर चेहरा लाल हो जाता है।" यह सब वह कहती नहीं, सिर्फ सोचती–भर थी। सोचा था कभी कहूंगी, वह 'कभी' कभी नहीं आया।

बुरूस का लाल फूल।

'लाए हो ?'

'न ?'

'झूठे'

खाकी कमीज की जिस जेब पर बैज चिपके थे, उसी में मुसा हुआ बुरुस का फूल निकल आया।

छिः सारा मुरझा गया।

अभी खिला कहां है ?

हाऊ क्लम्जी।"

उसके बालों में गिरीश का हाथ उलझ रहा था। फूल कहीं टिक नहीं पाता। फिर उसे क्लिप के नीचे फंसाकर उसने कहा–'देखो'।

'परिन्दे' कहानी में वर्मा जी ने हास्य–व्यंग्य का भी सुन्दर चित्रण किया है। निम्नलिखित संवाद में हास्य–व्यंग्य का पुट अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है–

पिकनिक में तुम कहां रह गए थे डॉक्टर, कहीं दिखाई नहीं दिए।

दोपहर भर सोता रहा–मिस वुड के संग। मेरा मतलब है मिस वुड पास बैठी थी।

मुझे लगता है, मिस वुड मुझसे मुहब्बत करती है ? कोई भी मजाक करते समय डॉक्टर अपनी मूंछों के कोनों को चबाने लगता है। 'क्या कहती थी ?' लतिका ने थर्मस से कॉफी को मुंह में उड़ेल दिया। 'शायद कुछ कहती' लेकिन बदकिस्मती से बीच में ही मुझे नींद आ गई। मेरी जिन्दगी के कुछ खूबसूरत प्रेम–प्रसंग कमबख्त इस नींद के कारण अधूरे रह गए।

**4. वातावरण (देशकाल) -**

'परिन्दे' कहानी में ऐसे अनेक रसात्मक व संवेदनशील प्रसंग हैं जिनके कारण कहानी अत्यन्त उच्चकोटि की बन पड़ी है। लतिका गिरीश नेगी से प्यार करती है और उसे तथा मिलिटरी अफसर नेगी को लेकर एक अच्छा–खासा स्कैण्डल बन गया था, लेकिन नेगी असामयिक काल–कवलित हो जाता है, परन्तु नायिका लतिका उसकी मधुर स्मृतियों को संजोकर एक धरोहर के रूप में सुरक्षित रखती है। जब कभी उसे कुमाऊं रेजीमेण्ट की टुकड़ी दिखाई देती है या उसकी मधुर धुन सुनाई पड़ती है तो वह अतीत की सुखद स्मृतियों में लीन हो जाती है–"उस क्षण न जाने क्यों, लतिका का हाथ कॉप गया और कॉफी की कुछ गरम बूँदें उसकी साड़ी पर छलक आयीं। अंधेरे में किसी ने नहीं देखा कि लतिका के चेहरे पर उनींदा–सा रीतापन घिर आया है।"

इसी प्रकार नायिका लतिका–ह्यूबर्ट के प्रेम–पत्र का उत्तर नहीं देती। इससे ह्यूबर्ट को अत्याधिक कष्ट होता है। वह लतिका के गिरिश नेगी के साथ प्रेम–व्यापार को जानकर भी अपने प्रेम–व्यापार को इस प्रकार अभिव्यक्त कर डालता है–"इन द बैंक लेन ऑफ द सिटी, देयर इज ए गर्ल हू लव्स मी।" इस प्रकार कहानी के सभी पात्रों का हृदय संवेदनशीलता से लबालब भरा पड़ा है। इसी प्रकार डॉक्टर मुखर्जी का व्यक्तित्व में भी संवेदनशीलता एक प्रमुख तत्त्व है। कहानीकार ने उसके इस भाव को इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है–"कभी कभी मैं सोचता हूं कि, मिस लतिका किसी चीज को न जानना, यदि गलत है, जो जान–बूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह चिपटे रहना, यह भी गलत है। वर्मा से आते हुए जब मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी मुझे अपनी जिन्दगी बेकार–सी लगी। आज इस बात को अरसा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जी रहा हूँ, उम्मीद है कि काफी अरसा जिऊंगा। जिन्दगी काफी दिलचस्प लगती है और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो मैं दूसरी शादी करने में न हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं पत्नी से प्रेम नहीं करता था। आज भी करता हूँ।" इस प्रकार पूरी कहानी में संवेदनशीलता घटनाओं और वातावरण में भरी पड़ी है। लतिका प्रेम के क्षेत्र में असफल है, इसलिए वह जूली को प्रेम–पथ पर अग्रसर होने से रोकती है।

**5. भाषा-शैली -**

निर्मल वर्मा की कहानियों की भाषा–शैली सरल, सहज व आम बोलचाल की है। अंग्रेजी शब्द व वाक्य बहुधा मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। आज का शिक्षित वर्ग सामान्यतः इसी प्रकार का भाषा–प्रयोग करता है जिसमें हिन्दी और अंग्रेजी के शब्द प्रचूर मात्रा में आए हैं। उनकी भाषा न तो विशुद्ध हिन्दी है और न ही विशुद्ध अंग्रेजी। वेल गुड नाइट, वाट डू यू वाण्ट, क्लोजअप, नाइट रजिस्टर, कन्सर्ट, गुड इवनिंग डॉक्टर, लेट द डेड डाई, बर्लेसेड आर द मीक, इन ए बैक लेन ऑफ द सिटी, देयर इज ए गर्ल हू लव्ज मी, आदि अंग्रेजी के शब्दांश प्रयुक्त हुए हैं। अंग्रेजी के शब्दों में–कॉरीडोर, माउथ आर्गन, कॉनवेंट, प्लीज, क्रास, मैडम, रेजीमेण्टल सैण्टर, प्राइवेट प्रैक्टिस, स्कर्ट, थैंक यू मैडम, मिलिटरी अफसर, प्रैक्टिस, सैंडविच, हैर्म्बर, पोलो ग्राऊण्ड, पवेलियन, कण्टोनमेण्ट, कन्फैस सीनियर, स्कैण्डल, कानवेण्ट स्कूल, प्रेयर हाल, हैट सर्मन, कॉयर, ट्रीजरू, प्रौम्ट, कैण्डलब्रियम, एक्सरे आदि प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार हिन्दी के तत्सम् शब्दों में–निस्तब्धता, मेघाच्छन, भृकुटियां, उदभ्रान्त निमिष, अप्रतिभ, उच्छृंखल, अनर्गल प्रलाप, उद्विग्न, परिणत, अनिवर्चनीय, क्षोभ, स्तब्ध आदि।

उर्दू–फारसी के शब्दों में नमी, खौफनाक, हैसियत, खिदमत, खिताब, परिन्दे, गोरख–धन्धा, अर्दली, कौमी आदि । इसी

प्रकार देशज शब्द भी बहुधा मात्रा में आए हैं; यथा–जबर, पटाना, सनकी आदि। इस प्रकार निर्मल वर्मा जी का भाषा पर असाधारण अधिकार है। **श्री सुरेश सिन्हा** ने वर्मा जी की भाषा–शैली के बारे में कहा है–"वे विदेशी शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं।' बोलचाल के प्रचलित उर्दू शब्द और तत्समपरक मिली–जुली शब्दावली भी प्रयुक्त हुई है। वैसे 'परिन्दे' कहानी की भाषा में एक और महत्त्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि वह पात्रानुकूल है। वैसे 'परिन्दे' कहानी की भाषा में एक और महत्त्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि वह पात्रानुकूल है। डॉक्टर मुखर्जी, मिस ह्यूबर्ट, मिस वुड की भाषा में साहित्यिकता, परिष्कृत व प्रौढ़ स्तर की है, जबकि करी मुद्दीन, होस्टल का अर्दली–चपरासी उर्दू प्रधान हिन्दी बोलता है। लतिका की भाषा में अंग्रेजी के शब्दों की प्रमुखता और साहित्यिक है। जहां तक शैली का सम्बन्ध है, 'परिन्दे' में विश्लेषणात्मक एवं प्रतीकात्मक शैली प्रयुक्त हुई है। शैली में कहीं–कहीं काव्यात्मकता का पुट भी अवलोकनीय है। अतः स्पष्ट है कि वर्मा जी की भाषा सरल, सहज व स्वाभाविक है तथा उसमें जटिल व क्लिष्ट या दुरूह शब्दों के लिए कोई अवकाश नहीं है।

**6. उद्देश्य -**

लेखक ने आधुनिक समाज में मानवीय सम्बन्धों पर भी 'परिन्दे' कहानी में प्रकाश डाला है। लतिका मेजर गिरीश नेगी से प्रेम–व्यापार चलाती है तथा उसी के कारण वह स्कूल में बदनाम हो जाती है। गिरीश नेगी असामयिक काल–कवलित हो जाता है, परन्तु लतिका जीवनपर्यन्त उसकी स्मृतियों को संजोकर अपने हृदय में रखती है तथा ह्यूबर्ट के प्रेम–प्रस्ताव को भी ठुकरा देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि लतिका गिरीश के प्रति समर्पित है तथा गुलेरी की 'उसने कहा था' सूबेदारनी की भांति उसकी मधुर स्मृतियों को अनमोल निधि की भांति संजोए बैठी है। ह्यूबर्ट लतिका से प्रेम करता है और उसे प्रेम पत्र लिखता है, परन्तु लतिका उसके प्रेम को अस्वीकृत कर देती है, परन्तु वह फिर भी गुनगुनाता है–"इन द बैंक लेन ऑफ द सिटी, देयर इज ए गर्ल हू लव्स मी।" इसी प्रकार डॉक्टर मुखर्जी भी अपनी पत्नी की मधुर–स्मृतियों को अपने हृदय में दबाए बैठे हैं तथा अपने प्रेम को स्थायी घोषित करते हैं और साथ ही यह भी स्पष्ट करते हैं–"बर्मा से आते हुए जब मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी, मुझे अपनी जिन्दगी बेकार–सी लगी थी। आज इस बात को अर्सा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जी रहा हूं, और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी न हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था–आज भी करता हूँ।" इस प्रकार कहानीकार ने 'परिन्दे' कहानी में नर–नारी के सम्बन्धों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है।

## II. चरित्र चित्रण

### (क) लतिका

नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित 'परिन्दे' कहानी में लतिका, डॉक्टर मुखर्जी और ह्यूबर्ट प्रमुख पात्रों की श्रेणी में आते हैं तथा गौण पात्रों में जूली, मिस वुड और एलमण्ड का नाम आता है। वह कहानी की नायिका है तथा कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहती है। वह सभी घटनाओं के मूल में विद्यमान है; यथा–उसका मेजर गिरीश नेगी से प्रेम–व्यापार चलता है, लड़कियों तथा अन्य स्कूल स्टाफ के चले जाने पर वही एकाकीपन की पीड़ा को भोगती है, वहीं जूली को प्रेम–पथ पर अग्रसर होने से रोकती है, लेकिन कालान्तर में उसकी सहायिका बन बैठती है। लतिका ही मेजर गिरीश नेगी की मधुर स्मृतियों को जीवन–भर एक अमूल्य निधि एवं धरोहर के रूप में संजोकर रखती है तथा ह्यूबर्ट के प्रेम–प्रस्ताव को भी अस्वीकृत कर देती है। अतः कहानी की सभी घटनाएं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में उसी से जुड़ी हुई है। कहानी की फलभोक्त्री भी वही है। अतः निर्विवाद रूप से लतिका कहानी की नायिका सिद्ध होती है।

लतिका को एक आदर्श प्रेमिका की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि वह मेजर गिरीश नेगी से प्रेम करती है परन्तु उसके असामयिक काल–कवलित हो जाने से वह उसकी मधुर स्मृतियों को जीवन–भर संजोकर रखती है तथा उसके प्रेम–व्यापार के कारण वह स्कूल में बदनाम होती है, परन्तु ह्यूबर्ट के प्रेम–प्रस्ताव करने पर भी वह स्पष्ट इन्कार कर देती है। वह छुट्टियों में भी घर न जाकर उसकी मधुर स्मृतियों को सहेजती है। उस वातावरण और उस परिवेश में रहकर वह स्पष्ट कहती है–"अब मुझे यहां अच्छा लगता है,' तलिका ने कहा–पहले साल अकेलापन कुछ अखरा था–अब आदी हो गई हूँ। क्रिसमस से एक रात पहले क्लब में डांस होता है, लाटरी डाली जाती है और रात को देर तक नाच गाना होता रहता है।

नये साल के दिन कुमाऊं रेजीमेण्ट की ओर से परेड ग्राऊण्ड में कार्नीवाल किया जाता है, बर्फ पर स्केटिंग होता है, रंग–बिरंगे गुब्बारों के नीचे फौजी बैंड बजता है, फौजी अफसर फैन्सी ड्रैस में भाग लेता है–हर साल ऐसा ही होता है, मि

ह्यूबर्ट। फिर कुछ दिनों बाद विन्टर स्पोर्ट्स के लिए अंग्रेज टूरिस्ट आते हैं। हर साल मैं उनसे परिचित होती हूं। वापिस लौटते हुए वे हमेशा वायदा करते हैं कि अगले साल भी आएंगे, पर मैं जानती हूँ कि वे नहीं आएंगे, वे भी जानते हैं कि वे नहीं आएंगे, फिर भी हमारी दोस्ती में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। फिर...कुछ दिनों बाद पहाड़ों पर बर्फ पिघलने लगती है, छुट्टियां खत्म होने लगती हैं, वापस सब लोग अपने–अपने घरों से वापिस लौट आते हैं और मि० ह्यूबर्ट, पता नहीं चलता कि छुट्टियां कब शुरु हुई थीं, कब खत्म हो गई।' इस प्रकार लतिका अनन्य एकनिष्ठ प्रेम की जीवन्त व साकार प्रतिमा है। उसकी मधुर प्रेम की स्मृतियों को जीवन–भर सहेजकर रखना उसे एकनिष्ठ प्रेमिका की उदात्त धरातल पर लाकर खड़ा कर देता है।

लतिका छात्रावास में स्कूल अध्यापिका के रूप में कार्य करती है। वह छात्रावास की लड़कियों को अनुशासन में रखती है तथा उन्हें यदा–कदा झिड़कियां भी देती है–"कमरे में अन्धेरा क्यों कर रखा है ?" लतिका के स्वर में हल्की–सी झिड़की का आभास था।

लैम्प में तेल ही खत्म हो गया, मैडम !

तेल के लिए करीमुद्दीन से क्यों नहीं कहा ?

इसी प्रकार वह जूली को भी कटघरे में खड़े करती हुई पूछती है–"जूली, अब तक तुम इस ब्लाक में क्या कर रही हो ?"

नाइट रजिस्टर पर दस्तखत कर दिये ?

'हां मैडम।'

'फिर... ?' लतिका का स्वर कड़ा हो आया।

जूली सकुचाकर खिड़की से बाहर देखने लगी।

जब से लतिका इस स्कूल में आयी है, उसने यह अनुभव किया कि होस्टल में इस नियम का पालन, डांट–फटकार के बावजूद नहीं होता।" इस प्रकार वह अनुशासनप्रिय है तथा जूली को भी मिलिटरी अफसर के साथ प्रेम–व्यापार से रोकती है। लड़कियों के चले जाने के बाद खाली कॉरीडोर में वह कभी इस कमरे में जाती है तो कभी उस कमरे में भटकती रहती, परन्तु उसका दिल कहीं भी नहीं टिक पाता, हमेशा भटका–भटका सा रहता था। इसके साथ ही वह स्कूल की छोटी लड़कियों का सामान–स्वयं पैकिंग करती थी और सात नम्बर कमरे में जाने पर संगीत कार्यक्रम में उनका मजा किरकिरा न करके तुरन्त चली आती है।

वह हमेशा ही छुट्टियों में घर न जाकर स्कूल के छात्रावास में ही रहती थी। लड़कियां जब उससे पूछती कि "मैडम छुट्टियों में आप घर नहीं जा रहीं ?" तो वह स्पष्ट कहती है–"अभी कुछ पक्का नहीं है–आई लव ही स्नो–फाल।" लेकिन हर साल वह यही बात कहती है कि मानो लड़कियां उसको सन्देह की दृष्टि से निहार रही है।

लतिका आकर्षण–विहीन, सौन्दर्यरहित बुढ़ापे से अत्यधिक कतराती है। वह स्पष्ट चिन्तन करती है–"क्या वह बूढ़ी होती जा रही है ? उसके सामने स्कूल की प्रिंसीपल मिस वुड का चेहरा घूम गया। पोपला मुंह, आँखों के नीचे झूलती हुई मांस की थैलियां, जरा–जरा सी बात पर चिढ़ जाना, कर्कश आवाज में चींखना–सब उसे 'आल्डमेड' कहकर पुकारते हैं। कुछ वर्षों के बाद यह भी हू–ब–हू वैसी ही बन जाएगी। लतिका के समूचे शरीर में एक झुरझुरी–सी दौड़ गई, मानों अनजाने में ही उसने किसी गलीज वस्तु को छू लिया हो। उसे याद आया, कुछ महीने पहले अचानक उसे मि० ह्यूबर्ट का प्रेम–पत्र मिला था। भावुक, याचना से भरा हुआ पत्र, जिसमें उसने न जाने क्या कुछ लिखा था, जो कभी उसकी समझ में नहीं आया। उसे ह्यूबर्ट की इस बचकाना हरकत पर हँसी आई थी। 'जो कभी उसको समझ में नहीं आया।' किन्तु भीतर–ही–भीतर प्रसन्नता भी हुई थी। उसकी उम्र अभी बीती नहीं है, अब भी वह दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। ह्यूबर्ट का पत्र पढ़कर उसे क्रोध नहीं आया, आई थी केवल ममता। वह चाहती तो उसकी गलत–फहमी को दूर करने में देर नहीं लगाती, किन्तु कोई शक्ति उसे रोके रहती है, उसके कारण अपने पर विश्वास रहता है, अपने सुख का भ्रम मानो ह्यूबर्ट की गलत–फहमी से जुड़ा है।" इस प्रकार वह बूढ़ा नहीं होना चाहती है, क्योंकि बुढ़ापा सौन्दर्य व आकर्षण–विहीन होता है।

कहानीकार ने एक स्थल पर लतिका के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला है। वह क्रीम रंग की पूरी बांहों की ऊनी जैकेट पहने हुए थी, कुमाऊंनी लड़कियों की तरह लतिका का चेहरा गोल था। धूप की तपना में पका गेहुआं रंग कहीं–कहीं हल्का–सा

गुलाबी हो आया था, मानों बहुत धोने पर भी गुलाल के कुछ धब्बे इधर–उधर बिखरे रह गए हों। अतः स्पष्ट है कि लतिका आकर्षक व्यक्तित्व की स्वामिनी है।

लतिका को पहले तो छात्रावास में अकेली रहने में डर लगता था तथा बोर भी होती, परन्तु अब उसे यहां रहना अच्छा लगता है, क्योंकि उसे गिरीश की मधुर स्मृतियों, पहाड़ों और प्रकृतियों के परिवेश में खोया रहना अच्छा लगता है। कहानीकार का कहना है–"मिस लतिका, आप कहीं छुट्टियों में जाती क्यों नहीं ? सर्दियों में तो यहां सब कुछ वीरान हो जाता होगा।" अब मुझे यहां अच्छा लगता है, लतिका ने कहा–पहले साल अकेलापन कुछ अखरा था–अब आदी हो गई हूं।"

## (ख) डॉक्टर मुखर्जी

सुप्रसिद्ध कहानीकार व पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित 'परिन्दे' कहानी में डॉक्टर मुखर्जी भी प्रमुख पात्रों की श्रेणी में आते हैं। कहानी में उनका व्यक्तित्व दार्शनिकता से ओत–प्रोत, व्यावहारिक व हास्य का पुट तथा दूरदर्शी आदि गुणों से युक्त है। वे कहानी के प्रारम्भ में ही ह्यूबर्ट के साथ लतिका को निमन्त्रण देने के लिए उसके पास आते हैं। वे लतिका को कहते हैं–"मिस लतिका, हम आपको निमन्त्रण देने आ रहे थे। आज रात मेरे कमरे में एक छोटा–सा कन्सर्ट होगा जिसमें मि० ह्यूबर्ट शोपां और चाइकोटस्की के कंपोजीशन बजायेंगे और फिर क्रीम कॉफी पी जाएगी। और उसके बाद अगर समय रहा, तो पिछले समय हमने जो गुनाह किए हैं, उन्हें हम सब मिलकर कन्फेस करेंगे।" लतिका के यह कहने पर कि मेरी तबियत ठीक नहीं है, डॉक्टर साहब अत्यन्त आत्मीयता के साथ लतिका के कन्धों को पकड़कर अपने कमरे की तरफ मोड़ दिया। उसका कमरा ब्लाक के दूसरे सिरे पर छत से जुड़ा हुआ था। वे आधे बर्मी थे और उसके चिह्न उनकी धोड़ी दबी हुई नाक और छोटी–छोटी चंचल आँखों से वे स्पष्ट बर्मी दिखाई देते थे। बर्मा पर जापानियों का आक्रमण होने के बाद वे यहां आकर बस गये थे। यद्यपि वे प्राइवेट प्रैक्टिस भी करते थे, लेकिन साथ में ही कॉन्वेन्ट स्कूल में हाई जीन–फिजियालॉजी नामक विषय पढ़ाया करते थे। उनको रहने के लिए स्कूल के होस्टल में कमरा दे रखा था। कुछ लोगों की यह धारणा थी कि बर्मा से आते हुए रास्ते में उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई थी, लेकिन इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे कभी भी अपनी पत्नी की चर्चा नहीं करते थे।

डॉक्टर मुखर्जी एक बात अक्सर कहा करते थे–"मरने से पहले मैं एक दफा बर्मा जरूर जाऊँगा।" वे अपने अतीत के सम्बन्ध में किसी की सहानुभूति या संवेदना नहीं चाहते थे। वे सिगार पीने के शौकीन थे। वे फादर एल्मंड के कटु आलोचक व प्रखर विरोधी थे, इसीलिए उनकी सर्मन को वे रटी–रटायी, पुरानी परम्परावादी बातें कहा करते थे। डॉक्टर मुखर्जी का कहना था–"पिछले पांच साल से मैं भी सुनता आ रहा हूं–फादर एल्मंड के सर्मन में कहीं हेर–फेर नहीं होता।" लतिका भी यदा–कदा डॉक्टर के साथ पिकनिक पर जाया करती थी और वहीं लतिका का परिचय मेजर गिरीश नेगी से करवाते हैं जिसके साथ कालान्तर में उसका प्रेम–व्यापार चलता है।

डॉक्टर मुखर्जी दार्शनिक विचारधारा से आप्लावित व्यक्ति है। उनके बारे में ह्यूबर्ट का कहना है–"क्या तुम नियति में विश्वास करते हो, ह्यूबर्ट ? डॉक्टर ने कहा–ह्यूबर्ट दम रोके प्रतीक्षा करता रहा। वह जानता था कि कोई भी बात कहने से पहले डॉक्टर को फिलोसोफाइज करने की आदत थी।" डॉक्टर मुखर्जी जीवन की विडम्बनाओं का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं–"कोई पीछे नहीं है, यह बात मुझमें एक अजीब किस्म की बेफिक्री पैदा कर देती है, लेकिन कुछ लोगों की मौत अन्त तक पहेली बनी रहती है...शायद वे जिन्दगी से बहुत उम्मीद लगाते थे। उसे ट्रेजिक भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आखरी दम तक उन्हें मरने का अहसास नहीं होता।" उसी प्रकार वे कहानी में अनेक स्थलों पर अपनी दार्शनिकता को बघारते हुए मिलते हैं।

वह जीवन में रूढ़ियों–पाखण्डों तथा बाह्याडम्बरों में विश्वास नहीं करता, क्योंकि मानवीय जीवन में इनका कोई महत्त्व नहीं है। कहानीकार ने डॉक्टर मुखर्जी के माध्यम से सर्मन का विरोध या हास्य–व्यंग्य करते हुए लिखा है–"डॉक्टर मुखर्जी ने अब और उकताहट से भरी जम्हाई ली, 'कब यह किस्सा खत्म होगा ?" उसने इतने अच्छे स्वर में लतिका से पूछा कि वह सकुचाकर दूसरी ओर देखने लगी। स्पेशल सर्विस के समय डॉक्टर मुखर्जी के ओठों पर व्यंग्यात्मक मुस्कान खेलती रहती और धीरे–धीरे वह अपनी मूंछों को खींचता रहता।"

इसी प्रकार वह एक अन्यत्र स्थल पर भी सर्मन की वही पुरानी, रटी–रटायी बातों पर कटाक्ष करते हुए कहता है–"पिछले पांच साल से मैं भी सुनता आ रहा हूं–फादर एल्मड के सर्मन में कहीं हेर–फेर नहीं होता।" इसी प्रकार फादर एल्मण्ड

की धारणा भी डॉक्टर मुखर्जी के बारे में अच्छी नहीं है। वे स्पष्ट कहते हैं–"मिस लतिका डॉक्टर के संग यहां अकेली ही रह जाएगी और सच पूछिए मिस वुड, डॉक्टर के बारे में मेरी राय अच्छी नहीं है। वास्तव में फादर एलमण्ड की डॉक्टर मुखर्जी के साथ कभी पटती नहीं थी और वे मिस वुड की आंखों में डॉक्टर को नीचा दिखाना चाहते थे। मिस वुड की भी डॉक्टर के बारे में अच्छी धारणा नहीं थी। वह स्पष्ट कहती है–"मिस वुड ने डॉक्टर की बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। दिल में वह हमेशा डॉक्टर को उच्छृंखल, लापरवाह और सनकी समझती रही है, किन्तु डॉक्टर के चरित्र में उसका विश्वास है–न जाने क्यों, डॉक्टर ने जाने–अनजाने में उसका कोई प्रमाण दिया हो, वह उसे याद नहीं पड़ता।" मिस वुड डॉक्टर मुखर्जी को आलसी, लापरवाह मानती हैं, क्योंकि यदि वह कर्मशील–उद्योगी और परिश्रमी होता तो वह अपनी योग्यता के बल पर काफी चमक सकता था। मिस वुड और डॉक्टर मुखर्जी के इस संवाद में डॉक्टर के चरित्र पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश डालता है–"डॉक्टर, क्या आप कभी वापस वर्मा जाने की बात नहीं सोचते ?" डॉक्टर ने अंगड़ाई ली और करवट बदलकर औंधे मुंह लेट गए। उनकी आँखें मुंद गई और माथे पर बालों की लटें झूल आई।"

सोचने से क्या होता है मिस वुड...जब बर्मा में था, तब कभी सोचा था कि यहां आकर उम्र काटनी होगी ?"

लेकिन डॉक्टर, कुछ भी कह लो, अपने देश का सुख कहीं और नहीं मिलता। यहां तुम चाहे कितने वर्ष रह लो, अपने को हमेशा अजनबी ही पाओगे।" डॉक्टर ने सिगार के धुएं को धीरे–धीरे हवा में छोड़ दिया–"दरअसल अजनबी तो मैं वहां भी समझा जाऊंगा, मिस वुड ! इतने वर्षों बाद वहां मुझे कौन पहचानेगा ? इस उम्र में नये सिरे से रिश्ता जोड़ना काफी सिरदर्दी का काम है...कम से कम मेरे बस की बात नहीं है।"

डॉक्टर मुखर्जी सन्तोषी प्रवृत्ति का व्यक्ति तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से युक्त है। वह मिस वुड के कहने पर कि आप कब तक पहाड़ी कस्बे में पड़े रहेंगे–इसी देश में रहना है तो किसी बड़े शहर में प्रैक्टिस शुरु कीजिए–स्पष्ट कहता हूं कि प्रैक्टिस बढ़ाने के लिए कहां–कहां भटकता फिरूंगा मिस वुड। जहां रहों वहीं मरीज मिल जाते हैं। यहां आया था कुछ दिनों के लिए–फिर मुद्दत हो गई और टिका रहा। जब कभी जी उबेगा, कहीं चला जाऊंगा। जड़ें कहीं नहीं जमती तो पीछे से भी कुछ नहीं छूट जाता। मुझे अपने बारे में कोई गलतफहमी नहीं है मिस वुड, मैं सुखी हूं।

डॉक्टर मुखर्जी हँसौड़–मजाकिया प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। इसीलिए वे दोनों घुटनों को जमीन पर टिकाकर सिर झुकाकर, एलिजाबेथ युगीन अंग्रेजी में कहा–"मैडम, आप इतनी परेशान क्यों नजर आ रही है।" इसी प्रकार लतिका के यह पूछने पर कि तुम पिकनिक में कहां रह गए थे, कहीं दिखाई नहीं दिए, वह अत्यन्त ही मजाकिया लहजे में कहता है–"दोपहर भर सोता रहा–मिस वुड के संग। मेरा मतलब है, मिस वुड पास बैठी थी। मुझे लगता है, मिस वुड मुझसे मुहब्बत करती है।" कोई भी मजाक करते समय डॉक्टर अपनी मूंछो के कोनों को चबाने लगता है। 'क्या कहती थी ?" लतिका ने थर्मस से कॉफी को मुंह में उड़ेल लिया। "शायद कुछ कहती, लेकिन बदकिस्मतीं से बीच में ही मुझे नींद आ गई। मेरी जिन्दगी के कुछ खूबसूरत प्रेम–प्रसंग कम्बख्त इस नींद के कारण अधूरे रहे गये हैं।"

डॉक्टर मुखर्जी सेवापरायणता की सजीव व जीवन्त प्रतिमा है। वह नशे में मदहोश व बीमार ह्यूबर्ट की पूरी देखभाल करता है तथा उसको उसके कमरे में छोड़कर आता है। लतिका को आवाज देकर कहता है–"मिस लतिका, जरा अपना लैम्ब ले आइये।" इसी प्रकार वह मजबूती के साथ अपने कन्धे पर बांह रखकर उसको सीढ़ियों पर चढ़ाता है। वह उसको उसके कमरे में पहुंचाकर जूते–मोजे उतारता है और टाई उतारने लगता है तो ह्यूबर्ट पूछता है–डॉक्टर, क्या मैं मर जाऊँगा ?"

कैसी बात करते हो ह्यूबर्ट। डॉक्टर ने हाथ छुड़ाकर धीरे से ह्यूबर्ट का सिर तकिये पर टिका दिया। इसी प्रकार लतिका के यह पूछने पर कि क्या आपने मि० ह्यूबर्ट को मेरे बारे में कुछ कहा था, तो डॉक्टर स्पष्ट कहता है–"वैसे हम सबको अपनी–अपनी जिद होती है, कोई छोड़ देता है, कोई आखिर उससे चिपका रहता है।" कभी–कभी मैं सोचता हूँ मिस लतिका, किसी चीज को न जानना यदि गलत है, तो जान–बूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह चिपटे रहना–यह भी गलत है। बर्मा से जाते हुए जब मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी तो मुझे अपनी जिन्दगी बेकार–सी लगी थी। आज इस बात को अर्सा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जी रहा हूं और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी नहीं हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था–आज भी करता हूं।" इस प्रकार उपरोक्त उदाहरण के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि डॉक्टर मुखर्जी संवेदनशील व्यक्तित्व के स्वामी हैं।

## (ग) मि० ह्यूबर्ट

नयी कहानी के पुरोधा डॉक्टर निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कहानी 'परिन्दे' में मि० ह्यूबर्ट प्रमुख [illegible] की श्रेणी में आता है। वह संगीत का अध्यापक है तथा संवेदनशील–कोमल व्यक्तित्त्व का स्वामी है। उसके शरीर में भी [illegible] मानव का कोमल हृदय स्पन्दित होता है और वह लतिका को प्रेम–पत्र लिखता है। कहानी के प्रारम्भ में ही वह डॉक्टर मुखर्जी के साथ सीढ़ियों पर अंग्रेजी धुन गुनगुनाता हुआ ऊपर चढ़ रहा है। सीढ़ियों पर व्याप्त अंधेरे में वह छड़ी से रास्ता टटोलकर चढ़ रहा था। लतिका ने सीढ़ियों पर प्रकाश करने के लिए लैम्प जलाया तो इससे वह 'थैंक यू मिस लतिका' कहता हुआ कृतज्ञता का भाव अभिव्यक्त करता है। सीढ़ियां चढ़ने से उनकी सांस तेज हो रही थी और मि० ह्यूबर्ट दीवार से लगे हुए हांफ रहे थे। अतः ह्यूबर्ट शारीरिक दृटि से कमजोर थे। राजनीति के ऊपर व्यंग्य करते हुए मि० ह्यूबर्ट स्पष्ट कहते हैं कि [illegible] में शिथिलता हर जगह और हर समय व्याप्त होती है–"यह बात तो पिछले साल दस सालों से सुनने में ही आ रही है। [illegible] ने भी कोई लम्बी–चौड़ी स्कीम बनाई थी, पत्ता नहीं उसका क्या हुआ।" ह्यूबर्ट ने कहा। ह्यूबर्ट स्पष्ट रूप से रूढ़ियों [illegible] का कट्टर विरोधी है, इसीलिए वह स्पेशल सर्विस को 'गोरख–धन्धा' कहकर उपहास उड़ाता है। वह सर्मन के ऊपर [illegible] लगाता हुआ स्पष्ट करता है–"पता नहीं, मिस वुड को' स्पेशल सर्विस को गोरख धन्धा क्यों पसन्द आता है, छुट्टियों [illegible] जाने से पहले क्या यह जरूरी है कि लड़कियां फादर एल्मण्ड का सर्मन सुने।" ह्यूबर्ट ने कहा।

मि० ह्यूबर्ट प्रेम का दीवाना व पुजारी है, इसलिए वह प्रेम–पत्र मिस लतिका को लिखता है। भावुक [illegible] भरे हुए पत्र में क्या लिखा था, मिस लतिका की समझ में नहीं आता था, परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उसने लतिका [illegible] प्रेम की भिक्षा मांगी थी, जिसे उसने अस्वीकृत कर दिया। वह डॉक्टर मुखर्जी के समक्ष लतिका के व्यवहार की शिकायत करता हुए कहता है–"डॉक्टर, आपको मालूम है...मिस लतिका का व्यवहार पिछले कुछ अर्से से अजीब–सा लगता है। [illegible] है कि डॉक्टर को लतिका के प्रति उसकी कोमल भावनाओं का आभास हो। वह इस कोमल अनुभूति को काफी [illegible] अपने हृदय में संजोए बैठा है। जब उसे लतिका और मेजर गिरीश नेगी के प्रेम–व्यवहार का पता चलता है तो [illegible] पत्र को, जो कि उसने लतिका को लिखा था अर्थहीन और उपहासास्पद स्वीकारता है।

मि० ह्यूबर्ट का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, इसीलिए करीमुद्दीन बताता है–"ह्यूबर्ट साहब तो शायद कल [illegible] रात उनकी तबीयत फिर खराब हो गई। आधी रात के वक्त मुझे जगाने आये थे। कहते थे छाती में तकलीफ [illegible] यह मौसम रास नहीं आता। कह रहे थे, लड़कियों की बस में वे भी कल ही चले जायेंगे।" खराब स्वास्थ्य के कारण डॉक्टर मुखर्जी उसे सरमन में आने से मना करते हैं, परन्तु वह झक्की आदमी मना करने के बाद भी चला आता है। [illegible] फूलने लगती है।

निम्न संवाद देखिए–

"कल रात आपकी तबीयत क्या खराब हो गई थी ?"

"आपने कैसे जाना ? क्या मैं अस्वस्थ दीख रहा हूँ ?" ह्यूबर्ट के स्वर में हल्की–सी खीझ का आभास था। [illegible] मेरी सेहत को लेकर क्यों बातें करते हैं।"

"कोई खास बात नहीं, वही पुराना दर्द शुरु हो गया था।"

वह स्कूल में संगीत–अध्यापक के पद पर आसीन है। संगीत शिक्षक होने के कारण उसे हर साल स्पेशल [illegible] के अवसर पर 'कॉयर' के संग पियानो बजाना पड़ता था। सबसे पहले वह अपनी घबड़ाहट को छिपाने के लिए रूमाल [illegible] साफ किया करता है और फिर वह पियानो बजाता था। पियानो बजाने से उसके फेफड़ों पर हमेशा भारी दबाव [illegible] और दिल की धड़कन तेज हो जाया करती थी। उसे लगता था कि संगीत के एक नोट को दूसरे नोट में उतारने [illegible] में वह एक अंधेरी खाई पार कर रहा है।

इसी प्रकार 'परिन्दे' कहानी में ह्यूबर्ट ने दर्शन को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है, यथा–"आज चैपल में मैंने [illegible] किया, वह कितना रहस्यमय, कितना विचित्र था, ह्यूबर्ट ने सोचा। मुझे लगा, पियानों का हर नोट चिरन्तन खामोशी [illegible] खोह से निकलकर बाहर फैली नीली धुन्ध को काटता, तराशता हुआ एक भूला–सा अर्थ खींच लाता है। गिरता हुआ [illegible] एक छोटी–सी मौत है, मानो घने छायादार वृक्षों की कांपती छायाओं में कोई पगडण्डी गुम हो गई हो। एक [illegible] जो आने वाले सुरों की अपनी बची–खुची गूंजों की सांसे समर्पित कर जाती है, जो मर जाती है, किन्तु मिट नहीं पाती, [illegible]

नहीं, इसलिए मरकर भी जीवित है, दूसरे सुरों में लय हो जाती है।"

वह मि० लतिका को प्रेम–प्रस्ताव हेतु प्रेम–पत्र लिखता है, परन्तु इतना पता चलने पर कि वह मेजर गिरीश नेगी से प्रेम करती थी, जो कि असामयिक काल–कवलित हो गया, तो मि० ह्यूबर्ट अपने प्रेम–पत्र के लिए क्षमा मांगता है और पत्र वापिस लौटाने के लिए निवेदन करता है–

"वह पत्र... उसके लिए मैं लज्जित हूँ। उसे आप वापिस लौटा दें, समझ लें कि मैंने उसे कभी नहीं लिखा था।"

लतिका कुछ समझ न सकी, दिग्भ्रान्त–सी खड़ी हुई ह्यूबर्ट के पीले, उद्विग्न चेहरे को देखती रही।

ह्यूबर्ट ने धीरे से लतिका के कन्धे पर हाथ रख दिया।

कल डॉक्टर ने मुझे सब कुछ बता दिया। अगर मुझे पहले से मालूम होता तो...तो...' ह्यूबर्ट हकलाने लगा।

इतना ही नहीं, ह्यूबर्ट के खराब स्वास्थ्य के बारे में अर्दली करीमुद्दीन भी बताता है–"मैं चला आता तो ह्यूबर्ट साहब की तीमारदारी कौन करता ? दिन–भर उनके बिस्तर से सटा हुआ बैठा रहा....और अब वह गायब हो गए हैं।"

खुदा जाने, इस हालत में कहां भटक रहे हैं। पानी गर्म करने कुछ देर के लिए बाहर गया था, वापिस आने पर देखता हूं कि कमरा खाली पड़ा है।

इतना ही नहीं, अस्वस्थ होने पर भी वह ह्विसकी पीता है और डॉक्टर मुखर्जी उसे छोड़ने के लिए आते हैं–"ह्विस्की की तेज बू का झोंका लतिका के सारे शरीर को झिंझोड़ गया। ह्यूबर्ट की आँखों में सुर्ख डोरे खिंच आये थे, कमीज का कॉलर उलटा हो गया था और टाई की गांठ ढीली होकर नीचे खिसक आई थी।" इसी समय ह्यूबर्ट लतिका को देखकर गीत गुनगुनाने लगता है–"इन ए बैक लेन ऑफ द सिटी, देयर एज ए गर्ल हू लव्ज मी।" वह नशे में इतना अधिक मदमस्त है कि लड़खड़ाता हुआ चलता है और अंधेरी सीढ़ियों पर उलटे–सीधे पैर रखता हुआ चढ़ता है। उसके कमरे में पहुंचकर डॉक्टर उसको बिस्तर पर लिटाकर उसके जूते–मोजे उतरवाता है। वह डॉक्टर मुखर्जी से पूछता है–"डाक्टर क्या मैं मर जाऊंगा।"

कैसी बात करते हो ह्यूबर्ट। डॉक्टर ने हाथ छुड़ाकर धीरे से ह्यूबर्ट का सिर तकिये पर टिका दिया।

इसी प्रकार वह चिन्तन करता है–"डॉक्टर, क्या मृत्यु ऐसे ही आती है ? अगर मैं डॉक्टर से पूछूं तो वह हँसकर टाल देगा। मुझे लगता है, वह पिछले कुछ दिनों से कोई बात छिपा रहा है–उसकी हँसी में जो सहानुभूति का भाव होता है, वह मुझे अच्छा नहीं लगता। आज उसने मुझे स्पेशल सर्विस में आने से रोका था–कारण पूछने पर वह चुप रहा था–कौन सी ऐसी बात है, जिसे मुझसे कहने में डॉक्टर कतराता है। शायद मैं शक्की मिजाज होता जा रहा हूं और बात कुछ भी नहीं है। अतः स्पष्ट है कि ह्यूबर्ट शारीरिक दृष्टि से कमजोर, अस्वस्थ व्यक्ति है। उसके तेज चलने से सांस चढ़ने लगती है–ह्यूबर्ट की सांस चढ़ गई थी और वह धीरे–धीरे हांफता हुआ पीछे से आ रहा था।" इसीलिए वह लतिका को कहता है कि 'आप बहुत तेज चलती हैं, मिस लतिका थकान से ह्यूबर्ट का चेहरा कुम्हला गया था। माथे पर पसीने की बूंदें छलक आई थीं।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि ह्यूबर्ट कहानी के प्रमुख पात्रों में से एक है। अस्वस्थ तथा शारीरिक दृष्टि से कमजोर और नशा करने का आदी व्यक्ति है। वह लतिका के प्रेम का आकांक्षी है, इसीलिए वह उसको प्रेम–पत्र लिखता है।

## III. उद्देश्य

पदम्भूषण की उपाधि से अलंकृत व नयी कहानी के पुरोधा श्री निर्मल वर्मा ने अपनी रचनाओं द्वारा समाज को महत्त्वपूर्ण एवं महान सन्देश सम्प्रेषित किए हैं। **डॉक्टर नामवर सिंह** ने निर्मल वर्मा को पहला नया कहानीकार स्वीकारा है तथा साथ ही उनकी रचनाओं के प्रतिपाद्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–"जिनका कथा–संसारबोध और शिल्प के स्तरों पर विविध एवं लक्ष्य के स्तर पर 'एलीट' है–उसमें परिन्दे जैसे गतिधर्मी लन्दन की एक रात जैसे कठोर वस्तुबोध की एवं पहाड़ जैसी सादगी में ही विशिष्ट सांकेतिक अभिप्राय का निर्वाह करने वाली कहानियां हैं। आधुनिकबोध की उन कहानियों का फलक अत्यन्त विस्तृत है और उसके रचनाकारों की दृष्टि अत्यन्त व्यापक है।" इसी प्रकार **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** ने भी वर्मा जी की कहानियों के प्रतिपाद्य पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–"निर्मल वर्मा ने आधुनिकता और आधुनिक मनुष्य को, यउसकी विसंगति और संत्रास को उसके वर्तमान में निहित सभ्यता और संस्कृति की ऐतिहासिक चिन्ताओं और चुनौतियों को, सम्बन्धों की भावुकता के कारण मनुष्य की स्वतंत्रता एवं उसके अस्तित्व के समक्ष उपस्थित खतरों को अत्यन्त गहरे ढंग से मुग्ध कर देने वाली काव्यमय

भाषा में सजीव किया है। कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा ने कहानी में यथार्थ की इकहरी धारणा के वर्चस्व को खंडित किया और कहानियों में भी जीवन के दार्शनिक प्रश्नों को उठाने की कोशिश की। यह दार्शनिकता नितान्त आध्यात्मिकता से भिन्न रही है। हल्लाबोल सामाजिकता से थोड़ी दूरी पर खड़े निर्मल के कहानियों के पात्र, प्रेम प्रकृति और सम्बन्ध, समय और समयातीत के असंख्य अदृश्य आन्तरिक और सूक्ष्म यथार्थ के अनुभवों को सच्चा और सजीव अनुभव बताते हैं–कदाचित् इसीलिए उनकी कहानियों को 'एकान्तिक अनुभूतियों' की या अन्तर्मुखी और व्यक्तिपरक कहानियों के रूप में देखने का भी आग्रह किया गया है। 'परिन्दे' उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी है जिसके माध्यम से कहानीकार दर्शन को अभिव्यक्त करते हुए नारी के बिखरने की कहानी का वर्णन करता है। कहानीकार कहीं पर चतुर्थ श्रेणी की कर्मचारियों की अकर्मण्यता व टाल–मटोल करने की प्रवृत्ति पर कटाक्ष करता है तो कहीं पर नायिका लतिका के एकनिष्ठ प्रेम को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

कहानीकार निर्मल वर्मा ने प्रस्तुत कहानी 'परिन्दे' के माध्यम से यह सन्देश सम्प्रेषित किया है कि जिस प्रकार से 'परिन्दे' पर्वतीय प्रदेश में जब बर्फ पड़ती है तो वहां से चलकर मैदानी इलाकों में आ जाते हैं और शीत ऋतु समाप्त होने पर फिर अपने निर्धारित स्थानों पर चले जाते हैं। इस प्रकार उनका अपना कोई स्थायी आवास स्थान नहीं है। इसी प्रकार कहानी में लतिका, डॉक्टर मुखर्जी, ह्यूबर्ट, मिस वुड, छात्रावास में रहने वाली लड़कियां आदि स्कूल का स्टाफ एवं छात्रकण शीत ऋतु आने पर या स्कूल की छुट्टियां होने पर अपने–अपने घरों को लौट जाते हैं और शीत ऋतु समाप्त होने पर पुनः अपने स्कूल को आ जाते हैं। यह संसार एक 'रैन–बसेरा' है। इसमें किसी का भी स्थायी आवास नहीं है। कहानी की नायिका लतिका ने इसी उद्देश्य को अभिव्यक्त करते हुए स्पष्ट किया है–"लतिका को लगा कि जैसे कहीं बहुत दूर बर्फ की चोटियों से परिन्दों के झुण्ड नीचे अनजान देशों की ओर उड़े जा रहे हैं। इन दिनों अक्सर उसने अपने कमरे की खिड़की से उन्हें देखा है–धागे में बन्धे चमकीले लट्टुओं की तरह वे एक लम्बी, टेडी–मेढ़ी कतार में उड़े चले जाते हैं, पहाड़ों की सुनसान नीरवता से परे उन विचित्र शहरों की ओर जहां शायद वह कभी नहीं जायेगी।" गिरीश की मृत्यु के बाद लतिका उसकी मधुर स्मृतियों में खोयी रह कर वह छात्रावास में रहती है तथा उसे न मौसम का ध्यान है और न समय का–"एक छोटे से हिल स्टेशन पर रहते हुए उसे खासा अर्सा हो गया है, लेकिन कब समय पतझड़ और गर्मियों का घेरा पार कर सर्दी की छुट्टियों की गोद में सिमट जाता है, उसे कभी याद नहीं रहता।" इसी प्रकार लतिका कहानीकार के विचारों की संवाहिका है। वर्मा जी ने 'परिन्दे' कहानी में अस्तित्ववादी दर्शन को भी वाणी प्रदान की है। इसके अन्तर्गत 'क्षण' का अत्यन्त महत्त्व व उपादेयता है। उन्होंने क्षण–अस्तित्ववादी चेतना का महत्त्व निर्धारित करते हुए लिखा है–"वह आँखें मूंदे सोच रही थी, उसी क्षण को जो भय और विस्मय के बीच भिंचा था–बहका–सा पागल क्षण।"

कहानीकार ने लतिका के दिव्य–अलौकिक और एकनिष्ठ प्रेम को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। लतिका मेजर गिरीश नेगी से प्रेम करती है, परन्तु वह असामयिक काल–कवलित हो जाता है, परन्तु वह उसकी मधुर स्मृतियों को अपने हृदय में संजोए रखती है। ह्यूबर्ट के प्रेम–प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देती है तथा गिरीश की स्मृतियों को अमूल्य धरोहर के रूप में सुरक्षित रखती है। लेखक लतिका के माध्यम से प्रेम के पावन रूप को प्रतिपादन करते हुए एकनिष्ट प्रेम के महत्त्व को निर्धारित करता है।

निर्मल वर्मा जी ने 'परिन्दे' कहानी में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की टाल–मटोल की नीति व अकर्मण्यता का भी चित्रांकन किया है। कहानीकार ने लिखा है–"करीमुद्दीन होस्टल का नौकर था। उसके आलस और काम टालमटोल करने के किस्से होस्टल की लड़कियों में पीढ़ी–दर–पीढ़ी चले आते थे।"

इसी प्रकार कहानीकार स्पेशल सर्विस तथा सरमन आदि परम्परागत रूढ़ियों पर भी कटु कटाक्ष करता है। कहानीकार का कहना है–"पता नहीं, मिस वुड को स्पेशल सर्विस का गोरख धन्धा क्यों पसन्द आता है, छुट्टियों में घर जाने से पहले क्या यह जरूरी है कि लड़कियां फादर एल्मण्ड का सर्मन सुने ?" ह्यूबर्ट ने कहा।

पिछले पांच साल से मैं भी सुनता आ रहा हूँ–"फादर एल्मण्ड के सर्मन में कहीं हेर–फेर नहीं होता।" इसी प्रकार सर्मन के समय लड़कियों का खुसर–फुसर करना तथा उसमें नवीनता न होना आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनके कारण स्पेशल सर्विस या सरमन के औचित्य पर कहानीकार प्रश्नचिह्न लगाता है।

कहानीकार डॉक्टर मुखर्जी के माध्यम से युद्ध की विभीषिका पर भी प्रकाश डालना चाहता है। युद्ध के भयंकर परिणामों को रेखांकित करते हुए कहानीकार स्पष्ट करता है–"बर्मा पर जापानियों का आक्रमण होने के बाद वे इस छोटे से पहाड़ी शहर में आ बसे थे।

कुछ लोगों का कहना था कि बर्मा से आते हुए रास्ते में उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई।" **डॉक्टर मुखर्जी** स्वयं स्पष्ट करते हैं–"बर्मा से आते हुए मेरी पत्नी की मृत्यु हो गई थी, मुझे अपनी जिन्दगी बेकार–सी लगी थी।' इस प्रकार कहानीकार युद्ध के भयंकर परिणामों व शरणार्थियों के दयनीय जीवन का चित्रांकन डाक्टर मुखर्जी के माध्यम से कर डालते हैं। इसी प्रकार डॉक्टर मुखर्जी भी संसार को 'रैन बसेरा' मानते हैं और स्पष्ट घोषणा करते हैं–"यहां आया था कुछ दिनों के लिए फिर मुद्दत हो गई और टिका रहा। जब कभी जी उबेगा, कहीं चला जाऊंगा, जड़ें कहीं नहीं जमती तो पीछे भी कुछ नहीं छूट जाता।"

कहानीकार 'परिन्दे' कहानी के माध्यम से आधुनिक समाज में मानवीय सम्बन्धों का भी खुलासा करता है। लतिका मेजर गिरीश नेगी से प्रेम करती है तथा उसी के कारण पूरे स्कूल में बदनाम होती है, लेकिन गिरीश के असामयिक काल–कवलित हो जाने के कारण भी उसकी मधुर स्मृतियों को अपने हृदय में संजोकर रखती है। ह्यूबर्ट के प्रेम–प्रस्ताव को अस्वीकृत करके वह अपने एकनिष्ठ प्रेम को उजागर करती है। इससे स्पष्ट है कि लतिका गिरीश नेगी के प्रति समर्पित है। ह्यूबर्ट लतिका से प्रेम करता है और उसको प्रेम–पत्र भी लिखता है, परन्तु लतिका उसके प्रेम–प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देती है। इसी प्रकार डॉक्टर मुखर्जी भी अपनी पत्नी से असीम–अनन्त प्रेम करते हैं और स्पष्ट घोषणा करते हैं कि–"बर्मा से आते हुए जब मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी, मुझे अपनी जिन्दगी बेकार–सी लगी थी। आज इस बात को अरसा गुजर गया और जैसे आप देखती हैं, मैं जी रहा हूं और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी न हिचकिचाता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था–आज भी करता हूं। इसी प्रकार वर्मा ने 'परिन्दे' कहानी में नर–नारी के बीच सम्बन्धों की व्याख्या प्रस्तुत की है। इसी प्रकार जूली किसी मिलिटरी अफसर से प्रेम करती है, लेकिन क्योंकि लतिका को इस क्षेत्र में असफलता मिलती है। इससे वह जूली के पत्र को उसे देती नहीं है तथा न प्रेम–पथ पर अग्रसर होने से रोकती है, लेकिन कालान्तर में कहानी के अन्त में उसका प्रेम–पत्र उसके तकिये के नीचे रखकर आती है।

इसी प्रकार कहानीकार ने 'परिन्दे' कहानी में अपनी दार्शनिकता को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। डॉक्टर मुखर्जी की निम्न पंक्तियों में उनका दर्शन ही अभिव्यक्त हुआ है–"कोई पीछे नहीं है, यह बात मुझमें एक अजीब किस्म की बेफिक्री पैदाकर देती है। लेकिन कुछ लोगों की अन्त तक पहेली बनी रहती है...शायद वे जिन्दगी से बहुत उम्मीद लगाते थे। उसे ट्रैजिक भी नहीं का जा सकता, क्योंकि आखिरी दम तक उन्हें मरने का अहसास नहीं होता।" इसी प्रकार ह्यूबर्ट की निम्न पंक्तियों के भी दर्शन को ही अभिव्यक्ति मिली है–"आज चैपल में मैंने जो महसूस किया, वह कितना रहस्यमय, कितना विचित्र था, ह्यूबर्ट ने सोचा। मुझे लगा, पियानों का हर नोट चिरन्तन खामोशी की अंधेरी खोह से निकलकर बाहर फैली नीची धुंध को काटता, तराशता हुआ एक भूला–सा अर्थ खींच लाता है। गिरता हुआ हर 'पॉन' एक छोटी–सी मौत है, मानों घने छायादार वृक्षों की कांपती छायाओं में कोई पगडण्डी गुम हो गई हो। एक छोटी–सी मौत जो आने वाले सुरों की अपनी बची–खुची गूंजों की सांसें समर्पित कर जाती हैं, जो मर जाती हैं, किन्तु मिट नहीं पाती, मिटती नहीं, इसलिए मर कर भी जीवित है, दूसरे सुरों में लय हो जाती है।"

इसी प्रकार कहानीकार ने हास्य और व्यंग्य की भी संजीव अभिव्यक्ति की है। डॉक्टर मुखर्जी हँसौड़–मजाकिया प्रवृत्ति का व्यक्ति है तथा वह लतिका के यह पूछने पर कि तुम पिकनिक में कहां रह गए थे, स्पष्ट कहता है–"दोपहर–भर सोता रहा–मिस वुड के संग। मेरा मतलब है मिस वुड पास बैठी थी। मुझे लगता है, मिस वुड मुझसे मुहब्बत करती है। कोई भी मजाक करते समय डॉक्टर अपनी मूंछों के कोनों को चबाने लगता है। "क्या कहती थी ?" लतिका ने थर्मस से कॉफी को मुंह में उड़ेल लिया।

शायद कुछ कहती, लेकिन बदकिस्मती से बीच में ही मुझे नींद आ गई। मेरी जिन्दगी के कुछ खूबसूरत प्रेम–प्रसंग कम्बख्त इस नींद के कारण अधूरे रह गए हैं।"

इस प्रकार कहानीकार ने 'परिन्दे' कहानी के माध्यम से नर–नारी के सम्बन्धों की व्याख्या की है। नारी के बिखरने का सजीव चित्रण किया है और साथ ही युद्ध की विभीषिका पर भी प्रकाश डाला है।

## व्याख्या

***"उसी क्षण पियानों पर शोपांका नौक्टर्न ह्यूबर्ट की उंगलियों के नीचे से फिसलता हुआ धीरे-धीरे छत के अंधेरे***

***में घुलने लगा-मानो जल पर कोमल स्वतिनल उर्मियों, भंवरों का झिलमिलाता जाल बुनती हुई दूर-दूर तक किनारों तक फैलती जा रही थी। लतिका को लगा कि जैसे कहीं बहुत दूर बर्फ की चोटियों से परिन्दों के झुण्ड नीचे अनजान देशों की ओर उड़े जा रहे हैं। इन दिनों अक्सर उसने अपने कमरे की खिड़की से उन्हें देखा है-धागे में बंधे चमकीले लट्टुओं की तरह वे एक लम्बी टेढ़ी-मेढ़ी कतार में उड़े चले जाते हैं, पहाड़ों की सुनसान नीरवता से परे, उन विचित्र शहरों की ओर जहां शायद वह कभी नहीं जाएगी।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के पुरोधा, स्वनामधन्य श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने मानव की तुलना भी एक परिन्दे से की है जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं। नायिका लतिका किसी पहाड़ी स्कूल में अध्यापिका के पद पर कार्यरत है और होस्टल में ही रहती है। ह्यूबर्ट और डॉक्टर मुखर्जी लतिका को निमन्त्रण देने के लिए आते हैं कि उसके कमरे में एक छोटा–सा कन्सर्ट होगा, जिसमें ह्यूबर्ट शोपां और चाइकोल्सकी के कम्पोजिशन बजाएगा और क्रीम कॉफी पी जाएगी। डॉक्टर मुखर्जी लतिका से पूछता है कि आप इस साल भी छुट्टियों में यहीं रहेंगी। डॉक्टर का प्रश्न निरन्तर रहा कि तभी संगीत की आवाज हवा में तैरने लगी।

**व्याख्या** – उसी क्षण मि० ह्यूबर्ट की उंगलियों के नीचे से निकलकर धीरे–धीरे छत के अन्धकार में विलीन होने लगा। वहां सर्वत्र अन्धकार व्याप्त था और संगीत की मधुर धुन सारे वातावरण में इस प्रकार से व्याप्त हो रही थी जैसे मानो जल में कोमल–सुनहली स्वप्नों की भांति मधुर एवं आकर्षक लहरों का झिलमिलाता जाल बुनती हुई दूर–दूर किनारों तक फैल जाती है, ठीक इसी प्रकार रात्रि के गहन अन्धकार में संगीत की मधुर धुन दूर–दूर तक फैल रही थी। लतिका को इस मधुर धुन से ऐसा अहसास हुआ कि जैसे परिन्दे उड़–उड़कर अपने–अपने देशों को लौट रहे हैं। जैसे भयंकर शीत ऋतु आने पर या बर्फ पड़ने पर परिन्दे या पक्षी वहां से उड़कर मैदानी इलाकों में आ जाते हैं और सर्दी बीत जाने पर वे वापस अपने स्थल को लौट आते हैं। इसी प्रकार सर्दी आने पर स्कूल बन्द हो जाता है और छात्रावास खाली हो जाता है तथा विद्यार्थी अपने–अपने घरों को लौट जाते हैं और सर्दियां समाप्त होने पर वे वापिस लौट आते हैं। इन्हीं दिनों लतिका ने अक्सर अपने कमरे की खिड़की में उन्हीं परिन्दों को आकाश में उड़ते हुए तथा अपने गन्तव्य स्थल की ओर जाते हुए देखा था। वे आकाश में उड़ते हुए धागे से बंधे हुए चमकीले लट्ठों की तरह एक लम्बी, टेढ़ी–मेढ़ी कतार में उड़ते चले जाते हैं। आकाश में उड़ते हुए ये परिन्दे चमकीले लट्टुओं की भांति अत्यन्त आकर्षक व सुन्दर लगते हैं। ये अत्यन्त सुन्दर व आकर्षक पक्षी पहाड़ों की सुनसान नीरवता का परित्याग करके उन विचित्र शहरों की ओर जाते हैं जहां लतिका कभी भी नहीं जाएगी।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

3. प्रकृति चित्रण हुआ है।

4. पक्षियों का सर्दियों में पहाड़ों की नीरवता को परित्याग कर घर के मैदानी इलाकों में लौट जाते हैं, लेकिन कहानी की नायिका लतिका वहां से पलायन नहीं करती।

5. कहानी के प्रतिपाद्य को स्पष्ट किया गया है।

6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम है।

***"लतिका को लगा कि जो वह याद करती है, वही भूलना भी चाहती है, लेकिन जब सचमुच भूलने लगती है, तब उसे भय लगता है कि जैसे कोई उसकी किसी चीज को उसके हाथों से छीने लिए जा रहा है, ऐसा कुछ जो सदा के लिए खो जाएगा। बचपन में जब कभी वह अपने किसी खिलौने को खो देती थी, तो वह गुमसुम-सी होकर सोचा करती थी, कहां रख दिये मैंने। जब बहुत दौड़-धूप करने पर खिलौना मिल जाता तो वह बहाना करती कि अभी उसे ही खोज रही है कि वह अभी मिला नहीं है। जिस स्थान पर खिलौना रखा होता, जान-बूझकर उसे छोड़कर घर के दूसरे कोनों में उसे खोजने का उपक्रम करती। तब खोई हुई चीज मिल जाती, इसलिए भूलने का भय नहीं रहता था।"***

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी श्रेष्ठ कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में वर्मा जी ने बिखरी हुई आकांक्षाओं का चित्रण किया है। लतिका गिरीश नेगी से प्रेम करती है, लेकिन वह असामयिक काल–कवलित हो जाता है और वह उस लौट नहीं पाता जिसके कारण वह उसकी मधुर स्मृतियों में खोयी रहती है। अब उसे एकाकीपन खलता नहीं है बल्कि वह उसकी अभ्यस्त हो गई है। वह उसकी मधुर स्मृतियों के

स्मरण करते हुए चिन्तन करती है।

**व्याख्या** – लतिका को ऐसे लगा कि जो वह याद करती है, उसे वह भूलना भी चाहती है, अर्थात् वह हमेशा गिरीश की मधुर स्मृतियों में खोयी रहती है और वे मधुर स्मृतियां उसे कचोटती हैं, पीड़ा देती है, इसीलिए वह उन स्मृतियों को भूलाना चाहती है, परन्तु जब वह सचमुच भूलने लगती है तो उसे डर लगने लगता है कि कहीं कोई उसकी किसी मधुर वस्तु को उसके हाथों से छीनने जा रहा है। उसे ऐसा लगता है कि मानो उसके जीवन की अनमोल धरोहर या अनमोल वस्तु है–गिरीश की मधुर–स्मृतियां, जिन्हें जीवन–भर संजोकर रखना चाहती है, परन्तु जब वह भूलना चाहती है तो ऐसा लगता है कि उसकी मधुर वस्तु उसके हाथों से छिनती जा रही है। बचपन में जब कभी उसका खिलौना गुम हो जाया करता था तो वह गुमसुम–सी होकर सोचा करती थी कि मैंने खिलौना कहां रख दिया, परन्तु बहुत प्रयास करने पर खोजने के बाद भी वहयह बहाना किया करती थी कि वह अभी भी खिलौना ढूंढ रही है। जिस स्थान पर खिलौना रखा होता था, उस स्थान से अलग हटकर घर के दूसरे कोनों में उसको ढूंढा जाता था इससे खोयी हुई चीज याद रहती थी और उसका स्थान भी याद रहता था कि यहां वह अमुक चीज रखी हुई थी। लेकिन अब तो परिस्थितियां बिल्कुल विपरीत हैं, यथा अब तो न वह चीज मेजर गिरीश नेगी मिली है और भूल जाने का भी डर यथावत् बना हुआ है। वह स्पष्ट करती है कि अब जीवन–भर गिरीश नहीं मिलेगा, क्योंकि संसार में उसका मिलन असंभव है। यदि उन मधुर स्मृतियों को भूल जाने का उपक्रम करती हूं तो वास्तव में उनकी स्मृतियों को, उनको भूला जाऊंगी और शायद फिर दोबारा याद न आए।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।
3. स्मृतियों के अस्थायित्व पर प्रकाश डाला है।
4. लतिका के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है।
5. लतिका की विस्मरण शक्ति पर भी प्रकाश डाला गया है।
6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***"शायद कौन जाने...शायद जूली का यह प्रथम परिचय हो, उस अनुभूति से, जिसे कोई भी लड़की बड़े चाव से संजोकर, संभालकर अपने में छिपाये रहती है, एक अनिवर्चनीय सुख जो पीड़ा लिए हैं, पीड़ा और सुख को डुबोती हुई उमड़ते ज्वार की खुमारी...जो दोनों को अपने में समा लेती है... एक दर्द, जो आनन्द से उपजा है और पीड़ा देता है।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी का पुरोधा, स्वनामधन्य श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने नारी के बिखराव का चित्रण किया है लतिका गिरीश नेगी से प्रेम करती है, परन्तु वह असामयिक काल–कवलित हो जाता है जिससे वह उसकी मधुर स्मृतियों में खोयी रहती है। स्कूल की छात्रा जूली भी किसी मिलिट्री अफसर से प्रेम करती है और वह उसके साथ घूमती देखी गई है। जूली के नाम आए पत्र को पढ़ने पर पता चलता है कि वह किसी मिलिटरी अफसर से प्रेम करती है। लतिका उसके आए पत्र को देखकर छुट्टियों के बाद मिलने का आदेश देती है। बाद में सोचती है कि कहीं वह (लतिका) अपने अभाव का बदला जूली से तो नहीं ले रही है। वह सोचती है कि हो सकता है यह जुली का प्रथम प्रेम हो।

**व्याख्या** – लतिका चिन्तन करती है कि हो सकता है कि जूली का यह प्रथम प्रेम हो। प्रथम प्रेम की जीवन में बड़ी महत्ता होती है, क्योंकि प्रेम की पहली अनुभूति को प्रत्येक लड़की अपने हृदय में अनमोल निधियां धरोहर के समान संजोकर रखती है तथा हमेशा उसकी मधुर स्मृतियों में खोयी रहती है। वह अपने प्रथम प्रेम को भुला नहीं पाती और न ही किसी के समक्ष व्यक्त कर पाती है। इसलिए जूली का यदि यह पहला प्यार होगा तो उसकी अनुभूति उसे आनन्दित करेगी, अतः उसका पत्र उसको दे देना चाहिए। इस पहले प्यार में सुख–दुःख का अद्भुत समन्वय रहता है, जिसको वाणी के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। प्रेम की मधुर स्मृतियां उसको आनन्दित करती है और वियोग पीड़ा–कष्ट पहुंचाता है। अतः उसके हृदय में सुख–दुःख का अद्भुत समन्वय रहता है। उस सुख या दुःख को केवल अनुभव किया जा सकता है तथा ईश्वर की भांति शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। यौवन की मादकता–नशा में सुख और दुःख दोनों ही डूब जाते हैं। प्रथम प्रेम से एक ऐसी अनूठी अनुभूति उत्पन्न होती है जो कि मधुर–पीड़ा को विकसित करती है। प्रेमी की मधुर स्मृतियों में खोए रहने से तो

लड़की को आनन्द की अनुभूति होती है, परन्तु वियोग के कारण पीड़ा की अनुभूति होती हैं अतः पहले प्यार से सुखऔर दुःख दोनों का परिचय होता है।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई है।

2. सार्वभौमिक–सार्वकालिक सत्य का उद्‌घाटन हुआ है कि प्रथम प्रेम से सुख–दुःख दोनों की अनुभूति होती है।

3. नवयुवती की मानसिक स्थिति का मार्मिक चित्रण हुआ है।

4. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

5. मिलन के सुख और वियोग की पीड़ा का सुन्दर चित्रण हुआ है।

6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***"दोपहर की उस घड़ी में मीडोज अलसाया, उंघता-सा जान पड़ता था। हवा का कोई भूला-भटका झोंका...चीड़ के पत्ते खड़खड़ा उठते थे। कभी कोई पक्षी अपनी सुस्ती मिटाने झाड़ियों से उड़कर नाले के किनारे बैठ जाता था, पानी में सिर डुबोता था, फिर उबकर हवा में दो-चार निरुद्देश्य चक्कर काटकर दुबारा झाड़ियों में दुबक जाता था। किन्तु जंगल की खामोशी शायद कभी चुप नहीं रहती। गहरी नींद में डूबी सपनों-सी कुछ आवाजें नीरवता के हल्के-झीने परदे पर सलवटें बिछ जाती हैं। मूक लहरों-सी हवा में तिरती है...मानो कोई दबे पाँव झाँककर अदृश्य संकेत कर जाता है...देखो, मैं यहां हूँ।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर, स्वनामधन्य श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने प्रकृति का सजीव चित्रण किया है तथा साथ ही प्रेम का भी मार्मिक चित्रण किया है। छात्रावास की लड़कियां पिकनिक के लिए मिडोज पर जाती हैं। दोपहर का समय है और नीरवता सर्वत्र व्याप्त है। लड़कियां लंच लेकर इधर–उधर घूम रही हैं तथा छोटे–छोट दल मीडोज में बिखर गए हैं। ऊंची क्लास की कुछ लड़कियां चाय का पानी गर्म करने के लिए पेड़ों पर चढ़कर सूखी टहनियां तोड़ रही हैं।

**व्याख्या** – दोपहर की नीरवता सर्वत्र मीडोज में व्याप्त है और उस समय मीडोज भी आलस्य में उंघता–सा जान पड़ता था, क्योंकि लड़कियां मीडोज में छोटे–छोटे दल बनाकर घूम रही थी, अर्थात् जब उनकी गतिविधियां शोर–शराबा चलता तो उसमें सजीवता व जाग्रतावस्था दृष्टिगोचर होती, अन्यथा ऐसा लगता था कि दोपहर की उस घड़ी में मीडोज आलस्य भाव से युक्त उंघ रहा है। हवा भी बन्द थी, लेकिन कभी–कभी हवा का कोई भूला–भटकाझों का आ जाता था तो चीड़ के पत्ते खड़खड़ा जाते थे। बीच–बीच में कभी–कोई पक्षी अपने आलस्य भाव को दूर करने के लिए उड़कर झाड़ियों से निकलकर नाले के ऊपर आकर बैठ जाता था और पानी में सिर डुबोता और फिर ऊबकर हवा में दो–चार चक्कर बेकार में काटकर पुनः उन्हीं झाड़ियों में जाकर दुबक जाता, किन्तु जंगल में सर्वत्र नीरवता व्याप्त नहीं रहती, क्योंकि कोई न कोई आवाज वहां से आती रहती है। वहां कीड़े–मकोड़े या झींगुरों की आवाज नीरवता को भंग करती रहती है। जिस प्रकार से सपने में डूबा हुआ व्यक्ति कभी भी चुप या पूर्णतः मौन नहीं रहता और सपने में कुछ आवाजों का मौन लहरें तैरती रहती हैं, ठीक इस प्रकार रहस्यमय पैरों की आहट किए बिना आकर नियति का संकेत कर जाता है। इस प्रकार कहानीकार प्रकृति के रहस्यात्मक संकेत को अभिव्यक्त करता है।

**विशेष** – 1. भाषा सहज, सरल एवं सुबोध है। प्रौढ़ साहित्यिक भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. प्रकृति के रहस्यात्मक स्वरूप का उद्‌घाटन हुआ है।

3. मानवीकरण अलंकार प्रयुक्त हुआ है।

4. प्रकृति का सजीव–मार्मिक वर्णन हुआ है।

5. भावपक्ष व कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

6. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।

***मीडोज.....पंगडंडियों, पत्तों, छायाओं से घिरा-द्वीप, मानों कोई घोंसला दोहरी घाटियों के बीच आ दबा हो। भीतर घुसते ही पिकनिक के काले आग में झुलसे हुए पत्थर, अधडाली टहनियां, बैठने के लिए बिछाए गए पुराने अखबारों के***

***टुकड़े इधर-उधर बिखरे हुए दिखाई दे जाते हैं। अक्सर टूरिस्ट पिकनिक के लिए यहां आते हैं। मीडोज को बीच में काटता हुआ टेड़ा-मेढ़ा बरसाती नाला बहता है, जो दूर से धूप में चमकता हुआ सफेद रिबन सा दिखता है।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर, स्वनामधन्य श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी बहुचर्चित कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने नारी के बिखराव का चित्रण किया है। छात्रावास की लड़कियां मीडोज नामक पिकनिक स्थल पर पिकनिक मनाने के लिए जाती हैं। लेखक ने मीडोज के प्राकृतिक सौन्दर्य का सजीव और मार्मिक चित्रण किया है।

**व्याख्या** – मीडोज में पर्यटकों के आने–जाने से घास में अनेक पगडण्डियां बन गई हैं, छायादार पेड़ों की छाया मीडोज में सर्वत्र फैली हुई है। छायादार पेड़ों के पत्ते सूखकर नीचे झड़ गए हैं और भूमि पर सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। मीडोज नामक भूखण्ड जो कि छायादार पेड़ों और हरियाली से युक्त एक द्वीप की भांति सुशोभित हो रहा था, इस प्रकार शोभा दे रहा था मानो कोई घोंसला दोहरी घाटियों के बीच आकर दब गया है। मीडोज नामक पर्यटक स्थल पर अन्दर प्रवेश करते ही आग में झुलसे हुए काले पत्थर सुशोभित होते हैं, क्योंकि पर्यटक आकर आग जलाते हैं और जिसके कारण ये पत्थर काले पड़ गए हैं। चारों ओर आधी जली हुई लकड़ियां–टहनियां और बैठने के लिए बिछाए गए पुराने अखबारों के टुकड़े सर्वत्र मीडोज में बिखरे पड़े हैं। यहां पर्यटक आकर मीडोज मे सर्वत्र गन्दगी फैला देते हैं। पर्यटक यहां पिकनिक हेतु आते रहते हैं, जिसके कारण यहां चारों ओर अखबारों के टुकड़े, अधजली लकड़ियां आदि बिखरी पड़ी हैं। मीडोज के ठीक बीच में एक बरसाती नाला बहता है जो मीडोज को दो भागों में बांटता है। टेढा–मेढ़ा होने के कारण तथा जलयुक्त होने के कारण दूर से देखने पर ऐसा लगता था कि मानो दूर से कोई सफेद रिबन चमक रहा हो। इस प्रकार वर्मा जी ने मीडोज नामक पर्यटक स्थल के प्राकृतिक सौन्दर्य के पर्यटकों के कारण फैली गन्दगी का वर्णन किया है।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।
3. मीडोज के प्राकृतिक सौन्दर्य का यथार्थपरक चित्रण किया है।
4. पर्यटक स्थलों पर व्याप्त गंदगी का भी सजीव चित्रण किया है।
5. उपमा, मानवीकरण व उत्प्रेक्षा अलंकार प्रयुक्त हुआ है।
6. मीडोज की भौगोलिकता और वहां के परिवेश का यथार्थ चित्रांकन हुआ है।

***"कभी-कभी मैं सोचता हूँ मिस लतिका, किसी चीज को जानना यदि गलत है, तो जानबूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह उससे चिपटे रहना भी गलत है। बर्मा से आते हुए जब मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी, मुझे अपनी जिन्दगी बेकार-सी लगी थी। आज इस बात को अरसा गुजर आया और जैसा कि आप देखती हैं, मैं जी रहा हूं और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी न हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था-आज भी करता हूँ।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर, पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत, स्वनामधन्य श्री निर्मल वर्मा द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कहानी 'परिन्दे' से अवतरित है। कहानीकार निर्मल वर्मा प्रस्तुत कहानी में नारी के बिखराव का सजीव चित्रण किया हैं डॉक्टर मुखर्जी हास्य और विनोदी स्वभाव के व्यक्ति हैं तथा मजाकिया लहजे में बात करके सभी को हास्य रस में सराबोर कर देते हैं। बर्मा के ऊपर जब जापानियों ने आक्रमण किया तो डॉक्टर मुखर्जी भारत में आकर रहने लगे। वे स्कूल में हाइजीन फिजिलयालॉजी पढ़ाया करते थे और छात्रावास में ही रहते थे। उनकी पत्नी की बर्मा से भारत आते हुए मृत्यु हो गई थी। उनका घर जला दिया गया था और वे मस्तमौला की तरह जीवन जीते हैं। लतिका मेजर गिरीश नेगी से प्रेम करती है और उनकी मधुर स्मृतियों में खोयी रहती है। डॉक्टर मुखर्जी लतिका को समझाते हुए कहते हैं–

**व्याख्या** – कभी–कभी लतिका मैं सोचता हूँ कि किसी चीज के बारे में ज्ञान न होना या जानकारी न होना भी गलत है। लेकिन साथ ही उस चीज को जान–बूझकर न भुलाना भी अनुचित है, क्योंकि किसी भी अप्राप्य वस्तु या जीवन को दुःखमय बना देने वाली घटना को जान–बूझकर भुला देने का प्रयत्न न करके बलपूर्वक याद रखने का प्रयास करना भी गलत है। किसी घटना को जान–बूझकर भुलाना भी अनुचित है और किसी तथ्य को बलात् स्मरण रखना भी अनुचित है। किसी तथ्य या वस्तु के प्रति भी जोंक की तरह चिपटना भी अनुचित है, क्योंकि किसी वस्तु के प्रति आग्रह या विग्रह दोनों ही अनुचित हैं। डॉक्टर

मुखर्जी स्पष्ट करते हैं कि जब जापानियों ने बर्मा के ऊपर आक्रमण किया तो वे अपनी पत्नी को साथ लेकर भारत आ गए। रास्ते में मेरी पत्नी की मृत्यु हो गई तो मुझे अपना जीवन बेकार लगने लगा, क्योंकि पत्नी के बिना मेरा जीवन रसहीन, निरर्थक व शून्य लगने लगा था। आज इस बात को हुए काफी समय बीत गया है और आप देख रहे हैं कि मैं परिवार या पत्नी के बिना येन–केन–प्रकारेण गुजारा कर रहा हूं। यदि मेरी आयु अधिक न होती तो मैं विवाह कर लेता, क्योंकि मेरी आयु अधिक हो गई है, अन्यथा मैं विवाह कर लेता और मेरा जीवन सुखमय होता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता। मैं अपनी पत्नी की मधुर स्मृतियों को संजोकर रखता हूं और आज भी मैं अपनी पत्नी से प्रेम करता हूँ।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।
3. दार्शनिक तथ्य की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।
4. भाव, भाषा और शैली की त्रिवेणी का अनूठा संगम हुआ है।
5. डॉक्टर मुखर्जी का पत्नी के प्रति आत्मीयता अभिव्यक्त हुई है।
6. डॉक्टर मुखर्जी के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

# बयान

## (कमलेश्वर)

### तात्त्विक विवेचन

नई कहानी के पुरोधा कहानीकार कमलेश्वर ने अपनी प्रारम्भिक पहचान कस्बाई से जुड़े कथाकार के रूप में बनाई है। सामान्यजन की जिन्दगी के विविध पहलु उनकी कहानियों में निरुपित हुए हैं और पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध यत्र--तत्र शंखनाद भी हुआ है। उन्होंने आधुनिक समस्याओं को नये परिवेश में रखने और देखने का प्रयास किया है और वे अपनी रचनाओं में जनसाधारण को खोजने का सफल प्रयास करते हैं। 'बयान' के बारे में **श्री रामप्रसाद पहाड़ी** का कहना है–'बयान' कहानी एक नारी के अन्तर्मन की कहानी है। भारतीय न्याय--व्यवस्था में अपराधिनी नारी अपने वकील, सरकारी वकील, पुलिस के गवाहों आदि से घिरी, आज की नारी की मुखर वाणी में न्यायाधीश के आगे अपनी बात कहती है। जीवन की परिस्थितियों से आज तक संघर्ष करती रही है और आज उसका भविष्य एक प्रश्नचिह्न बन गया है। इस रचना में कथानक है, परिस्थितियां हैं, घटनाएं हैं और वातावरण की एक प्रवाहशील गति है। नई कहानी की कसौटी पर कसने के बाद भी हम उसे प्रेमचन्द--परम्परा की कहानी मानेंगे।"

**1. *कथानक -***

कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी में जहां हमारी सामाजिक व्यवस्था पर कटाक्ष किया है, वहां न्यायिक, राजनीतिक व्यवस्था को कटघरे में खड़ा किया है। राजनीति के घिनौने रूप का चित्रांकन कहानीकार ने स्पष्ट किया है कि यथार्थ कटु वास्तविकता का चित्रण करने से मन्त्री महोदय नाराज हो जाते हैं और नायक को नौकरी से हटवा दिया जाता है जो कालान्तर में आत्महत्या के रूप में परिणत हो जाता है। कहानीकार लिखता है–"उन्हीं दिनों एक घटना हो गई थी। थार के रेगिस्तान को रोकने के सम्बन्ध में किसी मंत्री जी ने कोई बयान दिया था। शायद यह कहा गया था कि मीलों जंगल रोपकर रेगिस्तान का पूरब की ओर बढ़ना रोक दिया गया है। ये उस जंगल की तस्वीरें लाएं, उनमें जंगल कहीं नहीं था। रेगिस्तान ही रेगिस्तान था। पेड़ लगाए जरूर गए थे, पर वे सब सूख गए थे। गलती से वे तस्वीरें छप गई थीं। विरोधी दल के किसी सदस्य ने उन तस्वीरों का हवाला देकर मुसीबत खड़ी कर दी थी। यह सब शायद लोकसभा में ही हुआ था। मन्त्री जी का बयान उनकी तस्वीरों से मेल नहीं खाता था। आदमी से गलती हो जाती है, इनसे भी हो गई थी, पर इस गलती पर उन्हें बहुत डांटा–फटकारा गया था। मन्त्री जी ने इन्हें हटा देने का आर्डर कर दिया था।" लेखक ने राजनीति के कुत्सित--विकृत रूप का चित्रांकन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि मानव का अस्तित्व को समाप्त करने में राजनीति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान हैं सत्य के लिए नायक को अपने प्राणोत्सर्ग करने पड़ते हैं–इस तथ्य की भी सुन्दर–सजीव अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार लेखक राजनीति में किस प्रकार से निर्दोष व्यक्तियों को दण्डित करते हैं–इसका भी सजीव–मार्मिक चित्रांकन है। कहानीकार कमलेश्वर बदलते हुए मानवीय सम्बन्धों की विसंगतियों पर फब्तियां कसने में भी सिद्धहस्त हैं।

**2. चरित्र-चित्रण -**

कमलेश्वर की 'बयान' कहानी के पात्रों का चरित्र बहुत प्रभावी है। 'बयान' कहानी की नायिका का पति सामाजिक अन्याय--अत्याचार के कारण आत्महत्या करने के लिए विवश है तथा उसकी आत्महत्या के कारणों को खोजता हुआ न्यायालय में नायिका से ऊल–जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं। नायिका के विवाहपूर्व सम्बन्धों को सन्देह की दृष्टि से देखते हुए उससे अनैतिक और अव्यवहारिक प्रश्न पूछे जाते हैं। जब न्यायिक व्यवस्था उनके सम्बन्धों को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं तो नायिका स्पष्ट कहती है--"जी हां, यह सच है। शादी से पहले मैं बिशन को चाहती थी, लेकिन इसका इस मामले से क्या लेना–देना है ? झूठ--सच के कुलाबे मत मिलाइये। मैं भगवान का वास्ता देकर कहती हूं.... इसका कोई सम्बन्ध इस हादसे से नहीं है। भगवान के लिए मुझे जलील मत कीजिये।" लेखक बहरे--अन्धे कानून पर कटाक्ष करता हुआ स्पष्ट करता है कि नारी से न्यायालय में अनैतिक--अमर्यादित प्रश्न पूछकर उसे जलील किया जाता है तथा नायिका स्पष्ट कहती है कि–"यह सरासर गलत है...आप लोग गलत और बेकार सवालों से सही नतीजे तक कैसे पहुंचेंगे ? इन सब फिजूल की बातों से आप उनकी मौत की वजह नहीं ढूंढ सकते। शादी से पहले का, बादल के टुकड़े की तरह तैर कर गुजरा हुआ इश्क...उस प्रेम की काली परछाईयां... पति–पत्नी की कलह, छोटे–मोटे झगड़े, घर [illegible] या पड़ोसियों से मनमुटाव–ये सब बड़ी मामूली बातें हैं। आप अभी तक इन्हीं के सहारे सच्चाइयों तक पहुंचने में लगे [illegible] इनसे कुछ भी हासिल नहीं होगा।"

**3. संवाद -**

इस कहानी की संवाद योजना में भी विशिष्टता दृष्टिगोचर होती है। कहानी में प्रश्न तो है ही नही, बल्कि उनके उत्तर से ही प्रश्नों की कल्पना की जाती है। अतः इसे संवाद का एक नया प्रयोग कहा जा सकता है। यथा–

"बच्चे के आने से हम कुछ दिनों के लिए ताजा हो गए थे।

नहीं, शराब उन्होंने कभी नहीं पी।

विज्ञापन कम्पनी में भी नहीं।

मॉडेल–सॉडेल लेकर कभी घर नहीं गए।

जी हां, कभी घर से बाहर नहीं रहे। हर रात घर में ही गुजारी।

जी हां, किस्मत के लिए कभी दोषी नहीं ठहराया।

बहुत अच्छी तरह पेश आते थे।

तस्वीरें ! कोई चार छः हजार होगी, पर सब सरकारी तस्वीरें हैं।

हां, वे बहुत तकलीफ के दिन थे।

दो सौ रुपए मिलता था।

जी बिल्कुल ! उन्हीं दिनों मुझे नौकरी करनी पड़ी।"

इस प्रकार कहानीकार ने अपनी कार यात्री प्रतिभा से केवल उत्तर ही प्रस्तुत किए हैं और प्रश्नों का तो केवल कल्पना के सहारे ही छोड़ दिया है।

**4. भाषा-शैली -**

कमलेश्वर की भाषा सरलता एक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है। वे आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं, जिसमें उर्दू और अंग्रेजी के शब्द बहुधा मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। वास्तव में यह वह भाषा है जिसका आजकल आमतौर पर पढ़े–लिखे लोग बातचीत में प्रयुक्त करते हैं। यथा–"मन्त्री जी ने इन्हें हटा देने का आर्डर कर दिया था।" इस प्रकार अंग्रेजी के शब्दों में प्रेस इन्फारमेशन ब्यूरो, फोटोग्राफर, मॉडल, फैक्टरियां, रेलवे लाइनों, सैशन, बाथरूम, डार्करूम, डॉक्टर, ब्लैकमेल, टेलीलेन्स, कार्य स्टीग लिट्ज, स्टाइशन, स्ट्रण्ड, वेस्टन, स्मिथं, पाल, प्रिंट तथा उर्दू के शब्दों में–तफसील, आईना, वजूद, कतई, तनख्वाह, जुमले गैर–वाजिब, लमहे, हिकारत आदि प्रयुक्त हुए हैं। नई कहानी की भाषा के बारे में **कमलेश्वर** का कहना है–"आदर्शों, संदेशों उपदेशों, आश्वासनों, धन्यवादों, रिश्तों, प्रतिवादों आदि सभी की भाषा उसके लिए झुठी और बेमानी हो चुकी थी। जीवन की गति इतनी तीव्र और संवेदनों की उम्र इतनी क्षणिक हो गई थी कि नये कहानीकार की समझ में यह नहीं आता था कि किस भाषा में बात करें। प्रेम जैसा शब्द इन बदलती हुई स्थितियों में प्रेम की अनुभूति नहीं बना देता।" शैली की दृष्टि से उन्होंने विश्लेषणात्मक शैली प्रयोग की है।

**5. उद्देश्य -**

इस प्रकार कहानीकार कमलेश्वर का प्रमुख प्रतिपाद्य तो भारतीय न्यायिक व्यवस्था पर कटु कटाक्ष करते हुए उसकी धज्जियां उडाना है, क्योंकि नारियों से असम्बन्धित उल–जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं, शब्दों की मनमानी व्याख्याएं की जाती हैं तथा साथ ही सामाजिक व्यवस्था पर भी तीखे प्रहार करता है। कहानीकार ने राजनीति के कुत्सित–घिनौने रूप का चित्रांकन करते हुए देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था की भी पोल खोली है।

शिल्प–विधान की नव्यता भी इस कहानी की प्रमुख विशिष्टता है। कहानीकार ने शिल्प के अद्‌भुत प्रयोग द्वारा एक ही पात्र से बहुत सारे पात्रों का निर्वाह कर लिया है। कथानक में सरसता सरलता–सहजता और स्वाभाविकता प्रचुर मात्रा में विद्यमान है तथा साथ ही नाटकीयता और कौतुहलता का भाव भी निहित है। सम्पूर्ण कहानी उत्तम पुरुष तथा आत्मकथात्मक शैली में कही गई है। **डॉक्टर चितरंजन मिश्र** का कहना है–"हिन्दी कहानी में होने वाले सभी परिवर्तनों एवं आन्दोलनों के साथ कमलेश्वर जुड़े रहे हैं, इसीलिए उनके यहां भाव–बोध और शिल्प के भी अनेक स्तर हैं। वे स्वयं यह मानते हैं कि वर्तमान जीवन में जो अनेकयामी जटिलता है, उसे कहानी में अभिव्यक्त करने के लिए उसके फार्म को अनिवार्य रूप से बदलना ही

पड़ेगा।" आज जनसामान्य की पहचान गहने संकट में है और उसकी जिन्दगी तरह–तरह की बनावटों, कृत्रिमताओं और सामाजिक अव्यवस्थाओं तथा राजनीति के घिनौने–कुत्सित रूप से ग्रस्त है। वैसे प्रस्तुत कहानी के कथ्य और कहानी संरचना में एक अद्‌भुत समन्वय एवं संतुलन दृष्टिगोचर होता है। इनकी कहानियों में आधुनिक जीवन–बोध की सूक्ष्मता अपनी समग्रता में निहित है।

## II. कहानी-सार

नयी कहानी के पुरोधा श्री कमलेश्वर जी ने 'बयान' कहानी में राजनीति के भयावह, घिनौने स्वरूप पर कटाक्ष किया है, साथ ही न्यायिक व्यवस्था को भी कटघरे में खड़ा किया है। न्यायालय में नारियों से अप्रासंगिक, असम्बद्ध प्रश्न पूछे जाते हैं जिनसे नारियां जलील होती हैं। कहानी में नायिका के अनेक लोगों से मन–गढ़न्त रिश्ते जोड़े जाते हैं तथा साथ ही देश की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की भी पोल खोली जाती है। कहानी का सारांश इस प्रकार है–

नायिका का पति प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अपनी तथा अपनी पत्नी की नौकरी छूट जाने पर आत्महत्या कर लेता है तथा सन्देह की सूई नायिका पर आकर ठहरती है। नायिका को न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है ओर उससे सच्चाई उगलवाने के लिए अनेक ऊल–जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं। नायिका अत्यन्त आत्मविश्वास और साहस के साथ प्रश्नों के उत्तर देती है। कहानी की कथावस्तु में न्यायाधीश द्वारा पूछे गए प्रश्न नहीं दिए गए हैं, अन्यथा इस गद्य विद्या का रूप कहानी से नाटक में परिवर्तित हो जाता। प्रश्न न देकर केवल उनके उत्तरों से ही कल्पना का सहारा लेकर प्रश्न को सोचना पड़ता है। कहानी के प्रारम्भ में ही नायिका स्वीकार करती है कि उसके शादी से पहले बिशन के साथ उसके सम्बन्ध थे। वह बिशन को चाहती थी, लेकिन इस मामले से इसका क्या लेना–देना है ? जब वकील या जज उसके इन सम्बन्धों का गलत अर्थ लगाते हैं तो वह तुरन्त विरोध करती है और दृढ़ता से कहती है–मेरा बिशन से उतना ही प्यार था जितना बाईस–चौबीस बरस पहले कोई लड़की किसी लड़के से कर सकती थी। जब नायिका और उसके पति के सम्बन्धों की मधुरता पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता है तो वह स्पष्ट कहती है कि मेरे पति ने मुझे बेइंतहां प्यार किया तथा उन्होंने मुझे कभी तंग नहीं किया। वह स्पष्ट कहती– आप लोग गलत और बेकार सवालों से सही नतीजे तक नहीं पहुंच सकते। वह कहती है कि अन्धा और बहरा कानून जीवन की नित्यप्रति की बातों से सच्चाई तक नहीं पहुंच सकता।

अपने पति के साथ बितायी आखिरी रात के बारे में बताती है कि मैंने कोई ताना नहीं दिया था और हमेशा की तरह वह रात भी अत्यन्त मामूली थी। बच्ची हमारे पास ही एक छोटी खाट पर सोती थी और वे शाम को घूमने भी गए थे तथा बच्ची के लिए टॉफियां भी लाए थे। अपने पति के कार्य–व्यापारों पर प्रकाश डालती हुई कहती है कि वे फोटोग्राफर थे और उन्होंने धंधा कभी नहीं बदला। उन्हें भरोसा था कि वे एक दिन बहुत बड़े फोटोग्राफर बनेंगे। उनके लिए दुनिया में सबसे सुन्दर औरत, पत्नी और लड़की जो कुछ भी थी, मैं ही थी। सरकारी पत्रिका में फोटोग्राफर होने से पहले वे सरकार के ही प्रैस इन्फौरमेशन ब्यूरो में थे तथा प्रैस इन्फौरमेशन ब्यूरों में लगभग वे पांच साल तक रहे। करीब छह साल तक वे सरकारी पत्रिका में सेवारत रहे और इसके बाद साढ़े चार साल तक एक विज्ञापन कम्पनी में। वे सरकारी फोटोग्राफर थे। पन्द्रह अगस्त, शानदार दावतें, आने वाले विदेशी मेहमान, लालकिले में स्वागत समारोह, शाही सवारी, शिलान्यास, उद्‌घाटन आदि इन सबकी तस्वीरें वह लिया करता था, परन्तु एक बात विशेष ध्यान देने की है कि जब वे सरकारी पत्रिका से जोड़ दिए गए तो लहराती खेती, बांध, बिजली घर, फैक्ट्रियों, मिलों, वन–महोत्सवें, नयी रेलवे लाइनों और पुलों के उद्‌घाटन आदि से सम्बन्धित तस्वीरें उतारते थे और बहुत खुश होते थे–देश के विकास को देखकर। कहा करते थे कि आजादी का यही सुख है, लेकिन कई बरसों बाद उनका यह उत्साह खत्म हो गया था और एक बार बोले थे कि इन तस्वीरों से कुछ हासिल नहीं होता, क्योंकि रेलवे लाईन–पुलों के उद्‌घाटन आदि हो जाते थे, लेकिन वे कभी भी बन नहीं पाते थे। मैं कुछ दिनों बाद यह नहीं कह पाऊंगा कि तस्वीरें सच्ची होती हैं। लेकिन कुछ दिनों के बाद एक घटना घट गई थी कि पार के रेगिस्तान को रोकने के बारे में मंत्री जी ने कोई बयान दिया था, जिसमें कहा गया था कि मीलों जंगल रोपकर रेगिस्तान क पूरब की तरफ बढ़ना रोक दिया गया है, लेकिन जब नायिका का पति उस जंगल की तस्वीरें खींचकर लाया, जिसमें वृक्षों का नामोंनिशान न था।

पेड़ लगाए जरूर गए थे, पर वे सूख गए थे। गलती से वे तस्वीरें अखबार में प्रकाशित हो गईं थीं, जिसके कारण विरोधी दलों के सदस्यों ने शायद लोकसभा में हंगामा खड़ा किया था। मंत्री जी का बयान इन तस्वीरों के साथ मेल नहीं खाता था। उन्हें डांटा–फटकारा गया और अन्ततः नौकरी से हटा दिया गया। तभी उनकी आँखों से खून के कतरे गिरने लगे और उसके बाद उन्होंने विज्ञापन कम्पनी में नौकरी कर ली थी, परन्तु वेतन इतना कम मिलता था कि गृहस्थी बड़ी मुश्किल से चलती थी। तभी बच्चे पैदा हो गई और बच्ची के आने से हम कुछ दिनों के लिए ताजा हो गए। विज्ञापन कम्पनी में रहते हुए न उन्होंने

कभी मद्यपान किया और न किसी मॉडल को लेकर घर आए तथा हर रात घर पर ही गुजारते थे। तभी मैंने घर का खर्चा चलाने के लिए किसी स्कूल में दो सौ रुपये मासिक पगार पर नौकरी कर ली। नायिका के पति ही उन्हें स्कूल में छोड़ने जाने के लिए जाया करते थे और बच्ची की देखभाल घर पर रहकर वे ही करते थे। लेकिन तभी उन्हें एक नेत्र की भयंकर बीमारी ने घेर लिया और आँख से रक्त बहने लगा। विज्ञापन कम्पनी की नौकरी छूटने के बाद उन्होंने घर पर ही अपना काम शुरू किया था, बाथरूम को डार्करूम बना लिया था और बच्ची की भी तस्वीरें लेकर अखबारों में छपवायी थी, लेकिन उससे कोई विशेष आमदनी न होती थी। घर का खर्चा नायिका की नौकरी के सहारे ही चलता था। तभी नायिका के सम्पादक--मैनजर के साथ सम्बन्धों के बारे में बेतुके प्रश्न पूछे गये, जिनका उसने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया। मैं मैनेजर के घर जाती थी पर इसका मतलब यह तो नहीं कि,...मैं यहां भी तो हाजिर होती हूं। तभी वह न्यायालय से इस जुल्म के लिए माफी मागती है। गर्मियों की छुट्टियों में स्कूल से वेतन नहीं मिलता था तथा छुट्टियों में नौकरी से हटा दिया जाता था और सत्रान शुरू होने पर फिर से रख लिया जाता था। छुट्टी के उन दिनों में हमारे परिवार की आर्थिक अवस्था अत्यन्त दयनीय हो जाया करती थी। तभी न्यायालय स्पष्ट करता है कि सम्पादक महोदय के कारण उनकी नौकरी छूटी।

आप मेरे निर्दोष पति पर इलजाम लगा रहे हैं जो कि अनुचित है। तभी नायिका ने बताया कि मुझे फिर दोबारा नौकरी पर रख लिया गया था, लेकिन एक दिन उन्होंने मेरी अर्द्धनग्न तस्वीरें खींचकर अखबार में छपवा दीं, जिनको देखकर मैनजर महोदय ने मुझे नौकरी से निकाल दिया। उन्होंने मुझे उसी वक्त क्लास् से बुलाकर खड़े--खड़े हिसाब कर दिया। इस प्रकार स्कूल से निकाल जाने की वजह वे अर्द्धनग्न तस्वीरें थीं न कि सम्पादक और मैनेजर का झगड़ा। अब नौकरी छूट जाने पर परिवार के समक्ष आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। वे अस्वस्थता के कारण बाहर नहीं जा सकते थे, इसलिये मैंने नौकरी खोजने का अभियान प्रारम्भ किया। इसीलिए मैं पति और बच्ची को घर पर छोड़कर काम खोजने के सिलसिले में ग्यारह बजे से गई हुई थी। बच्ची भी उन्हें बहुत प्यार करती थी। पति ने पीछे बच्ची को भी स्कूल भेज दिया और छत के कड़े से लटककर फांसी लगा ली थी। यह घटना नौकरी छूटने से दूसरे दिन की है। मुझे इस हादसे का कोई अहसास नहीं था। जब मैं गई तो खून जरा ज्यादा ही मात्रा में गिर रहा था, लेकिन यह तो मामूली और रोजाना की बात थी। उन्होंने छत के कड़े से लटककर चादर की सहायता से फांसी लगाई थी, लेकिन मुझे कोई खबर नहीं मिली। मैं तो चार बजे के करीब वापिस आयी थी तब तक सब कुछ घटित हो चुका था। पुलिस ने आकर लाश को उतारकर पलंग पर लिटा दिया था। नायिका के वापिस आने पर बच्ची ने बताया कि पापा की तबीयत अच्छी हो गई है तथा आराम से वे लेटे हैं। सबसे पहले मुझे इस घटना के बारे मे बच्ची ने बताया था, अन्दर कमरे में जाकर देखा तो सब कुछ समझ में आ गया। उनके नाखून और ओंठ नीले पड़े हुये थे तथा शरीर पीलिया रोगी की भाँति पीला पड़ गया था। आँखें बन्द थीं और बिल्कुल सूखी हुई। इस प्रकार इसके बाद जो कुछ हुआ उसकी तफसील आपके पास है तथा आत्महत्या से पहले की बातें मैंने आपके सामने रख दी हैं। इस प्रकार नायिका ने बयान देकर न्यायालय व जीवन समाज के समक्ष चिन्तन--मुक्त करने के लिए बहुत सारे बिन्दू छोड़ दिये हैं।

# III. चरित्र-चित्रण

## नायिका का चरित्र चित्रण -

नई कहानी के सशक्त हस्ताक्षर श्री कमलेश्वर द्वारा रचित 'बयान' कहानी में नायिका के माध्यम से लेखक ने सामाजिक बुराइयों पर कटु कटाक्ष करने का स्तुत्य प्रयास किया है। नायिका ही कहानी की केन्द्रीय पात्रा है तथा कहानी में उसे निर्भीकता--निडरता की जीवन्त प्रतिमा, सत्य के प्रति कठोर--कड़ा आग्रह, साहसी और जीवन तथा समाज के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण वाली नारी के रूप में चित्रित की है। उसके पति फोटोग्राफर हैं तथा सत्य का पक्ष लेने के लिए उनकी नौकरी छूट जाती है और उसके बाद अर्द्धनग्न तस्वीरें खिंचवा कर पत्रिका में छपवाने के कारण नायिका को भी नौकरी से मुक्त होना पड़ता है। आर्थिक धनाभाव के कारण तथा परिस्थितियों से विवश होने के कारण उसका पति आत्महत्या करने का जघन्य अपराध कर बैठता है। अदालत या न्यायिक व्यवस्था नायिका को सन्देह के कटघरे में खड़ी करके उससे अनेक असम्बन्धित, अमर्यादित और ऊल--जलूल प्रश्न पूछती है, लेकिन नायिका सत्य की कट्टर पक्षधर है, इसीलिए वह दृढतापूर्वक स्पष्ट बात कहने की पक्षधर है। कहानी के प्रारम्भ में ही जब उसके और उसे विवाहपूर्व के प्रेमी बिशन के सम्बन्धों के सन्दर्भ में प्रश्न पूछे जाते हैं तो वह स्पष्ट उत्तर देती हुई कहती है--"नहीं, मेरा बिशन से उतना ही प्यार था, जितना कि बाईस-बाईस बरस पहले कोई भी लड़की किसी भी लड़के से कर सकती थी। मैं कब इन्कार करती हूं वह मुझसे नहीं मिला।" लेकिन जब उसके शब्दों की मनमानी व्याख्या करके उनके गलत अर्थ निकाले जाते हैं तो वह तुरन्त अपना विरोध प्रकट करती है-- यह

सरासर गलत है। आप लोग गलत और बेकार सवालों से सही नतीजे तक कैसे पहुंचेंगे।" इसी प्रकार वह कहानीकार के विचारों की संवाहक है तथा अनेक स्थानों पर सामाजिक मर्यादाओं की धज्जियां उड़ाती है। न्यायिक व्यवस्था पर कटु प्रहार करते हुए वह कहती है--"आप लोग हमेशा ही गलत रिश्ते जोड़ते हैं, हमेशा आदमी के अस्तित्व पर शक करते हैं।" इसी प्रकार एक अन्यत्र स्थल पर भी वह साहस को जीवन्त प्रतिमा कठोरता के साथ उत्तर देती है। जब उसके चरित्र को संदिग्ध बना दिया जाता है--"जी, गलत अर्थ क्यों लगाते हैं ? इन शब्दों के इस्तेमाल से आपको लगता है कि मैं आज भी उसे चाहती हूं। आप जो चाहे कह लीजिए।" मैं क्या कह सकती हूं। लेकिन क्या मुझे यह हक नहीं है कि मैं अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कह सकूं।" इसी प्रकार गलत बात कहने पर वह फिर टोकती है कि उसके पति उससे प्यार नहीं करते थे। वह स्पष्ट कहती है--"देखिए, फिर गलत बात कही जा रही है। मैं आत्मा की गहराइयों से कहती हूँ कि मेरे पति ने मुझे बेइन्तहा प्यार किया। उन्होंने मुझे कभी तंग नहीं किया। मेरी इसकी गवाही तो सिर्फ वे ही दे सकते थे, अगर वे होते।" इस प्रकार अनैतिक--अमर्यादित एवं ऊल--जलूल सवाल पूछने पर भी वह साहसी नारी बिना संकोच, लज्जा के तुरन्त सही--सटीक उत्तर देती है। उसकी जीवन दृष्टि अपने आप में सन्तुलित एवं सम्पूर्ण है तथा न तो वह परम्परावादी या रूढ़ियों में विश्वास करने वाली नारी है और न आधुनिका।

नायिका पतिपरायण, कर्त्तव्यनिष्ठ महिला है। वह अपने पति के उचित--अनुचित कार्यों में पूर्ण सहयोग देती है यथा ब्रेसरी उतारने वाले प्रसंग में वह अर्द्धनग्न तस्वीरें खिंचवाकर पत्रिका में छपवाती है और इसी कारण उसे नौकरी से पदच्युत होना पड़ता है। वह जीवनयापन हेतु कठोर परिश्रम करके नौकरी करती है और न पति से कभी शिकायत करती है, न उपालम्भ और न खीझ। इसी प्रकार जब उसके निरपराधी पति पर आरोप लगाया जाता है, वह तुरन्त आक्रोश प्रकट करती हुई कहती है--"नहीं, नहीं, नहीं...मेरे निर्दोष पति पर इल्जाम मत लगाइये। मैं जानती हूं, आखिर में यही इल्जाम घूमकर मुझ पर आएगा। मेरी भरी--पूरी जिन्दगी की बखिया उधेड़ेगा। मैं अपने पति की मौत की जिम्मेदार कैसे हो सकती हूँ ?"

इसी प्रकार वह अपने आर्थिक अभावों को भी स्पष्टता के साथ बताती चलती है--"जो गर्मियों की छुट्टियों की तनख्वाह स्कूल से नहीं मिलती थी। छुट्टियों में हमें नौकरी से हटा दिया जाता था। सेशन शुरु होने पर फिर रख लिया जाता था। छुट्टी के उन दो महीनों में हमारी हालत बहुत खराब हो जाती थी। बच्ची भी सामने थी।" लेकिन इसके बावजूद भी अपने पति को कहीं भी जिम्मेदार नहीं ठहराती, बल्कि नौकरी छूटने पर फिर दोबारा नौकरी के लिए प्रयास करके प्राप्त करती है। इसी प्रकार एक अन्यत्र स्थान पर भी अपनी स्पष्ट वक्तव्य कला का परिचय देती है जब आर्थिक अभाव का ब्यौरा प्रस्तुत करती है--"जी हां, इसी के बाद नौकरी से ये अलग हो गये थे, एक तरह से मजबूरना इन्हें हटना पड़ा था। तब इन्होंने एक विज्ञापन कम्पनी में काम कर लिया था। दो--तीन घण्टे के लिए जाते थे। काम क्या था, एक बहाना था। बहुत मुश्किल से गृहस्थी चलती थी।" इसी प्रकार वह अपने पति के व्यवहार के बारे में स्पष्ट कहती है--"बहुत अच्छी तरह से पेश आते थे।" इस प्रकार परिवार का गुजारा चलाने के लिए वह नौकरी करती है।

इसी प्रकार वह अपने और पति के सम्बन्धों का भी निर्भीकता--स्पष्टता के साथ खुलासा करती है। पति के साथ उसकी मधुरता व समर्पण भावना को इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है--"उनके लिए दुनिया में सबसे सुन्दर औरत, पत्नी, लड़की--जो कुछ थी, मैं ही थी।"

इसी प्रकार इस अन्यत्र स्थल पर नायिका अपने पति के साथ आत्मीय और मधुर सम्बन्धों को उजागर करती हुई लिखती है--"शुरु--शुरु में जब वे मुझे जरा--सी आँख दबाकर देखते थे तो मुझे बड़ी गुदगुदी होती थी। यह शादी के बाद शुरु दिनों की बात है। मुझे गुदगुदी इसलिये होती थी कि एक आँख दबाकर देखना....आप तो जानते ही हैं, मुझे अब भी हँसी आती है। कैमरा और मैं--बस, उनके लिए यही दो चीजें थीं...या फिर हमारी बच्ची। कभी--कभी मैं उनके सीने पर सिर रख लेती थी तो उनकी अंगुलियां मेरी कनपटियों पर उसी तरह थरथराती थी, जैसे किसी ओझल हो जाने वाले लमहे को पकड़ने के लिए कैमरे पर कांपती थीं। मेरी अंगुलियों के पोर वे ऐसे दबाते थे, जैसे शटर दबा रहे हों....हमारे प्यार के सबसे खूरसूरत क्षण यही होते थे।"

फिर कुछ दिनों बाद यह मैंने जाना कि जब भी वे एक आँख दबाकर देखते थे, तो सिर्फ मुझे ही देखते रहे होते थे।" इसी प्रकार नायिका राजनीति--न्यायिक व्यवस्था पर भी कटु प्रहार करती है कि न्याय--कानून अन्धा और बहरा है तथा प्रत्येक वस्तु को सन्देह की दृष्टि से निहारता है--"नहीं, नहीं, गलत मत समझिए। ये मेरे दोस्तों या चाहने वालों के नाम नहीं हैं। आप लोग हमेशा गलत रिश्ते जोड़ते हैं...हमेशा आदमी के अस्तित्व पर शक करते हैं...अस्तित्व।....जी वजूद समझ लीजिए।" इसी प्रकार वह स्पष्टता के साथ नौकरी से निकाले जाने के कारणों पर प्रकाश डालती है कि उसके पति द्वारा खींची गई अर्द्धनग्न

तस्वीरें ही उसकी नौकरी को लील गई। वह स्पष्ट कहती है–"सम्पादक ने मेरी दो तस्वीर अगले दिन छापी थी। ... से हंगामा शुरु हुआ था। मेरी अर्द्धनंगी तस्वीरें स्कूल के मैनेजर तक भी पहुंची थी। उन्होंने फौरन तय किया कि इस ... की औरत का स्कूल में रहना एक पल के लिए भी मुमकिन नहीं है। मुझे उसी वक्त क्लास में बुलाया गया था और ... हिसाब कर दिया गया था।" इसी प्रकार जब स्कूल के मैनेजर के साथ उसके सम्बन्धों को जोड़ा जाता है तो वह ... विरोध करती हुई कहती है–"मैं यहां भी हाजिर होती हूं।" इसी प्रकार न्याय–व्यवस्था पर कटु कटाक्ष करते हुए कहती है "क्या कानून का काम सिर्फ सबूत इकट्ठे करके किसी को जलील कर देना है ?" इस प्रकार वह वात्सल्यमयी ... दायित्व–कर्त्तव्य भी पूरी निष्ठा के साथ निभाती है। पुत्री के पूछने पर वह अत्यन्त आत्मीयता के साथ उत्तर देती है ... तेरे पापा की तबीयत अच्छी नहीं रहती। उन्हें कुछ बीमारी हो गई है।"

नायिका का चरित्र पूरी कहानी में अनेक उज्ज्वल गुणों को समेटे हुए है। वह न तो रूढ़िवादी है और न आधुनिक, बल्कि उसका चरित्र पूर्ण रूप से संतुलित–संयमित जीवन दृष्टि पर आधारित है। सत्य के प्रति आग्रह उसमें कहानी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है। वह सुशिक्षिता, सत्यवादी, पति–परायणा, कर्त्तव्यनिष्ठ तथा वात्सल्यमयी माँ के ... कहानी में चित्रित हुई है। वह पति के प्रति पूर्णरूप से समर्पित है और अपने बयान से स्पष्ट करती है कि उसके पति ... भूल नहीं की। उसमें संवेदनशीलता–भावुकता, बौद्धिकता तथा अवसरानुकूल कार्य करने की सूझ–बूझ आदि असाधारण ... को सहज समन्वय है। उसने कहानी के प्रमुख प्रतिपादय को भी स्पष्ट करने का स्तुत्य प्रयास किया है–न्याय–प्रक्रिया ... जटिलता व राजनीति का अत्यधिक हस्तक्षेप आदि। कहानीकार ने नायिका के माध्यम से स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद ... के कारण हुए विकास को भी रेखांकित किया है तथा राजनीति के कुत्सित रूप का भी चित्रांकन किया है–"एक ... करने की है। जब वे सरकारी पत्रिका में खासतौर से जोड़ दिए गए, तो लहराती खेती, बांध, बिजलीघर, फैक्ट्रियों, मेलों ... महोत्सवों, नयी रेलवे लाइनों, पुलों के उद्‌घाटनों, स्कूलों वगैरा की तस्वीरें उतारते थे।" वे बहुत खुश होते थे। कहते थे ... का यही सुख है।" इस प्रकार नायिका उन तस्वीरों की सत्यता पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है। इसी प्रकार नायिका अपने ... की मधुर स्मृतियों को संजोए हुए है और स्पष्ट कहती है–"क्या करूं, लौट–लौटकर उन्हीं क्षणों पर पहुच जाती हूं ... अब उठता ही है। जो हो सका, दोनों ने मिलकर उठाया, पर अब तो हम दोनों के वही क्षण शेष हैं, जो भूल–भटक कभी ... जाते थे। हँसी–खुशी के एकाध क्षण।" इसी प्रकार पति की मृत्यु पर दीवारों से सिर टकराना भी पति के साथ आत्मीयता ... उजागर करती है–"मैं कमरे में पहुंची तो सब समझ में आ गया था। मैं दीवार से सिर पटक देने के सिवा क्या कर सकती थी ?" नर–नारी के सम्बन्धों पर भी प्रकाश डालते हुए नायिका स्पष्ट स्वीकारती है कि पुरुष की नजरों में जो खिंचाव या आकर्षण का भाव होता है। वह बुरा या ओछा न माना जाए–"उसकी नजरों में भी कोई खास गन्दगी मुझे नहीं लगती ... जिसे आप शायद गन्दगी कहना चाहेंगे, वह सबकी नजरों में होती है। उसे आप आदमी–औरत के बीच का ... कह सकते हैं...और उस खिंचाव को अगर गन्दा, ओछा या बुरा न माना जाए तो वह बड़ी मामूली ...

इस प्रकार स्पष्ट है कि नायिका निर्भीकता–साहस व स्पष्टता की जीवन्त साकार प्रतिमा है तथा अनुचित ... बड़ी कठोरता के साथ करने में सक्षम है। वह पति–परायणा, कर्त्तव्यनिष्ठ व वात्सल्यमयी माँ है और सच्चरित्र नारी है। ... वास्तव में सुशिक्षिता, मर्यादित व सेवापरायण नारी है।

## IV. उद्देश्य

नयी कहानी के पुरोधा श्री कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में राजनीति का कुत्सित रूप और सामाजिक ... पर कटु एवं तीखे प्रहार किए हैं तथा कहानीकार ने बदलते हुए परिवेश–सामाजिक सन्दर्भ में नारी के साहस का ... और मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। **डॉक्टर रमाप्रसाद 'पहाड़ी'** ने 'बयान' कहानी के प्रतिपादय पर प्रकाश डाला है ... कहानी एक नारी के अन्तर्मन की कहानी है। भारतीय न्याय–व्यवस्था में अपराधिनी नारी अपने वकील, सरकारी वकील, ... के गवाहों आदि से घिरी, आज की नारी की मुखर वाणी में न्यायाधीश के आगे अपनी बात कहती है। जीवन की ... से आज तक संघर्ष करती रही और आज सबका भविष्य एक प्रश्नचिह्न बन गया है। इस रचना में कथानक है, परिस्थितियां हैं, घटनाएं हैं और वातावरण की एक प्रवाहशील गति है। नई कहानी की कसौटी पर कसने के बाद भी हम इसे ... की कहानी मानेंगे।" कहानीकार मानस–संस्कार, व्यवस्था और यथास्थिति का कट्टर विरोधी है और कथानक को राजनीतिक–सामाजिक समस्याओं से जोड़कर ठोस–सबल आधार प्रदान करता है। कहानीकार ने राजनीति के ... असत्य और कथनी में अन्तर आदि का भी बयान कहानी में चित्रण किया है। **डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान** ने कमलेश्वर ... में लिखा है–"एक कहानीकार, आलोचक और कहानी सम्पादक के नाते इस विषय पर इनके ... न विस्तृत तथा प्रायः गम्भीर

है। वह कभी गहरे में उतरते हैं तो कभी उथले में ही रह गए हैं। एक रचनाकार के नाते गहरे में और एक सम्पादक के तौर पर उथल में ही उतरे हैं। उनकी आवाज को नजर–अन्दाज करना 'नई कहानी' आवाज को अनसुना करना होगा। वह नई कहानी की रचना में करते हैं और कर रहे है और दिशा भी देते हैं और दे रहे हैं।" इसी प्रकार **डॉक्टर शान्तिभूषण** का कहना है– "कमलेश्वर कस्बे से लेकर महानगर तक पहुंचने के कारण नवीन दिशाएं खोजते हैं जो भारतीय जीवन के विस्तार को पकड़ने का एक प्रयत्न है।"

इस प्रकार 'बयान' कहानी में केन्द्रीय प्रतिपाद्य है–राजनीति के कुत्सित और खोखलेपन पर कटु प्रहार करना तथा साथ ही सामाजिक मान्यताओं की धज्जियां उड़ाना। नायिका के माध्यम से नारी के साहस का चित्रण और लोकतांत्रिक व्यवस्था की पोल खोलना, मन्त्रियों के दोहरे मापदण्डों का वर्णन करना, नारी से अनैतिक–अमर्यादित व ऊल–जलूल प्रश्न पूछना तथा न्यायिक व्यवस्था के अन्धेपन–बहरेपन पर भी प्रकाश डालना आदि महत्त्वपूर्ण बिन्दू हैं, जिन पर कमलेश्वर ने गम्भीरता के साथ चिन्तन व मनन करके निष्कर्ष निकाला है।

कहानी के प्रतिपाद्य निम्नलिखित हैं–

**1. राजनीति के कुत्सित और खोखलेपन पर प्रहार करना** – कमलेश्वर ने अपनी कहानी 'बयान' में राजनीति के कुत्सित और खोखलेपन पर कटु कटाक्ष किये हैं। नायिका का पति फोटोग्राफर है और पन्द्रह आगस्त, शानदार दावतें, आने वाले विदेशी मेहमान, लालकिले में स्वागत–समारोह, शाही सवारी, शिलान्यास, उद्घाटन आदि की तस्वीरें खींचता था। नायिका के पति को राजनीति के खोखलेपन के कारण ही एक ओर तो नौकरी से पदच्युत होना पड़ता है तो दूसरी ओर प्राणोत्सर्ग भी करने पड़ते हैं। नायिका के पति थार में रेगिस्तान की तस्वीरें उतारकर लेकर आता है तथा मन्त्री महोदय ने रेगिस्तान को रोकने के सम्बन्ध में एक बयान दिया था कि रेगिस्तान का पूरब की तरफ बढ़ना रोक दिया है, लेकिन उन तस्वीरों में कहीं भी पेड़ या हरियाली का प्रतिबिम्ब नहीं है जिससे मन्त्री महोदय संकट में पड़ गये। अतः उन्होंने फोटोग्राफर को नौकरी से निकाल दिया, क्योंकि उसकी खींची गई तस्वीरें अखबार में गलती से छप गई थी। क्योंकि तस्वीरें सच्ची थीं और तथ्यों पर आधारित थीं, परन्तु फोटोग्राफर को बलि का बकरा बना दिया गया। इसी प्रकार कहानीकार ने इस कहानी में यह भी स्पष्ट किया है कि रेलवे लाइनों और पुलों आदि के उद्घाटन हो जाते हैं तथा अखबारों में तस्वीरें छप जाती हैं, लेकिन वे कभी भी नहीं बन पाते। कहानीकार **कमलेश्वर** राजनीति के घिनौने रूप का चित्रांकन करते हुए लिखते हैं–"जब वे सरकारी पत्रिका में खासतौर से जोड़ दिए गए हैं तो लहराती खेती, बांध, बिजलीघर, फैक्ट्रियों, मिलों, वन महोत्सवों, नयी रेलवे लाइनों पुलों के उद्घाटनों, स्कूलों वगैरह की तस्वीरें उतारते थे। वे बहुत खुश होते थे।....कहते थे–आजादी का यही सुख है। पर कई बरसों बाद उनका यह उत्साह पता नहीं कहां खो गया था। उनके दिल में कुछ घुमड़ता रहता था। एक बार बोले थे–इन तस्वीरों से कुछ हासिल नहीं होता। मैं खुद कहीं भीतर से झूठा पड़ता जा रहा हूं। शायद कुछ दिनों बाद मैं किसी से यह भी नहीं कह पाऊंगा कि तस्वीर सच्ची होती हैं।

इस प्रकार लेखक कमलेश्वर ने मन्त्री महोदय की कार्यशैली तथा असत्य का सत्य पर हावी होना और राजनीति के कुत्सित व खोखलेपन के कारण ही फोटोग्राफर या कलाकार की आत्मा आहत होती है और वह आत्महत्या कर लेता है।

**2. न्यायिक व्यवस्था पर कटु प्रहार** – कमलेश्वर ने 'बयान' कहानी में न्यायिक व्यवस्था पर कटु प्रहार किए हैं। नायिका का पति असामयिक काल–कवलित हो जाता है तथा संकट की सुई नायिका के ऊपर आकर ठहरती है और नारी से अनैतिक–अमर्यादित व ऊल–जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं। नायिका न्यायिक व्यवस्था पर कटु प्रहार करते हुए कहती है कि न्याय अन्धा और बहरा है तथा प्रत्येक वस्तु को सन्देह की दृष्टि से निहारता है–"नहीं ! नहीं ! गलत मत समझिए। ये मेरे दोस्त या चाहनेवालों के नाम नहीं हैं। आप लोग हमेशा गलत रिश्ते जोड़ते हैं....हमेशा आदमी के अस्तित्व पर शक करते हैं...अस्तित्व। जी वजूद समझ लीजिए।" इसी प्रकार नायिका एक अन्यत्र स्थल पर भी न्याय–व्यवस्था की पोल खोलती हुई कहती है–"क्या कानून का काम सिर्फ सबूत इकट्ठे करके किसी को जलील कर देना है ?" कहानीकार न्याय व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए लिखता है–"अगर कहिए, तो कुछ ऐसा बता दूं कि ताकि आपका अन्धा और बहरा कानून किसी नतीजे पर पहुँच जाए।" इसी प्रकार नायिका न्यायालय द्वारा लगाये गये आरोपों की बखिया उधेड़ती है–"नहीं, नहीं, नहीं, मेरे निर्दोष पति पर इल्जाम मत लगाइये। मैं जानती हूं आखिर में यही इल्जाम घूमकर मुझ परआयेगा। मेरी भरी–पूरी जिन्दगी का बखिया उधेड़ेगा। मैं खूब जानती हूं। आप लोग मुझे कहां धकेल रहे हैं। क्या कानून का काम सिर्फ सबूत इकट्ठे करके किसी को जलील कर देना है? मैं अपने पति की मौत की जिम्मेदार कैसे हो सकती हूँ ?" इसी प्रकार न्यायालय मैनेजर के साथ उसके अवैध सम्बन्धों को जोड़ने का प्रयास करता है तो नायिका कटु कटाक्ष करती हुई कहती है–"भगवान के लिए मुझे फिर जलील मत कीजिये। मैं मैनेजर

के घर जाती थी, पर इसका मतलब यह तो नहीं कि....मैं यहां भी तो हाजिर होती हूं।" इस प्रकार कहानीकार ने न्यायिक व्यवस्था की पोल खोली है तथा साथ ही असम्बद्ध प्रश्नों, गलत व्याख्याओं तथा अनैतिक अमर्यादित प्रश्न आदि का भी चित्रांकन किया है।

**3. सामाजिक मान्यताओं की धज्जियां उड़ाना** – 'बयान' कहानी में कमलेश्वर सामाजिक मान्यताओं की धज्जियां उड़ाता है। समाज में नायिका के पति को सत्य बोलने के अपराध में दण्डित किया जाता है, क्योंकि उसने सही तस्वीर अखबार में गलती से प्रकाशित करवा दी थी। वास्तविकता तो यह है कि व्यक्ति को मरने के लिए विवश किया जाता है। मन्त्री महोदय उसको नौकरी से हटवा देता है, विज्ञापन कम्पनी में नौकरी करता है लेकिन कुछ दिन बाद वहां से भी पदच्युत हो जाता है। अन्ततः अपना कार्य करना शुरु कर देता है, लेकिन काम चल नहीं पाता तथा पत्नी की भी नौकरी छूट जाती है तथा परिवार की आर्थिक अवस्था दयनीय हो जाती है। रोटियों के मोहताज हो जाते हैं। समाज उसे कोई भी सुरक्षा या सहायता प्रदान नहीं करता और वह आत्महत्या कर लेता है, लेकिन बाद में उसकी पत्नी को उसकी मृत्यु के अपराध में कटघरे में खड़ा किया जाता है। कितनी भयंकर विडम्बना है कि जीवित रहते उसको सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती तथा मरने के बाद उसकी मृत्यु के अपराध में नायिका को कटघरे में खड़ा किया जाता है। इस प्रकार नाटककार ने सामाजिक मान्यताओं की धज्जियां उड़ाई हैं।

**4. नारी के साहस का चित्रण करना** – कमलेश्वर द्वारा रचित 'बयान कहानी में नारी के साहस का भी चित्रण किया है। कहानी के प्रारम्भ में ही वह बिशन के साथ विवाहपूर्व के प्रेम–सम्बन्धों को दृढ़तापूर्वक स्वीकारती है। वह स्पष्ट करती है कि–"मेरा बिशन से उतना ही प्यार था जितना की बाईस–चौबीस बरस पहले कोई भी लड़की किसी भी लड़के से कर सकती थी। मैं कब इन्कार करती हूं कि वह मुझसे नहीं मिला।" इसी प्रकार जब उसके शब्दों की गलत व्याख्या करके मनमाने अर्थ निकाले जाते तो वह साहसी और जीवट की प्रतिमूर्ति तुरन्त विरोध प्रकट करती है। इसी प्रकार कहानीकार ने लोकतान्त्रिक व्यवस्था की पोल खोलते हुए मन्त्रियों की कार्य–पद्धति पर कटु कटाक्ष किए हैं कि निरपराध व्यक्ति को नौकरी से हटाया जाता है और दोषी पुरस्कृत होते हैं। इस प्रकार से कहानीकार का उद्देश्य समाज में राजनीति के कारण हो रहे अपराधों की ओर भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना है। मन्त्रियों की कथनी और करनी पर भी प्रकाश डाला है कि रेलवे लाइन व पुल के उद्घाटन कर देते हैं तथा तस्वीरें अखबारों में प्रकाशित करवा दिये जाते हैं, परन्तु वे बनते नहीं हैं। मन्त्री महोदय मनमाने बयान जारी करते हैं, परन्तु उनके मिथ्या सिद्ध होने पर, सच्चाई गलत होने पर सच्चे व्यक्ति को दण्डित किया गया है। नारी से न्यायालय में अनैतिक–अमर्यादित व ऊल–जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं तथा उसको सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है–इसका भी प्रस्तुत कहानी में सजीव चित्रण है। नायिका के ऊपर स्केल मैनेजर, सम्पादक तथा बिशन आदि के साथ अवैध सम्बन्धों की शंका की जाती है। नायिका स्पष्ट कहती है–"आप लोग हमेशा गलत रिश्ते जोड़ते हैं, हमेशा आदमी के अस्तित्व पर शक करते हैं।" नारी के प्रति समाज के दृष्टिकोण पर भी कहानीकार ने कटु प्रहार किया है। नायिका के अर्द्धनग्न शरीर के फोटो मैगजीन में छपने पर मैनेजर उसको नौकरी से निकाल देता है। इस प्रकार कहानी में अनेक ज्वलन्त मुद्दों पर प्रकाश डाला गया तथा विसंगतियों पर कटु कटाक्ष किए हैं।"

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि कमलेश्वर ने 'बयान' कहानी में राजनीति के घिनौने स्वरूप का पर्दाफाश किया है तथा सामाजिक मान्यताओं पर कटु कटाक्ष किए हैं और मन्त्रियों–लोकतांत्रिक पद्धति की भी धज्जियां उड़ाई हैं। नारी से अनैतिक–असम्बद्ध, अमर्यादित और ऊल–जलूल प्रश्न पूछकर उसको कटघरे मे खड़ा किया जाता है। बहरी–अन्धी न्यायिक व्यवस्था पर भी कटु आक्षेप किए हैं।

## व्याख्या

***1. "पेड़ लगाए जरूर गए थे, पर वे सूख गए थे। गलती से वे तस्वीरें अखबार में छप गई थीं। विरोधी दल के किसी सदस्य ने उन तस्वीरों का हवाला देकर मुसीबत खड़ी कर दी थी। वह सब शायद लोकसभा में ही हुआ था। मंत्री जी का बयान इन तस्वीरों के साथ मेल नहीं खाता था। आदमी से गलती हो जाती है, इनसे भी हो गई थी। पर इस गलती पर इन्हें बहुत डांटा-फटकारा गया था। मन्त्री जी ने इन्हें हटा देने का आर्डर कर दिया था। उन दिनों ये बहुत परेशान थे। बस, उसके बाद इनका वहां रहना मुश्किल हो गया था।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर, स्वनामधन्य श्री कमलेश्वर द्वारा रचित उनकी श्रेष्ठ कहानी 'बयान से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी के लेखक ने राजनीति के कुत्सित–घिनौने स्वरूप पर प्रकाश डाला है तथा साथ ही सामाजिक परिस्थितियों पर भी कटु कटाक्ष किया है। नायिका का पति सामाजिक अन्याय के कारण फांसी लगाने के लिए

विवश है, पर कानून उसकी मृत्यु के कारणों को खोजने के प्रयास में असत्य को सत्य बनाने का प्रयास करते हैं। नायिका से न्यायालय में अनैतिक–अमर्यादित प्रश्न पूछे जाते हैं और नायिका के निरपराधी पति को सत्य का पालन करने पर भी नौकरी से मुक्त होना पड़ता है और प्राणों से भी हाथ धोने पड़ते हैं। उन दिनों नायिका के पति तस्वीरें खींचते वक्त बहुत खुश रहते थे। लेखक नायिका के पति को नौकरी छूटने के कारणों पर विचार करते हुए लिखता है–

**व्याख्या** – थार के रेगिस्तान को रोकने के लिए वहां असंख्य पेड़ लगाये थे और इस बारे में मन्त्री महोदय ने लोकसभा में बयान भी दिया था, परन्तु नायिका के पति वहां की तस्वीरें खींचकर लाए थे और उन तस्वीरों में दूर–दूर तक उड़ती हुई धूल तथा रेगिस्तान ही रेगिस्तान था। वहां पेड़ नाम की कोई वस्तु न थी। लेकिन कहानीकार का कहना है कि वहां पेड़ तो अवश्य लगाये गये थे, परन्तु वे पेड़ सम्यक् देखभाल न होने के कारण तथा पानी के अभाव में सूख गये थे। नायिका के पति को असावधानी के कारण ये सभी रेगिस्तान को दर्शाती तस्वीरें अखबारों में छप गई थीं। किसी विरोधी दल के सदस्यों ने उन तस्वीरों का हवाला देकर मन्त्री महोदय के बयान को असत्य घोषित किया तथा उसने मन्त्री महोदय के लिए मुसीबत खड़ी कर दी। शायद यह सब लोकसभा में हुआ था। मन्त्री जी का बयान इन तस्वीरों के साथ मेल नहीं खाता था, क्योंकि वे तो वहां लहलहाते पेड़ लगे बता रहे हैं, जबकि वास्तविकता में वहां चारों तरफ उड़ती धूल, पैर पसारता रेगिस्तान दिखाई देता है। हर आदमी से जीवन में गलती हो जाती है तथा नायिका के पति से भी गलती हो गई थी। इस गलती पर उन्हें डांटा–फटकारा गया तथा मन्त्री महोदय ने इनको नौकरी से हटाने का आदेश दे दिए। इन दिनों वे परेशान थे और वहां से इनको अलग होना पड़ा।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. राजनीति के कुत्सित रूप पर प्रकाश डाला गया है।

3. मन्त्रियों की कथनी–करनी में अन्तर तथा मिथ्या आचरण की कलई उघाड़ी है।

4. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

5. 'सत्य को दण्डित होना पड़ता है' इस तथ्य की अभिव्यक्ति हुई है।

***2. "सिवा मेरी जिन्दगी के कोई और जवाब मेरे पास नहीं है। जो कुछ है, वह मेरी जिन्दगी में ही बिखरा हुआ है। वे लम्हें, जिन्हें मैं बिखरने नहीं देती, वे भी अब यादों से छिटक गए हैं, छिटक रहे हैं, अब मुझे छिपाना क्या है ? किसके लिए और क्यों ?"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण श्रेष्ठ कहानीकार, स्वनामधन्य श्री कमलेश्वर द्वारा रचित उनकी महत्वपूर्ण कहानी 'बयान' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने राजनीति के भयावह रूप का चित्रांकन किया है तथा साथ ही सामाजिक मान्यताओं पर भी कटु कटाक्ष किए हैं। नायिका का पति परिस्थितिवश आत्महत्या कर लेता है तथा सन्देह, शंका की सूई नायिका पर आकर ठहरती है। नायिका न्यायालय में जाकर बयान देती है, उसमें अनैतिक–अमर्यादित–अशिष्ट व ऊल–जलूल प्रश्न पूछकर प्रताड़ित किया जाता है। वह प्रश्नों के उत्तर देते हुए स्पष्ट कहती है–

**व्याख्या** – नायिका न्यायालय में स्पष्ट कहती है कि अब आप मेरी बात पूरी सुनिए। वह स्पष्ट कहती है कि मेरे पास अपनी जिन्दगी के सिवाय कोई और जवाब मेरे पास नहीं है, क्योंकि मेरा जीवन ही अनेक प्रश्नों को स्पष्ट करेगा। मेरे जीवन में जो कुछ भी घटित हो चुका है, उसे बता देने के सिवाय मेरे जीवन में अब कुछ भी तो बाकी नहीं बचा है। मेरे जीवन में आपके प्रश्नों के उत्तर बिखरे पड़े हैं अर्थात् मेरा जीवन अस्त–व्यस्त रहा है। जीवन का प्रत्येक क्षण और उसकी मधुर स्मृतियां समेटे रखने का प्रयत्न भी अब बिखरकर रह गया है। लेकिन जिन मधुर स्मृतियों को समेटकर रखना चाहती हूं, वे भी सारी मधुर यादें मेरे जीवन से छिटकने लगी हैं। वास्तव में वे मधुर स्मृतियां अब बिखर कर नष्ट हो जाना चाहती हैं। इसलिए मैं अब अपने जीवन में कुछ भी छिपाकर नहीं रखना चाहती, क्योंकि जीवन में अब पति की आत्महत्या के बाद कुछ भी नहीं रह गया है। वह नगण्य, व्यर्थ और रसहीन हो गया है। अब इसलिए जीवन में घटी घटनाओं को छिपाकर रखने की न तो कोई आवश्यकता है और न महत्ता। वह यदि इन तथ्यों को छिपाकर रखे भी तो किसके लिए क्यों ? वह स्पष्ट न्यायालय में कहती है कि मेरा जीवन अब आपके सब प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट कर देगा। इसलिए जब जीवन में विशृंखलता का भाव आ गया है तो छिपाने का क्या औचित्य और लाभ है। इसलिए मैं जीवन के सारे तथ्यों या रहस्यों को आपके सामने प्रकट कर दूंगी।

**विशेष** – 1. भाषा सजीव तथा सरल है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. नायिका से न्यायाल में अनैतिक अमर्यादित या ऊल–जलूल प्रश्न पूछे जतो हैं।

3. जीवन का गम्भीर व विशद् विवेचन किया है।

4. स्मृतियां जीवन की अमूल्य धरोहर हैं–इसी तथ्य को अभिव्यक्त किया है।

5. विश्लेषणात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।

6. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

***3. "सत्य हमेशा की तरह कई बातों पर निर्भर करता है। आदमी के इतिहास, परिस्थितियों, माहौल किसी खास घटना के क्षण का यथार्थ और सबसे ज्यादा उसकी अपनी आन्तरिक यातनाओं की टीस पर, पति के दुःखों या सुखों का करण सिर्फ पत्नी नहीं होती। यह धारणा बिल्कुल गलत है। दोनों एक-दूसरे को बेतरह चाहते हुए भी एक-दूसरे से मुक्त भी होते हैं।.....जुड़े हुए भी गलत होते हैं पानी की लहरों की तरह।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के पुरोधा, स्वनामधन्य श्री कमलेश्वर द्वारा रचित उनकी सुप्रसिद्ध कहानी बयान से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने राजनीति के कुत्सित–घिनौने स्वरूप का चित्रांकन किया है तथा साथ ही मानसिक मान्यताओं पर भी कटु कटाक्ष किए हैं। नायिका का पति आत्महत्या कर लेता है और नायिका को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। वह न्यायालय में आकर अपना पक्ष प्रस्तुत करती है और उससे अनैतिक–अमर्यादित तथा ऊल–जलूल प्रश्न पूछे जाते हैं। वह सन्देह का निवारण करते हुए कहती है–पति के सुख–दुःखों का कारण केवल पत्नी ही नहीं होती, बल्कि और बहुत सारे कारण होते हैं, जिनके कारण वह आत्महत्या करने के लिए विवश है।

**व्याख्या** – नायिका स्पष्ट करते हुए कहती है कि सत्य को जानने के लिए बहुत सारे पहलू होते हैं तथा वह कभी भी एकांगी नहीं होता। वह सर्वदा बहुत सारी बातों पर निर्भर करता है। व्यक्ति का स्वयं का इतिहास, इसकी परिस्थितियां, घर का वातावरण–परिवेश और माहौल तथा किसी विशेष घटना के समय अनुभव होने वाली पीड़ा या दुःख, लेकिन सबसे ज्यादा जिम्मेदार है उसकी आन्तरिक पीड़ा और उसकी कसक। कई बार विशेष घटनाएं व्यक्ति को मर्मान्तक पीड़ा दे जाती हैं तथा जिसके कारण वह जीवन का परित्याग करने के लिए तत्पर हो जाता है। अतः पत्नी को पति की पीड़ा या सुख का कारण मानना असत्य है। जहां तक पति–पत्नी के आपसी सम्बन्धों की बात है, यद्यपि वे एक'दूसरे से स्नेह के बंधनों में दृढ़ता के साथ बंधे हुए हैं और एक–दूसरे से जुड़े होने के बावजूद भी वे गलत दिशाओं में जा सकते हैं। आपस में लगाव होने के बावजूद भी अपना–अपना मुक्त व स्वतन्त्र व्यक्तित्व हो सकता है जैसे पानी की लहरें पानी से जुड़ी होने पर भी अलग–अलग हैं। अतः नारी पति के दुःखों का एकमात्र कारण नहीं है।

**विशेष** – 1. अवतरण की भाषा सजीव–सरल एवं सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई हैं।

2. यथार्थ रूप का उद्घाटन किया गया हैं कि पत्नी पति हेतु दुःखों का कारण नहीं है, बल्कि उसकी परिस्थितियां आदि पीड़ा का एकमात्र कारण है।

3. उपमा अलंकार प्रयुक्त है। यथा–पानी की लहरों में।

4. भावपक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

5. लेखक ने पति–पत्नी के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला है।

6. विश्लेषणात्मक शैली प्रयोग हुई है।

***4. "शादी से पहले का, बादल के टुकड़े की तरह तैरकर गुजरता हुआ इश्क...उस प्रेम की काली परछाइयां ..पति-पत्नी की कलह, छोटे-मोटे झगड़े, घर वालों से तनाव या पड़ोसियों से मन-मुटाव - ये सब बड़ी मामूली बात हैं। आप अभी तक इन्हीं के सहारे सच्चाईयों तक पहुंचने में लगे हैं। इनमें कुछ भी हासिल नहीं होगा।"***

**प्रसंग** – प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के पुरोधा, स्वनामधन्य श्री कमलेश्वर द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी बयान से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने राजनीति का घिनौना स्वरूप व सामाजिक मान्यताओं पर कटु कटाक्ष किया है तथा सन्देह–शंका की सुई नायिका पर आकर ठहरती है। नायिका से न्यायालय में बेतुके–अनैतिक और अमर्यादित प्रश्न पूछे जाते हैं। नायिका न्यायालय से निवेदन करती है कि व्यर्थ के प्रश्नों का परित्याग करके ऐसे प्रश्न पूछने चाहिए जिसमें सत्य उभर कर सामने आ सके। वह स्पष्ट कहती है–

**व्याख्या** – व्यक्ति के जीवन में अनेक सुखद ओर दुःखद घटनाएं घटती रहती हैं और समय के अन्तराल में व्यक्ति उन घटनाओं को भूल जाता है। जिस प्रकार से शादी से पहले प्रेम समय के अन्तराल से विलुप्त हो जाता है, जिस तरह

आकश में बादल उमड़ते और घुमड़ते और फिर उड़ जाया करते हैं, उसी प्रकार शादी से पहले का प्यार होता है और फिर मात्र स्मृति बनकर नगण्य या महत्त्वहीन हो जाता है। इसी प्रकार से पति--पत्नी में आए दिन छोटी--मोटी बातों को लेकर झगडे होते रहते हैं, परन्तु पति--पत्नी में झगड़ा क्षणिक है, फिर मधुरता का अजस्र झरना दोनों के बीच प्रवाहित होता है। इसलिए पति--पत्नी में छोटे--मोटे झगड़े तो होते ही रहते हैं। इसी प्रकार घर के अन्य सदस्यों में भी किसी विषय या बात को लेकर तनाव व्याप्त हो जाता है, लेकिन वह भी क्षणिक होता है और धीरे--धीरे तनाव तिरोहित हो जाता है। इसी प्रकार पड़ोसियों से भी किसी विषय पर मन--मुटाव हो जाता है, तू--तू, मैं--मैं हो जाती है, अबोला भी हो जाता है, परन्तु ये सारी बातें क्षणिक, महत्त्वहीन, नगण्य व व्यर्थ की हैं, क्योंकि इन सारी बातों का जीवन में कोई महत्त्व नहीं है। आप वास्तव में इन्हीं क्षुद्र बातों के सहारे सच्चाई तक या आत्महत्या के कारणों तक पहुंचना चाहते हैं जो सर्वथा असम्भव है। इनसे कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः इन क्षुद्र बातों को छोड़कर ऐसा कुछ करें जिससे सुखद परिणाम सामने आये।

**विशेष** --1. प्रस्तुत अवतरण की भाषा सजीव, सरल तथा स्वाभाविक है। जनसाधारण की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. नायिका ने न्यायिक व्यवस्था पर कटु कटाक्ष किया है।

3. नायिका के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है।

4. प्रेम, द्वेष और राग को जीवन का शाश्वत सत्य स्वीकारा है।

5. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

5. ***"पर कई वर्षों बाद उनका यह उत्साह पता नहीं कहां खो गया था। उनके दिल में कुछ घुमड़ता रहता था। एक बार बोले थे-इन तस्वीरों से कुछ हासिल नहीं होता। मैं खुद कहीं भीतर से झूठा पड़ता जा रहा हूं। शायद कुछ दिनों बाद मैं किसी से भी यह नहीं कह पाऊंगा कि तस्वीरें सच्ची होती हैं।"***

**प्रसंग** -- प्रस्तुत अवतरण नयी कहानी के पुरोधा, स्वनामधन्य श्री कमलेश्वर द्वारा रचित उनकी महत्त्वपूर्ण कहानी 'बयान' से अवतरित है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने राजनीति के घिनौने स्वरूप का पर्दाफाश किया है तथा साथ ही मन्त्रियों के दोहरे मापदण्डों की पोल खोली है। नायिका का पति आत्महत्या कर लेता हैं वह फोटोग्राफर था और एक बार थार के रेगिस्तान की तस्वीरें लेकर आया तो मन्त्री महोदय ने वहां रेगिस्तान को रोकने के लिए पेड़ लगाने की बात कही थी, जब कि वहां दूर--दूर तक धूल--देता और सूखी मिट्टी ही मिट्टी थी। अतः तस्वीरें असत्य पर आधारित थी। इसी प्रकार रेलवे लाइनों और पुलों के उद्घाटन आदि हो तो जाते थे, लेकिन वे कभी भी नहीं बनते थे। अतः लेखक ने तस्वीरों के मिथ्यातत्व पर प्रकाश डाला है--

**व्याख्या** --नायिका के पति सरकारी फोटोग्राफर थे और उन्हें तस्वीरें खींचने में आनन्द की अनुभूति होती थी। अतः वे पन्द्रह अगस्त, शानदार दावतें, आने वाले विदेशी मेहमान, लालकिले में स्वागत समारोह, शाही सवारी, शिलान्यास, उद्घाटन आदि की तस्वीरें लिया करते थे। उन्हें वह तस्वीरें लेने में सुख की अनुभूति होती थी तथा कहा करते थे कि आजादी का यही सुख है, लेकिन अब उनका यह उत्साह--सुख--आनन्द तिरोहित हो चला था। बरसों बाद उनका यह जोश, उत्साह समाप्त हो गया था। उसके हृदय में हमेशा अन्तर्द्वन्द्व की भावना रहती थी। वे मन में बेचैन--व्याकुल एवं व्यथित रहते थे। इसी प्रकार नायिका स्पष्ट करती हुई कहती है कि इन झूठी तस्वीरों से कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि ये तस्वीरें असत्य पर आधारित हैं, क्योंकि ये तस्वीरें झूठी हैं तथा मन्त्री महोदय ने राजस्थान में थार के रेगिस्तान को रोकने के लिए पेड़ लगवाये, परन्तु तस्वीर में कहीं भी पेड़ नहीं हैं, बल्कि पैर पसारता मरूस्थल है। इसलिए नायिका का पति अन्तर्द्वन्द्व की भावना से ग्रस्त है। इन तस्वीरों से नायिका के पति को कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। वह स्पष्ट स्वीकार करता है कि इन तस्वीरों के भीतर मैं ही कहीं झूठा पड़ता जा रहा हूं। इस प्रकार उनकी सारी तस्वीरें असत्य पर आश्रित हैं। इसलिए उनको यह विश्वास नहीं हो रहा है कि तस्वीरें सच्ची होती हैं। इस प्रकार राजनीति के कलुषित रूप ने कलाकार के हृदय को आहत कर दिया तथा वह अपराध--बोध एवं आत्म--ग्लानि की भावना से पीड़ित है।

**विशेष** --1. प्रस्तुत अवतरण की भाषा सजीव, सरल व सुबोध है। आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है।

2. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से अत्युत्तम है।

3. राजनीति के कलुषित रूप पर कटाक्ष किया है।

4. तस्वीरें और फोटोग्राफर के पेशे पर भी लेखक ने कड़ा प्रहार किया है।

5. भाषा में चित्रात्मकता का गुण विद्यमान है तथा तस्वीरों का मानवीकरण किया गया हैं अतः मानवीकरण अलंकार है